अनुक्रमणिका/Index

01. अनुक्रमणिका /Index 01

02. क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल/सम्पादकीय सलाहकार मण्डल 06/07

03. निर्णायक मण्डल 08

04. प्रवक्ता साथी 10

(Science / विज्ञान)

05. Oxidation Of 3-Fluoro Benzaldehyde By Pyridinium Dicromate : Kinetics & Mechanism 12
(Dr. Bhupendra Kumar Amb)

06. Fixed Point Theorems In 2-Metric Spaces (D.K. Singh) 15

07. Fixed Point Theorems For Nonexpansive Mapping (D.K. Singh) 18

08. Convergence Theorems Of Nonexpansive Mapping For Iterative Schemes(D.K. Singh) 21

09. Security and Privacy Risks in Android Smartphone 24
(Dr. Sanjay Chaudhary, Ramesh Chandra Bodat)

10. ERP Versus BI (Dr. Sanjay Chaudhary, Rajnish Kumawat) 28

(Home Science / गृह विज्ञान)

11. Adjustment Problems of Elderly living in Old Age Home and within Family 30
set up in Indore City (Dr. Nandini Rekhade)

12. Health And Nutrional Status Of Women In India (Dr. Rashmi Verma) 32

13. Tarapur Block Printing – A Study (Dr. Rashmi Harit) 34

14. Increasing Quality Of Higher Education From Skill Based Studies Dr. Rashmi Harit) 36

15. शहरी एवं ग्रामीण किशोरों में परिवार एवं आय वर्ग के आधार पर चिंता एवं कुंण के मध्य सहसंबंधात्मक अध्ययन 37
(डॉ. नंदिनी रेखड़े, जयश्री बाथम)

16. भारतीय जनजातियों में विवाह एवं जीवन साथी प्राप्त करने के तरीके–एक अध्ययन 41
(बैतूल जिले के विशेष संदर्भ में) (रश्मि सोनी, डॉ. मधुबाला वर्मा)

(Commerce & Management / वाणिज्य एवं प्रबंध)

17. Role Of Tourism Industry In Employmentgrowth Of India (Dr. Devendra Singh Rathore) 42

18. Impact of Work Engagement on Job satisfaction of School Teachers in Udaipur city 47
(Dr. Harvinder Soni, Tanushree Bhatnagar)

19. Radio and Its Socio Economic Impact on Society (Dr. R.S. Waghela, Pankaj Kushwah) 51

20. Oil Pricing Policy In India And Its Impact On Common People 53
(Antara Kirkire, Dr. Sapna Solanki)

21. Agripreneurship - A Pathway For Economic Development (Antara Kirkire, Dr. Sapna Solanki) 55
22. रतलाम नगर निगम बजट अध्ययन (प्रो. विनोद जैन) 56
23. मध्यमवर्गीय परिवार एवं आवास समस्या (डॉ. साधना झांझरी, डॉ. सरिता मूंदड़ा) 60
24. धार जिले में इन्दिरा आवास योजना का क्रियान्वयन (वर्ष 2001–02 से 2007–08) (डॉ. बी.एस. सिसोदिया) 63
25. भारतीय विशेष आर्थिक क्षेत्र की प्राप्ति (डॉ. सपना सोनी) 65
26. मध्यप्रदेश शासन की गांव की बेटी योजना –उच्च शिक्षा में शैक्षणिक अवसर (डॉ. अमर कुमार जैन) 67
27. प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अन्तर्गत जातिगत आधार पर हितग्राहियों को प्रदत्त वित्तीय सहायता का विश्लेषणात्मक अध्ययन (डॉ. बी.एस. सिसोदिया) 69
28. उच्च शिक्षा में निजी महाविद्यालयों का महत्व एंव प्रभाव (डॉ. एस.सी. जैन, डॉ. राजेन्द्र परमार) 71
29. सूक्ष्म, लघु मध्यम उद्यमों का कार्य निष्पादन स्थिति – एक अध्ययन (डॉ. सपना सोनी) 74
30. विश्व व्यापार संगठन का भारतीय उद्योगों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन एवं विश्लेषण (राखी कुशवाह, राजेश्वरी बागौरे) 76
31. भारतीय अर्थव्यवस्था में गरीबी के कारण एवं प्रभाव का अध्ययन (डॉ. एस.सी. जैन, डॉ. राजेन्द्र परमार) 78
32. रतलाम के दो बत्ती क्षेत्र में विज्ञापन माध्यमों का अध्ययन (प्रो. विनोद जैन) 80
33. उच्च शिक्षा में परीक्षा पद्धति एवं मूल्यांकन (डॉ. आर. के. वर्मा) 82
34. वित्त आयोग – प्रभाव, सिफारिशे तथा प्रासंगिकता (डॉ. धीरज शर्मा, डॉ. विशाल पुरोहित) 85
35. उच्च शिक्षा के गुणात्मक उन्नयन में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका (डॉ. नीना गोयल) 87
36. 'उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम' संशोधन व उद्देश्य वर्तमान परिप्रेक्ष्य में (डॉ. विशाल पुरोहित, डॉ. धीरज शर्मा) 88

(Economics / अर्थशास्त्र)

37. Continuous Auditing Through The Use Of Technology And Automation (Dr. Pournima Patel, Dr. Vandana Jain, Dr. Anu Mehta) 89
38. Branding Indian Tourism: Entering in Phase of Progress (Dr. Renu Jatana, Surbhi Dharmawat) 92
39. Recommendations of Narasimham Committee and its Impact on Banking Sector in India (Dr. Vandana Jain, Dr. Pournima Patel) 95
40. मध्यप्रदेश में महिलाओं की स्थिति में जनांकिकीय परिवर्तन (डॉ. अनामिका सारस्वत) 98
41. रोजगार सृजन एवं आर्थिक विकास में पर्यटन की भूमिका (राजू बघेल) 101
42. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और भारतीय अर्थव्यवस्था (डॉ. विवेक पटेल, डॉ. आरती मिश्रा, डॉ. रामजी गर्ग) 104
43. हिन्दी भाषा विकास एवं वैश्वीकरण (डॉ. अंजना चतुर्वेदी) 106
44. ई–बैंकिंग के प्रति ग्राहकों की अविश्वसनीयता एवं भय के कारणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन (डॉ. राजीव कुमार झालानी, कार्तिका गुप्ता मेहता) 108
45. गाँधीजी के सामाजिक , आर्थिक विचार (डॉ. पंकज माहेश्वरी) 111

(Political Seience / राजनीति विज्ञान)

46. मध्यप्रदेश में सुशासन की पहल – विकास की कुँजी (डॉ. रवीन्द्र कुमार सोहोनी, प्रो. शांतिलाल ईरवार) 112

47. कार्यपालिका का विशेषाधिकार अध्यादेश (डॉ. अनिल कुमार जैन) 117
48. भारतीय संविधान, सामाजिक न्याय और डॉ. अम्बेडकर (डॉ. रवीन्द्र कुमार सोहोनी) 119
49. जोधपुर नगर निगम चुनाव 2014 – समस्याऐं तथा समाधान (डॉ. ज्योति गोस्वामी) 122
50. भारतीय लोकतंत्र की नवीन चुनौतियाँ (डॉ. अनिल कुमार जैन) 124
51. भारतीय राजनीति और गठबंधन सरकारे – एक अध्ययन (प्रो. अंजना सेठिया) 126
52. इक्कीसवीं शताब्दी और हिन्दी भाषा (डॉ. भावना यादव) 128
53. महादेव गोविन्द रानाडे के राजनीतिक विचार (डॉ. मीनाक्षी व्यास) 130
54. पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी (डॉ. विनिता भालसे, अंजू बाला ठाकरे) 132
55. हिंसा और तनाव फिर भी पंचायत चुनाव ? (डॉ. प्रदीप सिंह राव) 134
56. पण्डित मदन मोहन मालवीय के राजनीतिक विचार (डॉ. मीनाक्षी व्यास) 135

(Sociology / समाजशास्त्र)

57. पारिवारिक समायोजन में योग की भूमिका (ऋचा एस. मेहता) 136
58. निःशक्त व्यक्तियों का संवैधानिक एवं विधिक रूप से सशक्तिकरण (डॉ. ज्योति मेहता) 138
59. वर्तमान समाज और नैतिक मूल्य (डॉ. कमलसिंह मालवीय) 141
60. वृद्धावस्था सुरक्षा कानून और समाज(प्रो. प्रिशिला अन्द्रेय्स) 143
61. व्यक्तित्व विकास में संस्कारों का महत्व (डॉ. राजश्री शाह) 145
62. समाज सुधारक के रूप में डॉ. अम्बेडकर (जागृति आर्य) 147

(Geography / भूगोल)

63. Morphometric Analysis of the Chhoti Kali Sindh River Basin of Ujjain District (M.P.) India(Dr. Akhtar Bano) 148
64. The Perception of Dr BR Ambedkar Regarding the Problems of Small Agricultural Land Holdings (Dr. Prabhakar Mishra) 151
65. मलिन बस्तियों का दशकीय विकास , समस्या एवं समाधान (डॉ. नीरज कुमार सोनी) 153
66. पर्यावरण एक चिंतनीय समस्या की – समीक्षात्मक विवेचना (डॉ. अलका नामदेव) 156

(History / इतिहास)

67. Environmental Pollution & its control (Air, Noise, Status of Administrative Control) (Dr. Malika Khan) 159
68. भारतीय संगीत के विकास में अमीर खुसरो की भूमिका (डॉ. पूर्णिमा शर्मा) 161
69. छत्रसाल एवं संत प्राणनाथ (डॉ. प्रेरणा ठाकुर) 164

70. स्वतंत्रता संग्राम सेनानी सेठ वरदीचंद जैन का झाबुआ जिलें में जनजागरण में योगदान 167
(झाबुआ रियासत के विशेष संदर्भ में 1930 ई. से 1960 ई.तक) (डॉ. प्रकाश चन्द्र अलंसे)

(Philosophy / दर्शनशास्त्र)

71. महात्मा गांधी का नैतिक दर्शन (व्यावहारिक पक्ष) (डॉ. पुष्पा कपूर) 169

(Music / संगीत)

72. महाराष्ट्र की कीर्तन परम्परा (डॉ. स्नेहा पंडित) 170
73. भारतीय संगीत में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण (डॉ. नीरज राव) 173
74. भारतीय संगीत में वाद्यों की सुदीर्घ परम्परा एवं उनका भविष्य (डॉ. बी. वर्षा) 175
75. विभिन्न ललित कलाओं में संगीत –कला सर्वोच्च कला (डॉ. नीरज राव) 177

(Hindi Literature / हिन्दी साहित्य)

76. सांस्कृतिक ह्रास और रामदरश मिश्र का काव्य (प्रदीप कुमार तम्बोली, डॉ. हुसैनी बोहरा) 179
77. अद्दहमाण का संदेश रासक–एक नज़र (डॉ. रशीदा खान) 181
78. भीली लोक संस्कृति – विविध उपादान (डॉ. मीरा जामोद) 183
79. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास (डॉ. सरोज यादव) 185
80. निमाड़ी लोक साहित्य में राम–कथा की नूतन संकल्पना (डॉ. गणेश लाल जैन) 187
81. मैथिलीशरण गुप्त की नारी भावना – उपेक्षित नारियों के सन्दर्भ में (डॉ. जयश्री भटनागर) 189

(English Literature / अंग्रेजी साहित्य)

82. Representation Of Women In Indian TV Serials Reality Or Myth ? (Aparna Ray) 190
83. Pico Iyer : A Culture Journalist (Seema Batra) 194
84. Psychological analysis of Brownings' poetic characters (Dr. Supriya Paithankar) 198

(Psychology / मनोविज्ञान)

85. Role Of Religious Practices In Improvement Of Mental Health 200
(Shipra Lavania, Rashmi Singh)

(Education / शिक्षा)

86. Effectiveness Of CSCL (Computer Supported Collaborative Learning) - 203
A New Trend In Education (Prof. Anu Poonia, Rini Mathur)

87. Continuous comprehensive evaluation (CCE) – as a powerful tool of all round evaluation of learner (Priya Mishra) 206

88. To Study Benefits Of Faculty Retention In Private Commerce Colleges (Dr. Abha Singh, Pallavi Mane) 208

89. Teaching Competencies And Functions Of Teacher Educator (Shilpa Bhatnagar) 210

90. Changes in India's Education Policy-Possibilities and Prospects (P. P. Mishra, J. K. Verma) 212

91. माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के वाचिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन (डॉ. निशा महाराणा, अनिल बाबू) ... 213

92. माध्यमिक स्तर के विधार्थियों में मानसिक प्रतिमान स्तर का स्वायत्ता अधिगम से सम्बन्धता का पूर्व एवं पश्च् परीक्षण में अन्तर (प्रो. अनु पूनिया, शंकर लाल मीणा) 215

(Physical Education / शारीरिक शिक्षा)

93. Psychological Traits And Socio – Economic Status Of Indian Trainee Coaches Of Basket Ball (Dr. Hitesh Chandra Rawal) 217

(Others / अन्य)

94. Long Term Temporal Trend Detection of Precipitation during 1901–2002 at Nagaland, India (Devendra Kumar Warwade, Pratibha Warwade) 219

95. Major Issues of Environment in India (Sunil Kumar Sikarwar) 222

96. Consequences of Global Warming (Dr. Sunita Phadnis) 225

97. Quality Monitoring in Higher Education : Improvement and Enhancement of Student Learning (Sunil Kumar Sikarwar) 227

98. Energy Conservation And Energy Efficiency (Dr. Sunita Phadnis) 230

99. घरेलू हिंसा और महिला सुरक्षा कानून के तहत पुलिस की भूमिका (डॉ. अंजना जैन) 232

100. महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में महिला कानूनों की व्यवहारिकता (डॉ. सुदीप छाबड़ा) 234

101. उच्च शिक्षा में गुणवत्ता विकास के प्रयास और प्रभाव (डॉ. प्रभाकर मिश्र) 237

(Naveen Shodh Sansar / नवीन शोध संसार)

102. शोध पत्र तैयार की विधि / Method of Preparing of Research Paper 240

****

क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय (Regional Editor Board- International & National) मानद्

(01) डॉ. मनीषा ठाकुर ..... फुल्टन कॉलेज, एरिजोना स्टेट यूनिवर्सिटी, अमेरिका
(02) श्री अशोककुमार ..... एम्प्लॉयब्लिटी ऑपरेशन्स मैनेजर, एक्शन ट्रेनिंग सेन्टर लि. लन्दन, यूनाईटेड किंगडम
(03) श्री खगेन्द्रप्रसाद सुबेदी ..... सीनियर सॉयकोलॉजिस्ट, पब्लिक सर्विस कमीशन, सेन्ट्रल ऑफिस, अनामनगर, काठमाँडू, नेपाल
(04) प्रो. डॉ. ज्ञानचंद खिमेसरा ..... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत
(05) प्रो. डॉ. प्रमोद कुमार राघव ..... शोध निदेशक, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्व विद्यालय, जयपुर (राज.) भारत
(06) प्रो. डॉ. एन.एस.राव. ..... संचालक, जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
(07) प्रो. डॉ. अनूप व्यास. ..... (पूर्व) संकायाध्यक्ष, वाणिज्य, देवी अहिल्या विश्व विद्यालय, इंदौर (म.प्र.) भारत
(08) प्रो. डॉ. पी.पी. पाण्डे ..... संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन), अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत
(09) प्रो. डॉ. संजय भयानी. ..... अध्यक्ष, व्यवसाय प्रबंध विभाग, सौराष्ट्र विश्व विद्यालय, राजकोट (गुजरात) भारत
(10) प्रो. डॉ. प्रताप राव कदम ..... अध्यक्ष, वाणिज्य, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.) भारत
(11) प्रो. डॉ. बी.एस. झरे . ..... प्राध्यापक वाणिज्य विभाग, श्री शिवाजी महाविद्यालय, आकोला (महाराष्ट्र) भारत
(12) प्रो. डॉ. राकेश शर्मा ..... अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुड़गांव (हरियाणा) भारत
(13) प्रो. डॉ. संजय खरे ..... प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शास. स्वशासी कन्या स्नात. उत्कृष्टता महा., सागर (म.प्र.) भारत
(14) प्रो. डॉ. आर.पी. उपाध्याय ..... परीक्षा नियंत्रक, शासकीय कमलाराजे कन्या स्वशासी स्नातकोत्तर महा., ग्वालियर (म.प्र.) भारत
(15) प्रो. डॉ. प्रदीप कुमार शर्मा ..... प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य महा., भोपाल (म.प्र.) भारत
(16) प्रो. अखिलेश जाधव ..... प्राध्यापक, भौतिकी, शासकीय जे. योगानन्दम् छत्तीसगढ़ महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़) भारत
(17) प्रो. डॉ. कमल जैन ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.) भारत
(18) प्रो. डॉ.डी.एन. खड़से ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, धनवते नेशनल कॉलेज, नागपुर (महाराष्ट्र) भारत
(19) प्रो.डॉ. वन्दना जैन ..... प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(20) प्रो. डॉ. हरदयाल अहिरवार ..... प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.) भारत
(21) प्रो. डॉ. शारदा त्रिवेदी ..... सेवानिवृत्त प्राध्यापक, गृहविज्ञान, इंदौर (म.प्र.) भारत
(22) प्रो. डॉ. उषा श्रीवास्तव ..... अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेच्यूट स्टडी. सोलदेवानली, बैंगलुरू (कर्ना.) भारत
(23) प्रो. डॉ. गणेशप्रसाद दावरे ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, बड़वाह (म.प्र.) भारत
(24) प्रो. डॉ. एच.के. चौरसिया ..... प्राध्यापक, वनस्पति, टी.एन.वी. महाविद्यालय, भागलपुर (बिहार) भारत
(25) प्रो. डॉ. विवेक पटेल ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.) भारत
(26) प्रो. डॉ. दिनेशकुमार चौधरी ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, राजमाता सिन्धिया शासकीय कन्या महविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत
(27) प्रो. डॉ. आर.के. गौतम ..... प्राध्यापक ,वाणिज्य, शासकीय मानकुंवर बाई कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) भारत
(28) प्रो. डॉ. जितेन्द्र के. शर्मा ..... प्राध्यापक, वाणिज्य एवं प्रबंध, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय केन्द्र, पालवाल (हरियाणा) भारत
(29) प्रो. डॉ. आर.पी. सहारिया ..... प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय जे.एम.पी. महाविद्यालय तख्तपुर जिला,बिलासपुर (छ.ग.) भारत
(30) प्रो. डॉ. गायत्री वाजपेयी ..... प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय महाराजा स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.) भारत
(31) प्रो. डॉ. अविनाश शेन्द्रे ..... विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र, प्रगति कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, डोम्बीवली, मुम्बई (महाराष्ट्र) भारत
(32) प्रो. डॉ. जी.सी. मेहता ..... अध्यक्ष, अध्ययन मण्डल वाणिज्य, देवी अहिल्या विश्वविद्याय, इंदौर (म.प्र.) भारत
(33) प्रो.डॉ. बी.एस. मक्कड़ ..... अध्यक्ष, अध्ययन मण्डल वाणिज्य, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(34) प्रो.डॉ. पी.पी. मिश्रा ..... विभागाध्यक्ष, गणित, छत्रसाल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पन्ना, (म.प्र.) भारत
(35) प्रो.डॉ. सुनील कुमार सिकरवार.... प्राध्यापक, रसायन, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.) भारत
(36) प्रो.डॉ. के.एल. साहू..... प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत
(37) प्रो.डॉ. मालिनी जॉनसन ..... प्राध्यापक, वनस्पति, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू (म.प्र.) भारत
(38) प्रो.डॉ. विशाल पुरोहित ..... एम.एल.बी. शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किला मैदान, इन्दौर (म.प्र.) भारत

****

सम्पादकीय सलाहकार मण्डल (Editorial Advisory Board, INDIA) मानद्

(01) प्रो. डॉ. नरेन्द्र श्रीवास्तव ..... प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'इसरो' बैंगलुरू (कर्नाटक) भारत

(02) प्रो. डॉ. आदित्य लूनावत ..... निदेशक, स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर (म.प्र.) भारत

(03) प्रो. डॉ. संजय जैन ..... सहायक नियंत्रक, म.प्र. व्यावसायिक परीक्षा मंडल भोपाल (म.प्र.) भारत

(04) प्रो. डॉ.एस.के. जोशी ..... प्राचार्य, शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय रतलाम (म.प्र.) भारत

(05) प्रो. डॉ. जे.पी.एन. पाण्डेय ..... प्राचार्य, शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टा महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

(06) प्रो. डॉ. अशोका श्रीवास्तव ..... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

(07) प्रो. डॉ. सुमित्रा वास्केल ..... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.) भारत

(08) प्रो. डॉ. पी.आर. चन्देलकर ..... प्राचार्य, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

(09) प्रो. डॉ. मंगल मिश्र ..... प्राचार्य, श्री क्लॉथ मार्केट, कन्या वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

(10) प्रो. डॉ.आर.के. भट्ट ..... प्राचार्य, शासकीय महिला महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

(11) प्रो. डॉ. अशोक वर्मा ..... प्राचार्य एवं संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेंधवा (म.प्र.) भारत

(12) प्रो. डॉ. टी.एम. खान ..... प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, धामनोद, जिला–धार (म.प्र.) भारत

(13) प्रो. डॉ. राकेश ढण्ड ..... संकायाध्यक्ष, विद्यार्थी कल्याण विभाग विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

(14) प्रो. डॉ. अनिल शिवानी ..... अध्यक्ष, वाणिज्य एवं प्रबंध विभाग श्री अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.) भारत

(15) प्रो. डॉ. पद्मसिंह पटेल ..... अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग शासकीय महाविद्यालय महिदपुर (म.प्र.) भारत

(16) प्रो. डॉ. मंजु दुबे..... संकायाध्यक्ष (डीन), गृह विज्ञान संकाय, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.) भारत

(17) प्रो. डॉ.ए.के. चौधरी ..... प्राध्यापक, मनोविज्ञान, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

(18) प्रो. डॉ. के.एल. जाट..... प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, भौतिकी विभाग शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

(19) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंह राव ..... प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, राजनीति विभाग शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला–रतलाम (म.प्र.) भारत

(20) प्रो. डॉ. नटवर लाल गुप्ता ..... प्राचार्य, शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

****

निर्णायक मण्डल (Referee Board) मानद्

✻✻✻ विज्ञान संकाय ✻✻✻

गणित:- .... **(1) प्रो. डॉ.वी.के. गुप्ता,** संचालक वैदिक गणित एवं शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

भौतिकी:- .... **(1) प्रो. डॉ. आर.सी. दीक्षित**, शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

(2) प्रो.डॉ. रवि कटारे, शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

कम्प्यूटर विज्ञान:- .... **(1) प्रो. डॉ. उमेश कुमार सिंह** अध्यक्ष कम्प्यूटर अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

रसायन:- .... **(1) प्रो. डॉ. मनमीत कौर मक्कड़,** शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्ज्रैन (म.प्र.)

वनस्पति:- .... **(1) प्रो. डॉ. सुचिता जैन,** राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)

(2) प्रो.डॉ. अखिलेश आयाची, शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

प्राणिकी:- .... **(1) प्रो.डॉ. मंजुलता शर्मा**, एम.एस.जे., राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)

(2) प्रो. डॉ. अमृता खत्री, माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)

सांख्यिकी:- .... **(1) प्रो. डॉ. रमेश पण्ड्या,** शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

सैन्य विज्ञान:- .... **(1) प्रो. डॉ. कैलाश त्यागी,** शासकीय मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

जीव रसायन:- .... **(1) डॉ. कंचन डींगरा,** शासकीय एम.एच. गृह विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

भूगर्भ शास्त्र:- .... **(1) प्रो. डॉ. आर.एस. रघुवंशी,** शासकीय मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. सुयश कुमार, शासकीय आदर्श महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

चिकित्सा विज्ञान:- .... **(1) डॉ. एच.जी. वरूधकर,** आर.डी. गारड़ी मेडिकल महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

✻✻✻ वाणिज्य संकाय ✻✻✻

वाणिज्य :- .... **(1) प्रो. डॉ. पी.के. जैन,** शासकीय हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. शैलेन्द्र भारल, शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

(3) प्रो. डॉ. लक्ष्मण परवाल, शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

✻✻✻ प्रबंध एवं व्यवसाय प्रशासन संकाय ✻✻✻

प्रबंध :- .... **(1) प्रो. डॉ. रामेश्वर सोनी**, अध्यक्ष अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. आनन्द तिवारी, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर कन्या उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

मानव संसाधन:- .... **(1) प्रो. डॉ. हरविन्दर सोनी**, पैसेफिक बिजनेस स्कूल, उदयपुर (राज.)

व्यवसाय प्रशासन:- .... **(1) प्रो. डॉ. कपिलदेव शर्मा**, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)

✻✻✻ विधि संकाय ✻✻✻

विधि:- .... **(1) प्रो. डॉ. एस.एन. शर्मा,** प्राचार्य, शासकीय माधव विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, प्राचार्य श्री जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर विधि महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

✻✻✻ कला संकाय ✻✻✻

अर्थशास्त्र:- .... **(1) प्रो. डॉ. पी.सी. रांका,** श्री सीताराम जाजू शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. जे.पी. मिश्रा, शासकीय महाराजा स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

(3) प्रो. डॉ. अंजना जैन, एम.एल.बी. शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किला मैदान, इन्दौर (म.प्र.)

राजनीति:- .... **(1) प्रो. डॉ. रवींद्र सोहोनी,** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. अनिल जैन, शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

(3) प्रो. डॉ. सुलेखा मिश्रा, मानकुंवर बाई शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

दर्शनशास्त्र:- .... **(1) प्रो. डॉ. हेमन्त नामदेव,** शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

समाजशास्त्र:– ..... **(1) प्रो. डॉ. आशुतोष व्यास,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़ (राज.)
(2) प्रो. डॉ. एच.एल. फुलवरे, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)
(3) प्रो. डॉ. इन्दिरा बर्मन, शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(4) प्रो. डॉ. उमा लवानिया, शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला-सागर (म.प्र.)

हिन्दी:– ..... **(1) प्रो. डॉ. चन्दा तलेरा जैन,** अध्यक्ष अध्ययन मण्डल, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र)
(2) प्रो. डॉ. जया प्रियदर्शनी शुक्ला, वनस्थली विद्यापीठ (राज.)
(3) प्रो. डॉ. कला जोशी, श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

अंग्रेजी:– ..... **(1) प्रो. डॉ. प्रशांत मिश्रा,** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. अजय भार्गव, शासकीय महाविद्यालय, बड़नगर (म.प्र.)
(3) प्रो. डॉ. मंजरी अग्निहोत्री, शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

संस्कृत:– ..... **(1) प्रो. डॉ. भावना श्रीवास्तव,** शासकीय स्वशासी महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. बालकृष्ण प्रजापति, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गंजबासौदा जिला विदिशा (म.प्र.)

इतिहास:– ..... **(1) प्रो. डॉ. नवीन गिडियन,** शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

भूगोल:– ..... **(1) प्रो. डॉ. राजेन्द्र श्रीवास्तव** शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामण्डी, जिला मंदसौर (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. अर्चना भार्गव, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

मनोविज्ञान:– ..... **(1) प्रो. डॉ. कामना वर्मा,** प्राचार्य, शासकीय राजमाता सिंधिया कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. सरोज कोठारी, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

चित्रकला:– ..... **(1) प्रो. डॉ. अल्पना उपाध्याय,** शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. रेखा श्रीवास्तव, महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

संगीत:– ..... **(1) प्रो. डॉ. भावना ग्रोवर (कथक),** सुभारती विश्व विद्यालय मेरठ (उ.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. श्रीपाद अरोणकर, राजमाता सिन्धिया शासकीय कन्या महाविद्यालय, छिन्दवाडा (म.प्र.)

✲✲✲ *गृह विज्ञान संकाय* ✲✲✲

आहार एवं पोषण विज्ञान:– .... **(1) प्रो.डॉ. प्रगति देसाई,** शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. मधु गोयल, स्वामी केशवानन्द गृह विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
(3) प्रो. डॉ. संध्या वर्मा, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

मानव विकास:– ..... **(1) प्रो. डॉ. मीनाक्षी माथुर,** अध्यक्ष, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)
(2) प्रो. डॉ. आभा तिवारी, अध्यक्ष अध्ययन मण्डल रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

पारिवारिक संसाधन प्रबंध:– ... **(1) प्रो. डॉ. मंजु शर्मा,** माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इंदौर (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. नम्रता अरोरा, वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

✲✲✲ *शिक्षा संकाय* ✲✲✲

शिक्षा ..... **(1) प्रो. डॉ. मनोरमा माथुर,** प्राचार्य, अरावली शिक्षा महाविद्यालय, फरीदाबाद (हरियाणा)
(2) प्रो. डॉ. एन.एम.जी. माथुर, प्राचार्य एवं डीन पेसेफिक शिक्षा महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)
(3) प्रो. डॉ. अर्चना श्रीवास्तव, बी.सी.जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)

✲✲✲ *शारीरिक शिक्षा संकाय* ✲✲✲

शारीरिक शिक्षा ..... **(1) प्रो. डॉ. अक्षयकुमार शुक्ला,** अध्यक्ष शारीरिक शिक्षा पेसेफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

✲✲✲ *ग्रन्थालय विज्ञान संकाय* ✲✲✲

ग्रन्थालय विज्ञान ..... **(1) डॉ. अनिल सिरौठिया,** शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

प्रवक्ता साथी (मानद्)

(01) प्रो. डॉ. आर.के. गुजेटिया ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(02) प्रो. श्रीमती विजया वधवा ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(03) डॉ. सुरेंद्र शक्तावत ..... ज्ञानोदय इंस्टीट्यूट ऑफ मेनेजमेंट एंड टेक्नोलॉजी, नीमच (म.प्र.)
(04) प्रो. डॉ. देवीलाल अहीर ..... शासकीय महाविद्यालय, जावद, जिला नीमच (म.प्र.)
(05) श्री आशीष द्विवेदी ..... शासकीय महाविद्यालय, मनासा, जिला नीमच (म.प्र.)
(06) प्रो. डॉ. मनोज महाजन ..... शासकीय महाविद्यालय, सोनकच्छ, जिला देवास (म.प्र.)
(07) श्री उमेश शर्मा ..... कृष्णा शिक्षा महाविद्यालय, जावी, जिला– नीमच (म.प्र.)
(08) प्रो. डॉ. एस.पी. पंवार ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(09) प्रो. डॉ. पूरालाल पाटीदार ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(10) प्रो. डॉ. क्षितिज पुरोहित ..... जैन कला–वाणिज्य–विज्ञान महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(11) प्रो. डॉ.एन.के. पाटीदार ..... शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामंडी, जिला मन्दसौर (म.प्र.)
(12) प्रो. डॉ. वाय.के. मिश्रा ..... शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(13) प्रो. डॉ. सुरेश कटारिया ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(14) प्रो. डॉ. अभय पाठक ..... शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(15) प्रो. डॉ. मालसिंह चौहान ..... शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला रतलाम (म.प्र.)
(16) प्रो. डॉ. गेंदालाल चौहान ..... शासकीय विक्रम महाविद्यालय, खाचरौद, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(17) प्रो. डॉ. प्रभाकर मिश्र ..... शासकीय महाविद्यालय, महिदपुर, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(18) प्रो. डॉ. प्रकाश कुमार जैन ..... शासकीय माधव कला वाणिज्य विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(19) प्रो. डॉ. कमला चौहान ..... शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(20) प्रो. डॉ.आभा दीक्षित ..... शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(21) प्रो. डॉ. पंकज माहेश्वरी ..... शासकीय महाविद्यालय, तराना, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(22) प्रो. डॉ. डी.सी. राठी ..... स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ, उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर
(23) प्रो. डॉ. अनिता गगराड़े ..... शासकीय होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(24) प्रो. डॉ. संजय पंडित ..... शासकीय एम.जे.बी. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)
(25) प्रो. डॉ. रामबाबू गुप्ता ..... शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(26) प्रो. डॉ. अंजना सक्सैना ..... शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(27) प्रो. डॉ. सोनाली नरगुन्दे ..... पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(28) प्रो. डॉ. भारती जोशी ..... अजीवन शिक्षण विभाग देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(29) प्रो. डॉ. एम.डी. सोमानी ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(30) प्रो. डॉ. प्रीति भट्ट ..... शासकीस एन.एस.पी. विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(31) प्रो. डॉ. संजय प्रसाद ..... शासकीय महाविद्यालय, सांवेर, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(32) प्रो. डॉ. मीना मटकर ..... सुगनीदेवी कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(33) प्रो. मोहन वास्केल ..... शासकीय महाविद्यालय, थांदला, जिला – झाबुआ (म.प्र.)
(34) प्रो. डॉ. नितिन सहारिया ..... शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.)
(35) प्रो. डॉ. मंजु राजोरिया ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)
(36) प्रो. डॉ. शहजाद कुरैशी ..... शासकीय नवीन कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, मूंदी, जिला खण्डवा (म.प्र.)
(37) प्रो. डॉ. शैल वाला गाँधी ..... महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(38) प्रो. डॉ. प्रवीण ओझा ..... श्री भगवत सहाय शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(39) प्रो. डॉ.ओमप्रकाश शर्मा ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, श्योपुर (म.प्र.)
(40) प्रो. डॉ. एस.के. श्रीवास्तव ..... शासकीय विजया राजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(41) प्रो. डॉ. अनूप मोघे ..... शासकीय कमलाराजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(42) प्रो. डॉ. हेमलता चौहान ..... शासकीय महाविद्यालय, बड़नगर (म.प्र.)
(43) प्रो. डॉ. महेशचन्द्र गुप्ता ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.)
(44) प्रो. डॉ. मंगला ठाकुर ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वाह, जिला खरगोन (म.प्र.)
(45) प्रो. डॉ. के.आर. कुम्हेकर ..... शासकीय महाविद्यालय, सनावद, जिला खरगोन (म.प्र.)
(46) प्रो. डॉ. आर.के. यादव ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.)
(47) प्रो. डॉ. आशा साखी गुप्ता ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.)

(48) प्रो. डॉ. हेमसिंह मण्डलोई ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)
(49) प्रो. डॉ. प्रभा पाण्डेय ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मैहर, जिला– सतना (म.प्र.)
(50) डॉ. राजेश कुमार ..... शासकीय महाविद्यालय अमरपाटन, जिला–सतना (म.प्र.)
(51) प्रो. डॉ. रावेन्द्रसिंह पटेल ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)
(52) प्रो. डॉ. मनोहरलाल गुप्ता ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ ब्यावरा (म.प्र.)
(53) प्रो. डॉ. मधुसुदन प्रकाश ..... शासकीय महाविद्यालय, गंजबासोदा, जिला–विदिशा (म.प्र.)
(54) प्रो. युवराज श्रीवास्तव ..... सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, कोटा–बिलासपुर (छ.ग.)
(55) प्रो. डॉ. सुनील वाजपेयी ..... शासकीय तिलक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कटनी (म.प्र.)
(56) प्रो. डॉ. ए.के. पाण्डे ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)
(57) प्रो. डॉ. यतीन्द्र महोबे ..... शासकीय महिला महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.)
(58) प्रो. डॉ. शशि प्रभा जैन ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर–मालवा (म.प्र.)
(59) प्रो. डॉ. नियाज अंसारी ..... शासकीय महाविद्यालय,सिंहावल, जिला सीधी (म.प्र.)
(60) प्रो. डॉ. अर्जुनसिंह बघेल ..... शासकीय महाविद्यालय, हरदा (म.प्र.)
(61) डॉ. सुरेश कुमार विमल ..... शासकीय महाविद्यालय, भैंसादेही, जिला बैतूल (म.प्र.)
(62) प्रो. डॉ. अमरचन्द्र जैन ..... शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(63) प्रो. डॉ. रश्मि दुबे ..... शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(64) प्रो. डॉ. ए.के. जैन ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीना, जिला– सागर (म.प्र.)
(65) प्रो. डॉ. संध्या टिकेकर ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला– सागर (म.प्र.)
(66) प्रो. डॉ. राजीव शर्मा ..... शासकीय नर्मदा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(67) प्रो. डॉ. रश्मि श्रीवास्तव ..... शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(68) प्रो. डॉ. लक्ष्मीकांत चंदेला ..... शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
(69) प्रो. डॉ. बलराम सिंगोतिया ..... शासकीय महाविद्यालय सौंसर, जिला–छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(70) प्रो.डॉ. विम्मी बहल ..... शासकीय महाविद्यालय, काला पीपल, जिला – शाजापुर (म.प्र.)
(71) प्रो. डॉ. अमित शुक्ल ..... शासकीय ठाकुर रणमतसिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
(72) प्रो. डॉ. मीनू गजाला खान ..... शासकीय महाविद्यालय, मक्सी, जिला–शाजापुर (म.प्र.)
(73) प्रो. डॉ. पल्लवी मिश्रा ..... शासकीय महाविद्यालय, नई गढ़ी, जिला– रीवा (म.प्र.)
(74) प्रो. डॉ. एम.पी. शर्मा ..... शासकीय महाविद्यालय, दतिया (म.प्र.)
(75) प्रो. डॉ. जया शर्मा ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)
(76) प्रो. डॉ. सुशील सोमवंशी ..... शासकीय महाविद्यालय, नेपानगर, जिला बुरहानपुर (म.प्र.)
(77) प्रो. डॉ. इशरत खान ..... शासकीय महाविद्यालय, रायसेन (म.प्र.)
(78) प्रो. डॉ. कमलेशसिंह नेगी ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)
(79) प्रो. डॉ. भावना ठाकुर ..... शासकीय महाविद्यालय रेहटी, जिला सीहोर (म.प्र.)
(80) प्रो. डॉ. केशवमणि शर्मा ..... पंडित बालकृष्ण शर्मा नवीन शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाजापुर (म.प्र.)
(81) प्रो. डॉ. रेणु राजेश ..... शासकीय नेहरु अग्रणी महाविद्यालय, अशोक नगर (म.प्र.)
(82) प्रो. डॉ. अविनाश दुबे ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.)
(83) प्रो. डॉ. वी.के. दीक्षित ..... छत्रसाल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)
(84) प्रो. डॉ. राम अवेधश शर्मा ..... एम.जे.एस. शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिण्ड (म.प्र.)
(85) प्रो. डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री ..... सरोजिनी नायडू शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(86) प्रो. डॉ. समीर कुमार शुक्ला ..... शासकीय चन्द्र विजय महाविद्यालय, डिण्डोरी (म.प्र.)
(87) प्रो. डॉ. आर.सी. पान्टेल ..... शासकीय महाविद्यालय, धामनोद, जिला–धार (म.प्र.)
(88) प्रो. डॉ. अनूप परसाई ..... शासकीय जे. योगानन्दन छत्तीसगढ़ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)
(89) प्रो. डॉ. अनिलकुमार जैन ..... इन्दिरा गाँधी खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)
(90) प्रो. डॉ. अर्चना वशिष्ठ ..... राजकीय राजऋषि महाविद्यालय अलवर (राज.)
(91) प्रो. डॉ. कल्पना पारीख ..... एस.एस.जी. पारीख पी.जी. कॉलेज, जयपुर (राज.)
(92) प्रो. डॉ. गजेन्द्र सिरोहा ..... पेसिफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)
(93) प्रो. डॉ. कृष्णा पैन्सिया ..... हरिश आंजना महाविद्यालय, छोटीसादड़ी, जिला– प्रतापगढ़ (राज.)
(94) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंह ..... केंद्रीय विश्व विद्यालय हरियाणा, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)
(95) प्रो. डॉ. स्मृति अग्रवाल ..... शोध सलाहकार, नई दिल्ली

Oxidation Of 3-Fluoro Benzaldehyde By Pyridinium Dicromate : Kinetics & Mechanism

Dr. Bhupendra Kumar Amb *

Abstract - Kinetics and mechanism of the oxidation of 3-fluoro benzaldehyde by pyridinium dichromate (PDC) have been studied in aquo-acetic acid medium. The main product of oxidation is 3-fluoro benzoic acids. The reaction is first order with respect to PDC and 3-fluoro benzaldehydes and second order with respect to [H^+]. The rate of oxidation decreases with increase in dielectric constant of solvent shows that cation-dipole interaction. Activation energies and related thermodynamic parameters have been determined. A probable mechanism consistent with experimental observations has been proposed.

Keywords - kinetics, oxidation, 3-fluoro-nitrobenzaldehyde, PDC, aquo-acetic acid medium.

Introduction - Pyridinium dichromate[1] (PDC), has been recently reported[2,3]. Only a few reports about the kinetics and mechanistic aspects of oxidation by PDC are available in literature[2-4]. Aromatic aldehydes were found to be smoothly oxidised by this reagent. We report here the kinetics of oxidation of 3-fluorobenzaldehyde in acetic acid-perchloric acid medium with this oxidant. The preliminary experiment in our laboratory has shows contradiction to the results reported by Elango and Karunalaran.[5]

Experimental - All chemicals used were of AnalaR grade (E. Merck). PDC solution was prepared in purified acetic acid. Solid PDC was prepared by reported method[1]

The products of oxidation of 3-fluorobenzaldehyde by PDC were confirmed as 3-fluoro benzoic acid by m.p., tlc and spectral analysis. Stoichiometry investigation revealed that 3 mol of 3-fluorobenzaldehyde consume 1 mol of PDC.

$3ArCHO + H_2O + PDC \{2Cr(VI) \rightarrow 3ArCOOH + 2Cr(III) + 6H^+$ —(1)

Kinetic measurements - The reactions were carried out under pseudo-first order conditions. A known volume of substrate, perchloric acid and acetic acid were mixed in reaction flask and kept in thermostat maintained at constant temperature (± 0.1K). The reaction was initiated by adding rapidly pre-determined volume of PDC solution into the above reaction mixture. The rate of reaction was followed by withdrawing aliquots of (5.0 ml) the reaction mixture at regular intervals of time and quenching in 10 ml of 10% potassium iodide solution. The liberated iodine was titrated against previously standardised sodium thiosulphate (hypo) using starch as an indicator. The pseudo first order rate coefficients were obtained by plotting log (a-x) values against time. The rate constants k_{obs} were computed from the linear plots of log [hypo] versus time by least-square method. The results were reproducible to ±3%.

Results And Discussion - ***Stability of pyridinium dichromate (oxidant) in solution***. The rate of oxidation does not change with increase in pyridine concentration. This shows that PDC is not hydrolysed & it is quite stable compound under aqueous kinetic conditions.

Effect of oxidant concentration on rate- The rate coefficients are independent of the initial concentration of PDC in the concentration range of 0.00333 - 0.00125 M, indicating that the reaction is first order in PDC.

Effect of substrate concentration on rate- A plot of log k_{obs} against log [aldehyde] was linear with a slope of ca. 1 (for 3-fluorobenzaldehyde is 0.997**).** The order with respect to substrate is one. The rate of oxidation increases on increasing the concentration of benzaldehyde (Table 1). Michaelis-Menten kinetics[6] do not fit. This shows that either the complex formed is very unstable or it is not formed. The order with respect to substrate is one.

Table 1. **(see in last page)**

Effect of perchloric acid concentration on rate- Reaction were carried out by changing the perchloric acid. Increase in [$HClO_4$] was found to increase the rate of oxidation shows that the oxidation of aldehyde is catalysed by acid. A plot of log k_{obs} versus log [H^+] was linear in the range of [H^+] =0.1-1.5 mol dm^{-3} with a slope of two (for 3-fluorobenzaldehyde 2.0742), i.e. the order with respect to [H^+] is two. The second order with respect to [H^+] indicates an interaction between hydrated benzaldehyde and protonated PDC forming an cyclic ester, which then decomposes in a slow step forming the corresponding benzoic acids.

The Zucker Hammett[7] was also applied but the slopes of the plots do not fit in the criterion. This shows that the

* **Asst. Prof., Chemical Kinetics Laboratory (Chemistry) Govt. P. G. College, Neemuch (M.P.) INDIA**

water molecule is not acting as proton abstractor in the rate-determining step.

The rate law of the oxidation process can be expressed as follows:

$$-\frac{d}{dt}[PDC]=k_1[PDC][aldehyde][H^+]^2 \quad \text{——————} \quad (2)$$

Table 2. -Variation of rate with temperature

Temperature (K)	[PDC]×10³ (mol dm⁻³)	[Substrate] ×10² (mol dm⁻³	AcOH% (v/v)	[H⁺]× 10 (mol dm⁻³)	k_{obs} × 10⁵ (s^{-1}) 3-F benzaldehyde
303	2.0	2.0	30	15	50.21
308	2.0	2.0	30	15	60.08
313	2.0	2.0	30	15	71.26
318	2.0	2.0	30	15	81.30
323	2.0	2.0	30	15	99.11
328	2.0	2.0	30	15	115.24

Effect of solvent composition on rate- The rate of oxidation of 3-fluorobenzaldehyde increases with increasing in volume percentage of acetic acid. Decreasing dielectric constant of medium favours the reaction indicating that the reaction is of ion-dipole type.[8] The plots of log k_{obs} versus 1/*D*(dielectric constant) with positive slopes > 20 (for 3-fluorobenzaldehyde +110.14) suggest cation-dipole type of interaction[6]. Results are similar to earlier observation in oxidation of substituted benzaldehyde by QBC[9].

Effect of Mn(II) and Ce(III) ion on rate- The rate of oxidation decreases gradually on the addition of Ce(III) and Mn(II) ions. This effect suggests that Cr(VI) acts as a two-electrons oxidant[10].

Effect of ionic strength on rate- Different concentration of sodium sulphate, sodium nitrate and sodium perchlorate did not alter the rate constant (Table 1), giving additional evidence for ion-dipole type reaction. This also proves that opposite or similar charge species are not interacting in the rate-determining step[10].

Thermodynamic parameters. Experiment have been carried out at 303 to 328K under identical condition of reagents (Table -2). The plot of log k_1 against 1/*T* is linear with slop -1.428. The activation parameters are reported inTable - 3 :

Table 3.Thermodynamic parameters

	3-Fluoro benzaldehyde	Benzaldehyde
Average pZ=*A* ($dm^{-3}s^{-1}$ mol^{-1})	1.784×10^3	1.33×10^2
Energy of activation ΔE_a^* (kJ mol^{-1})	27.342± 1.4	27.38±1.1
Entropy of activation ΔS^* (J K^{-1} mol^{-1})	-186.65 ± 6.4	-208.22 ± 5.7
Free energy ΔG^* (kJ mol^{-1})	84.830± 1.5	91.51 ± 2.0

The –ve entropy of activation shows that the reaction is slow[12].

The higher rate of oxidation of 3-fluorobenzaldehyde could be due to combined – I and +R effects, indicating more positive charge on carbonyl carbon atom. The rate of the oxidation of benzaldehyde by PDC is accelerated by electron-releasing substituents. Similar effects has been observed by Lucchi[13] in Cr(VI); Aruna et al.[14] in QDC and Ramakrishan et al.[15] in PFC.

Considering all these experimental data, the following reaction scheme may be suggested: which is shows in the last.

Acknowledgements - The authors are thankful to U.G.C., New Delhi, India, for providing financial assistance.

References :-

1. E. J. COREY, G. SCHMIDT: Synthetic & Kinetic Aspects of PDC.*Tetrahedron Letters*; 399 (1979).
2. G. MANGALAM, S. M. SUNDARAM: Kinetics of Oxidation of Aryl Methyl Sulphide by PDC. *J. Indian Chem. Soc*.; 68,77,02 (1991).
3. K. SUGANYA, G. BABURAO, S. KABIAN: Kinetics of Oxidation of Benzyl Alcohol & Substituted Benzyl Alcohol by PDC. *Oxidation Communications*; 26,373,02 (2003).
4. A. N. PALNIAPPAN, K. BHARATHI, K. G. SEKER: Kinetics of Oxidation of 8-Hydroxy Quinoline (Oxime) by PDC. *Polish J. Chem*.; 72,(1), 122 (1998).
5. K.P. Elango and K.Karunakaran, Oxid.commun.9, 59 (1996)
6. S. AGRAWAL, K. CHAUDHARY, K. K. BANERJI: Kinetics of Oxidation of Substituted Benzaldehyde by PFC. *J. Organic Chem*.; 56,5111 (1991).
7. L. ZUCKER, L. P. HAMMATT: The Effect of Nuclear & Side Chain Substitution on the Oxonium Ion Catalyzed Iodination of Acetophenone Derivatives. *J. American Chem.Soc*.; 61,2 779 (1939).
8. E.S. AMIS: "Kinetics of Chemical Changes in *Solution"Macmillan, New York* ; P,71 (1949).
9. B. L. HIRAN, R. K. MALKANI, P. CHAUDHARY, P. VERMA, N. SHORGER: Kinetics of Oxidation of Para Substituted Benzaldehyde by QBC. *Asian J. Chemistry*; 18,4,3081 (2006).
10. A. THANERAJAN, R. GOPALAN: Kinetics of Oxidation of 2-Propanol with Cr(VI). *J. Indian Chem. Soc*.; 67,453 (1990).
11. A. FROST, RALPHG PEARSON: Kinetics & Mechanism. *John Wiley & Sons, Inc Japan*.; P-150 (1961).
12. S. GLASSTONE, K. J. LAIDER, H. EYRING: 'Theory of Rate Processes'. *McGraw-Hill, New York* (1941).
13. E. LUCHI: Kinetics of Oxidation of Benzaldehydes by Cr(VI). *Boll.Sci.Fac.Chem.Ind. Bologna*; 333(1940).
14. K. ARUNA, P. MANIKYMBA, V. SUNDRAM: Kinetics of Oxidation of Benzaldehydes by QDC.*Asian J.Chem*. ; 6,542 (1994).

15. P. S. RAMAKRISHAN, P. CHOKALINGAM: Kinetics of Oxidation of Substituted Benzaldehydes by PFC. *J. Indian Chem. Soc*.; 70,581 (1993).

Variation of rate with oxidant concentration, substrate concentration, solvent composition, added perchloric acid, added ionic strength.

Table- 1 : temperature 308 K

[Substrate]× 10^2 (mol dm^{-3}	AcOH (%) (v/v)	[H^+]×10 (mol dm^{-3})	[PDC] ×10^3(mol dm^{-3})	$NaSO_4$]×10^3(mol dm^{-3})	[$NaClO_4$]×10^3(mol dm^{-3})	k_{obs} ×10^5 (s^{-1}) 3-F benzaldehyde
2.0	30	15	2.0	0	0	60.08
2.5	30	15	2.0	0	0	74.91
3.0	30	15	2.0	0	0	88.46
3.6	30	15	2.0	0	0	98.77
4.0	30	15	2.0	0	0	110.65
4.6	30	15	2.0	0	0	118.98
2.0	30	01	2.0	0	0	0.210
2.0	30	03	2.0	0	0	2.280
2.0	30	05	2.0	0	0	6.270
2.0	30	10	2.0	0	0	25.21
2.0	30	12	2.0	0	0	37.41
2.0	30	15	2.0	0	0	60.08
2.0	10	15	2.0	0	0	33.94
2.0	15	15	2.0	0	0	38.11
2.0	20	15	2.0	0	0	42.10
2.0	25	15	2.0	0	0	49.55
2.0	30	15	2.0	0	0	60.08
2.0	40	15	2.0	0	0	68.37
2.0	50	15	2.0	0	0	94.33
2.0	30	15	2.0	5.61	0	60.08
2.0	30	15	2.0	10.0	0	58.57
2.0	30	15	2.0	12.8	0	61.06
2.0	30	15	2.0	20.0	0	59.91
2.0	30	15	2.0	0	5.61	61.05
2.0	30	15	2.0	0	10.0	59.98
2.0	30	15	2.0	0	12.8	58.64
2.0	30	15	2.0	0	20.0	60.11

reaction scheme

(i) $$[PDC] + H^+ \overset{K_1}{\rightleftharpoons} [PDC\text{-}H^+] \quad (C_1)$$

(ii) $$Ph—CHO + H^+ \overset{K_2}{\rightleftharpoons} Ph—H\,C^+—O—H \quad (C_2)$$

The interaction of C_1 with C_2 can be ruled out as there was no effect of ionic strength on rate while solvent effect indicates cation-dipole type of interaction[6].

(vi) $$Cr(IV)—O—Cr(VI) \xrightarrow{fast} Cr(V)—O—Cr(V)$$

(vii) $$Cr(V)—O—Cr(V) + 2Ph\text{-}CHO \xrightarrow{fast} 2Ph\text{-}COOH + 2\,Cr\,(III)$$

Overall reaction is

$$3\,Ph\text{-}CHO + PDC \longrightarrow 3\,Ph\text{-}COOH + 2\,Cr\,(III) \qquad (3)$$

which is consistent with observed stoichiometric equation and product study. The rate expression obtained from the mechanism is $k_{obs} = k_1 = k.k'\,K_1K_2\,[Ald]\,[H^+]^2$

This rate law is consistent with all the observed experimental results.

****

Fixed Point Theorems In 2-Metric Spaces

D.K. Singh *

Abstract - In this paper, we established common fixed-point theorem for four mapping in complete 2-metric space.
Key words - Fixed point, Weakly compatible mappings, Cauchy sequence, 2-metric space.

Introduction -The concept of 2-metric space is a natural generalization of the metric space. Initially, it has been investigated by Gahler [3] and has been developed broadly by Gahler [4, 5]. After this number of fixed point theorems have been proved for 2-metric spaces by introducing compatible mappings, which are more general than commuting and weakly commuting mappings. Jungck and Rhoades defined the concepts of d-compatible and weakly compatible mappings as extensions of the concept of compatible mapping for single-valued mappings on metric spaces. Several authors used these concepts to prove some common fixed point theorems. Iseki [7,8] is well-known in this literature which also include Cho [1,2], Imdad [9], Murthy [11], Naidu and Prasad [12], Pathak [13]. Vishal Gupta [6] also prove some common fixed point theorems for a class of A-contraction on 2-metric space. Various authors [14, 15, 16] used the concepts of weakly commuting mappings, compatible mappings in 2-metric space.

Preliminaries and Definitions:

Definition 2.1 : A 2-metric space X in which for each triple of points x, y, z, there exists a real function d (x, y, z,) such that

1: To each pair of distinct points x, y, z, d (x, y, z) ¹ 0.

2 : d (x, y, z) = 0 when at least two points of x, y, z are equal.

3: d(x,y, z) = d(y, z, x) = d(x, z, y.)

4: d(x,y, z) ≤ d(x,y, v) + d(x, v, z) + d(v,y, z) for all x,y, z, v ∈ X.

Definition 2.2 : A sequence $\{x_n\}$ in a 2-metric space (X, d) is said to be convergent at x if $\lim_{n\to\infty} d(x_n, x, z) = 0$ for all z in X.

Definition 2.3 : A sequence $\{x_n\}$ in a 2-metrlc space, (X,d) is said to be Cauchy sequence if $\lim_{m,n\to\infty} d(x_m, x_n, z) = 0$ for all z in X.

Definition 2.4 : A-2 metric space (X, d) is said to be complete if every Cauchy sequence in X is convergent.

Definition 2.5 : Let A and S be mappings from a metric space (X,d) in to itself, A and S are said to be weakly compatible if they commute at their coincidence point. i.e. Ax = Sx for some x ∈X ⇒ ASx = SAx.

Main Result:

Theorem 3.1 : Let (X, d) be a complete 2-metric space. Let A, B, S, T be self mappings of X into itself satisfying following conditions.

(i) The pair (A, S) and (B, T) are weakly compatible is AS = SA, BT = TB.

(ii) d (ASx, BTy, a) ≤ c max {d(x,y,a), d(x, ASx, a), d(y, BTy, a), d(x, BTy, a)}, for all x, y, a ∈X.

and 0 ≤ c ≤ 1. Then A, B, S, T have common fixed point in X.

Proof. Let x_0 be an arbitrary point in X.

Define

$x_{2n+1} = ASx_{2n}$

$x_{2n} = BT\, x_{2n-1}$

Now, $d(x_{2n+1}, x_{2n}, a) = d(ASx_{2n}, BTx_{2n-1}, a)$

$\le c \max \{d(x_{2n}, x_{2n-1}, a), d(x_{2n}, ASx_{2n}, a), d(x_{2n-1}, BTx_{2n-1}, a), d(x_{2n}, BTx_{2n-1}, a)\}$

$\le c \max \{d(x_{2n}, x_{2n-1}, a), d(x_{2n}, x_{2n+1}, a), d(x_{2n-1}, x_{2n}, a), d(x_{2n}, x_{2n}, a)\}$

$\le c \max \{d(x_{2n}, x_{2n-1}, a), d(x_{2n}, x_{2n+1}, a)\}$

So, $d(x_{2n+1}, x_{2n}, a), \le c\, (d(x_{2n}, x_{2n-1}, a)$

$d(x_{2n}, x_{2n+1}, a), \le c\, (d(x_{2n-1}, x_{2n}, a)$

Similarly, $d(x_{2n}, x_{2n+1}, a), \le c\, (d(x_{2n-2}, x_{2n-1}, a)$

* Govt. Vivekanand P.G. College, Maihar, Distt. Satna (M.P.) INDIA

and since $c < 1$, $\{x_n\}$ is a Cauchy sequence in X. Since X is complete 2-metric space , there exist $z \in X$ such that $x_n \to z$ as $n \to \infty$.

Using inequality

$d(ASz, x_{2n}, a) = d(ASz, BTx_{2n-1}, a)$

$< c \max \{d(z, x_{2n-1}, a), d(z, ASz, a), d(x_{2n-1}, BTx_{2n-1}, a), d(z, BTx_{2n-1}, a)\}$

$< c \max \{d(z, x_{2n-1}, a), d(z, ASz, a), d(x_{2n-1}, x_{2n}, a), d(z, x_{2n}, a)\}$

Taking $n \to \infty$ we have

$d(ASz, z, a) < c \max \{d(z, z, a), d(z, ASz, a), d(z, z, a), d(z,z,a)\}$

$d(ASz, z, a) < c\, d(z, ASz, a)$

and hence $ASz = z$, since $c < 1$.

Similarly by considering $d(x_{2n+1}, BTz, a)$, we using inequality and consider $n \to \infty$ that $BTz = z$.

Thus $ASz = z = BTz$ (3.1)

It follows that z is the unique common fixed point of AS and BT.

If $AS = SA$, then

$SAz = z = BTz$ (3.2)

$d(Az, z, a) = d(AASz, BTz, a) = d(ASAz, BTz, a)$

$\leq c \max \{d(Az, z, a), d(Az, ASAz, a), d(z, BTz, a), d(Az, BTz, a)\}$

$= c \max \{d(Az, z, a), d(Az, Az, a), d(z, z, a), d(Az, z, a)\}$

So, $d(Az, z, a) < c\, d(Az, z, a)$

Since $c < 1$, $Az = z$.

By (3.2), $Sz = z$

Similarly we can prove that

$Tz = z$

By (3.1), $Bz = z$

Hence, $Az = Sz = Tz = Bz = z$

z is a common fixed point of mappings A, S, B, T .

For uniqueness, now suppose AS has second fixed point z', Then on using inequality, we have

$d(z', z, a) = d(ASz', BTz, a)$

$\leq c \max \{d(z', z, a), d(z', ASz, a), d(z, BTz, a), d(z', BTz, a)\}$

$\leq c \max \{d(z', z, a), d(z', z, a), d(z, z, a), d(z', z, a)\}$

$\Rightarrow d(z', z, a) < c\, d(z', z, a)$

Since $c < 1$. $z = z'$.

This completes the theorem.

Theorem 3.2 : Let (X, d) be a complete 2-metric space. Let A, B, S, T be self mappings of X into itself satisfying following conditions.

(i) The pair (A, S) and (B, T) are weakly compatible is $AS = SA$, $BT = TB$.

(ii) $d(ASx, BTy, a) \leq c \max \{d(x,y,a), d(x, ASx, a) + d(y, BTy, a), d(x, BTy, a)\}$, for all $x, y, a \in X$.

and $0 < c < 1$. Then A, B, S, T have common fixed point in X.

Proof: The proof of this theorem is similar to theorem 3.1.

Acknowledgement:

The author is thankful to Iseki, K. for their valuable suggestions which improved the presentation of research work.

References :-

1. Cho Y.J, Fixed points for compatible mappings of type (A), Math. Japonica, 1993, 38(3), 497-508.
2. Cho Y.J, Khan M.S. and Singh S.L., Common fixed points of weakly commutating Mappings, univ. Novom Sadu, Sb. Rd. Prirod-mat. Fak.Ser.Mat., 1988, 18(1), 129-142.
3. Gahler S, 2-metrische Raume und iher topologische structur, Math.Nachr, 1963, 26, 115-148.
4. Gahler S, Uber die uniforisierbarket 2-metrisches Raume, Math.Nachr, 1965,28,235-244.
5. Gahler S, Zur geometric 2-metrischer Raume, Revue Roumaine, Math. Plires. 1966, Appl.ll, 665-667.
6. Gupta Vishal, Kour Ramandeep, Some fixed point theorem for a class of A-contractions on 2-metric space. International Journal of pure and applied mathematics, 2012, 79(1)
7. Iseki K, Fixed point theorem in 2-metric spaces, Math. Sem. Notes, Kobellni, 1975, 3(1) 133-136.
8. Iseki K, Sharma P.L., Sharma B.K., Contraction type mapping on 2-metric Space, Math. Japonica, 1976,21,67-70.
9. Imdad M, Kumar M.S. and Khan M.D., A Common fixed point theorem in 2-Metric spaces. Math., Japonica, 1991,36(5),907-914.
10. Jungck G., Fixed points for non continuous non self maps on non metric spaces, Far East. J. Math. Sci., 1996, 4(2), 199-215.
11. Muthuy P.P, Chang S.S, Cho Y.J. and Sharma B.K., Compatible mappings of Type (A) and common fixed point theorems, Kyungpook Math, 1.,1992, 32(2), 203-216.
12. Naidu S.V.R. and Prasad J.R., Fixed point theorems in 2-metric spaces, Indian J. Pure Appli. Math. 1986, 17(8), 1974, 993.

13. Pathak, H.K. Kang, S.M. and Back J.H., Weak compatible mappings of Type (A) and common fixed points, Kyungbook Math, J. 1995, 35, 345-359.
14. Sessa, S., On a weak commutability condition in fixed point considerations, Publ. Inst. Math. (Beograd), 1982, 32(46), 146-153.
15. Tan D., Liu Z. and Kim J. K., Fixed points for compatible mappings of Type (P) in 2-metric spaces, Nonlinear Funct. Anal. Appl., 2003, 8(2), 215-232.
16. Wang W.Z., Common fixed points for compatible mappings of type (A) in 2-Metric spaces, Honom Math. J., 2000, 22, 91-97.

****

Fixed Point Theorems For Nonexpansive Mapping

D.K. Singh *

Abstract - Suppose that X be a uniformly convex Banach space, let E be nonempty subset of P with P as a nonexpansive retraction. The iterative scheme is defined by (2.1), we establish fixed point theorem for weak convergence for nonexpansive mappings of Banach space.

Key words : Nonexpansive mapping, Banach space, Fixed point and Retraction.

Introduction - Let E be a closed convex bounded subset of a Banach space X and T:E→E be a mapping Then T is called nonexpansive mappings

if $\| T(x) - T(y) \| \leq \| x - y \|, \quad \forall x, y \in E \qquad (1.1)$

Let F(T) = {x∈F:T(x) = x}, then F(T) is called the set of fixed points of a mapping T.

The first nonlinear ergodic theorem was proved by Baillon [5] for general nonexpansive mappings in Hilbert space H: if k is a closed and convex subset of H ant T has a fixed point then ∀ x ∈ K, $\{T_n(x)\}$ is weakly convergent, as n→∞, to a fixed point of T. It was also shown by Pazy [1] that if H is a real Hilbert space and $\frac{1}{x}\sum_{i=0}^{n-1} T^i(x)$ converges weakly to y ∈ E, as n→∞ then y ∈F(T). Rhoades and Temir [2] introduced the concept of a quasi nonexpansive mapping was initiated Diaz and metcaff [6] and Dotson [12] studied quasi nonexpansive mapping in Banach spaces. Recently, this concept was given by Kirk [11] in metric spaced which we about to a normed space as follows. The mapping T is called a quasi nonexpansive mapping if

$\| T(x) - f \| \leq \| x - f \|, \quad \forall x \in E \quad fx \in F(T). \qquad (1.2)$

2. Preliminaries and Definitions:

Let X be a real Banach space. A subset E of X is said to be a retract of X if ∃ a continuous map P:X→E such that

$$Px = x, \forall x \in E,$$

A map P:E→E is said to be a retraction if $P^2 = P$. It follows that if P is a retraction, then Py = y for all y in the range of P.

In [2], Rhoades and Temir considered T and I self mapping of X, where T is an I-nonexpansive mapping. They established the weak convergence of the sequence of Mann iterates to a common fixed point of T and I. They prove the following theorem.

Theorem (Rhoades and Temir [2]):

Let E be a closed convex bounded subset of uniformly convex Banach space X, which satisfies Opial's condition and let T, I self mappings of E with T be an I-nonexpansive mapping, the sequence $\{x_n\}$ of Ishikawa iterates converges weakly to common fixed point of F(T)∩F(I).

Let X be a Banach space and let E be a nonempty convex subset of X.

Let T, S:E→E be two given mappings and P:E→E is a retraction. The iteration scheme $\{x_n\}$ is defined by $x_0 = x$ ∈ E and

$$x_{n+1} = P(\alpha_n T(x_n) + \beta_n S(y_n) + \gamma_n x_n) \qquad (2.1)$$

$$y_n = P(\alpha'_n T(x_n) + \beta'_n S(y_n) + \gamma'_n x_n)$$

where $\alpha_n + \beta_n + \gamma_n = 1$

$\alpha'_n + \beta'_n + \gamma'_n = 1$

and $\{\alpha_n\}$, $\{\beta_n\}$, $\{\gamma_n\}$, $\{\alpha'_n\}$, $\{\beta'_n\}$, $\{\gamma'_n\}$ are real sequences in (0, 1).

A Banach space X is said to satisfy Opial's condition [15], if for each seq. $\{x_n\}$ in X, $x_n \to x$ implies that

$$\lim_{n\to\infty} \| x_n - x \| < \lim_{n\to\infty} \| x_n - y \| \qquad (2.2)$$

$\forall y \in X$ with y ≠ x.

In this paper, I consider that T and S are nonexpansive mappings in a Banach space. I establish the weak convergence theorem of the sequence of iterative scheme (2.1) to a common fixed point of F(T)∩F(S).

* Govt. Vivekanand P.G. College, Maihar, Distt. Satna (M.P.) INDIA

3. Main Result:

3.1 Theorem :

Let E be a closed bounded subset of a uniformly convex Banach space X, which satisfies Opial's condition and let T, S be self mappings of E. T and S are nonexpansive mappings on E. Then for $x_0 \in E$, the sequence $\{x_n\}$ of iteration scheme defined by (2.1) converges weakly to common fixed point of $F(T)\cap F(S)$.

Proof:

Let $F(T)\cap F(S)$ be nonempty and a singleton, then the proof is obvious. So we assume that $F(T)\cap F(S)$ is nonempty and $F(T)\cap F(S)$ is not a singleton.

$$\|x_{n+1} - f\| = \|P(\alpha_n T(x_n) + \beta_n S(y_n) + \gamma_n x_n - f\|$$

$$= \|\alpha_n T(x_n) + \beta_n S(y_n) + \gamma_n x_n - (\alpha_n + \beta_n + \gamma_n) f\|$$

$$\leq \alpha_n \|T(x_n) - f\| + \beta_n \|S(y_n) - f\| + \gamma_n \|x_n - f\|$$

$$\leq \alpha_n \|x_n - f\| + \beta_n \|y_n - f\| + \gamma_n \|x_n - f\|$$

$$= (\alpha_n + \gamma_n)\|x_n - f\| + \beta_n \|P(\alpha' {}_n T(x_n) + \beta' {}_n S(x_n) + \gamma' {}_n x_n) - f\|$$

$$- (\alpha_n + \gamma_n)\|x_n - f\| + \beta_n \|\alpha' {}_n T(x_n) + \beta' {}_n S(x_n) + \gamma' {}_n x_n - (\alpha' {}_n + \beta' {}_n + \gamma' {}_n) f\|$$

$$\leq (\alpha_n + \gamma_n)\|x_n - f\| + \beta_n [\alpha' {}_n \|T(x_n) - f\| + \beta' {}_n \|S(x_n) - f\| + \gamma' {}_n \|x_n - f\|]$$

$$\leq (\alpha_n + \beta_n)\|x_n - f\| + \beta_n [\alpha' {}_n \|x_n - f\| + \beta' {}_n \|x_n - f\| + \gamma' {}_n \|x_n - f\|]$$

$$- (\alpha_n + \beta_n)\|x_n - f\| + \beta_n |(\alpha' {}_n + \beta' {}_n + \gamma' {}_n)\|x_n - f\||$$

$$- (\alpha_n + \beta_n)\|x_n - f\| + \beta_n \|x_n - f\|$$

$$- (\alpha_n + \beta_n + \gamma_n)\|x_n - f\| - \|x_n - f\|$$

$$\therefore \|x_{n+1} - f\| < \|x_n - f\|$$

$\therefore \{\|x_n - f\|\}$ is a non increasing sequence

Then $\lim_{n \to \infty} \|x_n - f\|$ exists.

Now we show that $\{x_n\}$ converges weakly to a common fixed point of T and S. The sequence $\{x_n\}$ contains a subsequence which converges weakly to a point in E. Let $\{X_{n_k}\}$ and $\{X_{m_k}\}$ be two subsequences of $\{x_n\}$ which converges weakly to f and q respectively we shall show that f = q suppose that X statistics Opial condition and that $f \neq q$ is in weak limit set of the sequence $\{x_n\}$. Then $\{X_{n_k}\} \to f$ and $\{X_{m_k}\} \to q$ respectively. Since $\lim_{n\to\infty} \| x_n - f \|$ exists for any $f \in F(T)\cap F(S)$. By Opial's condition, we find that

$$\lim_{n\to\infty} \|x_n - f\| = \lim_{k\to\infty} \|x_{n_k} - f\|$$

$$< \lim_{k\to\infty} \|x_{n_k} - q\| = \lim_{n\to\infty} \|x_n - q\|$$

$$< \lim_{k\to\infty} \|x_{m_k} - q\| = \lim_{k\to\infty} \|x_{m_k} - f\|$$

$$\lim_{n\to\infty} \|x_n - f\|$$

This is a contradiction. This $\{x_n\}$ converges weakly to an element of $F(T)\cap F(S)$.

3.2 Theorem - Let E be a closed bounded subset of a uniformly convex Banach space X, which satisfies Opital's condition and let T. S be self mappings of E. T and S are quasi-nonexpansive mappings on E. Then for $x_0 \in E$, the sequence $\{x_n\}$ of iterative scheme defined by (2.1) converges weakly to common fixed point of $F(T) \cap F(S)$.

Proof: Every nonexpansive mappings is a quasi-nonexpansive mapping. The proof is similar to theorem (3.1).

Acknowledgement - The author is thankful to H. Kiziltune and M. Ozdemir for their valuable suggestions which improved the presentation of research paper.

References :-

1. A. Pazy, On the asymptotic behavior of iterates of nonexpansive mappings in Hilbert space, Israel Journal of Mathematics 26 (1977),110.2,197-204.
2. B. E. Rhoades and S. Temir, Convergence theorems for I-nonexpansive mapping, to appear in International Journal of Mathematics and Mathematical Sciences.
3. H. Zhou, R. P. Agarwal, Y. J. Cho, and Y. S. Kim, Nonexpansive mappings and iterative methods in uniformly convex Banach spaces, Georgian Mathematical Journal 9 (2002), no. 3, 591-600.
4. H. Kiziture and M. Ozdemir, On convergence theorem for nonself I-nonexpansive mapping in Banach spaces, Appl. Math. Sciences, Vol. 1, 2007, no. 48, 2379-2383.
5. J. B. Baillon, Un theorem de type ergodique pour les contractions non lineaires dans un espace de Hilbert, Comptes Rendus de I' Academie des Sciences de Paris, Serie A 280(1975), no. 22, 1511-1514.
6. J. B. Diaz and F. T. Metcalf, On the set of subsequential limit points of successive approximations, Transactions of the American Mathematical Society 135(1969),459-485.
7. M.K. Ghosh and L. Debnath, Convergence of Ishikawa iterates of quasi-nonexpansive mappings, Journal of Mathematical Analysis and Applications 207(1997), no. 1,96-103.
8. N. Shahzad, Generalized I-nonexpansive maps and best approximations in Banach spaces, Demon-stratio Mathematica 37 (2004), no. 3, 597-600.
9. S. Ishikawa, Fixed points by a new iteration method, Proc. Am. Math. Soc. 44 (1974) 147-150.
10. S. Temir and O. Gul, Convergence theorem for I-asymptotically quasi-nonexpansive mapping in Hilbert

space, Journal of Mathematical Analysis and Applications 329 (2007) 759-765.

11. W.A. Kirk, Remarks on approximation and approximate fixed points in metric fixed point theory, Annales Universitatis Mariae Curie-Sklodowska. Sectio A 51(1997), no. 2,167-178.
12. W. G. Dotson Jr., On the Mann iterative process, Transactions of the American Mathematical Society 149(1970), no. 1, 65-73.
13. W.R. Mann, Mean value methods in iteration, Proc. Am. Math. Soc. 4 (1953) 506-510.
14. W. V. Petryshyn and T. E. Williamson Jr., Strong and weak convergence of the sequence of successive approximations for quasi-nonexpansive mappings, Journal of Mathematical Analysis and Applications 43 (1973),459-497.
15. Z. Opial, Weak convergence of the sequence of successive approximations for nonexpansive mappings, Bulletin of the American Mathematical Society 73 (1967), 591-597.

****

Convergence Theorems Of Nonexpansive Mapping For Iterative Schemes

D.K. Singh *

Abstract - Suppose that X be a uniformly convex Banach space, let E be nonempty subset of X. The iterative scheme is defined by (2.1), we establish fixed point theorem for weak convergence for nonexpansive mappings of Banach space. We have extended work of Pathak [5].
Key word - nonexpansive mapping, Banach space, Fixed point.

Introduction - Let E be a closed convex bounded subset of a Banach space X and T:E→E be a mapping Then T is called nonexpansive mappings

if $\|T(x) - T(y)\| \leq \|x - y\|. \qquad \forall x, y \in E$

(1.1)

Let F(T) = {x∈F:T(x) = x}, then F(T) is called the set of fixed points of a mapping T.

The first nonlinear ergodic theorem was proved by Baillon [6] for general nonexpansive mappings in Hilbert space H: if k is a closed and convex subset of H ant T has a fixed point then □ x ∈ K, $\{T_n(x)\}$ is weakly convergent, as n→∞, to a fixed point of T. It was also shown by Pazy [1] that if H is a real Hilbert space and $\frac{1}{n}\sum_{i=0}^{n-1} T^i(x)$ converges weakly to y ∈ E, as n→∞ then y ∈F(T). Rhoades and Temir [2] introduced the concept of a quasi nonexpansive mapping was initiated Diaz and metcaff [7] and Dotson [13] studied quasi nonexpansive mapping in Banach spaces. Recently, this concept was given by Kirk [12] in metric spaced which we about to a normed space as follows. The mapping T is called a quasi nonexpansive mapping if

$\|T(x) - f\| \leq \|x - f\|. \qquad \forall x \in E$

$fx \in F(T).$ (1.2)

Preliminaries and Definitions - In [2], Rhoades and Temir considered T and I self mapping of X, where T is an I-nonexpansive mapping. They established the weak convergence of the sequence of Mann iterates to a common fixed point of T and I. They prove the following theorem.

Theorem (Rhoades and Temir [2]):
Let E be a closed convex bounded subset of uniformly convex Banach space X, which satisfies Opial's condition and let T, I self mappings of E with T be an I-nonexpansive mapping, the sequence $\{x_n\}$ of Ishikawa iterates converges weakly to common fixed point of F(T)∩F(I).

Let X be a Banach space and let E be a nonempty convex subset of X.

Let T, S:E→E be two given mappings and the iteration scheme $\{x_n\}$ is defined by $x_0 = x \in E$ and

$$x_{n+1} = (1-\alpha_n)\, S(x_n) + \alpha_n S(T(y_n)) \qquad (2.1)$$
$$y_n = (1-\beta_n)T(x_n) + \beta_n S(x_n)$$

where $\{\alpha_n\}$ and $\{\beta_n\}$ satisfy the following conditions

$$\left.\begin{array}{ll} \text{(i)} & 0 \leq \alpha_n \leq \beta_n < 1 \\ \text{(ii)} & \lim_{n\to\infty} \beta_n = 0 \\ \text{iii)} & \sum_{n=1}^{\infty} \alpha_n\beta_n = 0 \end{array}\right\} \qquad (2.2)$$

A Banach space X is said to satisfy Opial's condition [16], if for each seq. $\{x_n\}$ in X, $x_n \to x$ implies that

$$\lim_{n\to\infty} \|x_n - x\| < \lim_{n\to\infty} \|x_n - y\| \qquad (2.2)$$

$\forall y \in X$ with $y \neq x$.

In this paper, we consider that T and S are nonexpansive mappings in a Banach space. We establish

* Govt. Vivekanand P.G. College, Maihar, Distt. Satna (M.P.) INDIA

the weak convergence theorem of the sequence of iterative scheme (2.1) to a common fixed point of F(T)∩F(S).

3. Main Result:

3.1 Theorem :

Let E be a closed bounded subset of a uniformly convex Banach space X, which satisfies Opial's condition and let T, S be self mappings of E. T and S are nonexpansive mappings on E. Then for $x_0 \in E$, the sequence $\{x_n\}$ of iteration scheme defined by (3.1) converges weakly to common fixed point of F(T)∩F(S).

Proof:

Let F(T)∩F(S) be nonempty and a singleton, then the proof is obvious. So we assume that F(T)∩F(S) is nonempty and F(T)∩F(S) is not a singleton.

$$\|x_{n+1} - f\| = \|(1-\alpha_n)S(x_n) + \alpha_n ST(y_n) - f\|$$

$$= \|(1-\alpha_n) + S(x_n) + \alpha_n ST(y_n) - (1-\alpha_n + \alpha_n)f\|$$

$$= \|(1 \quad \alpha_n)(S(x_n) \quad f) \mid \alpha_n(ST(y_n) \quad f)\|$$

$$\leq (1-\alpha_n)\|S(x_n) - f\| + \alpha_n\|ST(y_n) - f\|$$

$$\leq (1-\alpha_n)\|x_n - f\| + \alpha_n\|T(y_n) - f\|$$

$$\leq (1-\alpha_n)\|x_n - f\| + \alpha_n\|y_n - f\|$$

$$= (1-\alpha_n)\|x_n - f\| + \alpha_n\|(1-\beta_n)T(x_n)+\beta_n S(x_n) - f\|$$

$$\leq (1 \quad \alpha_n)\|x_n \quad f\| \mid \alpha_n\|(1 \quad \beta_n)T(x_n) \quad f) \mid \beta_n(S(x_n) \quad f)\|$$

$$\leq (1 \quad \alpha_n)\|x_n \quad f\| \mid \alpha_n(1 \quad \beta_n)\|T(x_n) \quad f)\| \mid \beta_n\|S(x_n) \quad f\|$$

$$< (1 \quad \alpha_n)\|x_n \quad f\| \mid \alpha_n\{(1 \quad \beta_n)\|x_n \quad f\| \mid \beta_n\|x_n \quad f\|\}$$

$$= (1 \quad \alpha_n)\|x_n \quad f\| \mid \alpha_n(1 \quad \beta_n \mid \beta_n)\|x_n \quad f\|$$

$$- \|x_n - f\|$$

$$\Rightarrow \|x_{n+1} - f\| < \|x_n - f\|$$

$\therefore \{\|x_n - f\|\}$ is a non increasing sequence

Then $\lim_{n\to\infty} \|x_n - f\|$ exists.

Now we show that $\{x_n\}$ converges weakly to a common fixed point of T and S. The sequence $\{x_n\}$ contains a subsequence which converges weakly to a point in E. Let $\{x_{n_k}\}$ and $\{x_{m_k}\}$ be two subsequences of $\{x_n\}$ which converges weakly to f and q respectively we shall show that f = q suppose that X statistics Opial condition and that $f \neq q$ is in weak limit set of the sequence $\{x_n\}$. Then $\{x_{n_k}\} \to f$ and $\{x_{m_k}\} \to q$ respectively. Since $\lim_{n\to\infty}\|x_n - f\|$ exists for any $f \in F(T)\cap F(S)$. By Opial's condition, we find that

$$\lim_{n\to\infty} \|x_n \quad f\| = \lim_{k\to\infty} \|x_{n_k} \quad f\|$$

$$< \lim_{k\to\infty} \|x_{n_k} - q\| - \lim_{n\to\infty}\|x_n - q\|$$

$$< \lim_{j\to\infty} \|x_{m_j} \quad q\| = \lim_{j\to\infty} \|x_{m_j} \quad f\|$$

$$\lim_{n\to\infty}\|x_n - f\|$$

This is a contradiction. This $\{x_n\}$ converges weakly to an element of F(T)∩F(S).

3.2 Theorem :

Let E be a closed bounded subset of a uniformly convex Banach space X, which satisfies Opital's condition and let T. S be self mappings of E. T and S are quasi-nonexpansive mappings on E. Then for $x_0 \in E$, the sequence $\{x_n\}$ of iterative scheme defined by (2.1) converges weakly to common fixed point of $F(T) \cap F(S)$.

Proof: Every nonexpansive mappings is a quasi-nonexpansive mapping. The proof is similar to theorem (3.1).

Acknowledgement:

The author is thankful to Pathak for their valuable suggestions which improved the presentation of research paper.

References :-

1. A. Pazy, On the asymptotic behavior of iterates of nonexpansive mappings in Hilbert space, Israel Journal of Mathematics 26 (1977), 110.2, 197-204.
2. B. E. Rhoades and S. Temir, Convergence theorems for I-nonexpansive mapping, to appear in International Journal of Mathematics and Mathematical Sciences.
3. H. Zhou, R. P. Agarwal, Y. J. Cho, and Y. S. Kim, Nonexpansive mappings and iterative methods in uniformly convex Banach spaces, Georgian Mathematical Journal 9 (2002), no. 3, 591-600.
4. H. Kiziture and M. Ozdemir, On convergence theorem for nonself I-nonexpansive mapping in Banach spaces, Appl. Math. Sciences, Vol. 1, 2007, no. 48, 2379-2383.
5. H.K. Pathak, A Common fixed point theorem with P-iteration, The Mathematics Education, Vol. XXVIII,

No. 2, (1994), 71-72.

6. J. B. Baillon, Un theorem de type ergodique pour les contractions non lineaires dans un espace de Hilbert, Comptes Rendus de I' Academie des Sciences de Paris, Serie A 280(1975), no. 22, 1511-1514.
7. J. B. Diaz and F. T. Metcalf, On the set of subsequential limit points of successive approximations, Transactions of the American Mathematical Society 135(1969),459-485.
8. M.K. Ghosh and L. Debnath, Convergence of Ishikawa iterates of quasi-nonexpansive mappings, Journal of Mathematical Analysis and Applications 207(1997), no. 1,96-103.
9. N. Shahzad, Generalized I-nonexpansive maps and best approximations in Banach spaces, Demon-stratio Mathematica 37 (2004), no. 3, 597-600.
10. S. Ishikawa, Fixed points by a new iteration method, Proc. Am. Math. Soc. 44 (1974) 147-150.
11. S. Temir and O. Gul, Convergence theorem for I-asymptotically quasi-nonexpansive mapping in Hilbert space, Journal of Mathematical Analysis and Applications 329 (2007) 759-765.
12. W.A. Kirk, Remarks on approximation and approximate fixed points in metric fixed point theory, Annales Universitatis Mariae Curie-Sklodowska. Sectio A 51(1997), no. 2,167-178.
13. W. G. Dotson Jr., On the Mann iterative process, Transactions of the American Mathematical Society 149(1970), no. 1, 65-73.
14. W.R. Mann, Mean value methods in iteration, Proc. Am. Math. Soc. 4 (1953) 506-510.
15. W. V. Petryshyn and T. E. Williamson Jr., Strong and weak convergence of the sequence of successive approximations for quasi-nonexpansive mappings, Journal of Mathematical Analysis and Applications 43 (1973),459-497.
16. Z. Opial, Weak convergence of the sequence of successive approximations for nonexpansive mappings, Bulletin of the American Mathematical Society 73 (1967), 591-597.

****

Security and Privacy Risks in Android Smartphone

Dr. Sanjay Chaudhary * **Ramesh Chandra Bodat** * *

Abstract - Malicious software is a common problem for every software platform, and the Android platform is no exception. This paper will focus on identifying suspicious applications. As large subsection of the malicious applications is dedicated to stealing private information from the users. While the Google team is quick to remove malicious applications from Google Play when they are made aware of them, this can be after a considerable number of users have already downloaded the applications. The objective of this paper is to gather and analyze a security threats consisting of publicly available. This examination will focus on the possibility of distinguishing whether or not an application is \suspicious" based on information available before the application is downloaded to the device, with particular focus on the requested permissions, either one permission alone or in combination with other permissions.

Introduction - With the advent of Smartphone, users are, knowingly or not, carrying more and more private information around with them on their phones. This information ranges from the location of the device to the reading habits of the user and even his or her bank details. While attacks on mobile devices have largely focused on earning the attacker quick cash by sending text messages to or calling premium numbers, the focus has shifted towards stealing the private data contained on the devices.

Once the malware enters the mobile phones, it replicates itself and carries out unwanted activities like making calls and sending SMS. It also subscribes to unnecessary billing schemes and uses the other schemes available for your number. You will never realize all this until you are charged for all these. The malware also erases and transfers the contact details available in the user's phone. It keeps sending all your personal details to any other third party.

A malware can be a serious threat to businesses also. With the help of a malware infected smart phone, a third person can use it as a proxy or a gateway to enter into a restricted business network. Among the mobile phones malware attacks, the android smart phones are largely targeted by the malware users and hackers.

This is mainly due to the reason that, Android applications market provides an open platform to all the application. As Google is looking mainly for developing and selling Apps, they are quite relaxed on the security aspects. A malware enters your phone when you download any malicious app into your android phone. Most of the Android applications are vulnerable for any third party intervention. Though the unauthorized third party access you can still find increased malware attacks on the android phones. As the Android platform has grown to take one of the largest shares of the Smartphone market, the platform has become the prime target for criminals seeking the private data the users are carrying around with them.

Malware, short for **malicious software**, is any software used to disrupt computer operation, gather sensitive information, or gain access to private computer systems.[1] Since the first recognized malicious application, the "Brain" virus[2] which first attacked the DOS platform back in 1986, viruses have evolved drastically, both in complexity and targeting. While the original Brain virus simply renamed the C: drive on the infected computers, more recent Trojans like "Zeus"[3] which attacks the Windows operating system, and "Flashback"[4] which attacks the OSX platform, attempt to steal personal and financial information.

This trend has been going on since Brain's inception, with malicious applications moving from proof-of-concept and bragging rights towards financially motivated attacks. The same trend is evident on the mobile platform, when seen as a whole. The first malware aimed at mobile devices, Cabir,[5] infected devices running the Symbian operating system through their Bluetooth connection with the sole purpose of propagating itself. It did not appear to have any payload beyond what was necessary to continue spreading, and as such was more annoying than dangerous. By contrast, recent mobile malware attacking the Android platform, like DroidKungFu[6] and GinMaster,[7] attempt to steal private information much like their desktop counterparts. Other malicious applications attempt to turn the devices into bots or simply incur costs on behalf of the malware developers. Malicious software is a common problem for every software platform, and the Android platform is no exception. Android malware appears to have moved beyond the proof-of-concept and destructive phase almost completely. The first malware recorded by Symantec, Ewalls,[8] attempts to steal personal information from the device it is installed on, including the devices IMEI (International Mobile Equipment Identity) number and details from the SIM (Subscriber Identity Module) card including operator name and serial number.

More established mobile platforms, including Symbian and iOS, have already created a market for malicious applications which translates to the Android platform.

It is worth noting that despite this, the FakePlayer Trojan[9] is often considered the first malware aimed at Android[10]. This could be explained by the spread of the

* **Associate Professor (Computer Science & I.T.) S.S. College of Engineering, Udaipur (Raj.) INDIA**
* * **Research Scholar, Pacific University, Udaipur (Raj.) INDIA**

malware, as Ewalls appears to have managed to compromise a far smaller number of Android devices than Fakeplayer. There are many actors involved in the Android security scene, including Trend Micro, Symantec, Lookout and many more. Even as such, it is surprisingly hard to get reliable numbers about malicious applications in the wild, or even the growth of the malicious applications.

Since the first malicious Android application was discovered in 2010, the number of malicious applications has been consistently rising. Looking at the details of the various Android malware applications recognized by Symantec,[11] there is an apparent trend towards information stealing. A large subsection of the malicious applications is dedicated to stealing private information from the users.

A "Mobile cyber-threats" report has been prepared by Kaspersky Lab and INTERPOL within that partnership framework. It aims to evaluate how widespread mobile threats are, and to alert the international IT security and law enforcement community to the problem of crime in the area of mobile communications. According to the main findings Kaspersky Lab security products reported **3,408,112** malware detections on the devices of **1,023,202 users.** Over the 10 month period from August 2013 through March 2014, the number of attacks per month was up **nearly tenfold**, from 69,000 in August 2013 to 644,000 in March 2014. The number of users attacked also increased rapidly, from 35,000 in August 2013 to 242,000 in March. 59.06% of malware detections related to programs capable of stealing users' money**.** About **500,000 users** have encountered mobile malware designed to steal money at least once. Russia, India, Kazakhstan, Vietnam, Ukraine and Germany are the countries with the largest numbers of attacks reported. Trojans designed to send SMSs were the most widespread malicious programs in the reporting period. They accounted for 57.08% of all detections. The number of modifications for mobile banking Trojans **increased 14 times** over 12 months, from a few hundred to more than 5000.[12]

While the Google team is quick to remove malicious applications from Google Play when they are made aware of them, this can be after a considerable number of users have already downloaded the applications. The same applies to other third-party markets, and as such a method of identifying malicious applications before they are installed is required. Anti-virus applications and the recently unveiled Google Bouncer do partially fill this gap, but both the Bouncer and the anti-virus applications require that the malicious code has been analyzed beforehand. A method of identifying new malicious applications before they are accepted to the markets is required. There are several threats facing the Android system, and the following are some of the more common threats. A single malicious application can represent more than one of these.

Trojans - Generally speaking, all Android malware are Trojans. Because of the sandbox, the attack vectors used by viruses and worms are largely unavailable to the malware developers. Utilizing Trojans have thus become the norm. As with its desktop counterparts, the malicious code is usually included as part of an otherwise legitimate looking application or added on to legitimate applications which are then redistributed as the original application. Applications misused for this purpose are often paid applications redistributed as free applications on third-party markets.

Spyware - One of the most common types of malicious applications for the Android platform, spyware, are designed to siphon of private information of one kind or another. Spyware comes in two avours; commercial and malicious. Commercial spyware are applications installed on the user's handset manually by another person specifically to spy on the user, while malicious spyware operates in a similar fashion as its desktop counterpart; covertly stealing data and transmitting it to a third party.

One of the more famous cases of commercial spyware was CarrierIQ,[13] used extensively by various mobile device manufacturers and vendors. CarrierIQ had the capability to log everything that was done on a device, including web searches using the secure HTTPS protocol, and was allegedly used to increase customer satisfaction by logging dropped calls and similar information. The problem was that the application had the capabilities for much more, and there was no way for the average user to get rid of it. Additionally, there was no way for the users to know what information the vendors deemed necessary to increase the user experience.

Root exploit - Having root access to an Android device works the same way as on other Unix based platforms, and can be compared with having administrator rights on a Windows computer. By default, the user will usually not have access to this feature on an Android device, as it will be locked down by the vendor. This is done both to prevent the user from accessing parts of the operating system that can damage or even destroy the device, and to prevent the user from removing software placed on the device by the vendor.

Root exploits are in most cases created by legitimate members of the Android community in order to gain control of their own devices, but are considered a double-edged sword among the security community. While rooting can give the user control over a device, it also gives the same amount of control to any applications which gain access to the root rights. This means that root privileges given to a malicious application can completely compromise the device, as the application can theoretically remove the root privileges from the user. Trojans misusing these root exploits are among the most dangerous malicious applications and can cause all kinds of havoc, completely out of sight from the user. Like most Trojans, the malicious application pretends to be normal until it is installed on the user's device. When installed, it attempts to use one or more root exploits to gain root access to the device. An application with root access can replace, modify and install applications as it wishes, and as an example, the DroidKungFu Trojan[14] installs a backdoor on the phone once it has gained root access. It then disguises this backdoor from the user both by using an innocent-looking name and hiding the application icon from the user. This backdoor can then be used to install other malicious applications on the device or simply stealing private information.

Botnet - A botnet is a network of compromised devices, usually computers, which an attacker can use for his own purposes; often to steal sensitive data or as part of a denial

of service attack. The owners of the compromised devices might not even be aware of the infection beyond noticing that the device is operating slower than usual. The recent version of the DroidKungFu Trojan[15], mentioned earlier, was used to create a botnet consisting of compromised Android devices.

Premium SMS sender - Some malicious applications are rather straight-forward in their design, where they ask for permission to send SMS messages on install and use this capability to send SMS messages to premium rate numbers. The Rufraud Trojan[16] pretended to be free versions of popular applications, and once installed on the user's device it would send SMS messages to a premium rate number determined by the country the phone was located in.

Drive-by-download - Recently, the Android platform has also been targeted by a drive-by-download attack, where the user is presented with a download pretending to be a system update when visiting a compromised website. If the user installs this false security update, the device is infected with a Trojan.

Proof-of-concept - Proof of concept Trojans are usually the least dangerous, and do not usually lead to large outbreaks. These attacks usually have no payload beyond what they need to infect the devices, like the aforementioned Cabir attack. They are usually created for bragging rights or to demonstrate vulnerability.

Destructive Trojans - Destructive Trojans aim to damage the infected devices, or data stored on a device, in some way or another. This can be via file corruption, phone wiping or similar attacks.

Other threats - In addition to malicious applications the Android platform is vulnerable to other attack vectors. Some of which will be detailed below.

Phishing - The Android platform is as vulnerable, if not even more, as it's desktop counterparts. As noted by Felt and Wagner[17] the small screen on mobile devices makes it in some cases harder than normal for a user to identify whether or not he is being spoofed. Additionally, there have been reports of fake applications pretending to be banking applications,[18] which when used to access the bank would steal the users login information.

Capability leaking - The Woodpecker project[19] reports that applications are leaking access to privileged device features, providing other applications with access to features they should not have access to. This means that these applications are exposing restricted features through less restricted interfaces. As an example, a flaw was discovered in the Power Control widget,[20] which is standard on all stock Android devices. This flaw leaked access to interfaces on the widget, allowing applications that did not have access to these features to toggle features like the GPS on and off. While this does not sound like a major problem, this was an application that was present on all Android devices. The potential for abuse was therefore larger than if the vulnerability was found in a less distributed application.

Information leaking - Similarly to capability leaks above, information leaks expose sensitive data to other applications on the device. This can be due to storing sensitive data in unprotected areas, as demonstrated by Brodeur,[21] or the application giving out the information to anyone who knows how to ask. An example of this was the logging tool HTC installed on their handsets[22]. This logging tool exposed large amounts of private data to anyone requesting it using a simple HTTP request, without any validation on whether or not they should have access to the information.

Another source of information leaking is the READ LOG permission[23]. This permission allows the application to access the system logs, which in some cases, depending on the applications running on the device, can provide the application with access to information equivalent of the GET TASKS, DUMP and READ HISTORY BOOKMARKS. Additionally, third-party applications were seen writing information usually restricted to ACCESS COARSE LOCATION, ACCESS FINE LOCATION, READ SMS and READ CONTACTS to the system logs, providing equivalent access to these resources as well.

Here are some of the most pernicious malware threats Android has suffered so far.

1. Fake Banking Apps - In 2009, while the Android Market was still in its infancy, a user known as Droid09 uploaded several phony online banking apps to lure customers of major banking institutions into entering their online account logins. "Informed of this, Google quickly removed them," said Robert Vamosi, senior analyst at Mocana and author of *When Gadgets Betray Us*.

2. Android.PjappsM - Early in 2010, sly attackers downloaded legitimate programs from the Android Market, infected them with the Android.Pjapps malware, and then redistributed the modified versions on third-party Android marketplaces. The objective, according to Symantec, was to steal information from infected devices and enroll the device in a botnet that then launched attacks on websites to steal additional data and infect more devices. It also sent costly SMS messages.

3. Android.Geinimi - While not too worrisome for North American users, the Trojan horse known as Geinimi corrupted a number of legitimate Android games on Chinese download sites, and added infected devices to a mobile botnet.

4. AndroidOS.FakePlayer - While relatively ineffective against U.S.-based targets, the Android OS. FakePlayer threat demonstrated how easily an attacker could steal from users without their knowledge. As Symantec explained, "This malicious app masquerades as a media player application. Once installed, it silently sends SMS messages (at a cost of several dollars per message) to premium SMS numbers in Russia." Fortunately, it didn't work on wireless networks outside of Russia, so the actual damage was minimal for North American wireless customers.

5. DroidDream (aka, Android.Rootcager) - One of the most nefarious malware campaigns addressed in Lookout's Mobile Threat Report, DroidDream infected roughly 60 different legitimate apps in the Android Market and infected hundreds of thousands of users in the first quarter of 2011. The malware added infected devices to a botnet, breached the Android security sandbox, installed additional software, and stole data.

6. Android.Bgserv - Shortly after Google deployed a tool

for users to clean up devices that had become infected with DroidDream, malware authors got clever and, according to Symantec, "attackers capitalized on the hype and released a malicious fake version of the cleanup tool." Known as Android.Bgserv, this somewhat less dangerous bit of malware stole device data, such as the phone's IMEI number and phone number, and uploaded it to a server in China.

7. GGTracker - As Android threats continue to evolve, malware creators are getting increasingly clever about luring users into downloading their malicious creations. In June of this year, a threat called GGTracker presented users with a mobile Web page designed to look like the official Android Market, and prompted them to download a phone battery-saving app. Once installed the app sent premium SMS messages from users' phones, charging rates of up to $40 per message.

8. DroidKungFu - In an emerging malware distribution tactic known as an update attack, malware creators weasel their way into the app store with a legitimate app, wait for a significant number of users to install it, and then inject malware into the app via an over-the-air update. The first known example of this DroidKungFu, was thwarted before it could infect users on the official Android Market. Security analysts at Lookout spotted in on Chinese markets, and then noticed the same writers attempting to post it to the Android Market. Lookout notified Google, and the app was immediately rejected.[24]

This paper focuses on identifying suspicious applications. This examination will focus on the possibility of distinguishing whether or not an application is \suspicious" based on information available before the application is downloaded to the device, with particular focus on the requested permissions, either one alone or in combination with other permissions.

References :-

1. "Malware definition". techterms.com.
2. F-Secure. Threat description: Virus:boot/brain. Available: http://www. f-secure.com/v- descs/brain.shtml.
3. F-Secure. Threat description: Trojan-spy:w32/zbot. Available: http://www.f-secure.com/v-descs/trojan-spy_w32_zbot.shtml.
4. F-Secure. Threat description: Trojan-downloader:osx/ashback.c. Available: http://www.f-secure.com/v-descs/trojan-downloader_osx_ flashback_c.shtml.
5. Securelist. Worm.symbos.cabir.a. Available: https:// www.securelist. com/en/descriptions/old60663.
6. F-Secure. Threat description: Trojan:android/droidkungfu.c. Available: http://www.f-secure.com/v-descs/trojan_android_droidkungfu_c. shtml.
7. F-Secure. Threat description: Trojan:android/ginmaster.a. Available: http://www.f-secure.com/v-descs/trojan_android_ginmaster_ a.shtml.
8. Symantec. Android.ewalls technical details. Available: http: //www.symantec.com/security_response/writeup.jsp?
9. Symantec. Androidos.fakeplayer technical details. Available:http://www.symantec.com/security_response/writeup.jsp?
10. Linda Rosencrance. First trojan malware virus detected for android smartphones. Available: http:// www.securitynewsdaily.com
11. Symantec. Threat explorer. Available: http://www.symantec.com/ security_response/threatexplorer/azlisting.jsp.
12. http://securelist.com/analysis/publications/66978/mobile-cyber-threats-a-joint-study-by-kaspersky-lab-and-interpol/
13. David Kravets. Researcher's video shows secret software on millions of phones logging everything. Available: http://www.wired. com/threatlevel/2011/11/secret-software-logging-video/.
14. F-Secure. Threat description: Trojan:android/droidkungfu.c. Available: http://www.f-secure.com/v-descs/trojan_android_droidkungfu_c.shtml.
15. Graham Cluley. Android malware poses as angry birds space game. Available: http://nakedsecurity. sophos. com/2012/04/12/ android-malware-angry-birds-space-game/.
16. Symantec.Android.rufraud technical details.Available: http://www.symantec.com/security_response/writeup .jsp?
17. Adrienne Porter Felt and David Wagner. Phishing on mobile devices. In Web 2.0 Security and Privacy, 2011. Available: http://w2spconf.com/ 2011/papers/felt-mobilephishing.pdf.
18. Travis Credit Union. Phishing scam targeting android-based mobile devices. Available:https://www. traviscu. org/news.aspx?
19. Michael Grace, Yajin Zhou, Zhi Wang, and Xuxian Jiang. Systematic detection of capability leaks in stock android smartphones. Available: http: //www.csc.ncsu.edu/faculty/jiang/pubs/NDSS12_WOODPECKER.pdf.
20. ccjernigan. Security aw in power control widget opens protected settings.Available: http://code.google.com/p/android/issues/detail?
21. Paul Brodeur.Zero-permission android applications. Available: http://leviathansecurity.com/blog/archives/ 17-Zero-Permission-Android-Applications.html.
22. Artem Russakovskii. Massive security vulnerability in htc android devices (evo 3d, 4g, thunderbolt, others) exposes phone numbers, gps, sms, emails addresses, much more. Available: http://www.androidpolice.com/2011/10/01/massive-security-vulnerabilityin- htc-android-devices-evo-3d-4g-thunderbolt-others-exposes-phonenumbers- gps-sms-emails-addresses-much-more/
23. Anthony Lineberry, David Luke Richardson, and Tim Wyatt. These aren't the permissions you are looking for. In BlackHat, 2010. Available: http: //dtors.files .wordpress.com/2010/09/blackhat-2010-final.pdf.
24. http://www.informationweek.com/mobile/8-notorious-android-malware-attacks/d/d- id/1099385?

****

ERP Versus BI

Dr. Sanjay Chaudhary * Rajnish Kumawat **

Abstract - Over the years, ERP always has been the hot topic in the Software Industries. The Global Financial Crisis put Business Intelligence (BI) and Enterprise Resource Planning (ERP) integration in the spotlight. Organizations that want to move beyond the limited scope of ERP analytics and manage performance on an organization-wide level should consider a BI solution. This will help them move toward an inclusive approach to setting metrics, collaborating on tasks, and tying initiatives to the organization's overall goals. By focusing on organization-wide business issues, a more cohesive view of the organization is created.

Introduction - A problem that many businesses face these days is an overabundance of data. In many respects, companies have been facing a nasty storm when it comes to their standalone (un-integrated) enterprise systems. So how can businesses harness this information? The answer is that business intelligence – especially coupled with an ERP system – can make this data accessible and useful.

In recent Aberdeen surveys of enterprises with BI and ERP applications, BI has ranked number one in terms of the technologies that will have the most impact in the next two to five years.

Most ERP solutions provide prebuilt standard reports that meet the most basic transactional reporting needs of an organization. However, today's fast-changing world demands better tools that enable executives to extensively analyze data and manage their businesses while at the same time producing boardroom-quality reports and analytics.

Business intelligence (BI) solutions are the answer to achieving comprehensive analytics and providing executives with a single version of the critical information needed to make informed business decisions. In this paper, we review some of the basics of BI applications and how they integrate with ERP applications.

Enterprise Resource Planning (ERP) is an industry term for the broad set of activities that helps a business manages the important parts of its business. The information made available through an ERP system provides visibility for key performance indicators (KPIs) required for meeting corporate objectives. ERP software applications can be used to manage product planning, parts purchasing, inventories, interacting with suppliers, providing customer service, and tracking orders. ERP can also include application modules for the finance and human resources aspects of a business. Typically, an ERP system uses or is integrated with a relational database system.

Business Intelligence (BI) is the set of techniques and tools for the transformation of raw data into meaningful and useful information for business analysis purposes. BI technologies are capable of handling large amounts of unstructured data to help identify, develop and otherwise create new strategic business opportunities. The goal of BI is to allow for the easy interpretation of these large volumes of data. Identifying new opportunities and implementing an effective strategy based on insights can provide businesses with a competitive market advantage and long-term stability. BI technologies provide historical, current and predictive views of business operations. Common functions of business intelligence technologies are reporting, online analytical processing, analytics, data mining, process mining, complex event processing, business performance management, benchmarking, text mining, predictive analytics and prescriptive analytics.

BI can be used to support a wide range of business decisions ranging from operating to strategic. Basic operating decisions include product positioning or pricing. Strategic business decisions include priorities, goals and directions at the broadest level. In all cases, BI is most effective when it combines data derived from the market in which a company operates (external data) with date from company sources internal to the business such as financial and operations data (internal data). When combined, external and internal data can provide a more complete picture which, in effect, creates an "intelligence" that cannot be derived by any singular set of data.

BI is the way in which we store and use business information. Business Intelligence (BI) refers to skills, processes, technologies, applications and it encompasses the technologies, applications, and means for collecting, integrating, analyzing, business data.Organizations that want to move beyond the limited scope of ERP analytics and manage performance on an organization-wide level should consider a BI solution. This will help them move toward an inclusive approach to setting metrics, collaborating on tasks, and tying initiatives to the organization's overall goals. By focusing on organization-wide business issues,a more cohesive view of the organization is created.

The Business Intelligence solutions offer personalized control panels including graphics, drawings and diverse explanations that will be useful for managers to monitor the metrics that really are important.

* **Associate Professor (Computer Science & I.T.) S.S. College of Engineering, Udaipur (Raj.) INDIA**
** **Research Scholar, Pacific University, Udaipur (Raj.) INDIA**

Differences - ERP systems are the prerequisites of Business Intelligence systems. They address the same market; have the same benefits, offer support for the same areas and activities within an organizational entity.

- The main difference between them is that the ERP systems have only two layers, those of Knowledge Management and Information Retrieval, lacking it's third and most sophisticated BI level - Intelligent Data Analysis.
- An enterprise resource planning (ERP) system optimizes operational efficiency and effectiveness, while an enterprise decision-support system enables strategic decision-making capabilities, leveraging both ERP and other types of data relevant to the organization. . BI from SAS gives organizations the power to know how to integrate data from across the enterprise and deliver self-service reporting and analysis to everyone in the organization. BI allows decision makers to spend less time looking for answers and more time driving decisions
- Another very important difference is that in BI systems, application integration is "a must". Whilst ERP systems usually consisted of one or few applications that ran on desktop environment, what we are witnessing now is a revolution in communication between control& automation procedures and enterprise management procedures(e.g. GPS for trucks and transport control), between business agents and their partners(B2B) or their clients(B2C).
- ERP is for data input and BI is for data retrieval.
- ERP is an OLTP system and BI is an OLAP System. ERP software being an Online Transaction Processing (OLTP) system is used to record/edit transactions as and when these happen. The data architecture is designed in such a way that it provides maximum speed in recording a transaction keeping disk space utilization at a minimum.BI on the other hand being an Online Analytical Processing (OLAP) system provides you robust access to different reports, dashboards and balanced scorecard
- One can do more analytical reporting in BI.ERP reports are for day to day needs only. Normally ERP and other OLTP systems generate two dimensional reports e.g. sales of certain products based on time. Here, product is a dimension. Time is also a dimension and sales amount is the measure. At the minimum, any report can contain two dimensions and one measure. BI reports make it possible to make multidimensional reports
- Business Intelligence systems are an upgrade to the Enterprise Resource Planning systems.

Integrating BI and ERP - Many companies these days are planning to enhance their ERP system's native reporting capabilities with additional Business Intelligence (BI) tools. Business intelligence (BI) and ERP integration has challenges regardless of the vendor choice — challenges that are both political and technical. BI initiatives often come to an organization from many different angles, supported by company players with different needs and different levels of understanding. There are also the costs, the strategic investments in ERP, the best-of-breed BI silos that are delivering focused value for one department but failing miserably for another. So how does an ERP-focused organization regroup and start making sense of all the nuts and bolts that must come together for a cohesive BI strategy.Companies see the greatest benefit from integrating BI tools with their enterprise application systems when they create dashboards to display and analyze information for finance and HR, partner relations, customer service, executives, sales, and marketing.

Since each company has significantly different needs when it comes to integrating BI tools with enterprise applications like ERP, CRM, SCM, HRM, etc., there is no turnkey solution or commercial, off-the-shelf software that can be used as a plug-and-play component for integration. Take the approach of using BI as a means to extract enhanced value from data within enterprise applications. Transformation from a data to information may be done by enterprise application, but only a BI tool can convert this information to intelligence.

Conclusion - Manufacturers need to identify which approach works best for them. Do built-in ERP analytics meet business requirements and help manage organizational performance, or should manufacturers take advantage of the additional benefits of a full BI solution? Organizations may be using their current set of ERP analytics, and it may provide sufficient benefit to the organization. Organization need to identify that do these systems actually give organizations the depth and breadth of analytics required to sustain a competitive advantage? Or is business intelligence (BI) for manufacturing the better solution?

Good questions to ask are: which business areas are you going to analyze? What are the important Key Performance Indicators? How will decision makers react to the insight your solution produces and what specific outcomes will it achieve?

In some cases, ERP analytics will be enough to meet an organization's needs, but in some cases ERP is not enough, BI may be the better option. Integrating BI and ERP may be the good option. To make the choice of ERP - BI technology, experts we agree that it's key to look first at the scope and future of BI throughout the organization. Be aware of any tool's true abilities and outright limitations.

References :-

1. Business Intelligence Success Factors: Tools for Aligning Your Business in the Global Economy. Hoboken, N.J: Wiley & Sons.
2. Coker, Frank (2014). Pulse: Understanding the Vital Signs of Your Business. Ambient Light Publishing. p. 41-42.
3. http://blog.maia-intelligence.com/2010/09/03/bi-erp-integration-11/
4. Laurie McCabe Sanjeev Aggarwal Dwight Davis :Using ERP and BI to turn data insights.
5. Mrs. Rasika P. Patil, Dr. Sarwade W. K. : ERP and Business Intelligence.
6. Nils Rasmussen:Things to Consider when Evaluating Business Intelligence for Your ERP System
7. Scholars.google.com
8. Tansley, C., Watson, T. (2000), "Strategic exchange in the development of human resource information systems (HRIS)", New Technology, Work and Employment, Vol. 15 No.2, pp.108-22

Adjustment Problems of Elderly living in Old Age Home and within Family set up in Indore City

Dr. Nandini Rekhade *

Abstract - Ageing is a main concern in the 21st century. The number of older person rising in the country as consequences, there are certain problems in different region and cultures. Adjustment is a common psychiatric problem in old age. It is difficult to adjust due to limited capacity, lower mental ability and increased dependency on others. The present investigation is an attempt to study adjustment problems of old age, residing in old age home and with their families. 100 old age people (50 from institution & 50 from community) selected from Indore city. In the group 60 to 70 yrs. purposive sampling technique was used for sample selection, shamshad jusbeer old age adjustment inventory was used for the study. Data were analysed by T Test. The findings of the study shows higher adjustment problems in old age living in old age home, than in families.

Introduction - Ageing has been defined as the total constellation of social, biological and psychological changes that occur in last stage of life (Richard, 1962). Ageing of the population is one of the most important demographic factors that have emerged in the 21st century. The number of elderly has steadily multiplied since 1948, due to the decreased fertility and increased life expectancy rates worldwide (World Bank 2011). A more alarming number i.e. 1250 million is estimated to this bulk of ageing population by the year 2025 (Global statistics, 2012). United Nations report states that the population of aged growing at faster rate (3:4 times) in the developing region than in the developed region (1.84 times of the world). The population of older persons (60+) has constantly been rising since the first census in independent India in 1951. The population of aged (60+) in the total population of India was around 5.5 percent that increased to nearly 6% in 1971 and almost 5% in 2001. The number of such population has —— increased from nearly 20 million in 1951 to 77 million in 2001 (Verma – 2011) and almost 100 million in 2011 (Agewell study – 2011)

Adjustment involves both mental and behavioural process by which a person maintains an equilibrium with their needs and the obstacle imposed upon them by the environment. A number of adjustments begins when it is felt and end when it is satisfied. Generally it is difficult to adjust in old age due to diminishing health, limited capacity, poor mental ability and increased economic dependency (Shukla et-al 2013). It is a period of transition where one has to face set of changes, expectations and also do several compromises (Nema 2013). A study by sijuwade (2013) shows that there is a significant relation on the effect of life satisfaction and gender on general adjustment of elderly.

Objective – To study the adjust mental problems of old person living with their families and in old age home.

Material and method –

1. Sample – This was carried out to investigate adjustment problems of aged persons. For this purpose a sample of 100 old person was selected randomly from old age homes & community. 50 old person were residing in old age homes and 50 with their families.

2. **Questionnaire** – The old age adjustment inventory developed and standardized by Hussain S, & Kaur J (1995) was administered to find out the adjustmental problems of old men and women in the following areas –

(i) Problems of social adjustment.
(ii) Problems of emotional adjustment
(iii) Problems of marital adjustment.

The inventory measures problems faced by elderly people in areas of home, health, financial, social, emotional and marital adjustment, out of them three areas i.e. social, emotional and marital adjustment has been taken for this study.

(i) Social area deals with the question – like self respect, social circle, social security, feeling happy with others, social relation with neighbours & friend circle etc.

(ii) Emotional area deals with questions like anxiety, temper tantrum, feeling of insecurity, feeling of self respect, anxiety about disease, feeling of crying etc.

(iii) Marital area deals with loss of spouse, expectation from spouse, & from children, feeling of loneliness, depression, dependency, never want to stay with others etc.

(3) **Statistical Analysis** – Comparison was done between the two groups and result were analyzed by T-test

Table No. 1 (See the next page)

The analysis of the data reveals that elderly, who are living in old age homes feel more adjustment problems, than those who are living in their own homes. Mean value for social adjustment living in their own home is 19.0 and SD is 1.40 and mean value is 15.9 and SD 2.65 for old people living in old homes shows significant difference and T value is 7.24 at .05 level of significance and 98 Df, which is quite

*Professor (Home Science) M.L.B. Govt. Girls P.G. College, Kila Bhavan, Indore (M.P.) INDIA

high than the table value 2.36 which shows significant difference in social adjustments. Social adjustments are similar to physiological adjustments. People strive to be comfortable in their surrounding and to have their psychological needs such as love affection, met through the social networks they inhabit on going difficulties in social and cultural adjustment may be accompanied by anxiety or depression.

Table No. – 2 (See below)

Above table reveals significant difference in both groups. Elderly people living in old age homes feel more emotional problems than those who are living with their own families. The calculated T value is greater than table value (2.36) at 98 degree of freedom, and .05 level of significance. Family support improves emotional well being and relieves stress.

Table No. – 3 (See below)

Above table shows that there is no significant difference in marital adjustment of both the groups. Calculated T value (.51) is less than the table value (2.36). Marital adjustment problems faced by old people are same whether they are living in old age homes or with their own families.

In India there is strong cultural pressure to 'Look after the parents in the family. Old age home is neither a popular or feasible option. It is desirable to strengthen this 'families'. People live in their later years will make a significant difference to the quality of their living. Availability of caretakers in case of illness, disability, emergencies, depends on living arrangements.

References: –

1. Agewell study – 2011 – Human rights of older persons in India -A national study Agewell research & advocacy center, P. 2-3.
2. Global statistics – 2012 – National sample survey organization. Socio economic profile of aged persons. Sarvekshana – 2014
3. Neema – 2013, Sajuwad P.O. 2013 – 'Adjustment of the elderly in relation to living arrangement, gender and family life satisfaction', Pakistan Journal of Social Science, 5(6) P 602-605
4. Richard – 1962 – Ageing & Personality, New York, John Wiley & Sons, Inc
5. Shamshad Hussain – Jasbeer – Old age adjustment inventory (1995), National Psychological Corporation, Agra (UP) India
6. Shukla P & Kiron U.V. 2013 - 'Subjective happiness among the elderly across various groups'. IOSR Journal of humanities & social science 13(6) p 46-49
7. Verma M.M. (2011) – 'Elder abuse' – The problems of the way out, social welfare 58 (7) 5-11

Table No. 1 - Social Adjustment of Old People

Group	Size of sample n = 100	Mean	SD	T Value	Level of significance
(1) Old people living with their families	50	19.0	1.40	-	.05 level of significance
(2) Old people living in old age home (Institutions) & combined	50	15.9	2.65	7.24	
Combined SD	-	-	2.14		

DF - 98, Table Value - 2.36

Table No. - 2 - Emotional Adjustment of Old People

Group	Size of sample	Mean	SD	T Value	Level of significance
(1) Old people living with their families	50	17.1	6.62	2.43	.05
(2) Old people living in old age home (Institutions)	50	15.8	2.68	-	
Combined SD	-	-	2.67	-	-

DF - 98, Table value - 2.36

Table No. - 3 - Marital Adjustment of Old People

Group	Size of sample	Mean	SD	T Value	Level of significance
(1) Old people living with their families	50	12.6	1.55	.51	.05
(2) Old people living in old age home (Institutions)	50	12.4	2.24	-	
Combined SD	-	-	1.94	Table value 2.36	98 DF

****

Health And Nutrional Status Of Women In India

Dr. Rashmi Verma *

Introduction - A woman in her life-cycle goes through number of challenges in terms of her health and nutritional needs as these are not just dependent on availability and access to health and nutrition services but is closely linked to her status in the society which constantly deprives her from getting these needs appropriately addressed. Poverty and economic dependence, gender bias and discrimination, limited freedom of choice over sexual and reproductive aspects and lack of decision-making have an adverse impact on health of women. Besides this, there are some determinants of health that impact the health of women such as: 1) Safe drinking water and adequate sanitation .2)Safe and adequate nutrition . 3) Adequate housing . 4) Healthy & safe working environment .5)Health literacy, education and information . 6)Gender equality

The importance of bringing improvement in Women's Health and Nutritional Status has been realized and recognized by the Government of India. Several interventions have been introduced and significant improvement has been made however major development challenges still remains to be addressed in terms of adverse gender-specific health indicators (maternal mortality, infant mortality, child sex ratio, mal-nutrition, anemiaetc). This is further substantiated by findings of Census 2011 where the deteriorated trend in the Child Sex Ratio (0-6 years), high maternal and child mortality & morbidity continues to pose a challenge. NFHS-3 survey has also revealed that every third woman in India is undernourished (33.0 per cent have low Body Mass Index) and every second woman is anemic (56.2 per cent women are anemic in the age-group of 15-49).

In the above context, one of the priorities of National Mission for Empowerment of women (NMEW) would be to work towards improvement in maternal and child health through better health and nutritional status of women. The Mission under the domain area of 'Health & Nutrition' would develop appropriate strategy for achieving convergence of health and other interventions to bring-down IMR and MMR to levels projected under the Millennium Development Goals (MDGs). The cell would endeavor to achieve empowerment of women by convergence of different schemes/programs, encourage health-seeking behavior and fuel demand through awareness generation for appropriate services to meet women's health and nutritional needs from infancy to old age and would encourage women to make informed decisions about their health. Simultaneously it is planned to undertake/ commission research studies, review of policies and programs, collate and document information and disaggregate data related to health and nutrition.

Policies for for improving health and nutritional status women - Various policies for improving the health and nutrition status have been laid down by Government of India. These policies would be the basis on which Mission would monitor the convergence efforts and facilitate the achievement of various outcome indicators such as reduction in maternal mortality rates, balanced child sex-ratio for 0-6 age group, ensure complete course of immunization, improve nutritional status of mother and infants, and increase in age of marriage and firstpregnancy. National Health Policy 2002- The Policy focuses throughout on the health of the poor, and dedicates a section to the health of women and related socio-economic and cultural issues. The document acknowledges the importance of women's health as a major determinant of the health of entire communities. It also acknowledges that social, cultural and economic factors continue to inhibit women from gaining adequate access even to the existing public health facilities. The policy endorses the need to expand the primary health care infrastructure to increase women's access to care. The policy also advocates the need to review staffing in the public health service, so that it may become more responsive to specific needs of women. The policy recognizes the catalytic role of empowered women in improving the overall health standards of the community.

National Population Policy 2000- The Policy affirms the commitment of government towards voluntary and informed choice and consent of citizens while availing of reproductive health care services, and continuation of the target free approach in administering family planning services. The NPP 2000 provides a policy framework for advancing goals and prioritizing strategies during the next decade, to meet the reproductive and child health needs of the people of India, and to achieve net replacement levels (TFR) by 2010. It is based upon the need to simultaneously address issues of child survival, maternal health, and contraception, while increasing outreach and coverage of a comprehensive

* Asst. Professor (Home Science) Govt. Girls College, Neemuch (M.P) INDIA

package of reproductive and child health services by government, industry and the voluntary non-government sector, working in partnership.

The common features covered under the National Population Policy-2000 and National Health Policy-2002, relate to the prevention and control of communicable diseases; giving priority to the containment of HIV/AIDS infection; the universal immunization of children against all major preventable diseases; addressing the unmet needs for basic and reproductive health services, and supplementation of infrastructure. National Nutrition Policy 1993- The Policy was introduced to combat the problem of under-nutrition. It aims to address this problem by utilizing direct (short term) interventions such as ensuring proper nutrition of children, adolescent girls and pregnant women, food fortification, provisioning low cost nutritious food and combating micro-nutrient and deficiency in vulnerable groups. The indirect (long term) interventions include providing food security, improving dietary pattern and purchasing power through Public Distribution System (PDS), nutrition education, land reforms, community participation and improving the status of women through education etc.

Some states have taken up various initiatives for improving access to health, nutrition, sanitation and hygiene for women. Some of the best practices are as follows:

Madhya-Pradesh - The State Government has undertaken the challenging task of bringing down Maternal Mortality Rate (MMR) in Madhya Pradesh on top priority basis. They have achieved encouraging results by directly reaching out to 18 lakh women in the year 2010-11 through Janani Express, JananiSahyogi and JananiSurakshaYojna as a result of which the MMR has come down to 335 per lakh from 370 per lakh. The Union Government has lauded the efforts made by the Madhya Pradesh government for brining down Maternal Mortality Rate.

Haryana - The "No Toilet, No Bride" campaign launched by the Ministry of Rural Development was adopted by Haryana and has resulted in the construction of approximately 1.71 million toilets across the state wherein women are refusing to marry unless the potential groom provides them with a toilet so that they don't have to use community toilets or squat in open fields. The movement takes advantage of the fact that Haryana suffers form a warped sex ratio, a result of India's cultural preference for boys over girls. The scarcity of brides in the state helps prospective brides use their bargaining power to force their suitors to construct toilets for them before they marry.

Delhi - The Government of Delhi launched the 'Laadli Scheme' with an aim to curb female feticides and enhance the social status of the girl child by promoting their education and protecting them from discrimination and deprivation. The Government deposits Rs.10,000 in the name of girl child at time of her birth and subsequently deposits an amount of Rs.5000 each at the time of her admission to Class I, VI, IX, X and XII.

Maharashtra -The Govt. of Maharashtra in association with Save the Girls Mission has designed a project in an attempt to save the female foetus from illegal sex determination and abortion. One of the initiatives undertaken in rural Maharashtra is the campaign for renaming the girls, who were named 'Nakusa' ('unwanted' in Marathi) or Dagadi' and 'Dhondi' ('stone' in Marathi) by their families preferring on. Similarly District Administration, Kolhapur in association with Magnum Opus (innovators of Silent Observer) has initiated project for 'Save The Baby Girl', an attempt to save the female foetus from illegal sex determination and abortion. The project is two phase application, online submission of records as per PCPNDT act and Silent Observer, a device to be attached to the ultrasound machine that records the video images of the ultrasound. The sex determination of unborn children went considerably down in the district which had the worst male-to-female birth ratio. According to the 2001 census, for every 1,000 boys born in the area, only 829 girls were born.

Rajasthan - District Administration, Pali, Rajasthan has initiated a campaign 'BetiBachaoAbhiyan' in association with Department of Health & Family Welfare supported by ShaniDham Trust in November 2010. Various incentives in form of cash and in kind are being offered under the scheme to sensitize parents to value girl-child and provide support to girls to meet their development needs.

References :-

1. http://thebreakingstory.com/careers/in-india-a-long-way-before-nakusa-becomes-aishwarya/4010.html
2. http://blogs.wsj.com/indiarealtime/2011/10/20/maharashtra-renames-its-unwanted-girls/
3. http://savethebabygirl.in/home.aspx
4. http://groups.yahoo.com/group/karmayog/message/71296

****

Tarapur Block Printing – A Study

Dr. Rashmi Harit *

Introduction - Block printing is a wonderful art of coloring cloths. Not only in India but it is an important art in whole of the world. Block printing is an ancient and simple process. Cloths printed by this method are absolutely artistic, decorative and attractive.

In this method the wooden blocks are prepared by engraving designs on them. Then after dipping these blocks in color, the blocks are used to print on the cloth.

The main centres in India where the block printing is done are Sanganer in Rajasthan, Bagru in Ahmadabad, Surat and Pethapur of Gujarat, Farukhabad in U.P., Hyderabad in Andra Pradesh and Baag, Bhairavgarh and Tarapur in M.P.

The Tarapur printing is famous for their traditional motifs and natural dyes. The centre and the printing process is pollution free. No chemicals are used in this printing. Natural colors are made by using sources like Haldi, Tesu, Dhavda, Harad, and many more. The colors made are not harmful for the skin. To fast the color the peel of pomegranate is used.

Method

Tools and material used for printing

- Blocks
- Printing Table
- Color Tray
- Fabric-Cotton, Silk, Jute, etc
- Dyes-(100% Vegetable Oriented)
- Neutralizing Agent
- Color Fixer
- Washing Agents (Ritha & Wat)

1. Blocks - Blocks are majorly made by the wood of Sheesham, teek, Sagaun and Sagwaan. To prepare the block, sample or design is first drawn on the butter paper by pencil or a pen. Then this design is correspondingly made on the wooden block. On this block the trained workers then makes the design by a hammer and nail. The designs are then engraved, so that only the design gets coated with the color for printing it. The blocks ordered are made available in about 10-15 days. The main centre for making the blocks are Pethapur(Gujarat), Farrukhabaad(U.P.) and Sanganer(Rajasthan).

Wooden Blocks

2. Printing Table - A table is required for the printing work. Normally, these table are 5m long, 1.25m wide and 1.25m in height. Sometimes it could be 1.5 – 2 ft in height, at the place where sitting work is to be done. On the table 18-24 layers of jute is arranged. On this a flexible felt layer of cotton or woolen is kept. By this the imprint of the printing is clear and also extra color is absorbed.

3. Color Tray - The printing color is kept in the color tray. The worker prints after dipping the block in the tray filled by the color of appropriate use. This tray is kept on the trolley, so that it can be moved as per the need. The trolley usually has 2-3 racks. The blocks, color and other items to be used can be kept here.

Color Tray Printing Table

4. Fabric - The cloth is what we are printing here. For this generally cotton based cloth are used. For example: gray cotton, popleen, cambric, rubiya, etc. There are also other cloth used like silk, woolen and some synthetic cloth too.

5. Color/Dye - The colors or dye used for printing are completely made from the natural materials and vegetables. Various types of natural things used for making the color/ dye are like: Harad, Indigo, Mahendi, Tea leaves, Momegranate, Mango, Tesu, Lemon and many more.

6. Color Fixer - In the process of printing the color requires a carrier. This also works as trickener/ binder. Example : Starch paste

7. Washing Agents - For after treatment process Reetha and Aawla are used as washing agents. They are first mixed with water and then used.

Fabric Preparation for Printing - There are some treatments that are being given to the fabric before using it for printing. They are as follows:

1. Desizing - While making the fabric at the loom that thread of the cloth is made strong by use of starch, wax and oil. So that the fabric made have proper strength and becomes

* Asst. Prof. (Home Science) Govt. Girls College, Neemuch (M.P.) INDIA

durable. But this starch makes a layer on the component of fabric. This prevents the color from getting in the cloth and thus it has to be removed. Now the cloth is washed in hot water with Caster Oil . Then it is kept in this solution for 2-6 hrs and then cleaned with normal water. This process is done 2-4 times.

2. Scouring - When cloth is received, it gets many impurities like dust, oil, wax etc. Thus to remove these impurities scouring is done. After this process the cloth gets ready for the coloring or printing. Then the Arandi oil solution is made and the cloth is soaked in it for the whole night. Then it is washed and this process is repeated for 3-4 times. It is also called Mengni.

3. Bleaching - In preparing the cloth for printing bleaching is done. So that cloth does not have yellowness or dirtiness, and it looks good and clear after printing. The cloth is washed with the Arandi oil and Harara powder. In local language it is also called doing Harara. The cloth is dried after bleaching. Now the cloth is ready for printing.

4. Fixing fabric on table - The cloth made for the printing is fixed on the table with the help of small pins. No air bubble are allowed here, so that printing is accurate. While fixing the cloth it is kept in mind that there are no creases on it.

Printing Process - After the preparation methods and fixing the cloth on the table, the next step is the task of the workers i.e. printing. For printing a strong paste of color is prepared and kept in the color tray. The color is spread on the woolen felt on the filter in the tray.

The block is dipped in the tray, so that the color is soaked by it in a proper way. Now this block is pressed on the cloth, so that the designs are made on it.

While keeping the blocks, it should be kept in mind that they are aligned and the design doesn't look broken at any place.

The printing is always done from left to right from the outline of the block. This is generally black or red in color. After this border is printed on the cloth, if more than one color is taken there are different filter and tray to be used. A skilled worker does the job of making the layout, which leads the next printing processes. In case two or more colors are to be used, then printing by one color is completed first and after this next color is being taken. In this manner the whole printing takes place by changing the blocks and consequent colors. After this cloth is removed from the table and dried. It is left for a period of 8 to 15 days for the color to get fixed. Then the after treatment is done by using the neutralizing agents.

After treatment - After treatment is must for the cloths that are printed. The main objectives of doing this is fixing the color on the cloth, removal of impurities and making the cloth reliable against sunlight and rubbing.

Use of color fixer - The printed cloth is boiled with pomegranate's peel and flower. For stabilizing of the color the goat/cow dung, soil and lime water are mixed together. The cloth is kept in this mixture over night and then its washed in the running water.

Curing - The cloth is allowed to dry in sunlight for 2 to 3 days. Due to this the colors on the cloth get fixed. After this the cloth is folded and kept for about 15 days.

Washing - After the above treatments the cloth is finally washed. So the extra color gets washed away with the water. This process is repeated 2-3 times.

Drying - Finally after the above methods the cloth is dried in the open air. After drying they are ironed and packet to be sold in the market.

Final Products

Use of product - The following are the products made by the cloth that is printed using the block printing process.

- Saree
- Dress Material
- Kurta/ Pajamas
- Scarfs
- Bedsheets
- Pillows
- Curtains
- Table Cloths
- Decorative Articles

Conclusion - The carrier of the Tarapur block printing workers is fully depend on the printing industry. The block printing process seems to be simple but apparently it is more tough and complicated. It requires skill, patience and hard work. This is work is almost impossible without skill and dedication, which is must. Today the use of synthetic cloths and colors made by chemicals is becoming common, but consequently harmful for the environment and the human health. However on the other side, Tarapur block printing utilizes the cloth materials like cotton, silk, etc. and colors made by natural resources which are 100% Eco-friendly and are not harmful. And this is what human being want, that they face no harmful effect of anything.

References :-

1. A brief note on Tarapur Printing by Mr. Purushottam Ji Jeriya, Pavan Jeriya and Pradeep Jeriya (Master Craftman, Tarapur,M.P.).

Increasing Quality Of Higher Education From Skill Based Studies

Dr. Rashmi Harit *

Introduction - The objective of Higher Education is to make the individuals aware and to show them the correct way that can lead them to a successful life. By making the education skill based, we can increase the quality of the education. In order to increase the quality of our work, we must enhance the good skills in ourselves, make the use of chances that we get, work on the things that we lack and also to increase the quality of an individual and an organization/institution we have to develop our culture. Today students not only need the knowledge from the books but also from various other fields. So, that their whole personality is developed. And also they get the moral and social values in their life.

Why this quality improvement is required in Education

1. So as to increase the skills which are required
2. For qualities like: intelligence, inter-personal relationship, talent, etc.
3. Need of personal development
4. Increasing the writing and reading capacity, leadership quality, solving the problems in any possible manner
5. Increasing technical dependency
6. Change in point of view
7. Establishment of moral values
8. To awake the inner spirit
9. To learn skills and other things beyond the academic degree
10. Increase the opportunity of jobs

Steps taken by Government - Quality does not come from any policy or any kind of compulsory methods applied just to force and get required outcomes. Rather it would come by establishing moral values and the quality of leadership in their soul. For higher education of this kind various steps have been taken

1. Smart and Virtual Classes are encouraged
2. Fair directions for the higher education department
3. Teacher encouragement policy
4. Yearly magazine and news letter publishing
5. SWAT specification (Knowing about the strength, weaknesses, opportunities risks)
6. Increasing skills of the teachers and professors
7. Organizing seminars and workshops in schools and colleges.
8. A leading policy work for the job seekers
9. Policies for all
10. Various functions and competitions for capable and skilled students
11. Help desk for job and carrier
12. Encourage institutions by conducting various functions

Suggestions -

1. Only 2.2 of the budget of India is spend on the education. In this 80% is spend for the school level education. And the rest is for higher education. 95% of the available 20% is for the salary and running the institutes. And the available 5% is for the development. This expenditure must be increased, so that necessary changes could be make in the existing structure of education.
2. In higher education institutes, the honest and hard working people should be given awards and those who are irresponsible should be punished.
3. Computer education and research methodology should be made compulsory. So that student be get knowledge about these, which can help them in making projects.
4. Each and every one should work with full effort, they can give.
5. Corruption should be minimized
6. Those institutes which do not have skilled and qualified teachers, must be visited to sort out the problems they face.
7. A committee should be made , so that ragging is strictly prohibited in the institutions and if anyone do so, actions must be taken agaist him.

Conclusion - To increase the quality of education in a state, there is a need to look for the various developments and changes which are must. In order to make the values and development as per the Indian traditions and culture, various skills, educational values, moral and social values are to be encouraged and a lot should be done to do so.

Each and everyone either it is student, teachers or parents should know the importance of the quality education. And should understand that it plays an important role in individual's life. That's why all those people, who are involved in this field must understand and work together to improve the quality of the higher education.

References :-

1. MP Higher Education Department, Bhopal Booklet-2012
2. Instruction letters by MP Higher Education.
3. Anand B. Rao and Ravishankar, readings in Education Technology, Bombay Himalaya Publishing House.
4. Information received from individual experiences.
5. Various websites over the internet.

* Asst. Prof. (Home Science) Govt. Girls College, Neemuch (M.P.) INDIA

शहरी एवं ग्रामीण किशोरों में परिवार एवं आय वर्ग के आधार पर चिंता एवं कुंण के मध्य सहसंबंधात्मक अध्ययन

डॉ. नंदिनी रेखड़े * जयश्री बाथम **

शोध सारांश –किशोरावस्था परिवर्तनों तथा समस्या बाहुल्य की अवस्था है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ समय के लिए कष्ट, चिंताएं, उदासी, दु:ख तथा मायुसी देखी जाती है। परन्तु किशोरावस्था में चिंता प्रतिक्रिया उत्पन्न होना बहुत सामान्य है तथा उसकी आवृत्ति की आशंका भी सबसे अधिक इसी समय होती है। जब व्यक्ति तरूणावस्था से पूर्ण युवावस्था के मध्य होता है।

आधुनिक युग में प्रत्येक व्यक्ति तनाव, चिंता और प्रतिबल परिस्थितियों से ग्रस्त है, जिसके कारण उसमें कुंठा की आवृत्ति और मात्रा दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। कुंठा की परिस्थिति में व्यक्ति तनाव और परेशानी अनुभव करता है। उसके मन में संवेगात्मक उथल–पुथल रहती है। फलस्वरूप उसकी आशाऐ और इच्छाऐ भग्न हो जाती है। जब आवश्यकता अस्तित्व में होती है और आवृत्त रहती है, तब व्यक्ति बैचेन व तनावपूर्ण हो जाता है। जब लक्ष्य तक पहुँचने में किसी बाधा के कारण वह असफल हो जाता है, तो वह निराश होता है और उसमें कुठा उत्पन्न होती है।

जब व्यक्ति की आवश्यकता और उसकी पूर्ति के साधन अर्थात लक्ष्य के बीच कोई अड़चन अथवा अवरोध उत्पन्न हो जाये या जब कोई उपयुक्त लक्ष्य सामने न हो तो व्यक्ति में कुंठा उत्पन्न हो जाती है। आसुवेल (1954) के अनुसार 'किशोरावस्था जीवन की एक नाजुक अवस्था है जहाँ बालक का झुकाव जिस दिशा में हो जाता है, वह उसी दिशा में आगे बढ़ता जाता है।' इस समय बालक में कर्तव्यों, जिम्मेदारियों विशेष अधिकारों, सामाजिक सम्बन्धों में बहुत परिवर्तन आ जाते है। ऐसी स्थिति में स्वयं के माता–पिता, संगी–साथियों और अन्य के प्रति दृष्टिकोण का बदलना अनिवार्य हो जाता है।

प्रस्तावना – किशोरावस्था में तनाव की स्थिति कुंठा द्वारा प्रदर्शित होती है। जब चिंता तथा कुंठा का प्रभाव किशोरों पर बढ़ता जाता है, तो वह उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति को भी प्रभावित करता है। प्राय: बालक समग्र मानव जाति का प्रतिनिधि होता है। प्रेरणाएँ उसमें जन्मजात मूल प्रवृत्तियाँ के साथ अंतर्निहित रहती है, जो उसको उपलब्धि तक पहुँचाती है। जीवन की यह अवस्था किशोरों के लिए अपनी प्रतिभा, क्षमता व योग्यता का प्रस्फुटन, व्यक्तित्व विकास व जीवन की आधारभूत तैयारी करता है। अत: उनके लिए चिंता, भय, तनाव, कुंठा एवं अस्थिरता का प्रदर्शन स्वाभाविक है।

सामान्यत: किशोरावस्था में किशोरों में तनाव देखा जाता है, जो कि कुंठा द्वारा प्रदर्शित होता है। इस उम्र की समस्याएं अनेक है, जो मात्र किशोरों की नहीं कही जा सकती हैं। इनका संबंध अभिभावक व समाज के साथ भी है। अत: कहा जा सकता है कि छात्रों का जीवन पूर्ण या आंशिक रूप से अपने अभिभावकों पर निर्भर करता है। अभिभावकों की स्थितियाँ, स्तर, विचार, विश्वास, मान्यताएं आदि छात्रों को प्रभावित करते हैं।

वर्निस, एड्रयू व चील्डीं जॉन एम.(2004) ने विद्यार्थियों के तनाव जीवन और उपलब्धि का अवसाद चिंता के मध्य संबंध का अध्ययन किया। मॅसी तथा अन्य(2009) द्वारा प्रस्तुत अध्ययन में किशोरों द्वारा अपनाये गये व्यक्तिगत लक्षणों के पूरी सारणी का परीक्षण Idiographic Goal-Elicitation पद्धति के उपयोग से किया गया।

अध्ययन के उदेश्य–

1. शहरी एवं ग्रामीण, एकांकी व संयुक्त परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा के मध्य सहसम्बन्ध ज्ञात करना।
2. शहरी एवं ग्रामीण व निम्न, मध्यम एवं उच्च आय वर्ग के किशोरों में चिंता तथा कुंठा के मध्य सहसम्बन्ध ज्ञात करना।

उपकरण तथा प्रविधि– वर्तमान अध्ययन के लिए खण्डवा शहर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के 13 से 16 वर्ष के 150 चिंता एवं 150 कुंण्ठा का चयन दैव–निर्देशन विधि से समान रूप से किया गया।

प्रस्तुत शोध हेतु डॉ. ए.के. सिंह एवं डॉ. ए. सेनगुप्ता द्वारा निर्मित चिंता मापनी परीक्षण प्रपत्र तथा डॉ. बी.एम. दीक्षित एवं डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव द्वारा निर्मित नैराश्य माप परीक्षण प्रपत्र का उपयोग किया गया–

1) चिंता मापनी(Anxiety Scale) – डॉ. ए.के. सिंह एवं डॉ. ए. सेनगुप्ता द्वारा निर्मित चिंता मापनी परीक्षण प्रपत्र की सहायता से प्रदत्तों का संकलन किया गया।

2) कुंठा मापनी(Frustration Scale) – डॉ. बी.एम.दीक्षित एवं डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव द्वारा निर्मित कुंठा मापन परीक्षण प्रपत्र का उपयोग कुंठा मापन के लिए किया गया।

परिकल्पनाएँ –

1. शहरी एवं ग्रामीण, एकांकी और संयुक्त परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा के मध्य कोई सहसम्बन्ध नहीं है।
2. शहरी एवं ग्रामीण व निम्न, मध्यम एवं उच्च आय वर्ग के किशोरों में चिंता तथा कुंठा के मध्य कोई सहसम्बन्ध नहीं है।

परिणाम तथा विवेचना –

1. शहरी एवं ग्रामीण, एकांकी व संयुक्त परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा के मध्य सहसम्बन्ध

तालिका – 01 (देखे अगले पृष्ठ पर)

तालिका 01 से स्पष्ट है कि शहरी एकांकी परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा की स्वतंत्रता कोटि (df) 164 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर सहसम्बन्ध (r) का मान .204 है, जबकि सहसम्बन्ध गुणांक (t) का मान

* प्राध्यापक, गृहविभाग (बाल विकास) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, किला भवन, इन्दौर (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, गृहविभाग (बाल विकास) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, किला भवन, इन्दौर (म.प्र.) भारत

2.72 है, जो कि तालिका मान (table value) 2.61 से सार्थक रूप से उच्च है। अत: शून्य परिकल्पना (Ho) 'शहरी एकांकी परिवार के किशोरों में चिंता एवं कुंठा के माध्यों में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं है।' निरस्त की जाती हैं। अत: स्पष्ट है कि शहरी एकांकी परिवार के किशोरों की चिंता एवं कुंठा में सार्थक सहसंबंध पाया गया है। सहसंबंध का मान सार्थक है। शहरी एकांकी परिवार के किशोरों में चिंता व कुंठा का कारण है, छोटा परिवार होने के कारण माता-पिता बच्चों को समय नहीं दे पाते है, प्यार, स्नेह की कमी रहती है, धर्म, संस्कार, नैतिक बातें आदि नहीं सिखा पाते है। किशोर अपने मन की बाते बांट नहीं पाते हैं। इन्हीं कारणों को लेकर उनमें चिंता एवं कुंठा अधिक पाई गई है।

ग्रामीण एकांकी परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा की स्वतंत्रता कोटि (df) 118 तथा 0.05 सार्थकता स्तर पर सहसम्बन्ध (r) 0.222 है, जबकि सहसम्बन्ध गुणांक(t) का मान 2.53 जो कि तालिका मान (table value) 1.98 से सार्थक रूप से उच्च है। अत: शून्य परिकल्पना (Ho) 'ग्रामीण एकांकी परिवार के किशोरों में चिंता एवं कुंठा के माध्यो में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं है।' निरस्त की जाती है। अत: स्पष्ट है कि ग्रामीण एकांकी परिवार के किशोरों की चिंता एवं कुंठा में सार्थक सहसंबंध पाया गया है। सहसंबंध का मान सार्थक है। ग्रामीण एकांकी परिवार में चिंता व कुंठा का कारण है कि अधिकांश ग्रामीण लोग कृषि, मजदूरी करते है। एकांकी परिवार में रहने के कारण माता-पिता बच्चों की उचित देखभाल व शिक्षा नहीं दे पाते हैं, जिनके कारण उनमें चिंता एवं कुंठा अधिक देखी जाती है।

शहरी संयुक्त परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा की स्वतंत्रता कोटि (df) 132 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर सहसम्बन्ध (r) का मान 0.268 है, जबकि सहसम्बन्ध गुणांक(t) का मान 3.31 है जो कि तालिका मान (table value) 2.62 से सार्थक रूप से उच्च है। अत: शून्य परिकल्पना (Ho) 'शहरी संयुक्त परिवार के किशोरों में चिंता एवं कुंठा के माध्यों में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं है।' निरस्त की जाती है। अत: स्पष्ट है कि शहरी संयुक्त परिवार के किशोरों की चिंता एवं कुंठा में सार्थक सहसंबंध पाया गया है। सहसंबंध का मान सार्थक है। शहरी संयुक्त परिवार में चिंता व कुंठा का कारण है कि बढ़ती हुई महंगाई में संयुक्त परिवार के प्रत्येक व्यक्ति की आश्यकता व इच्छा की पूर्ति नहीं हो पाती है। किसी न किसी व्यक्ति को अपनी इच्छाओं को दमन करना पड़ता है, जिनके कारण चिंता व कुंठा उत्पन्न होती है। आधुनिकता के दौर में प्रत्येक सदस्य नई तकनीकी को अपनाना चाहता है। नई तकनीकी से बने उपकरण महंगे होते है, जो संयुक्त परिवार अपने बच्चों को उनकी सुविधा के अनुसार नहीं दे पाते है।

ग्रामीण संयुक्त परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा की स्वतंत्रता कोटि (df) 178 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर सहसम्बन्ध (r) का मान .249 है, जबकि सहसम्बन्ध गुणांक(t) का मान 3.55 है जो कि तालिका मान (table value) 2.60 से सार्थक रूप से उच्च है। अत: शून्य परिकल्पना (Ho) 'ग्रामीण संयुक्त परिवार के किशोरों में चिंता एवं कुंठा के माध्यो में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं है।' निरस्त की जाती है। अत: स्पष्ट है कि ग्रामीण संयुक्त परिवार के किशोरों की चिंता एवं कुंठा में सार्थक सहसंबंध पाया गया है। सहसंबंध का मान सार्थक पाया गया। ग्रामीण संयुक्त परिवार में चिंता व कुंठा का कारण है कि ग्रामीण संयुक्त परिवार में प्रत्येक सदस्य कृषि या व्यवसाय करते है। महिलाएँ भी खेती का कार्य करती है, जिसके कारण बच्चों को समय नहीं दे पाती है व उनका लालन-पोषण ठीक से नहीं कर पाती है। शहरी एकांकी परिवार के किशोरों में चिंता का माध्य 12.49 है, जो कि ग्रामीण एकांकी परिवार के चिंता का माध्य 11.58 से उच्च है। शहरी एकांकी परिवार के किशोरों में कुंठा का माध्य 105.62 है, जो कि ग्रामीण एकांकी परिवार के कुंठा का माध्य 77.25 से उच्च है। शहरी संयुक्त परिवार के किशोरों में चिंता का माध्य 11.62 है, जो कि ग्रामीण संयुक्त परिवार के चिंता का माध्य 11.78 से निम्न है। शहरी संयुक्त परिवार के किशोरों में कुंठा का माध्य 113.83 है, जो कि ग्रामीण संयुक्त परिवार के कुंठा का माध्य 86.83 से उच्च है।

तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो शहरी परिवार के किशोरों की चिंता व कुंठा ग्रामीण परिवार के किशोरों की चिंता व कुंठा की तुलना में उच्च पाई गई है। इससे यहा पता चलता है कि शहरी एकांकी एवं शहरी संयुक्त परिवार के किशोरों में अधिक चिंता व कुंठा पाई गई है।

2. शहरी एवं ग्रामीण व निम्न, मध्यम एवं उच्च आय वर्ग के किशोरों में चिंता तथा कुंठा के मध्य सहसम्बन्ध।

तालिका - 02 (देखे अगले पृष्ठ पर)

तालिका - 02 से स्पष्ट है कि शहरी निम्न आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा की स्वतंत्रता कोटि (df) 62 तथा 0.05 सार्थकता स्तर पर सहसम्बन्ध (r) का मान .229 है, जबकि सहसम्बन्ध गुणांक(t) का मान 2.61 है जो कि तालिका मान (table value) 2.00 से सार्थक रूप से उच्च है। अत: शून्य परिकल्पना (Ho) 'शहरी निम्न आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता एवं कुंठा के माध्यों में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं है।' निरस्त की जाती हैं। अत: स्पष्ट है कि शहरी निम्न आय वर्ग परिवार के किशोरों की चिंता एवं कुंठा में सार्थक सहसंबंध पाया गया है। सहसंबंध का मान सार्थक है।

शहरी मध्यम आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा की स्वतंत्रता कोटि (df) 98 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर सहसम्बन्ध (r) का मान .263 है, जबकि सहसम्बन्ध गुणांक(t) का मान 2.79 है जो कि तालिका मान (table value) 2.63 से सार्थक रूप से उच्च है। अत: शून्य परिकल्पना (Ho) 'शहरी मध्यम आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता एवं कुंठा के माध्यों में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं है।' निरस्त की जाती हैं। अत: स्पष्ट है कि शहरी मध्यम आय वर्ग परिवार के किशोरों की चिंता एवं कुंठा में सार्थक सहसंबंध पाया गया है। सहसंबंध का मान सार्थक है।

शहरी उच्च आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा की स्वतंत्रता कोटि (df) 134 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर सहसम्बन्ध (r) का मान .242 है, जबकि सहसम्बन्ध गुणांक(t) का मान 2.97 है जो कि तालिका मान (table value) 2.62 से सार्थक रूप से उच्च है। अत: शून्य परिकल्पना (Ho) 'शहरी उच्च आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता एवं कुंठा के माध्यों में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं है।' निरस्त की जाती हैं। अत: स्पष्ट है कि शहरी उच्च आय वर्ग परिवार के किशोरों की चिंता एवं कुंठा में सार्थक सहसंबंध पाया गया है। सहसंबंध का मान सार्थक है।

ग्रामीण निम्न आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा की स्वतंत्रता कोटि (df) 68 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर सहसम्बन्ध (r) का मान .299 है, जबकि सहसम्बन्ध गुणांक (t) का मान 2.66 है जो कि तालिका मान (table value) 2.65 से सार्थक रूप से उच्च है। अत: शून्य परिकल्पना(Ho) 'ग्रामीण निम्न आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता एवं कुंठा के माध्यों में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं है।' निरस्त की जाती हैं।

अत: स्पष्ट है कि ग्रामीण निम्न आय वर्ग परिवार के किशोरों की चिंता एवं कुंठा में सार्थक सहसंबंध पाया गया है। सहसंबंध का मान सार्थक है।

ग्रामीण मध्यम आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा की स्वतंत्रता कोटि(df) 164 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर सहसम्बन्ध (r) का मान .275 है, जबकि सहसम्बन्ध गुणांक(t) का मान 3.81 है जो कि तालिका मान (table value) 2.61 से सार्थक रूप से उच्च है। अत: शून्य परिकल्पना(Ho) 'ग्रामीण मध्यम आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता एवं कुंठा के माध्यों में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं है।' निरस्त की जाती हैं। अत: स्पष्ट है कि ग्रामीण मध्यम आय वर्ग परिवार के किशोरों की चिंता एवं कुंठा में सार्थक सहसंबंध पाया गया है। सहसंबंध का मान सार्थक है।

ग्रामीण उच्च आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा की स्वतंत्रता कोटि(df) 62 तथा 0.05 सार्थकता स्तर पर सहसम्बन्ध(r) का मान .311 है, जबकि सहसम्बन्ध गुणांक(t) का मान 2.57 है, जो कि तालिका मान (table value) 2.00 से सार्थक रूप से उच्च है। अत: शून्य परिकल्पना (Ho) 'ग्रामीण उच्च आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता एवं कुंठा के माध्यों में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं है।' निरस्त की जाती हैं। अत: स्पष्ट है कि ग्रामीण उच्च आय वर्ग परिवार के किशोरों की चिंता एवं कुंठा में सार्थक सहसंबंध पाया गया है। सहसंबंध का मान सार्थक है।

शहरी निम्न आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता का माध्य 12.09 है, जो कि ग्रामीण निम्न आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता का माध्य 11.77 से उच्च है। शहरी निम्न आय वर्ग के परिवार के किशोरों में कुंठा का माध्य 105.37 है, जो कि ग्रामीण निम्न आय वर्ग के परिवार के किशोरों में कुंठा का माध्य 87.48 से उच्च है। शहरी मध्यम आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता का माध्य 11.66 है, जो कि ग्रामीण मध्यम आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता का माध्य 12.27 से निम्न है। शहरी मध्यम आय वर्ग के परिवार के किशोरों में कुंठा का माध्य 101.24 है, जो कि ग्रामीण मध्यम आय वर्ग के परिवार के किशोरों में कुंठा का माध्य 83.50 से उच्च है। शहरी उच्च आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता का माध्य 12.32 है, जो कि ग्रामीण उच्च आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता का माध्य 11.75 से उच्च है। शहरी उच्च आय वर्ग के परिवार के किशोरों में कुंठा का माध्य 126.75 है, जो कि ग्रामीण उच्च आय वर्ग के परिवार के किशोरों में कुंठा का माध्य 64.09 से उच्च है।

तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो शहरी उच्च व निम्न आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता ग्रामीण उच्च व निम्न आय वर्ग के परिवार के किशोरों की चिंता अधिक है, जबकि ग्रामीण मध्यम आय वर्ग के परिवार के किशोरों में चिंता, शहरी मध्यम आय वर्ग के परिवार के किशोरों की चिंता से अधिक है।

निष्कर्ष – चिंता व कुंण किशोरों में आज एक विशेष समस्या बनकर उभर रही है। किशोरों में चिंता व कुंण का कारण परिवार, आय, जाति, रूचि, आत्मसम्मान एवं सामाजिक आर्थिक स्थिति जिम्मेंदार है। जब किशोरों की कोशिश लक्ष्य तक पहुँचने में बाधित हो जाती है। तो उसमें चिंता व कुंण उत्पन्न हो जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूंची :–

1. वर्निस, एड्रयू व चील्डीं जॉन एम.(2004)
2. मॅसी तथा अन्य(2009)
3. डॉ. ए.के. सिंह एवं डॉ. ए. सेनगुप्ता
4. डॉ. बी.एम.दीक्षित एवं डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव
5. आसुवेल(1954) के अनुसार

तालिका – 01 – शहरी एवं ग्रामीण, एकांकी व संयुक्त परिवार के किशोरों में चिंता तथा कुंठा के माध्य, मानक विचलन, स्वतंत्रता कोटि, सहसम्बन्ध एवं सहसम्बन्ध गुणांक

क्र.	क्षेत्र	चर युग्म	न्यादर्श	माध्य	मानक विचलन	स्वतंत्रता की कोटि	सहसम्बन्ध	सहसम्बन्ध गुणांक
01	शहरी एकांकी परिवार	चिंता	83	12.49	02.91	164	.204	2.72**
		कुंठा	83	105.62	21.68			
02	ग्रामीण एंकाकी परिवार	चिंता	60	11.58	02.53	118	.222	2.53*
		कुंठा	60	77.25	20.84			
03	शहरी संयुक्त परिवार	चिंता	67	11.62	02.49	132	.268	3.31**
		कुंठा	67	113.83	24.92			
04	ग्रामीण संयुक्त परिवार	चिंता	90	11.78	02.52	178	.249	3.55**
		कुंठा	90	86.83	23.50			

*0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक

*0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

तालिका 02 – शहरी एवं ग्रामीण व निम्न, मध्यम एवं उच्च आय वर्ग के किशोरों की चिंता तथा कुंठा के माध्य, मानक विचलन, स्वतंत्रता की कोटि, सहसम्बन्ध एवं सहसम्बन्ध गुणांक

क्र.	क्षेत्र	आय वर्ग	चर युग्म	न्यादर्श	माध्य	मानक विचलन	स्वतंत्रता की कोटि	सहसम्बन्ध	सहसम्बन्ध गुणांक
01	शहरी	निम्न आय	चिंता	32	12.09	02.68	62	.229	2.61*
			कुंठा	32	105.37	26.06			
		मध्यम आय	चिंता	50	11.66	02.60	98	.263	2.79**
			कुंठा	50	101.24	14.98			
		उच्च आय	चिंता	68	12.32	02.61	134	.242	2.97**
			कुंठा	68	126.75	16.48			
02	ग्रामीण	निम्न आय	चिंता	35	11.77	02.53	68	.299	2.66**
			कुंठा	35	87.48	21.99			
		मध्यम आय	चिंता	83	12.27	02.77	164	.275	3.81**
			कुंठा	83	83.50	30.24			
		उच्च आय	चिंता	32	11.75	02.48	62	.311	2.57**
			कुंठा	32	64.09	07.68			

**0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक *0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

****

भारतीय जनजातियों में विवाह एवं जीवन साथी प्राप्त करने के तरीके-एक अध्ययन (बैतूल जिले के विशेष संदर्भ में)

रश्मि सोनी * डॉ. मधुबाला वर्मा * *

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय जनजातियों में विवाह एवं जीवनसाथी प्राप्त करने के तरीको का अध्ययन बैतूल जिले के विशेष संदर्भ में किया गया है। जिसमें न्यादर्श के रूप में 50 आदिवासियों (40 वर्ष से अधिक आयु समूह) का चयन किया गया है। प्राप्त परिणामों के अनुसार-अध्ययन क्षेत्र की जनजातियों में विवाह की कुछ प्रथाएं जैसे-लमझना प्रथा, चिचौड़ा प्रथा, राजीवाजी प्रथा, चल विवाह, टीका विवाह , पैठू विवाह, जबरन विवाह, विधवा विवाह इत्यादि प्रचलित हैं जिनमें युवक एवं युवतियाँ अपने लिये जीवनसाथी का चुनाव करके विवाह करते हैं।

प्रस्तावना – वास्तव में जनजाति व्यक्तियों का वह समूह है जो निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करता है जिसकी एक सामान्य संस्कृति है और जो आज भी एक आधुनिक सभ्यता के प्रभावों से सापेक्षिक रूप से वंचित है। जनजातीय समाज एक सरल समाज है इसमें वे सभी विशेषताएँ पायी जाती है जो एक सरल समाज में पाई जाती है। जनजातीय समाज कम विभेदीकृत होते हैं इनमें परंपरा एवं कर्म - रूढ़िवादिता अधिक पाई जाती है तथा धर्म की प्रधानता होती है।

भारतीय जनजातियों में प्राय: सभी जनजातियों में व्यक्ति को अपनी ही जनजाति में विवाह करने की अनुमति दी जाती है। वर-वधु के चुनाव संबंधी नियम प्रत्येक समाज में पाए जाते हैं। भारतीय जनजातियों में भी बाहिर्विवाह, अन्तर्विवाह, चुनाव में प्राथमिकता आदि पर आधारित नियम वर-वधु अथवा जीवनसाथी के चुनाव को मर्यादित करते हैं। विभिन्न समाजों में सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों तथा स्थानीय आवश्यकताओं में भिन्नता होने के कारण यह नियम भी एक दूसरे से बहुत भिन्न पाए जाते हैं।

साहित्य का पुनरावलोकन-

1. **मजूमदार एवं मदन (1987)** ने अपने अध्ययन में बताया कि प्राय: सभी जनजातियों में व्यक्ति को अपनी जनजाति में विवाह करने की अनुमति दी जाती है। नये व्यक्ति और अपरिचित के प्रति डर की भावना के सर्वत्र प्रचलन के कारण ही अधिकांश भारतीय जनजातियाँ अन्तर्विवाही है।
2. **आर.एन.मुखर्जी (1990)** ने अपने अध्ययन में पाया कि अपनी सामाजिक संस्कृति तथा भाषा संबंधी विशेषताओं को बनाये रखने की इच्छा भी अन्तर्विवाह को प्रोत्साहित करने में सहायक सिद्ध होती है।

इन्होंने अपने शोध में यह भी पाया कि जनजातियों में प्राय: अपने गौत्र और टोटम समूह के अन्दर विवाह नहीं होते हैं।

उद्देश्य -

(1) भारतीय जनजातियों में भी विवाह संबंधी नियमों एवं निषेधों का अध्ययन करना।

(2) भारतीय जनजातियों में जीवनसाथी प्राप्त करने के तरीकों का अध्ययन करना।

उपकल्पना-

(1) भारतीय जनजातियों में भी सामान्य जातियों की ही तरह विवाह संबंधी नियमों का पालन किया जाता है।

(2) भारतीय जनजातियों में जीवन साथी प्राप्त करने हेतु स्वतंत्र रूप से कई तरीको अथवा विवाहो का प्रयोग होता है।

न्यादर्श – न्यादर्श के रूप में बैतूल जिले से 50 आदिवासियों का चयन देव निदर्शन विधि द्वारा किया गया है जिनकी आयु 40 वर्ष से अधिक है।

उपकरण – उपरोक्त अध्ययन हेतु उपकरण के रूप में स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

विधि – सर्वप्रथम बैतूल जिले से 50 आदिवासियों, जिनकी आयु 40 वर्ष से अधिक है का चयन दैव निदर्शन विधि द्वारा करके उनसे स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग करके कुछ प्रश्न पूछे गये एवं प्रश्नों से प्राप्त आंकड़ों का फलांकन किया गया एवं मास्टर शीट तैयार की गई व प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण प्रतिशत विधि द्वारा कर परिणाम प्राप्त किये गये एवं प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये है जो इस प्रकार हैं -

निष्कर्ष- अध्ययन क्षेत्र में निवास करने वाली दो प्रमुख जनजातियाँ गोंड एवं कोरकू हैं। इन जनजातियों में विवाह संबंधी कुछ नियम एवं निषेध हैं जिनका पालन करना इनके लिये अनिवार्य है। जैसे-इन जनजाति में अपने गौत्र एवं टोटम में विवाह करना निषेध है इसलिऐ ये जनजाति अंतर्विवाह के नियम का पालन करती है। इनमें वहिर्विवाह एंव अंतर्विवाह का प्रचलन भी है एवं ये विवाह हेतु ममेरे-फुफेरे भाई बहनों को ही उपयुक्त मानते हैं।

जीवनसाथी के चुनाव के तरीकों के अन्तर्गत इन जनजातियों में विवाह की कई प्रथाएँ जैसे - लमझना प्रथा, चिचौड़ा प्रथा, राजीवाजी प्रथा, चलविवाह, टीका विवाह, पैठू विवाह, विधवा जबरन विवाह, विवाह प्रथा इत्यादि प्रचलित हैं जिनके द्वारा युवक एवं युवतियाँ अपने जीवनसाथी का चुनाव करते हैं एवं इन जनजातियों में युवतियों को अपनी पसंद एवं मर्जी से जीवनसाथी चुनने एवं विवाह करने का अधिकार होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. शर्मा, श्री कमल (1998), म.प्र. का जनजातीय समाज, एक व्याख्या, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल।
2. तिवारी, डॉ. शिवकुमार, म.प्र. की जनजातियाँ, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर।
3. पाटिल, अशोक (1993), कोरकू जनजीवन, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर।
4. शर्मा, डॉ.श्रीनाथ, जनजातीय समाजशास्त्र, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल।

* शोधार्थी (गृहविज्ञान) बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत
** प्राध्यापक (गृहविज्ञान) शासकीय गीतान्जली कन्या पी.जी महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

Role Of Tourism Industry In Employmentgrowth Of India

Dr. Devendra Singh Rathore *

Abstract - **Research Methodology -** Research methodology is partly descriptive, partly exploratory and partly casual .For this study data and information has been collected with the help of Books, Magazines,Newspapers, Research Articles, Research Journals, E-Journals, UNWTO Report, Report of Ministry of Tourism, Report of World Travel and Tourism Council.

What is Tourism? - Tourism is the travel for recreational, leisure, family or business purposes, usually of a limited duration. Tourism is commonly associated with trans-national travel, but may also refer to travel to another location within the same country. The World Tourism Organization defines tourists as people **"Traveling and Staying**", Tourism is a social, cultural and economic phenomenon which entails the movement of people to countries or places outside their usual environment for personal or business/professional purposes. These people are called visitors (which may be either tourists or excursionists; residents or non-residents) and tourism has to do with their activities, some of which involve tourism expenditure. Tourism is one of the largest industries in the world today. It generates employment at all skill levels. Although growing steadily, there is a huge unexploited potential for further growth in India. As tourism is a composite sector, estimating employment or output is a complicated process.

The **United Nation World Tourism Organization** (UNWTO) is the United Nations agency responsible for the promotion of sustainable and universally accessible tourism. Tourism is for all the countries and regions around the world. **27 September**, celebrated as World Tourism day every year, is a global observance to highlight tourism's social, cultural, political and economic value.27 September World tourism day 2014 was celebrated under the theme **Tourism and Community Development** - focusing on the ability of tourism to empower people and provide them with skills to achieve change in their local communities.

Key words - UNWTO:United Nation World Tourism Organization, TSA -Tourism satellite account, GDP, TT:Travel and Tourism, ILO

Introduction - TT (Traveling & Tourism) has been an integral part of Indian Culture & Tradition. Tourism Industry is the most vibrant tertiary activity and a multibillion industry in India. The potential and performance of India's tourism industry needs to gauge in terms of its socio- economic magnitudes. Tourism has emerged as one of the largest industries both in terms of Gross Domestic Product (GDP) and employment in the world today. It generates exports, boosting taxes and stimulating capital investment. Currently, it employs more than 260 million people (100 million of whom work directlyin the industry) or 8.7% of total employment and generated over 9.1% of global GDP in 2013.India has a large potential for foreign and domestic tourism that has been steadily increasing for the past couple of decades. The foreign and domestic tourist arrival has increased from about 1.98 million and 36.67 million in 1994 to about 6.48 million and 790.2 million in 2013 respectively. The average annual growth rate of Foreign Tourist Arrivals (FTA) and Domestic Tourist Arrivals (DTA) were about 6.63% and 12.83% during this period respectively. Rank in foreign tourist arrivals and percentage share are steadily changing in respect of World for India. Total foreign exchange earnings from tourism increased from about Rs 4,318 cr in 1991 (World rank = 37 in 2002) to about Rs 96,254 cr in 2013 (World rank = 15 in 2013). The average annual growth rate was about 15.06% during this period. Domestic tourism earning was about 31999.47 cr in 2004 and 114864.23 cr in 2014. Tourism is a composite sector, generating income in a large number of activities as sectors and sub sectors like, hotel and other accommodation units, travel agents andTour operators, transport services, tourist resorts and complexes, shopping facilities including sales outlets for curious, handicrafts, souvenirs, etc. activitiesprovide goods and services to both the local population and the tourists. There is a problem of apportionment of output between non tourism components and further, within tourism components (domestic and foreign tourism).

India's tourism industry is experiencing a strong period of growth, driven by the burgeoning Indian middle class, growth in high spending foreign tourists, and coordinated government campaigns to promote **'Incredible India'** and mega star Mr. Amitabh bachchan : "**Kuch din to gujaro Gujrat me".**

*Asst. Prof. (Commerce) Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.) INDIA

Recently Indian government provided E **visa for 43 nations on 8 Indian airports**. This is big boost for Tourism. **The Ministry of Tourism is the nodal agency for the formulation of national policies and program for the co-ordination of activities of various Central Government Agencies, State Governments/UTs and the Private Sector for the development and promotion of tourism in the country.**

Tourism in India - All types of tourism like Medical, Cultural, Eco, Historical, Nature, Adventure Sports , Heritage Tourism etc. Tourism in India has registered phenomenal growth in the last decade ever since the Indian government decided to boost revenues from the tourism sector by projecting India as the ultimate tourist spot. The reason why India has been doing well in all types of tourism is that India has always been known for its hospitality uniqueness, and charm – attributes that have been attracting foreign travelers to India in hordes. The Indian government, in order to boost tourism of various kinds in India, has set up the Ministry of Tourism and Culture, which recently launched a campaign called **'Incredible India!'** in order to encourage different types of tourism in India. The result was that in 2010, foreign tourists spent around US$ 248.4 billion during their trips to India. Being a country with tremendous diversity, India has a lot to offer in terms of tourism and related activities. The diversity that India is famous for, ensures that there is something to do for all tourists in India, no matter what their interests.

Adventurous Tourism - As a kind of tourism in India, adventure tourism has recently grown in India. This involves exploration of remote areas and exotic locales and engaging in various activities. For adventure tourism in India, tourists prefer to go for trekking to places like Laddakh, Sikkim, and Himalaya. Himachal Pradesh and Jammu and Kashmir are popular for the skiing facilities they offer. Whitewater rafting is also catching on in India and tourists flock to places such as Uttaranchal, Assam, and Arunachal Pradesh for this adrenalin-packed activity. India is an incredible destination for adventures. The snowcapped Himalayas, erratic streams, safaris all add to its natural glory. Water sports, elephant safari, Loin safari mountaineering, skiing, gliding, trekking, river rafting are breath-taking opportunities for adventurous people.

Wildlife / Eco Tourism - Wild life Tourism (also known as Eco Tourism) relates to nature and its attractiveness so that the visitors experience it in its pristine settings. Eco tourism has grown recently. Eco tourism entails the sustainable preservation of a naturally endowed area or region that have tourist value. This is becoming more and more significant for the ecological development of all regions that have tourist value. Eco Tourism attracts domestic as well as international tourists towards the magnificent ancient cities, hill stations, remote villages, desert areas and wildlife centuries and parks in India. India has a rich forest cover which has some beautiful and exotic species of wildlife – some of which that are even endangered and very rare. This has boosted wildlife tourism in India. The places where a foreign tourist can go for wildlife tourism in India are the Bharatpur Sariska Wildlife Sanctuary, Sundar van, Keoladeo Ghana National Park, Corbett National Park, Gir Forest and Kajiranga national park.

Medical Tourism - Tourists from all over the world have been thronging India to avail themselves of cost-effective but superior quality healthcare in terms of surgical procedures and general medical attention. There are several medical institutes in the country that cater to foreign patients and impart top-quality healthcare at a fraction of what it would have cost in developed nations such as USA and UK. It is expected that medical tourism in India will hold a value around US$ 2 billion by 2012. The city of Chennai (Tamilnadu) attracts around 45% of medical tourists from foreign countries .**India is among world top 5 medical tourism spot** and this industry is expected to grow to 36060 crore rupee by the 2018 back of skilled doctors, infrastructure and low cost .207000 foreigner visited India as medical tourist in 2013. India is aiming to promote its allopathic treatment as a tourist attraction. Trends Tourism to provide world-class treatment at low price and is gaining worldwide acceptance. The vast array of health care services includes Ayurveda, Yoga, Naturopathy, Meditation etc.

Pilgrimage Tourism - India is famous for its temples and that is the reason that among the different kinds of tourism in India, pilgrimage tourism is increasing most rapidly. The various places for tourists to visit in India for pilgrimage are Vaishno Devi, Golden temple, Char Dham, 12 Jyotirlinga , Mathura and Vrindavan. Buddhism Pilgrims are coming from various country like China, Japan, Srilanka ,Bhutan etc. Muslim Pilgrims coming for Ajmer Sharif, Haji ali, Jaora, Fatehpur Sikari.

Cultural Tourism - India is known for its rich cultural heritage and an element of mysticism, which is why tourists come to India to experience it for themselves. The various fairs and festivals that tourists can visit in India are the Dashehara in Kullu and Maisur, Navratri and Kite festival in Gujarat, Ceiling race in keral. ,Pushkar fair, Taj Mahotsav, Suraj Kund mela NCR, ShilpGram Udaipur, Bigfoot Goa. These types of cultural festivals attract and invite people to join festival.

Sports Tourism - There are recently many events that have taken place, which are a big catalyst for prompting tourism in India like T20 IPL Cricket, Champions league, Indian kabbdi league, Indian Football league, Indian Tennis tournament, River rafting will continue helping in India and it will prosper to great heights and standards in near future. The types of tourism in India have grown and this has boosted the Indian economy. For its continuous growth, efforts must be taken by the Indian government, so that the tourism sector can contribute more substantially to the nation's GDP.

Spiritual Tourism - India has a rich heritage of cultures and religions. There is so much mental pressure and disturbance all over the world that people are looking forward to find solace. Spiritual Tourism includes all the religious places. There is a sincere effort to bring better understanding among various communities.

MICE Tourism - MICE (Meetings, Incentives, Conferences

and Exhibitions) are associated with business travelers. MICE Tourism converts the annual business meetings and conferences into a glamorous and enjoyable event for the delegates and attendants.

Employment Generation in India through Tourism - Tourism is multi-disciplinary sector and is interlinked with several different industries and service sector .it is an activity which affects societies in different ways and has certain impacts on their socio, economic and cultural development. In India, tourism still has vast potential for Employment Generation considering the fact that India is full of ancient sculptures and buildings with Himachal Pradesh, Uttarakhand ,Sikkim ,Rajasthan Kashmir, East India , South India and Gujarat adding much advantage to this industry in India. So, Central and State government should provide new schemes and resources to exploit this sector and come out with solutions to all problems faced by tourism sector in India for betterment of employment opportunities in India. Tourism can be seen promising in regards to Employment Generation in India. While tourism cannot be ignored in terms of what people give for India, Tourism is seen as a very important areas for developing countries like India to promote their growth. In this section we will discuss about problems & schemes in Tourism Employment Generation in Indian Tourism is now the largest industry across the world and its impact goes beyond employment in certain sectors to earnings of the host country through hotels, restaurants and airlines and other sectors. Tourism provides not only Employment Generation in India only in the above mentioned sectors but takes its effect on various related sectors as well including sales outlet, tour agencies and others.The travel and tourism industry is one of the largest and most dynamic industries in today's Indian and Global economy. It is expected to generate about 9 per cent of total GDP and provide more than 235 million jobs in 2015, representing 8 per cent of global employment. Last November, over 150 government employer and worker delegates from more than 50 countries, meeting at the ILO's Global Dialogue Forum on New Developments and Challenges in the Hospitality and Tourism Sector, discussed new developments and challenges in the sector.

Compared to other sectors of the global economy, the industry is one of the fastest growing, accounting for more than one-third of the total global services trade? The ILO Forum addressed the high intensity of labour within the industry, making it a significant source of employment and placing it among the world's top creators of jobs that require varying degrees of skills and allow for quick entry into the workforce by youth, women and migrant workers. According to an ILO report prepared for the Forum, international tourism was affected by the global economic and social crisis but is projected to grow significantly over the coming decade. The United Nations World Tourism Organization (UNWTO) is expecting the sector's global economy to provide **296 million jobs by 2019**.The tourism sector suffered a decline beginning in the second half of 2011 and intensifying in 2012 after several consecutive years of growth. A sharp reduction in tourist flows, length of stay and spending, as well as increased restrictions on business travel expenses, led to a significant contraction of economic activity in the sector worldwide. Among the most affected during the crisis were international tourist arrivals, decreasing by 4 per cent in 2011, while international tourism revenues were projected to go down 6 per cent by the end of 2011. The regions hit hardest by the decline in worldwide international tourism were the Middle East (–4.9 %), Europe (–5.7 %), and the Americas (– 4.6 %). **Only Africa showed constant growth (+2.9 %)**, based on a comparatively low travel volume. Despite the crisis, global employment in the tourism industry increased by about 1 per cent between 2011 and 2012, the report says. But there were significant regional differences with respect to the impact of the crisis on employment in hotels and restaurants. While the Americas suffered a 1.7 per cent decrease in employment, employment in Asia and the Pacific region remained resilient, gaining 4.6 %.

Tourism an Employment Generator - Tourism is not only a growth engine but also an export growth engine and employment generator. Today, the sector has capacity to create large-scale employment both direct and indirect, for diverse sections in society, from the most specialized to unskilled workforce. It provides 6-7 per cent of the world's total jobs directly and millions more indirectly through the multiplier effect as per the UN's World Tourism Organization. Since tourism does not fall under a single heading in India's National Accounts Statistics, its contribution has to be estimated. Its contribution to GDP and employment in 2007-08 was 5.92 per cent respectively as per TSA Data. In India, the tourism sector has witnessed significant growth in recent years. During the period 2006 to 2011, the CAGRs of foreign tourist arrivals (FTA) and foreign exchange earnings (FEE) from tourism (in rupee terms) were 7.2 per cent and 14.7 per cent respectively. FTAs in India during 2010 were 5.78 million compared to 5.17 million during 2009, posting a growth of 11.8 per cent, much higher than the growth of 6.5 per cent for the world in 2010. FEEs from tourism in rupee terms during 2010 were Rs. 64,889 crore compared to Rs. 54,960 crore during 2009 with a growth rate of 18.1 per cent. Despite the slowdown and recessionary trends in the economies of Europe and America, FTAs during 2011 were 6.29 million with a growth of 8.9 per cent over 2010 and FEEs in 2011 were Rs. 77,591 crore with a growth of 19.6 percent. In tourism, the number of Indian nationals' departures from India during 2010 was 12.99 million with a growth of 17.4 per cent for the year. Domestic tourism has also emerged as an important contributor to the sector providing much needed resilience. Domestic tourist visits during 2010 are estimated at 740.2 million, with a growth of 10.7 percent.

Hotels and restaurants is an important component of the tourism sector. As on 31 December 2011, there were 2,895 classified hotel having a capacity of 129606 rooms in the country. Availability of good quality and affordable hotel rooms play an important role in boosting the growth of tourism

in the country. The share of the hotel and restaurant sector in overall economy increased from 1.46 per cent in 2004-05 to 1.53 per cent in 2008-09 and then decreased to 1.46 per cent in 2010-11. However, if the contribution of this sector only in the service sector is considered, its share decreased from 2.75 per cent in 2004-05 to 2.64 per cent in 2010-11 as other service sectors grew faster than this sector. It CAGR was 8.44 per cent during 2009-2010 to 2013-14 and the growth rate in 2013-14 was 7.7 per cent. Health tourism, the new entrant in the sector is new area where India has good potential.

Career Opportunities - In India, tourism still has vast potential for Employment Generation in India considering the fact that India is full of ancient sculptures and buildings with Kashmir adding much advantage to this industry in India. So, Central and state government should provide new schemes and Sources to exploit this sector and come out with solutions to all problems faced by tourism sector in India for betterment of employment opportunities in India.Graduates of the Tourism and Recreation Management program may find employment in winter and summer resorts, hotels, attractions, tour operations, guest ranches or parks, conference centers, or tourism/recreation-related associations/organizations. The Kootenay region of BC in particular, is very quickly developing into a Mecca of year-round tourism and recreation experiences which provide great opportunities for Tourism and Recreation Management graduates. Students can also begin career planning if their goal is to own their own business.

Employment Opportunities - Some of the prospective areas of future employment in the tourism field may include: (click links below for more info)

Heritage Interpreter	Tour Consultant	Food & Beverage Manager
Spa Director	Tour Writer/Photographer	Tourism Researcher
Tour Operator	Event Organizer	Retail Supervisor
		Accommodation Service Manager

Some of the prospective areas of future employment or private enterprise in the recreation field may include:

Recreation/Activity	Director (Cruise Ships)
Recreation Facility Programmer	Aquatic Facility Programmer
Public Recreation Service	Special Needs Programmer
Outdoor camps/school	College/ University Recreation Departments

Tourism with its wide range of constituent sub sectors is now world's largest industry. The dramatic growth of tourism over the last twenty five years is one of the most remarkable economic and social phenomena of the period. Tourism activity has long lasting socio-economic impacts on host economy and community. The employment impact of tourism goes beyond **employment in sectors in which tourists directly spend their money, such as hotels, restaurants and Transportation.** The establishments which receive tourists also buy goods and services from other sectors that generate employment in those sectors through multiplier effect. In India, there has been 320.1 million domestic tourist visits in the year 2005 that increased to 434.8 million in the year 2010 and 573.3 million in 2013. In the year 2001, 2.75 million tourists visited the country. Conservative estimates of tourism related employment (base year 2005) by our professionals reveal that **tourism generates about 7.5 million full time job equivalents in India.** It translates to about 11 million actual jobs. Our professionals discussed with various stakeholders in the local tourism markets. Such discussions brought out various constraints faced by tourism industry at various tourist destinations in the country. Major constraints are poor quality of infrastructure, malpractices by operators, manpower not being qualified resulting in poor quality of service, absence of a diversified value bundle as a product offer to the tourists, proper marketing and promotion, air connectivity and concerns related with carrying capacity and environment. The emerged picture of tourism potential and related employment coupled with the identification of gaps in planning, provision, positioning and marketing of tourism point towards the requisite interventions at macro as well as micro level. Macro interventions are related with macro policy framework in which tourism industry operates in the country. On the other hand, micro interventions are related with spatial planning, efficient provision and marketing of tourist destinations.

Above observations coupled with timely and efficient implementation of programs and plans outlined in the tourism policies of respective States can catalyze the growth of tourism industry in the country resulting in creation of more tourism related jobs. Besides above, some additional measures are required to improve the air and surface connectivity of all these destinations. Further, the issues related with environment and fragility of eco-systems needs special attention. Special attention is also required for increasing the employment of women in the tourism industry. Employers should set up programs and schemes encouraging women to move into non-traditional occupations, invest in women's training, appoint them in managerial positions, and re-appoint them after years of diminished involvement due to family responsibilities. To sum up, Indian tourism has vast potential for generating employment and earning large sums of foreign exchange besides giving a fillip to the country's overall economic and social development. Much has been achieved by way of increasing air seat capacity, increasing trains and railway connectivity to important tourist destinations, four-lining of roads connecting important tourist centers and increasing availability of accommodation by adding heritage hotels to the hotel industry and encouraging paying guest accommodations. But much more remains to be done. Since tourism is a multi-dimensional activity, and basically a service industry, it would be necessary that all wings of the Central and State governments, private sector and voluntary organizations become active partners in the endeavor to attain sustainable growth in tourism if India is to become a world player in the industry. As per provisional estimates, contribution of tourism to total employment (direct and indirect) for the years 2010-11, 2011-12 , 2012-13 and 2013-14 was 10.78%, 11.49%

, 12.36% and 13.76% respectively. During the 10th and 11th Five Year Plans, the contribution of tourism to total employment (both direct and indirect) progressed from 8.27% to 11.49% and the Foreign Exchange earnings for the corresponding period progressed from Rs.20729 crore to Rs.94487 crore An additional employment of 24.5 million (direct and Indirect) is targeted to be created during the years 2010 to 2016. Under the existing programme of the Ministry of Tourism, titled **Hunar Se Rozgar Tak,** training courses are conducted to create employable skills amongst youth who are minimum eighth pass and in the age group of 18-28 years. The programme is being implemented by a number of organizations including the Institutes of Hotel Management, Food Craft Institutes, State Tourism Development Corporations and Classified Hotels. Presently, this programme covers four hospitality trades, namely food production, food & beverage service, bakery and housekeeping, and a few other tourism specific areas. In June 2014, the Ministry of Tourism has also launched a 6-month programme of training exclusively for the HSRT pass-outs in hospitality trades to give them vertical skill mobility. In September, 2014, the Ministry launched, as part of Hunar Se Rozgar Tak, a programme of training to bring up event facilitators Recently Prime Minister Mr. Narendra Modi has said that the government is committed to some part of country turning into a tourism hub. Launching the World Tourism Day celebrations Mr. Modi said that the government was giving priority to tourism development as tourism and service sectors have the potential to create more number of jobs than any other. He said for **an investment of Rs 10 lakh the industry creates 18 jobs and agriculture 45 jobs but Tourism generates 75 jobs**. Transformation of the Employment and economy, tourism is the right vehicle.

References :-

1. Times life
2. Hindustan Times
3. Times of India
4. Indian Ministry of Tourism
5. Wikipedia
6. Web service
7. Face book website
8. Tour & travel in India
9. Projection of Tourism in India
10. Indian Tourism Industry
11. Economic Survey 2011-12
12. UNWTO website

10. Statistics.unwto.org
11. http://business.mapsofindia.com

****

Impact of Work Engagement on Job satisfaction of School Teachers in Udaipur city

Dr. Harvinder Soni * Tanushree Bhatnagar **

Abstract - The purpose of this study is to determine the impact of work engagement on job satisfaction of school teachers in Udaipur city. Work Engagement is a critical concept with having lots of importance in teacher's life. Work Engagement indicates a proper balance between work and personal life which also ensure organizational productivity and job satisfaction. The method of this study is descriptive research and the survey was conducted among 100 school teachers in Udaipur city. The data collection instrument is a questionnaire and the reliability is based on Pearson's correlation coefficient. In this study, the impact of Work Engagement.
on job satisfaction has been studied based on the demographic variables of gender, age and work experience of teachers.
Keywords - Job Satisfaction, School Teachers, Work Engagement.

Introduction - Work Engagement as the word describes persons dedication towards an organization in particular, emphases every aspect of a person's work which includes working condition, job security, pay and allowances, recognition, appreciation, development, interpersonal relation, etc. and its effect on his life outside work. Therefore, it can be concluded that Work Engagement is concerned with improving life not only at work but also life outside work.

As blood circulation is necessary for the body, Job satisfaction is also required for healthy mind and soul. Working and living conditions are changing on the daily basis generally all over the world; work efficiency is getting poor. Physically and mentally heavy workloads, inadequate working methods, working techniques and tools and equipment cause not only occupational dissatisfaction but low productivity also.

An institution is made of people who possess skills, ability, aptitudes that create competitive advantage for it. Various functions of an institute is planned, executed and controlled by human resource. The management of human resource plays a key role in opening up new opportunities for promoting the growth of both individual and institutional. Through 'Work Engagement' the institute works in the same direction. Now-a-days, jobs are so demanding that it imbalance work life due to job pressure and conflicting interests. In order to attract and retain employees, an organization has to develop a high quality of work engagement. Organizations by adopting work engagement programmes ensure to create excellent work condition and job for its employees. Hence, work engagement seeks to create such a work environment where the employees work co-operatively and make positive contribution in achieving organizational objectives.

Teacher's role is pivotal in providing education, creating knowledge, facilitate technological advancement and enriching the national culture. Education empowers human beings by developing their skills, abilities, rationale that provides competitive edge to them. It gives strength to the person. People get knowledge through education, evaluate the phenomenon and generate as well as share the ideas in the society. In order to attain these goals the teacher should not only be a committed and devoted but also competent and creative and for that matter they should be provided a better work life. If the Work Engagement of teachers is below average then its resultant impact will be on teaching and research work and these are the basis for the progress of any society. Work Engagement has a significant association in teaching environment. Factors such as salary and wages biasness between same qualified employees, advancement opportunity for growth is low, salary and job security issues are badly affecting the relationship with administration and academicians, dissatisfaction regarding leave flexibility etc. are responsible for low Work Engagement of respondents. A study revealed that there is a positive relationship between job satisfaction and Work Engagement dimensions. Work Engagement significantly contributes towards increasing the job satisfaction or dissatisfaction depending upon the employee's negative or positive perception of Work Engagement dimensions. Faculty members indicated positive job satisfaction and would continue to stay in the same job only if they have opportunity for growth and development along with organizational prestige, financial factors.

The study was proposed to find out the impact of work engagement on Job satisfaction of teachers in Udaipur City. The study considered various factors such as work-life

* Professor (Management) Pacific College, PAHER University (Raj.) INDIA
** Research Scholar (Management) Pacific College, PAHER University (Raj.) INDIA

balance, recognition, role clarity, salary, working hours, promotion and development, working conditions, security, advancement, management employee relation etc. which helps in finding out the level of satisfaction in teaching profession in Udaipur city. The Locale of Study will be schools of Udaipur City. The Schools chosen will be Primary, Secondary and Higher secondary schools lying under this City.

Literature view - Scholars and Researchers have different opinions about the Work Engagement, Based on these analysis numerical articles have been written on it. In case of Udaipur city the research article on work engagement is very few. In this study I have tried my best to determine the impacts of Work Engagement on job satisfaction of school teachers in Udaipur city.

Organizations need energetic and dedicated employees: people who are engaged with their work. These organizations expect proactively, initiative and responsibility for personal development from their employees.[1]

According to Arnold B. Bakker, Research has revealed that engaged employees are highly energetic, self-efficacious individuals who exercise influence over events that affect their lives (Bakker, 2009).[2] Because of their positive attitude and activity level, engaged employees create their own positive feedback, in terms of appreciation, recognition, and success. Although engaged employees do feel tired after a long day of hard work, they describe their tiredness as a rather pleasant state because it is associated with positive accomplishments. Finally, engaged employees enjoy other things outside work. Unlike workaholics, engaged employees do not work hard because of a strong and irresistible inner drive, but because for them working is fun (Gorgievski, Bakker & Schaufeli, 2010). [3]

In today's marketplace, attracting and retaining good employees is a top priority in both large and small organizations (Ilagan & Javier, 2014). Therefore, appreciation of major accomplishment leads of the employees is necessary to build a strong commitment to do more contribution to the achievement of the university's vision and mission. Through proper rewards and recognition system, people may enjoy a life with honor and dignity that transcribes to the image and reputation of the institution. [4]

The definition of work engagement emphasizing vigor, dedication, and absorption shows that it primarily refers to how employees feel about their work *while* they are conducting it. This is particularly evident for the absorption dimension of engagement. Although work engagement and job satisfaction are overlapping motivational constructs (e.g., Steele & Fullagar, 2009), a difference in our conceptualization is that job satisfaction refers to how employees feel *about* their job in general, whereas work engagement refers more particularly to how they feel *when* they are *conducting* the work. Despite this difference we conceptualize work engagement and job satisfaction as overlapping dimensions of work-related motivation. [5]

In the research literature, job satisfaction is regarded as the positive or negative evaluative judgments people make about their jobs (Weiss, 2002) [6]. For instance, Locke (1976) defined job satisfaction as a pleasurable or positive emotional state resulting from the appraisal of one's job. In accordance with these definitions, we conceptualize teacher job satisfaction as teachers' overall affective reactions to their work or to their teaching role (see Skaalvik and Skaalvik, 2010 and Zembylas and Papanastasiou, 2004). [7]

Work Engagement provides opportunity for growth and development by facilitating training to the employees which consequently increases job satisfaction. Work Engagement is concerned with creating work environment which is conducive and congenial. There is a significant relation between job satisfaction, advancement, and team performance even in the academic sector. High Work Engagement is required for the growth of both the employees and the institutions.

Most of the research work carried out lack the context in a particular City. Udaipur City of India is very much different from other big cities of the world; the factors such as Work Engagement, job satisfaction operate in our domestic fields of work are highly different than that of the world.

Sometimes previously Indian context has been taken into account but there has not been thorough investigation. Adding to that no solutions was provided to overcome the concept in Udaipur City.

In Udaipur a great amount of people are working in schools as teachers and the number is increasing day by day All of these interrelated with the job satisfaction and therefore Work Engagement. So having a proper balance in these areas is also important.

Research objectives - The study is a descriptive research aimed at impacts of Work Engagement on job satisfaction of teachers in Udaipur city. The study was to analyze various sectors. The study provided solutions and a path to clearly understand the factors leading to dissatisfaction among teachers. The study has the following objectives:

1.1 To assess the impact of Work Engagement on Job satisfaction level school teachers in Udaipur city.

1.2 To give suggestions for the enhancement of Work Engagement in job satisfaction level of school teachers in Udaipur city.

III. research methodology

Hypotheses -

i) $\mathbf{H_{01}}$: There is no significant impact of Work Engagement on job satisfaction of schools teachers in Udaipur City.

ii) $\mathbf{H_{02}}$: There is no significant difference in the job satisfaction level of schools teachers in Udaipur City.

Methodology - The sample of the study consisted of the teachers working in govt. and private schools restricted to Udaipur City in the State of Rajasthan, India. A sample of 100 teachers was taken into consideration. The sample does not include all the govt. and private school teachers from all over Udaipur. Convenient sampling was used for the study.. In this study the instrument of data collection was a

questionnaire with A five-point **Likert-type scale** ranging from "Highly dissatisfied" (value of 1) to "Highly satisfied" (value of 5) was used to measure quality of work life.

Figures and Tables

I. Analysis – (Quality of Work Life and Job Satisfaction) Table 1.1: Distribution - Gender

Gender	N	%
Male	24	24.0
Female	76	76.0
Total	**100**	**100.0**

Table 1.1 indicates the gender distribution of teachers. Out of which the sample consists of 24% of Male teachers and 76% consists of Female teachers.

Table 1.2: Distribution - Age

Age	N	%
Up to 35 yrs	25	25.0
35 - 45 yrs	49	49.0
45 - 55 yrs	14	14.0
Above 55 yrs	11	11.0
No Response	1	1.0
Total	**100**	**100.0**

Table 1.2 indicates the age distribution of teachers. Out of which the sample consists of 25% of teachers aging from 0-35 years, 49% of teachers are of 35-45 years of age, 14% of teachers are from 45-55 years of age and only 11% of teachers are above 55years of age. There was 1% of no response from teachers about their age was also indicated.

II. Work ENGAGEMENT

Table 1.3: Satisfaction level of Work Engagement

Satisfaction Level	N	%
Moderate	11	11.00
High	78	78.00
Very High	11	11.00
Total	**100**	**100.00**

Table 1.3 indicates the Quality of work life satisfaction level of teachers. Among 100 no one was fond to be dissatisfied with QWL in schools. Only 11% were moderately satisfied and 78% were satisfied. 11% were fond highly satisfied with QWL present in their school.

III. Job Satisfaction

Table 1.4: Satisfaction Level in Job

Satisfaction Level	N	%
Moderate	6	6.00
High	83	83.00
Very High	11	11.00
Total	**100**	**100.00**

Table 1.4 indicates the level of job satisfaction of teachers. As far as job satisfaction is consider 6% were moderately satisfied from their job. 83% were considered to be satisfied and only 11% were highly satisfied in the job.

IV. Work ENGAGEMENT and Job Satisfaction

Coefficient of Correlation (r) = 0.549**

N	r	Result
100	0.549	P < 0.01

Conclusion - Results show that there is a relationship between Work Engagement and Job satisfaction. Finally the relationship between Job satisfaction and Work Engagement is tested using Pearson's coefficient of correlation. The value of coefficient of correlation (r) is 0.549 which is highly significant at 1% level of significance. This shows that Job satisfaction and Work Engagement co-varied. In other words we can say that if there is good level of Work Engagement in the organization, people would be highly satisfied with their jobs.

Suggestion - Further researches can be undertaken. Same study can be done in case of college teachers'. Comparative analysis can be made between school and college teachers. A study on the level of satisfaction among government school teachers and private school teachers can further be undertaken.

References :-

1. Bakker, A.B., & Leiter, M.P. (Eds.) (july ,2010). Work engagement: A handbook of essential theory and research. New York: Psychology Press
2. Bakker, A.B., Albrecht, S., & Leiter, M.P. (2011 - in press). Work engagement: Further reflections on the state of play. European Journal of Work and Organizational Psychology.
3. Schaufeli & Bakker, 2010; Schaufeli, Salanova, González-Romá, & Bakker, 2002, p. 74).
4. Ilagan, J. L. T. and Javier, F. V. (2014).Supervision and other Determinants of Employee Morale: The Case of Banco De Oro Branches in Batangas City and Bauan,Philippines, Asia Pacific Journal of Multidisciplinary Research, 2(5), 138-149.
5. J.P. Steele, C.J. Fullagar, Facilitators and outcomes of student engagement in a college setting, Journal of Psychology, 143 (2009), pp. 5–27
6. H.M. Weiss, Deconstructing job satisfaction: Separating evaluations, beliefs and affective experiences,Human Resource Management Review, 12 (2002), pp. 173–194
7. M. Zembylas, E. Papanastasiou, Job satisfaction among school teachers in Cyprus, Journal of Educational Administration, 42 (2004), pp. 357–374
8. International Journal of Educational Research,Volume 62, 2013, Pages 199–209
9. International Journal of Multidisciplinary Academic Research Vol. 2, No. 4, 2014 ISSN 2309-32
10. Kalleberg, A.L. "Work values and job rewards—Theory of job satisfaction". American Sociological Review 42: (1977). 124–143.
11. Sandhya Mehta "Job Satisfaction Among Teachers" : The IUP Journal of Organizational Behavior, Vol. XI, No. 2, April 2012., pp. 54-66,
12. Karen S. Myers Giacometti; "Factors Affecting Job Satisfaction and Retention of Beginning Teachers"; Virginia Polytechnic Institute; November 8, 2005
13. Helen Fraser, Janet Draper & Warwick Taylor "The Quality of Teachers' Professional Lives: Teachers and Job Satisfaction" Publishing models and article dates explained(29 Mar 2010).
14. Kothari C.R-. "Research Methodology: Methods and Technique", New Age International (P) Ltd., Publishers. (2006)

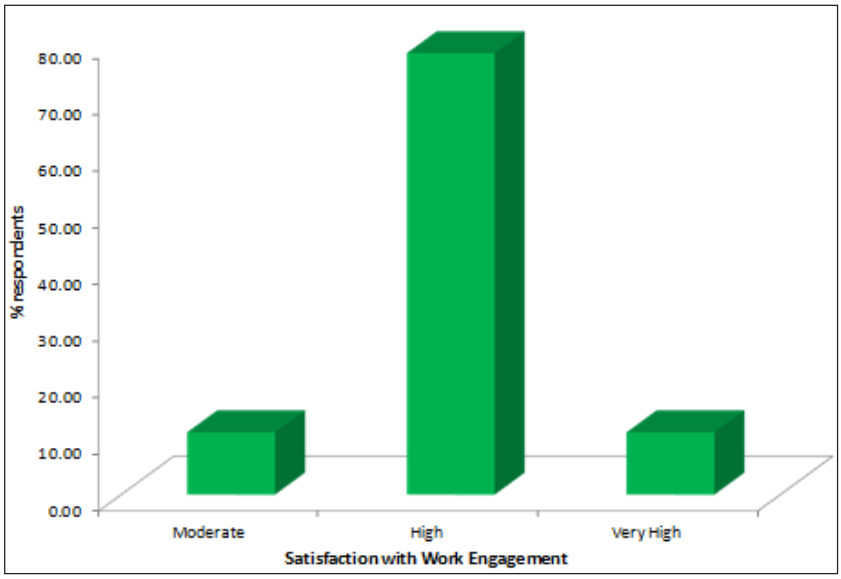

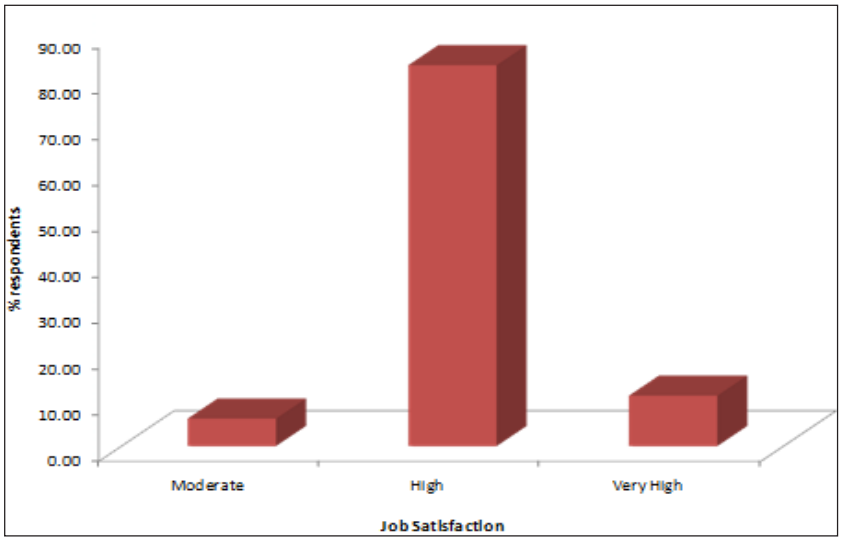

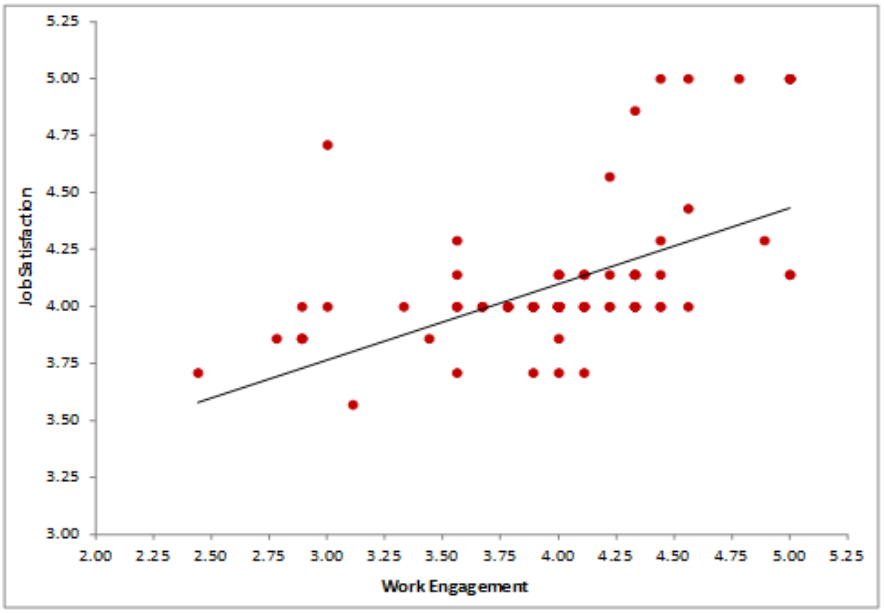

It indicates the relationship between Job satisfaction and Work Engagement. The value of coefficient of correlation (r) is 0.549 which is highly significant

Radio and Its Socio Economic Impact on Society

Dr. R.S. Waghela * Pankaj Kushwah **

Abstract - Present age is the age of technology. There have been exceptional advancements in technology and all those advancements have affected and influenced the lives of many people. There is hardly any field which has remained unaffected of technology. Communication and entertainment is one such field which has been affected by technology and is continuously getting affected. The very first medium of both communication as well as the entertainment was the radio. Invention of radio has exceptionally changed the lives of many people all over the world. This study highlights the impact of introduction of radio in the subcontinent. There is a brief account of the changes and effects that radio has imparted on the lives of common men of society and also the paper analyses the facts that how the radio has gained popularity.

Introduction - During the slavery of mother India, the country got a voice. This was the voice of unity. It was radio. First radio station was established in India in the year 1924 in Madras followed by Bombay, Calcutta, Jaipur etc. This was a medium which was the source of entertainment as well as communication at that time. The broadcasting corporation was renamed as All India Radio in the year 1936. Since then Radio has unexpectedly changed the lives of many. Again a change occurred in the field of radio when FM radio introduced. The decade of 90s was the period of development of both AM and FM radio. Radio is the most popular choice of entertainment for common men even today. Presently AIR is one of the largest radio networks in the world.

History of Radio in India - The first commercial radio station was established in Pittsburgh in the year 1920. In India radio broadcast started in the year 1923-24 from Madras followed by radio stations at Bombay, Calcutta,Jaipur. The responsibility of broadcasting was given to a private company named Indian Broadcasting Company but later it became Indian state Broadcasting Corporation. The corporation was given a new name All India Radio in the year 1936 by British. It was the time of British rule in India and at that time radio attained a great popularity because it was the only source of information and say entertainment at that time. Radio was being used for revolutionary activities and thus it was banned by the English but soon the ban was removed. After independence AIR started working under the Ministry of Information and Broadcasting. In the year 1956 AIR renamed to Akashvani. Till independence there were about 6 radio stations. AIR started a commercial radio service named Vividh Bharti. Which was a complete combo of information and entertainment plus it generated revenues from advertisements. Again a revolutionary change occurred in the year 1972 when FM radio was launched in Madras. Analysis shows that between the periods of 1972 to 1990 number of radio sets grew from 14 million to 65 million. Till the end of 1990 there were about 140 AM stations. In the year 1990 government provided financial aid to AIR and it became an autonomous body and then began the introduction of new FM channels. There were about 100 radio stations till 1990 which increased to about 200 till 1997. Till the end of 1994 there were about 70 FM stations. In the year 1996 AIR set a milestone when it launched an online service for information. Listeners were getting added to radio both from urban as well as from rural areas. Although the private FM stations were confined to broadcast the musical programs only yet it achieved a great popularity. In the year 2005 as the next step to development of radio more than 230 frequencies were sold for FM radio. And since then new stations are getting established and popularity of radio is sustaining. But the programs of these FM stations are confined to music only.

Literature Review - Radio in India: The FM Revolution and Its Impact on Indian Listeners - This is a paper written by Mr. Ratnesh Dwivedi published in June 2012. The content gives a small idea about the history and development of radio and its listenership in India as well as in world. Also there is a hint of FM radio and its development in India and the effects of FM radio on lives of people.

Privatizing the airwaves: the impact of globalization on broadcasting in India - This work is done by Mr. Daya Kishan Thussu. The work helped great in knowing the impact of TV and Radio and its globalization. It gives a small comparison between TV and Radio, their broadcasting and their impact. In our paper, we have focused mainly on radio and its impact in India. The paper gives an idea about the changes occurred in the lifestyle and interests of people of the country after the growth of radio and the introduction of FM radio. Also

* Prof. (Commerce) Govt. Art & Commerce College, Indore (M.P.) INDIA
** Research Scholar, D.A.V.V., Indore (M.P.) INDIA

the paper gives a small hint on the future of this field.

Objectives of Study -

1. To know about the changes that radio brought to lives of common men of society.
2. To get an idea about the power of a source of entertainment and communication.
3. To know about the economic aspect and earning of the radio channels.

Research Methodology - In order to complete our study, we visited many websites. We read many interviews of the professionals. We went through many magazines and previous studies. Also we met many people who belong to the field of radio and entertainment. Based on all these studies data have been collected.

Result and Analysis - Radio is still the first choice for entertainment at present time also as it is one of the cheapest and oldest means of entertainment. AIR has reach of about 99.13% area of India. There are more than 240 stations in the country working in about 24 languages and about 140 dialects. Of them there are about 100 AIR regional stations, 70 local radio stations and about 30 Vividh Bharti channels plus external channels also. There are about 150 million radio listeners of them about 100 million are FM listeners only. Radio has become popular for not only entertainment but it has become a very platform for advertisements also. Analysis shows that revenue generated from advertisements for commercial radio stations was about 507 million in the year 1991 which has exceptionally increased to about 800 million till the year 1995 and till the year 2012-13 the revenue was of about INR 14 billion which is a great boost. This field contributes to about 4% of the total ad industry. Although the popularity of radio is still less than TV but still it is the first choice of rural areas and illiterate people. Also this is most useful for working people and in cars also. Also, Community radio is doing a great job. There are more and more people getting connected to community radio and getting benefited from this means. Researches show that there are more radio listeners in India than the news paper readers. A survey done by Intellect (a unit of initiative media) two years back says that the number of radio listeners has increased by 35%. And after the introduction of FM radio the growth in the radio listeners has increased by 65%. Industry resources show that mobile phones and car radio has contributed a lot in the growth of radio listeners.

Reasons for popularity of radio -

The main reasons for the popularity of radio are considered as follows:

1. Cheap- As radio is very cheap medium of entertainment which can be afforded by even the poor people hence it has become the first choice for common men of the country.
2. Reach- AIR has a great reach in the whole country. It reaches to about 90% of the population.
3. Understanding- As radio broadcast is now available in various languages hence it has become more friendly for its local listeners.
4. Interest- There is only voice on the radio thus the listener creates an imaginary world in his mind on the basis of voice only which develops interest in listeners.
5. Bonding- There establishes an emotional connection between the listener and the broadcaster.
6. Entertainment with knowledge- Radio is no doubt a cheapest source of entertainment and also it is a great source of information also. And also it is a medium of spreading culture and feeling of unity.
7. Availability- One of the major benefits of radio is its easy availability and easy access. It is available to places where other mediums do not have easy reach.

Future of Radio in India - Although the popularity of radio has increased tremendously yet the future of radio is not looking so bright. According to Mr. Prashant Panday (CEO Radio Mirchi) FM radio has a captures about 25% population of the country and daily 25 million people tune into FM radio. And often radio is compared to TV and radio is supposed to be weak in such comparisons. TV has become the first choice of entertainment and the difference between the TV lovers and radio lovers is huge. Although a positive hope arrives with the news of FDI in this field which is growing from 20% to 26%. Though radio comprises about 4% of the total ad industry yet it is not far good figure. Still the radio is not considered as a trustworthy and effective medium for advertisements. Slowly the world is heading to digital radio which will highly affect the popularity of conventional radio sets and there by affecting the listenership. All these factors point the uncertain future of radio.

Conclusion - Radio has revolutionized the lives of many people. This is one of the best means for entertainment and also for spreading awareness especially in rural areas. This was the best medium for knowledge sharing and educating people at the time of independence. With the rapid advancements in the technologies and changing world, interest of people is also changing. People are leaning more towards the new technologies and new mediums of entertainment. Digital radio, internet and TV are dominating the entertainment market. Experts say that digital radio will dominate conventional radio in next 4-5 years. So in order to stay in the entertainment market for long time, this sector needs many changes and this is a difficult thing as there are many more alternatives available with high technology and benefits.

References :-

1. http://allindiaradio.gov.in
2. http://www.indiantelevision.org.in
3. http://www.broadcastandcablesat.co.in
4. http://www.indiantelevision.org.in
5. http://www.indianetzone.com
6. http://works.bepress.com
7. http://www.slideshare.net
8. http://www.broadcastandcablesat.co.in
9. http://rcirib.ir/
10. Thangamani Dr. P., (2000), History of Broadcasting in India ,Ponniah Pathippagam.

Oil Pricing Policy In India And Its Impact On Common People

Antara Kirkire * Dr. Sapna Solanki **

Abstract - Energy is one of the major inputs for economic development of any country. In case of developing countries the energy sector assumes more in view of ever increasing energy needs requiring huge investments to meet them. India is richly endowed with crude oil reserves ,however these are not being fully utilized. The prices of petrol ,diesel ,LPG etc are often revised. The price rise cause inflation and results in rise of prices of essential commodities and the common man suffers the most. The objective of this paper is to study mechanism of oil prices and its effect on common man. And role of common man in energy conservation.

Introduction - Crude oil is known as petroleum in its unprocessed form it is dark sticky liquid called hydrocarbon. Crude oil is a primary energy source. It is formed from plants and animals that were buried deep millions of years ago. The remains got converted into oil and gas due to heat and pressure. After crude oil is extracted it is taken to the refinery where different different components of crude oil are separated into usable petroleum products like LPG, diesel and other products. The crude oil is measured in barrels.1 barrel =159 litres approximately and one metric ton is nearly 7barrels. There are many varieties of crude oil like heavy crude oil, light crude oil depending on sulphar content present in it.

Sweet crude oil has small amounts of sulphar mainly in form of hydrogen sulphide and carbondioxide and is used primarily in the production of petrol. If the percentage exceeds 0.5% it is classified as sour. Sour oil tends to be cheaper than sweet oil pertaining to costs involved in removing sulphar. In India both sweet and sour oil is found. Oil reserves are found below the land or sea bed like Bombay high off shore station or on shore reserves in andhra pradesh , Gujrat etc. According to oil and gas journal ,India had 5.7 billion barrels of crude oil reserves in the beginning of 2014, which is 2nd largest in Asia Pacific. It has 136 oil fields. These reserves are in Rajasthan, Gujrat and Maharashtra. Though crude oil is extracted from these reserves yet it is not sufficient to fulfil domestic requirements. India has to import crude oil. Major oil import s are from OPEC (organisation of petroleum exporting countries.). The founding members are Iran,Iraq, kuwait Saudi Arabia and Venezuela. It has more than 80% of crude oil reserves of the world. Since the world over consumption of oil and its products have been increasing the price per barrel rises.

India primarily imports crude oil at rising price and with the weakening of the rupee lands up paying huge amount depriciation of rupee makes import costlier. A rise in international price of oil will translate to higher import bill. Rise in inflation due to increase in oil prices mean growth in GDP is lowered.

In India a large proportion of international oil price increase has traditionally been absorbed by the Govt. and shared with public sector oil producing companies. The objective is to protect domestic economy from volatility in international oil prices. To protect poor consumers so that they may obtain kerosene through PDS and LPG at affordable rates.

In India oil prices are subsidised. Subsidy is a monetary assistance or tax benefit given by the Government to individuals or institutions to encourage production by reducing cost or encourage consumption. Compensation is given to oil companies to sell petrol diesel and other products at highly subsidised rates. The government seems to be trapped in the maze of rising subsidies and rising international prices. Kirit Parekh committee recommended deregulation of petrol and diesel prices to liberalise energy sector.

Relation between oil prices in India and world - Petrol prices are calculated on the basis of worldwide demand and supply factors. Foreign suppliers sell crude oil to oil companies at benchmark prices. Delivery prices at the refinery and brent crudes daily prices are considered to calculate actual cost of petrol in India. After buying crude oil is separated into various products like petrol diesel etc in refineries. Cost of distillation and refining is added to the price of petrol. Separated petrol is stored in storage tanks and cost of transportation is added apart from vat, excise duty commission of dealer etc.

Thus petrol prices the cost price that includes procuring, refining and taxes of state and central government.

Impact of price rise on common man - With the rise in petrol prise prises of commodities rise resulting in inflation. Price rise further results in greater expenditure and less

* Asst. Professor (Commerce) MLB Govt. Girls P.G. College, Indore (M.P.) INDIA
** Asst. Professor (Commerce) MLB Govt. Girls P.G. College, Indore (M.P.) INDIA

saving.fuel pricing in India is extremely complicated process between various entities involved. Decreasing tax on fuels can results in lower prices. The vat on petrol and diesel differs from one state to another varies between 15%to33%depending on states that have control over it. The tax collected is used for development purpose and decreasing tax would mean lesser generation of revenue for states. Further with the rise of petrol price there is price rise of all essential commodities but vise versa is not true that is when prices of petrol decrease the prise of other commodities do not decline. There needs to be balance where oil companies get reasonable returns government get required revenue while prices are affordable for common man.

Suggestions - The need of hour is combined efforts from all sections towards energy conservation because energy saved is energy earned.

Public transport system should be made convenient, fast and cheap and people should be motivated to use public conveyanc.This would reduce the pressure of huge traffic on road and also help in reducing consumption of petrol.

Replacing lubricants of lower efficiency with that of higher efficiency like using unleaded petrol,CNG for buses, auto conducting energy audit in households, offices and other organizatisations to find usage and wastage of energy.

Conclusion - In India oil pricing is a very complicated matter. The prise rise has an impact on common man since it results in inflation the prices of necessary commodities rise due to rise in oil prices and common man struggles. The need of hour is therefore to is to simplify oil pricing. Govt. should focus on indigenous production of oil. Alternate sources of energy should also be searched. It is not only the Govt. common man also has a role to play. At individual level people should try to lessen consumption of oil and avoid wastage as far as possible. Using public transport, car pooling can be steps towards oil conservation. Avoiding use of two/four wheelers for shorter distance. Encouraging use of bicycles are some of the steps it adopted willingly by people can contribute towards oil conservation.

References :-

1. Energy Law & Policy in India by Nawneet Vibhaw, Lexis Nexis India; 1St Edition edition 2014.
2. Energy Sources & Policy in India by Rishi Muni Dwivedi, New Century Publications ,July 2011.
3. Report of the Working Group on Petroleum & Natural Gas Sector for the XI Plan(2007-2012)
4. http://www.epw.in/perspectives/petroleum-pricing-policy.html
5. http://www.thehindu.com/sunday-anchor/crude-fall-to-oil-indian- onomy/article6668316.ece
6. http://articles.economictimes.indiatimes.com/2014-10-23/news/55358810_1_diesel-rates-diesel-price-interest-rates

****

Agripreneurship - A Pathway For Economic Development

Antara Kirkire * Dr. Sapna Solanki **

Abstract - Agriculture forms the backbone of Indian economy. The agriculture plays a pivotal role in the Indian economy is evident from the fact that it contributes about 22% to the total gross domestic products, provide employment to around 65% of the total workforce, and contributes 14.7% of the total exports. Though agriculture has been developed over years ,still a large number of farmers are poor and keep struglling. There are incidences of suicide by debt ridden farmers in various parts of country. In the backdrop of this situation agripreneurship can help in empowerment of farmers.

Introduction - Entrepreneurship involves seeking and exploiting opportunities available for the benefit of the society. Entrepreneurship is the processinvolving various action to be undertaken to establish an enterprise. It is thus process of giving birth to new enterprise. Innovation and risk bearing are two basic elements involved in entrepreneurship. Agriculture provides raw material for industries.Hence introducing concept of entrepreneurship in agriculture is relevant and obvious. Agribusiness is an old concept but relatively new term in business literature. The term agribusiness was formally introduced by Professor Ray Goldberg of Harvard university during mid fifties. It is a comprehensive word encompassing a wide variety of activities related to production, processing and marketing of crops, livestock and forest products. According to Surya Kumar agri business include activities relating to production ,propagation and distribution of products and services relating to agriculture, floriculture, horticulture, sericulture, aquiculture and animal husbandry. In simple words agribusiness includes all operations involved in manufacture and distribution of farm supplies.

Need for entrepreneurship development in agriculture- Most of the industries have their base in agriculture. The food processing industry entirely depends on agriculture. It is evident that processed food is highly priced compared to raw food. The farmers may not get fare prices for their crops but products made from refined crops fetch higher prices. If the farmers simply diversify their operations and engage in some sort of manufacturing activities based on agro-products their economic condition is bound to improve and they can reap maximum benefits from agriculture.

In other words agribusiness development benefits an economy by generating large scale employment, promotes capital formation by mobilizing the idle savings, promotes balanced regional development etc.

Large number of persons employed in agriculture are of disguised nature. This forces people to migrate from rural to urban areas. Agro entrepreneurship can provide solution to this by generating employment opportunities for rural youth and hence control migration. Agripreneurship can turn agriculture into profitable business.

Entrepreneurial opportunities in agri busines - Food processing industries-food processing involves set of methods and techniques used to transform raw ingredients into food or to transform food into other forms of consumption. Food processing industry include bakery items pickles sauces jam jelly, frozen vegetables sugar industry, meat packing plant and much more. There is huge scope for farmers because the raw material required for food processing industry comes from farms.

Horticulture - It is yet another agro based industry improving the productivity of land and generating employment. Horticulture sector includes cultivation of fruits, vegetables , spices,coconut etc.

Sericulture - Sericulture refers to rearing of silkworm for production of raw silk. The significance of sericulture arises from the fact of high employment potential, women friendliness, value addition and low gestation period.

Organic farming - Organic farming is yet another promising sector owing to high demand and prices of organic crops and products and being environment friendly.

Others - A lot of related activities such as animal husbandry, milk production,mushroom marketing, production of bio-pesticides and bio-fertilizers vermi compost bee harvesting etc have potential for income and employment generation.

Suggestions for developing agripreneurship - Agripreneurship can lead on pathway for growth and economic development if it is implemented through proper planning. The government annouces many schemes for promoting small scale industries and for farmers. However focus should be on creating awareness and providing training to farmers and motivating them for entrepreneurial activites along with farming. Development of infrastructural facilities ,skilled manpower, separate policy for agripreneurship can go a long way in development of agripreneurship.

References :-

1. Entrepreneurial development-Dr. S.S.Khanka
2. Websites of ministry of agriculture and co-operation Govt. Of India
3. Indian econmy-Rudra dutta and K.Sunderam

* Asst. Professor (Commerce) M.L.B Govt. Girls P.G. College, Indore (M.P.) INDIA
** Asst. Professor (Commerce) M.L.B Govt. Girls P.G. College, Indore (M.P.) INDIA

रतलाम नगर निगम बजट अध्ययन

प्रो. विनोद जैन *

प्रस्तावना – हमारे देश मे संघीय शासन व्यवस्था के तीन स्तर है जिसमें देश स्तर पर केन्द्रीय शासन, प्रदेश स्तर पर राज्य शासन, एंव स्थानीय स्तर पर ग्राम पंचायत, नगर पंचायत, नगर पालिका, एंव नगर निगम है। रतलाम बडा नगरीय क्षेत्र होने के कारण से स्थानीय शासन नगर निगम है जिसकी स्थापना 1 जनवरी 1981 को हुई। 2011 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 264810 है। जिसमे पुरूष जनसंख्या 135007 एंव महिला जनसंख्या 129803 है। अनुसुचित जाति के 26299 एंव अनुसुचित जनजाति के 13083 जनसंख्या है। निगम मे 49 वार्ड है जिसमे से अनुसुचित जाति के 5 वार्ड तथा अनुसुचित जनजाति के 2 वार्ड है। रतलाम नगरनिगम का क्षेत्रफल 39.19 किलोमीटर है। नगर मे जनसंख्या घनत्व 277 प्रतिवर्ग किलोमीटर है। रतलाम नगर क्षेत्र मे महिला पुरूष अनुपात 1000 : 961 है।

रतलाम नगरनिगम का बजट लेखाशाखा द्वारा आय व्यय विवरण, प्रस्तावित योजना एंव मेयर इन काउंसिल से विचार विर्मश कर एंव परिषद् द्वारा दिये गये सुझाव के आधार पर संभावित आंकडो कें आधार पर बनाया जाता है।

आय की मदे–

- **सम्पति कर एंव अन्य कर–** नगरी क्षेत्र में स्थित मकान एंव प्लाटो पर लगाया जाता है स्वमुल्यांकन के आधार पर व्यवसायिक भवन पर उसके वार्षिक किराया मूल्य का 10 प्रतिशत एंव निवास के भवन पर 8 प्रतिशत की दर से यह कर लगता है।
- **जलदर एंव अन्य कर–** यह नल कनेक्शन के आधार पर जल उपभोक्ताओ से वसुल किया जाता है जलदर घरेलू 110रू प्रतिमाह एंव व्यावसायिक उपयोग हेतु 220रू प्रतिमाह लगाया जाता है।
- **लाईसेसं फीस–** यह फीस प्रतिवर्ष दुकान व्यापार की प्रकृति के आधार पर लिया जाता है।
- **अन्य कर–** इसके अंतर्गत नगरीय क्षेत्र मे होल्डिगं एंव अन्य विज्ञापन पर लगाया जाता है।
- **विभिन्न योजनाए–** इसके अंतर्गत दुकान प्लाट आदि से किराया एंव विक्रय से प्राप्त राशि शामिल की जाती है।
- **अंशदान–** यह मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थानीय निकायो को उनके पुराने आय के स्त्रोतो को बंद करके राज्य सरकार द्वारा अन्य प्रकार के कर मे बदलने के कारण जो स्थानीय शासन को आय में कमी हुई है उसकी क्षतिपुर्ति के रूप मे दिया जाता है जैसे– पुराने स्थानीय शासन के कर जो बंद किये है चुंगी कर, यात्री कर के बदले क्षतिपूर्ति के रूप मे अंशदान राशि दी जाती है, इसके अतिरिक्त स्टाम्प ड्यूटी का कुछ हिस्सा, तथा प्रदेश शासन द्वारा और भी अन्य अंशदान।
- **अनुदान–** स्थानीय निकाय द्वारा अपने क्षेत्र मे मूलभूत(जल एंव सडक के लिये) सुविधा दिये जाने के बदले मे प्रदेश सरकार द्वारा दिया जाता है। 13वे वित्तआयोग द्वारा की गई अनुशंसा के आधार पर स्थानीय निकाय को अनुदान दिया जाता है।
- **ऋण–** स्थानीय निकाय को मध्यप्रदेश शासन द्वारा उनकी आवश्यकता के अनुसार ऋण दिया जाता है।

व्यय की मदे–

- **मिशन 2014 महत्वपूर्ण कार्य –** इसमे प्रमुख रूप से निमार्ण कार्य है जिसमे जल यंत्रालय, जनसुविधा, आवासीय कालोनी विकास, नगर सौंदर्यीकरण(शहर मे लगभग 90 छोटे बडे पार्क है), व्यवसायिक काम्पलेक्स, तरणताल, एंव स्टेडियम एंव सब्जीमण्डी प्रमुख रूप से शामिल है।
- **विजन 2014 लोककल्याणकारी कार्य–** नगर स्वच्छता, शिक्षा एंव चिकित्सा, बाल कल्याण, पब्लिक प्राईवेट पार्टनरशिप, बिल्डर्स प्रमोटर्स, सांस्कृतिक गतिविधि, खेल एंव अन्य गतिविधिया शामिल है।
- **स्थापना व्यय–** विभिन्न विभागो में कुल स्थायी नियमित कर्मचारी 498 है जिसमें सफाई कर्मचारी 231 इनके वेतन एंव भत्ते एंव सुविधा का व्यय इसके अंतर्गत आता है।
- **स्थापना व्यय अस्थायी कर्मचारी –** विभिन्न विभागो में कुल अस्थायी कर्मचारियों की संख्या 1570 है जिसमें से सफाई कर्मचारी दैनिक वेतनभोगी 197,बदली 470, एम.आई.सी. से 195 इनको देय पारिश्रमीक इसके अंतर्गत शामिल है।
- **ईधन व्यय–** निगम के वाहनो के डीजल एंव पेट्रोल खर्च।
- **टेलिफोन पर व्यय–** टेलिफोन पर व्यय
- **विद्युत प्रदाय–** नगर निगम के क्षेत्र में प्रकाश व्यवस्था करना स्थानीय निकाय का दायित्व होता है इस मे बिजली उपयोग का व्यय शमिल है । इसके अतिरिक्त शहर के नागरिको को शुद्ध पेयजल की व्यवस्था नगर निगम द्वारा अपने स्त्रोतो से घरो तक करना होती है जिस पर भी काफी अधिक राशि व्यय होती है। इसके लिए 2014–15 के बजट में 1000लाख रूपये का प्रावधान है।
- **विविध लघुराशि व्यय –** विभिन्न 14 विभागो के छोटे खर्चे।
- **परिषद् विभाग –** परिषद् की रिपोर्ट, पत्रिका, बजट, सदस्यता शुल्क, भ्रमण, अतिथि सत्कार, एंव मिटिंग व्यय।
- **सामान्य प्रशासन व्यय–** कार्यालय पुस्तके, डाक तार, स्टाफ ट्रेनिग, निर्वाचन, कम्प्यूटर एंव फोटोकापी व्यय।
- **लेखा विभाग –** आडिट, प्रशासन अकादमी फीस, ग्यारण्टी फीस, सदस्यता फीस, एनर्जी आडिट फीस,
- **निवास विभाग(निमार्ण से संबंधित):–**
- **भण्डार विभाग–** कार्यालय एंव परिषद् फर्नीचर, स्टेषनरी, अन्य कार्यालय उपकरण, सफाई उपकरण, सक्रमणं रोकथाम की सामग्री।

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

- **प्रकाश विभाग –** बिजली के आयगत एंव पुजीगत उपकरणो पर व्यय इसमें शामिल है।
- **प्रजाकार्य –** डामरीकरण,मरम्मत, नाली गटर निमार्ण, एंव सार्वजनिक शौचालय।
- **जलप्रदाय –** पानी सफाई पर व्यय।
- **कर्मशाला विभाग –** वाहन मरम्मत, टायर ट्यूब आदि।
- **जनसंपर्क विभाग –** खेलकुद, समाचार पत्र, विज्ञप्ति, विज्ञापन एंव अन्य प्रकाशन।
- **विधि व्यय –**
- **कर वसुली विभाग–** जनगणना एंव सामाजिक गणना व्यय।
- **असाधारण सस्पेंस खाता –** कर्मचारी को अग्रिम एंव अमानत।
- **देय ब्याज एंव ऋण –** ऋण का पुर्नभुगतान मुलधन और ब्याज एंव संचित निधि।

बजट विश्लेषण– संलग्न सारणी के अनुसार वर्ष 2010–11 से 2014–15 तक

आय की मद –

धनात्मक मदे– विभिन्न योजनाऐं, बिल्डरस प्रमोटर, पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप, एंव अनुदान में प्रतिशत के रूप में वृद्धि हुई है।

ऋणात्मक मदे– सम्पतिकर एंव अन्यकर, लाईसेंस फीस, अन्य लाईसेंस फीस एंव शुल्क, अंशदान, असाधारण संस्पेस लेखा प्रतिशत के रूप में कमी हुई है।

स्थिर मदे– जलकर एंव अन्यकर, अन्यकर, अन्य आय प्रतिशत के रूप में लगभग स्थिर है।

नगर निगम के स्वंय के साधनो से आय कुल बजट का 15 से 25 प्रतिशत के बीच है जबकि बाकि हिस्सा 75 से 85 प्रतिशत प्रदेश शासन पर निर्भरता है।

व्यय की मदे–

धनात्मक मदे– मिशन 2014 महत्वपुर्ण कार्य, मिशन 2014 लोक कल्याणकारी कार्य, प्रकाश विभाग, प्रजा कार्य, कर्मशाला विभाग, कर वसुली विभाग प्रतिशत के रूप में वृद्धि हुई है।

ऋणात्मक मदे– स्थापना व्यय स्थायी कर्मचारी, स्थापना व्यय / अस्थायी कर्मचारी, ईधन व्यय, टेलिफोन व्यय, विद्युत प्रदाय, लेखा विभाग, विकास विभाग, भण्डार विभाग, जल प्रदाय, जनसंपर्क विभाग, असाधारण संस्पेसं लेखा, देय ब्याज एंव ऋण प्रतिशत के रूप मे कमी हुई है।

स्थिर मदे– विविध लघुराशि व्यय, परिषद् विभाग, सामान्य प्रशासन विभाग, विधि विभाग प्रतिशत के रूप में लगभग स्थिर है।

निमार्ण कार्यो पर व्यय निरंतर बड रहा है जो कि ठीक स्थिती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:–

1. रतलाम नगर निगम बजट 2014–15
2. रतलाम नगर निगम बजट 2013–14
3. रतलाम नगर निगम वित्त विभाग द्वारा प्राप्त सूचना।
4. दैनिक नईदुनिया।
5. दैनिक भास्कर।

तालिका पीछे देखें

रतलाम नगर निगम बजट

आय	बजट वर्ष 2014–15 लाखो मे	प्रतिशत मे	बजट वर्ष 2013 –14 लाखे मे	प्रतिशत मे	वास्तविक वर्ष 2012 –13 लाखे मे	प्रतिशत मे	वास्तविक वर्ष 2011 –12 लाखे मे	प्रतिशत मे	वास्तविक वर्ष 2010 –11 लाखे मे	प्रतिशत मे	5 वर्षो मे प्रतिशत के साथ धनात्मक या ऋणात्मक
सम्पति कर एंव अन्यकर	990	100.00	900	2.99	439.38	5.63	420.22	7.09	412.16	6.52	ऋणात्मक
जल कर एंव अन्य कर	990	100.00	860	2.85	278.85	3.57	268.44	4.53	226.58	3.58	स्थिर
लाईसेसं फीस	990	100.00	35.5	0.12	15.10	0.19	14.7	0.25	13.47	0.21	ऋणात्मक
अन्य लाईसेस फीस एंव शुल्क	990	100.00	179.5	0.60	110.36	1.41	95.2	1.61	73.27	1.16	ऋणात्मक
अन्य कर	990	100.00	2	0.01	1.03	0.01	1.21	0.02	0.86	0.01	स्थिर
अन्य आय	990	100.00	625.45	2.08	269.84	3.46	268.4	4.53	175.33	2.77	स्थिर
विभिन्न योजनाए	990	100.00	2940	9.76	44.16	0.57	175.9	2.97	225.99	3.58	धनात्मक
बिल्डरस प्रमोटरस	990	100.00	480	1.59	0.00	0.00	0	0.00	0	0.00	धनात्मक
पब्लिक प्राईवेट पार्टनरशीप	990	100.00	60	0.20	0.00	0.00	0	0.00	0	0.00	धनात्मक
योग	990	**100.00**	**6082.45**	**20.18**	**1158.72**	**14.84**	**1244.07**	**20.98**	**1127.66**	**17.84**	धनात्मक
अंशदान	990	100.00	3700	12.28	2868.69	36.75	2416.24	40.74	2423.05	38.33	ऋणात्मक
अनुदान	990	100.00	18024	59.80	3185.57	40.80	1375.62	23.19	2246.66	35.54	धनात्मक
ऋण	990	100.00	1700	5.64	0.00	0.00	200	3.37	0	0.00	धनात्मक
असाधारण संस्थेंस लेखा	990	100.00	631.5	2.10	593.91	7.61	694.86	11.72	523.98	8.29	ऋणात्मक
योग	990	**100.00**	**24055.5**	**79.82**	**6648.17**	**85.16**	**4686.72**	**79.02**	**5193.69**	**82.16**	ऋणात्मक
महायोग	990	**100.00**	**30137.95**	**100.00**	**7806.89**	**100.00**	**5930.79**	**100.00**	**6321.35**	**100.00**	

व्यय	990	प्रतिशत मे	बजट वर्ष 2013 –14 लाखे मे	प्रतिशत मे	वास्तविक वर्ष 2012 –13 लाखे मे	प्रतिशत मे	वास्तविक वर्ष 2011 –12 लाखे मे	प्रतिशत मे	बजट वर्ष 2010 –11 लाखे मे	प्रतिशत मे	
मिशन 2014 महत्वपुर्ण कार्य	990	100.00	6334	21.13	243.43	3.17	286.06	4.50	43.29	0.69	धनात्मक
मिशन 2014 लोक कल्याणकारी कार्य	990	100.00	9718.6	32.42	701.04	9.14	146.5	2.31	195.47	3.12	धनात्मक
स्थापना व्यय स्थायी कर्मचारी	990	100.00	2666	8.89	2311.46	30.14	2071.13	32.62	1728.31	27.58	ऋणात्मक
स्थापना व्यय / **अस्थायी कर्मचारी**	990	100.00	472	1.57	446.38	5.82	360.69	5.68	329.57	5.26	ऋणात्मक
ईंधन व्यय	990	100.00	120	0.40	116.79	1.52	94.39	1.49	79.77	1.27	ऋणात्मक
टेलीफोन व्यय	990	100.00	10	0.03	7.58	0.10	6.81	0.11	4.8	0.08	ऋणात्मक
विद्युत प्रदाय	990	100.00	1100	3.67	1085.79	14.16	734.77	11.57	539.34	8.61	ऋणात्मक
विविध लघुराशि व्यय	990	100.00	15	0.05	4.73	0.06	3.91	0.06	4.52	0.07	स्थिर
परिमद्र विभाग	990	100.00	15	0.05	7.73	0.10	4.97	0.08	5.41	0.09	स्थिर
सामान्य प्रशासन विभाग	990	100.00	24	0.08	2.74	0.04	5.37	0.08	2.88	0.05	स्थिर
लेखा विभाग	990	100.00	126.2	0.42	50	0.65	32.78	0.52	32.35	0.52	ऋणात्मक
विकास विभाग	990	100.00	252	0.84	23.09	0.30	0.3	0.00	92.22	1.47	ऋणात्मक
भण्डार विभाग	990	100.00	71.9	0.24	42.71	0.56	32.03	0.50	30.35	0.48	ऋणात्मक
प्रकाश विभाग	990	100.00	160.5	0.54	50.79	0.66	127.11	2.00	31.62	0.50	धनात्मक
प्रजा कार्य	990	100.00	6333	21.13	947.3	12.35	755.57	11.90	551.96	8.81	धनात्मक
जल प्रदाय	990	100.00	1129	3.77	893.24	11.65	604.89	9.53	1710.91	27.30	ऋणात्मक
कर्मशाला विभाग	990	100.00	274	0.91	20.58	0.27	32.48	0.51	34.2	0.55	धनात्मक
जनसंपर्क विभाग	990	100.00	35.5	0.12	27.88	0.36	22.02	0.35	24.03	0.38	ऋणात्मक
विधि विभाग	990	100.00	8	0.03	3.12	0.04	1.32	0.02	4.35	0.07	स्थिर
असाधारण संस्पेंस लेखा	990	100.00	524	1.75	487.72	6.36	586.13	9.23	434.17	6.93	ऋणात्मक
देय ब्याज एंव ऋण	990	100.00	589.12	1.97	194.6	2.54	440.96	6.94	386.82	6.17	ऋणात्मक
योग	990	**2100**	**29977.82**	**100.00**	**7668.7**	**100**	**6350.19**	**100.00**	**6266.34**	100.00	

मध्यमवर्गीय परिवार एवं आवास समस्या

डॉ. साधना झांझरी * डॉ. सरिता मूंदड़ा * *

शोध सारांश – आर्थिक दृष्टि से जनसंख्या को उच्च, मध्यम और निम्न तीन वर्गों में बांटा जाता है। मध्यम वर्ग का सबसे ज्यादा होना विकास का प्रतीक माना जाता है। भारत में मध्यमवर्ग के सामने एक प्रमुख समस्या आवास की है। पारिवारिक विघटन के कारण मकानों की आवश्यकता में वृद्धि हुई और दूसरी ओर इनकी कीमतों में बेहिसाब वृद्धि हुई। वर्तमान में एक मध्यमवर्गीय परिवार को मकान किराये पर अपनी आय का 38 प्रतिशत व्यय करना पड़ रहा है, जो एक बडी रकम होती है, इससे उनके पारिवारिक बजट पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है ।अत: इस समस्या से निपटने के लिए जरुरी है कि संयुक्त परिवार को बढावा दिया जाये, कम ब्याज दर ऋण सुविधा प्रदान जाये, सरकार सस्ती व सरल आवास योजना बनाये। सरकार स्वयं मकानों का निर्माण कर निम्न किराये पर मध्यम वर्ग को मकान उपलब्ध कराये ।

मध्यमवर्गीय परिवार से आशय – किसी भी देश में जनसंख्या को अलग-अलग आधार पर विभाजित किया जाता है। इस विभाजन का आधार भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक आदि हो सकते हैं । प्रत्येक देश में अलग-अलग दृष्टिकोण व उद्देश्य से इस प्रकार वर्गीकृत जनसंख्या से सम्बन्धित समंक प्रयोग में लाये जाते है। समाज का वर्गीकरण समाजशास्त्र का विषय है। यह वर्गीकरण अधिकतर आर्थिक और शैक्षिक पृष्ठभूमि के आधार पर किया जाता है। आर्थिक दृष्टि से समाज को उच्च, मध्यम और निम्न तीन वर्गों में बांटा जाता है।आजकल पूरे विश्व में मध्यम वर्ग की चर्चा है, अमेरिका में सबसे ज्यादा मध्यमवर्ग है, इसमें सरकारी और प्राइवेट कर्मचारी, व्यापारी वर्ग, डॉक्टर, इंजीनियर, पत्रकार, बुद्धिजीवी आदि इस वर्ग में आते है। मध्यम वर्ग सबसे ज्यादा होना विकास का प्रतीक माना जाता है।

एशियाई विकास बैंक की ताजा रिपोर्ट के अनुसार भारत में वर्ष 1990 से 2008 के मध्य मध्यम वर्ग की संख्या में 20.5 करोड़ की वृद्धि हुई है। चीन में मध्यम वर्ग की जनसंख्या में वृद्धि के बाद दूसरा नंबर भारत का ही है।अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मध्यम वर्ग में किसे सम्मिलित किया जाय। वास्तव में यह एक विवाद का विषय है। अलग-अलग देशों में मध्यम वर्ग किसे कहा जाय इस सम्बन्ध में अलग-अलग व्यक्ति, संस्थाएं, सरकार, रिसर्च वर्कर की विचार धारा भी इस सम्बन्ध में अलग-अलग रही है । भारत जैसे देश में जो कि दुनिया का सर्वाधिक बड़ा प्रजातान्त्रिक देश है, यहाँ मध्यम वर्ग एक पारदर्शी व जवाबदेह शासन हेतु एक ताकत के रूप में उभरा है। Indian National Council of Applied Economic Research के अनुसार मध्यम वर्ग को दो वर्गों में विभाजित किया गया पहला-निम्न मध्यम वर्ग एवं दूसरा उच्च मध्यम वर्ग। वर्ष 2001 - 02 के मूल्य के आधार पर ऐसे व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय 200000 से 500000 रु के बीच है वो निम्न मध्यमवर्गीय परिवार कहलाता है और जिनकी वार्षिक आय 500000 से 1000000 रु के बीच है वे उच्च मध्यम वर्ग में आते है। वर्ष 2005 के मूल्य के आधार पर 8 से 20 डॉलर प्रतिदिन प्रति व्यक्ति आय वाले निम्न मध्यम वर्ग में तथा 20 से 40 डॉलर प्रतिदिन प्रति व्यक्ति आय वाले उच्च मध्यम वर्ग में सम्मिलित होते है।

Bridsall के अनुसार 10 डॉलर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन (2005 PPP) आय वाले व्यक्तियों को मध्यम वर्ग में सम्मिलित किया गया जो की world bank की अंतर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा से बहुत ऊपर है। Pritchet के अनुसार 15 डॉलर प्रतिदिन प्रति व्यक्ति आय वालों को मध्यम वर्ग में सम्मिलित किया गया है। निष्कर्ष रूप में 10 डॉलर प्रतिदिन प्रति व्यक्ति आय वाले वर्ग को मध्यम वर्ग में सम्मिलित किया जा सकता है अथवा जिनकी मासिक आय 20000 से 100000 रु तक वह मध्यमवर्ग में सम्मिलित होता है। 1996 में मध्यमवर्गीय संख्या 25 million थी जो आज बढ़कर 180 मिलियन हो गई, वर्ष 2015 तक उसमें वृद्धि होकर यह संख्या 267 मिलियन तक हो जायेगी।

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु इंदौर शहर के 400 मध्यमवर्गीय परिवारों का अध्ययन किया गया।मध्यमवर्ग में उन परिवारों को सम्मिलित किया गया है जिनकी मासिक आय 10000 रु से 50000 रु तक है। क्योंकि 10000 से कम आय वाले वर्तमान महंगाई के दौर में मध्यमवर्ग नहीं बल्कि गरीब वर्ग में सम्मिलित माने जाने लगे है। दूसरा 50000 से अधिक आय वर्ग वालों का पारिवारिक बजट महंगाई के कारण बहुत अधिक प्रभावित नहीं होता है, अत: विषय को देखते हुए 10000 से 50000 तक की आय वर्ग वालों का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिये प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों समंको का उपयोग किया गया। प्राथमिक समंकों का संग्रहण-प्रश्नावली, साक्षात्कार एवं निरिक्षण विधि के आधार पर किया गया है, तथा द्वितीयक समंक एवं अन्य शोधोपयोगी जानकारी विभिन्न रिपोर्ट्स, आर्थिक सर्वेक्षण, समाचार पत्र पत्रिकाओं, इत्यादि के माध्यम से एकत्रित की गई है।

आज मध्यम वर्ग के सामने सबसे बड़ा समस्या यह है की वह बढ़ती महंगाई का सामना कैसे करे । विश्व का हर देश इस से ग्रसित होता जा रहा है। भारत जैसे विकासशील देशों के लिए ये एक चिंता का विषय बनता जा

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) श्री क्लॉथ मार्केट कन्या वाणिज्य महाविद्यालय, गणेशगंज, इन्दौर (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) श्री क्लॉथ मार्केट कन्या वाणिज्य महाविद्यालय, गणेशगंज, इन्दौर (म.प्र.) भारत

रहा है। महंगाई ने आम जनता का जीवन अत्यन्त दुष्कर कर दिया है। ऐसा लगता है की रोज सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही एक सामान्य व्यक्ति या परिवार को इससे लड़ना पड़ता है, और पूरी दिनचर्या ही इससे निपटने में व्यतीत हो जाती है और अन्त में रात्रि में थकाहारा व्यक्ति नींद के आगोश में जाने का असफल प्रयास करता है। एक मध्यमवर्गीय परिवार की यही हर रोज की कहानी है ।

महंगाई कोई समस्या नहीं बल्कि समस्याओं का परिणाम है। लगातार बढ़ती महंगाई और गिरती विकास दर से एशिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था को लेकर वैश्विक आर्थिक जगत में गहरी चिंता है। लगभग चार सालों से भारत में महंगाई लगातार बढ़ती जा रही है इसके कारण चीजों की कीमतें बढ़ी है तथा मुद्रा के मूल्य में गिरावट आई है। परिणामस्वरूप उसने भारत की सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक व्यवस्था को झकझोर कर रख दिया है। हमेशा समाचार पत्रों, TV चैनलों, पत्र-पत्रिकाओं में यह देखने पढ़ने को मिलता है कि विभिन्न राजनैतिक दलों ने महंगाई के विरोध में आन्दोलन प्रर्दशन आदि किये।आपस में विभिन्न दलों में आरोप प्रत्यारोप होते रहते है। समाचार पत्र पत्रिकाओं में पढ़ने में आता है कि महंगाई से परेशान होकर व्यक्ति आत्महत्या जैसे रास्ते भी अपनाने लगे है। समाज में निरन्तर नैतिक पतन हो रहा है। भ्रष्टाचार, लूट-खसोट, चोरी आदि खबरों से TV न्यूज चैनल व समाचार पत्र भरे पड़े है। यही शोध समस्या का मुख्य आधार है। इसी पृष्ठभूमि के आधार पर प्रस्तुत शोध की प्रमुख समस्या है कि इस बढ़ती महंगाई से सबसे अधिक परेशान मध्यम वर्ग है, उन्हें अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु कई प्रकार के समायोजन करने पड़ रहे है। व्यक्ति के जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं में रोटी, कपड़ा और मकान यह तीन महत्वपूर्ण होती है। भारत एक अतिजनसंख्या वाला देश है। अत: यहां रहने के लिए पर्याप्त कमरों वाला मकान एक मध्यमवर्गीय परिवार के लिए बड़ी समस्या है। जो परिवार अपने पूर्वजों के मकान में रहा रहे हैं, उनके सामने यह समस्या विकराल नहीं है। लेकिन संयुक्त परिवारों के विघटन होने से इस समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है। परिवार के बजट का एक बहुत बड़ा हिस्सा मकान पर व्यय हो जाता है। किराया दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है। जिन परिवारों ने लोन लेकर मकान बनवाया है उनको भी मकान की किश्तों, टेक्स, रखरखाव आदि पर एक मोटी राशि व्यय करना होती है।

तालिका क्रमांक 1

मध्यमवर्गीय परिवारों के लिए मकान की स्थिति

क्र	मकान की स्थिति	परिवारों की संख्या प्रतिशत में
1.	स्वयं का	68
2.	किराये का	32

चित्र क्रमांक 1

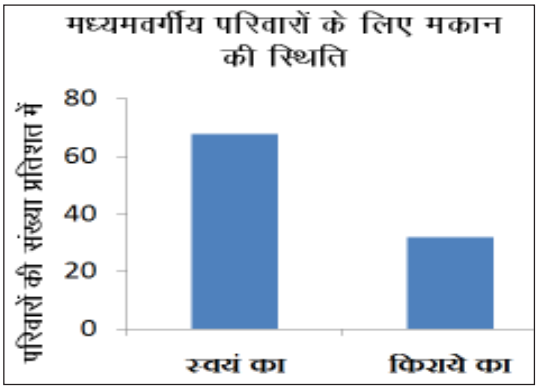

सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के अनुसार मकान किराये पर व्यय दो वर्ष पहले औसत रूप से आय का 32 प्रतिशत हो रहा था जो अब बढ़ कर 38 प्रतिशत हो गया है। इन्दौर शहर में 68 प्रतिशत व्यक्ति स्वयं के मकान में रह रहे हैं और 32 प्रतिशत व्यक्ति किराये के मकान में रह रहे हैं। इनमें से समय-समय पर किराये में वृद्धि के कारण 42.4 प्रतिशत परिवारों ने मकान बदला है। मकान बदलने के फलस्वरूप 21.2 प्रतिशत परिवारों ने ऐसे क्षेत्र में मकान लिया, जहां उन्हें कम किराया देना पड़े तथा 21.2 ने अधिक किराये की वजह से छोटे मकान में शिफ्ट हुए।

स्पष्ट है कि एक मध्यमवर्गीय परिवार को किराये में वृद्धि के कारण पिछड़े इलाके में जाकर रहना पड़ रहा है या बहुत छोटे मकान, एक या दो कमरे वालों में रहना पड़ रहा है। निश्चित रूप से बहुत छोटे मकान में रहने से व्यक्तियों की एक व्यवस्थित दिनचर्या नहीं बन पाती। परिवार के सदस्यों की प्रायवेसी नहीं रह पाती, सदस्य घर पर अपना-अपना कार्य तल्लीनता से नहीं कर पाते, बच्चों की पढ़ाई प्रभावित होती है। घर स्वच्छ नहीं रह पाता, बीमारियां पनपती है, कुल मिलाकर जो एक सुकून मिलना चाहिए वह इन परिवारों को नहीं मिल पाता। इन सबका प्रभाव उनके जीवन-स्तर पर भी पड़ता है।

तालिका क्रमांक 2

किराये में वृद्धि के कारण मकान बदलने वाले परिवारों का विवरण

क्र	मकान बदलने का कारण	परिवार की संख्या % में
1	कम किराये वाले क्षेत्र में मकान लिया	50
2	छोटा मकान लिया	50
	कुल	100

चित्र क्रमांक 2

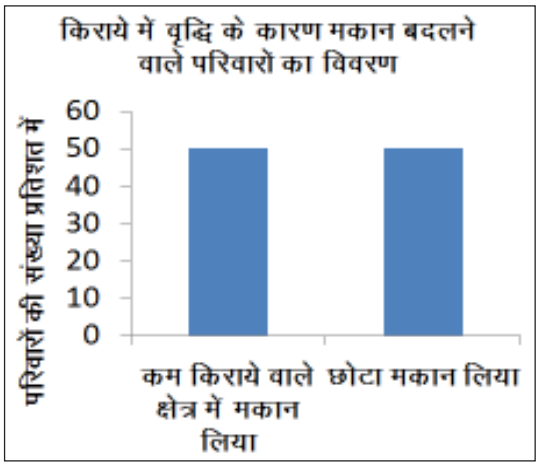

शहर में 68 प्रतिशत मध्यमवर्गीय परिवार स्वयं के मकान में रह रहे है, जिसका प्रभाव उनके बजट पर अनुकूल रहा है। 32 प्रतिशत परिवार किराये के मकान में रह रहे हैं। किराये के मकान में रहने वाले व्यक्तियों की एक बड़ी समस्या है कि उन्हें विभिन्न कारणों से बार-बार मकान बदलना पड़ता है, जिससे उनका व्यय भार बढ़ जाता है। अध्ययन से पता लगा कि किराये से रहने वाले व्यक्तियों में से 40 प्रतिशत व्यक्तियों ने पिछले 10 वर्षों में एक बार मकान बदला, 30 प्रतिशत ने दो बार, 27 फीसदी ने तीन बार तथा 3 फीसदी व्यक्तियों ने तीन से अधिक बार मकान बदला। मकान बदलने वाले व्यक्तियों में से 52 प्रतिशत ने किराये में वृद्धि के कारण मकान बदला। स्पष्ट है कि एक मध्यमवर्गीय परिवार की मुख्य समस्या अपना स्वयं का मकान नहीं होना भी है।

अत: जरुरी है कि व्यक्ति स्वयं एवं देश की सरकार दोनों मिलकर निम्न प्रयासों से इस समस्या को कम करे :

1. व्यक्ति घर में अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह न करें ताकि छोटे घर में भी व्यवस्थित तरीके से रह सके, और किराये पर होने वाले खर्च को कम कर सके।
2. सरकार को मध्यम वर्ग के लिए एक सरल व सस्ती आवास योजना बनानी चाहिए ।
3. सरकार स्वयं मकानों का निर्माण कर न्यूनतम व निश्चित दर पर मध्यमवर्ग को मकान किराये पर उपलब्ध करवा सकती है। सिंगापुर में यही व्यवस्था प्रचलित है। वहां सभी मकान सरकार के स्वामित्व के है और व्यक्तियों को उनकी आय के अनुसार मकान उपलब्ध करवाये जाते हैं। उसी अनुसार उनसे किराया वसूल किया जाता है। इस व्यवस्था से वहां के नागरिक भी संतुष्ट है।
4. मध्यमवर्ग के लिए कम ब्याज दर पर मकान के लिए ऋण उपलब्ध कराना चाहिये ।
5. एकल परिवार की अपेक्षा संयुक्त परिवार प्रणाली को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सचदेव डी.आर. – 'भारत में समाज कल्याण प्रशासन' किताब महल, इलाहबाद
2. Reserve Bank of India (2005): "Report on Currency & Finance", 2003-04, RBI, Bombay.
3. Rangarajan, C. (July 20, 2006): "We Broke the Back of Inflation a Decade Ago", Economic Times.
4. Rajadhyaksha, Niranjan (June 10, 2008): "Inflation: A Short History", posted at cafeeconomics@livemint.com.
5. Danik Bhaskar स्टार नेटवर्क big story 13/8/2013
6. http://www.slideshare.net/pawankawan/inflation-23914386
7. http://www.hindustantimes.com/business-news/inflation-effect-living-only-on-special-occasions-surviving-on-a-daily-basis/article1-1095809.aspx
8. http://www.slideshare.net/sachinjee/mehangai-mar-gayi
9. http://www.scribd.com/doc/22721989/Project-Report-on-Inflation
10. Choudhury, Gaurav – "Inflation effect : `Living' only on special occasions, `surviving' on a daily basis" Hindustan Times, July 21, 2013

****

धार जिले में इन्दिरा आवास योजना का क्रियान्वयन (वर्ष 2001-02 से 2007-08)

डॉ. बी.एस. सिसोदिया *

प्रस्तावना – वर्तमान में प्रत्येक परिवार को अपने स्वयं के आवास की जरूरत होती है। आवास किसी भी नागरिक की मूल आवश्यकता है जो मानव जीवन की गुणवत्ता का निर्धारण करने के लिए महत्वपूर्ण है। स्वयं का घर होने पर व्यक्ति को एक अनिवार्य परिसम्पत्ती मिल जाती है तथा इससे उसकी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति सुदृढ़ होती है।

इंदिरा आवास योजना ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारो को मकान उपलब्ध कराने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय की एक महत्वपूर्ण योजना है।

योजना का प्रांरभ एवं उद्देश्य – इंदिरा आवास योजना वर्ष 1985-86 में ग्रामीण भूमिहीन रोजगार ग्यारन्टी क्रार्यक्रम 1983 (आरएलईजीपी) की एक उपयोजना के रूप में आरंभ की गई थी, जिसका उद्देश्य अनुसूचित जाति / जनजाति तथा मुक्त बंधुआ मजदुरों को नि:शुल्क आवास उपलब्ध कराना है। 1989-90 में ग्रामीण भूमिहिन रोजगार ग्यारन्टी कार्यक्रम को जवाहर रोजगार योजना में मिला दिये जाने के बाद इस योजना को भी जवाहर रोजगार योजना का अंग बना दिया गया किन्तु 1996 में इसे जवाहर रोजगार योजना से अलग करके इसे एक स्वतंत्र योजना का रूप दिया गया है इस योजना के महत्वपूर्ण बिन्दु निम्नलिखित है –

1. वर्ष 1993-94 से इस योजना के कार्यक्षेत्र में गैर-अनुसूचित जातियों/ अनुसूचित जनजातियों के ग्रामीण गरीबो (गरीबी रेखा के नीचे) को भी सम्मिलित किया गया है, किन्तु उनको मिलने वाला लाभ योजना को आवंटन राशि का 40 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता।
2. इस योजना के अन्तर्गत मकान का आवंटन लाभार्थी परिवार की महिला सदस्य के नाम अथवा पति-पत्नि के संयुक्त पर किया जाता है।
3. ग्राम सभा को इस योजना के अन्तर्गत लाभार्थियों का चयन करने का अधिकार प्राप्त है।
4. यह योजना केन्द्र और राज्यों के बीच 75:25 के लागत बंटवारे के आधार पर वित्त पोषित की जा रही है।

अध्ययन का उद्देश्य – धार जिले में गरीबी अधिक होने के कारण यहाँ के आश्रयविहीन परिवार को इंदिरा आवास योजना के द्वारा जो आवास प्रदान किये गये उसका क्रियान्वयन किस प्रकार किया गया यह देखना इस अध्ययन का महत्वपूर्ण भाग होगा।

समक संकलन – प्रस्तुत शोध पत्र धार जिले में इंदिरा आवास योजना के क्रियान्वयन पर आधारित है। यह द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त समंको पर आधारित है। उक्त अध्ययन हेतु वित्तीय वर्षो (2001-02 से 2007-08) के समंको का संकलन जिला पंचायत कार्यालय, धार से किया है। इंदिरा आवास योजना के अन्तर्गत प्राप्त समंको का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है-

तालिका क्रमांक-01 (देखे अगले पृष्ठ पर)

विश्लेषण – तालिका का निरीक्षण करने से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2001-2002 में 1310 निर्मित आवासों को वितरण करने का लक्ष्य निर्धारित किया था जिसके विरूद्ध 1256 आवासों का वितरण किया। इन लाभान्वित हितग्राहियों में 191 अनुसूचित जाति, 1025 अनुसूचित जनजाति तथा शेष 40 अन्य वर्ग के थे, जिन पर क्रमश: 32.20, 194.75 एवं 8.00 लाख का व्यय किया गया। इस प्रकार लक्ष्य के विरूद्ध 1256 आवासों के निर्माण के लिए प्राप्त आवंटन 262.00 लाख रूपये में से 240.45 लाख रूपयों का व्यय किया गया। लाभान्वित हितग्राहियों में अनुसूचित जनजाति के 81.69 प्रतिशत हितग्राही लाभान्वित हुए। वर्ष 2002-03 में निर्धारित लक्ष्य 1333 के विरूद्ध 1380 आवासों का निर्माण कर वर्ष में वितरण किया गया जिनमें 1093 अनुसूचित जनजाति के थे जो कुल का 79.20 रहा।

वर्ष 2003-04 में 1912 आवासों का निर्माण कर वितरण करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था जिसके विरूद्ध 1848 आवासों का वितरण किया गया जिनमें क्रमश: 195 अ.जा., 1516 अ.ज.जा. तथा 137 अन्य वर्ग के हितग्राहियों को वितरित किये गये। इस वर्ष में अनुसूचित जनजाति के हितग्राहियों का प्रतिशत 82.03 रहा जो गतवर्ष की तुलना में अधिक रहा। वर्ष 2004-05 में निर्धारित लक्ष्य के विरूद्ध 94.40 प्रतिशत आवासों का वितरण किया गया जिनमें से अनुसूचित जनजाति के हितग्राहियों को 81.74 प्रतिशत आवास प्रदाय किये गये अर्थात लक्ष्य 2732 के विरूद्ध 2579 आवासों का वितरण किया गया जिनमें अ.जा., अ.ज.जा. एवं अन्य वर्ग के क्रमश: 220, 2108 एवं 251 हितग्राही सम्मिलित है।

इसी प्रकार वर्ष 2005-06 एवं 2006-07 में निर्धारित लक्ष्य क्रमश: 1105 एवं 1858 के विरूद्ध क्रमश: 2118 एवं 1756 आवासों का निर्माण कर वितरण किया गया जिनमें अनुसूचित जनजाति के क्रमश: 1799 एवं 1176 हितग्राही लाभान्वित हुए जो कुल का क्रमश: 81.11 एवं 66.97 प्रतिशत रहा, अर्थात वर्ष 2006-07 में वर्ष 2005-06 की तुलना में अ.ज.जा. के कम हितग्राहियों को लाभ मिला। वर्ष 2007-08 में 1621 आवासों का निर्माण कर वितरण करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था जिसके विरूद्ध 1772 आवासों का वितरण किया गया जिनमें क्रमश: 372 अनुसूचित जाति, 869 अनुसूचित जनजाति तथा 531 अन्य वर्ग के हितग्राहियों को वितरीत किये गये जिनमें से अनुसूचित जनजाति के हितग्राहियों का प्रतिशत 49.04 रहा जो गत वर्ष की तुलना में कम रहा है।

निष्कर्ष –

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वर्ष 2001-02 से 2007-08 तक की अवधि में 11871 आवास निर्मित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) महाराजा भोज शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.) भारत

जिसके विरूद्ध अनुसूचित जाति को 1617, अनुसूचित जनजाति को 9586 एवं अन्य को 1606 निर्मित आवास वितरित किये गये इनमें अनुसूचित जनजाति के हितग्राहियों का प्रतिशत 80.75 रहा। इससे यह सिद्ध होता है कि इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत आदिवासी लाभान्वित हुए है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. श्रीवास्तव ओ.एस. मध्यप्रदेश का आर्थिक विकास, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
2. जिला पंचायत कर्यालय, धार, म.प्र.।
3. मिश्रा ललित कुमार- भारत में छोटे उद्यमी और रोजगार।
4. योजना आयोग - आर्थिक सर्वेक्षण, योजना आयोग, भारत सरकार
5. www.rural.nic.in
6. www.ruralho4singnetwork.in
7. गुप्ता, सुरेश - आगे आये लाभ उठाये (एल.के. जोशी) आयुक्त, जनसम्पर्क, भोपाल।

तालिका क्रमांक-01

इंदिरा आवास योजना के अन्तर्गत प्राप्त आवंटन, व्यय एवं लाभान्वित हितग्राहियों की स्थिति

लक्ष्य के विरूद्ध उपलब्धि का प्रतिशत (:) राशि लाख रू. में

वर्ष	लक्ष्य	प्राप्त आवंटन	कुल व्यय	उपलब्धि	उपलब्धि में लाभान्वित हितग्राहियों की स्थिति						अ.ज.जा. का कुल से प्रतिशत
					अनुसूचित जाति		अनुसूचित जनजाति		अन्य		
					संख्या	राशि	संख्या	राशि	संख्या	राशि	
2001-2002	1310	262.00	240.45	1256 (95.88)	191	32.20	1025	194.75	40	8.00	81.69
2002-2003	1333	266.60	259.62	1380 (103.53)	193	38.60	1093	202.22	94	18.80	79.20
2003-2004	1912	407.95	389.12	1848 (96.65)	195	39.91	1516	323.09	137	26.12	82.03
2004-2005	2732	604.34	547.72	2579 (94.40)	220	51.28	2108	437.80	251	58.64	81.74
2005-2006	1105	543.23	518.95	2218 (200.72)	183	42.46	1799	427.75	236	48.74	81.11
2006-2007	1858	498.67	485.60	1756 (94.51)	263	84.93	1176	264.82	317	135.85	66.97
2007-2008	1621	418.99	405.79	1772 (109.32)	372	113.87	869	171.08	531	120.84	49.04
योग -	11871	3001.78	2847.25	12809 (107.90)	1617	407.25	9586	2021.51	1606	416.99	74.84

स्त्रोत - जिला पंचायत कार्यालय, धार से प्राप्त जानकारी के आधार पर स्वनिर्मित।

****

भारतीय विशेष आर्थिक क्षेत्र की प्राप्ति

डॉ. सपना सोनी *

प्रस्तावना – देश में आधारभूत गुणवत्ता पूर्ण आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से केन्द्र एवं राज्य सरकारों के संयुक्त प्रयासों से पहली बार 1965 में एशिया का पहला विशेष आर्थिक क्षेत्र कांडला (गुजरात) में स्थापित किया गया था। तत्पश्चात केन्द्र द्वारा सेज(एस.ई.जेड.–स्पेशल इकनोमिक जोन) नीति के तहत् सात एस.ई.जेड. सुरत (गुजरात), सांताक्रुज (महाराष्ट्र), कोचिन (केरला), नोएडा (यू.पी.) चैन्नई (तमिलनाडु), फाल्टा (पश्चिम–बंगाल), विशाखापट्नम, (आंध्र प्रदेश) घोषित किए।

विश्वस्तरीय अधो संरचना का अभाव, अस्थिर वित्तीय व्यवस्था के कारण सन् 2000 तक इस ओर जो विशेष प्रयास हुए, उसमें राज्य सरकारों की भागीदारी से 11 अन्य स्थानों पर शासकीय एवं निजीभागीदारी के तहत एस.ई.जेड. बनाए गए। भारत में विदेश निवेश को बड़ी मात्रा में आकर्षित करने एवं निर्यात को बढ़ावा देने के उद्देश्य से विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए सेडा नीति की घोषणा अप्रैल 2000 में की गई। सन् 2000 से 2005 के मध्य विभिन्न राज्यों में सेज (एस.ई.जेड.) एक्ट 2005 के लागू हो जाने के सेज क्षेत्रों के निर्माण में गति आई। सन् 2000से 2005 तक एस.ई.जेड., विदेश एवं अन्य नीतियों के प्रावधानों के अनुरूप कार्य करते रहे। उन्हें सम्बन्धित अन्य विधियों के अधीन अनेक प्रकार से सुविधाएँ देकर विकसित किया जाता रहा।

विभिन्न स्थानों की व्यवस्था को एकल खिड़की कार्यक्रम के दायरे में लाने तथा निवेशकों में इन क्षेत्रों के प्रति अधिक विश्वास पैदा करने के उद्देश्य से संसद में 23 जून 2005 को विशेष आर्थिक क्षेत्र अधिनियम को पारित किया गया जो 10 फरवरी 2006 से भारत मे लागू हुआ। इस अधिनियम को पारित करने के निम्न उद्देश्य रहें।

- अतिरिक्त आर्थिक गतिविधियों को बढावा देना।
- वस्तुओं और सेवाओं के नियति का संवर्धन करना।
- घरेलू एवं विदेशी स्त्रोतों से निवेश में बढ़ोत्तरी करना।
- रोजगार के अवसरों का सजृन करना।
- आधारभूत सुविधाओं का विकास करना।

इस अधिनियम मे उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा राज्यों सरकारों की निर्णायक भूमिका को निर्वाहित करने के उद्देश्य से उन्नीस सदस्यों वाला विशेष आर्थिक क्षेत्र अनुमोदन बोर्ड (एकल खिड़की) को बनाया गया। जो सरकारों द्वारा प्रस्तुत किये हुए आवेदन पर विचार कर स्वीकृति प्रदान करता है।

इस अधिनियम में इन क्षेत्रों के विकास हेतु समय–समय पर निम्न परिवर्तन किये गये है।

1. अलग– अलग क्षेत्र के एस.ई.जेड. के लिए न्यूनतम भूमि सीमा कम से कम पॉच हजार हेक्टर का प्रावधान किया गया।
2. प्रत्येक एस.ई.जेड. में विभिन्न प्रकार के उद्यम हेतु क्षेत्र का विभाजन।
3. क्षेत्र का प्रकमण (उत्पादन क्षेत्र) एवं अप्रक्रमण क्षेत्र (गैर उत्पादन क्षेत्र) में विभाजन।
4. प्रत्येक एस.ई.जेड. में फ्री वेयर हाउसिंग जोन की निर्माण व्यवस्था का ध्यान रखना।

इन उपरोक्त बिन्दूओं को समय–समय पर बोर्ड द्वारा संशोधित किया जाता रहा है। 20 जून 2014 तक 20 राज्यों तथा 3 केन्द्र शासित प्रदेश में 566 एस.ई.जेड. की औपचारिक स्वीकृति प्रदान की गई है। इनमें से 44 की अनुमोदन स्वीकृति हो चुकी है तथा 388 का नोटिफेकेशन (अधिसूचना जारी) हो चुका है। उपरोक्त 566 एस.ई.जेड. मे से 185 निर्यात प्रक्षेत्र के रूप मे कार्य कर रहे है। विशेष आर्थिक क्षेत्र जिसका राज्य का ब्योरा निम्न तालिका संख्या क्रमांक 1 में है।

तालिका क्रमांक–1 (देखे अगले पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक 1 के विशलेषण से स्पष्ट है की यदि भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार देखा जाए तो 92 प्रतिशत विशेष आर्थिक क्षेत्र भारत के 6 राज्यों आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक में स्थापित है इस प्रकार का क्षेत्रीय असन्तुलन भूमि की अनुउपलब्धता के कारण बना हुआ है। अधिसूचित एस.ई.जेड.क्षेत्र के अब तक 7 विशेष क्षेत्रों में 1–खढ अथवा खढएड में 55% 2–हार्डवेयर में 3% ,3–टेक्सटाईल एडं अपैरल में 3%, 4–फार्मा एण्ड केमिकल में 6%, 5–बायोटेक में 1% 6–,इंजीनियरिगं 6 % तथा 7–मल्टी प्रोडक्ट प्रोडक्शन में 10 %एवं अन्य क्षेत्रों में 19 % क्षेत्रों में संलग्नता पाई गई है। सेज अधिनियम के लागू होने के पश्चात से 20.06.14 की स्थिति में इन क्षेत्रों द्वारा 1283309 व्यक्तियों को प्रत्यक्ष रूप से रोजगार मुहैया कराया गया है। जिनमें से 1148605 व्यक्तियों को रोजगार, वेतन–वृद्धि आधारित रोजगार प्रदान किये है। इन क्षेत्रों की वार्षिक रिपोर्ट 2013–14 के ऑकडों के आधार पर पिछले सात वर्षो के दौरान निर्यात में भारी वृद्धि दर्ज की गई जो तालिका क्रमांक 2 में दिखाई देती है।

तालिका क्रमांक–2

पिछले सात वर्षो में सेज के माध्यम से निर्यात ब्योरा

Year	Value	Increase (%) (Over previous year)
2007–2008	66,638	93
2008–2009	99,689	50
2009–2010	2,20,711	121
2010–2011	3,15,868	43
2011–2012	3,64,478	15
2012–2013	476159	31
2013–2014	494077	4

स्त्रोत – वाणिज्य विभाग नई दिल्ली

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों के द्वारा किये जाने वाले निर्यात मे प्रति वर्ष वृद्धि दर्ज हो रही है। साथ ही यदि यह कहॉ जाये कि

* प्राध्यापक (वाणिज्य) श.भी.ना.शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

इन 185 निर्यातन्मुखी आर्थिक प्रक्षेत्रों ने विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को भारत लाने में अहम भूमिका निभाई है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। इनमें से 102 ख.ढ. के क्षेत्र मे ,19 मल्टी प्रोडक्ट प्रोडक्शन के क्षेत्र में तथा 64 अन्य विशेष क्षेत्र में निर्यात कर देश के आर्थिक विकास में अपना योगदान दे रहे है।

इन विशेष आर्थिक क्षेत्र में निवेश को आकर्षित करने के लिए दी जाने वाली सुविधाएँ एवं प्रोत्साहन इस प्रकार है।

1. कम लीज दर पर भूमि की उपलब्धता कराना।
2. ऋणों पर अनुदान एवं ब्याज की छुट देना।
3. आयकर कानून की धारा 10 एए के अंतर्गत पहले पांच वर्ष के लिए आयकर में 100 प्रतिशत छूट, उसके बाद अगले पांच वर्ष के लिए 50 प्रतिशत की कर छूट और उससे आगे के पांच वर्ष तक निर्यात से लाभ का 50 प्रतिशत वापस अपनी इकाइयों में लगाना।
4. आयकर अधिनियम की धारा 115 जेबी के अंतर्गत न्यूनतम वैकल्पिक कर (एमएटी) से छूट। 5- अभिस्वीकृत बैंकिंग संस्थाओं के माध्यम से एस.ई.जेड. इकाइयों को बिना किसी परिपक्वता प्रतिबंध के विदेशों से 50 करोड़ अमरीकी डॉलर तक ऋण लेने की सुविधा।
6. केंद्रीय विक्रय कर से छूट।
7. सेवा कर से छूट।
8. केंद्र और राज्य स्तर की मंजूरी के लिए एकल खिड़की।
9. संबंधित राज्य सरकारो द्वारा दी जाने वाली विक्रय कर और अन्य शुल्कों में छूट। एसईजेड का विकास करने वालों(डेवलपर्स) को दी जाने वाली प्रमुख सुविधाओं और प्रोत्साहनों में शामिल है।
10. बी ओ ए द्वारा अनुमोदित अधिकृत कार्यो के लिए एस.ई.जेड. के विकास हेतु सीमा शुल्क/ उत्पाद कर में छूट।
11. आयकर अधिनियम की धारा 80-आईएबी के अंतर्गत एसईजेड के विकास के व्यवसाय से होने वाली आय पर 10 वर्ष तक आयकर में छूट।
12. आयकर अधिनियम की धारा 115 ओ के तहत लाभांश वितरण कर से छूट।

इस प्रकार विशेष आर्थिक क्षेत्र देश के आर्थिक विकास में अपना महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. वार्षिक रिर्पोट 2013-14।
2. योजना पत्रिका।
3. भारतीय वाणिज्य मंत्रालय वेबसाईट।
4. आर्थिक सर्वेक्षण रिपोर्ट।

तालिका क्रमांक-1

राज्य अनुसार विशेष आर्थिक क्षेत्र का वितरण

State	Formal Approvals	In-principle approvals	Notified SEZs	Exporting SEZs (Central Govt. + notified SEZs under the SEZ Act,2005)
Andhra Pradesh	108	4	78	42
Chandigarh	2	0	2	2
Chhattisgarh	2	1	1	1
Delhi	3	0	0	0
Dadra&Nagar Haveli	2	0	1	0
Goa	7	0	3	0
Gujarat	42	6	29	18
Haryana	40	3	29	5
Jharkhand	1	0	1	0
Karnataka	61	0	40	25
Kerala	30	0	24	11
Madhya Pradesh	19	1	9	2
Maharashtra	100	14	66	22
Manipur	1	0	1	0
Nagaland	2	0	2	0
Odisha	10	1	5	1
Puducherry	1	1	0	0
Punjab	8	0	2	2
Rajasthan	10	1	10	5
Tamil Nadu	66	5	53	34
Uttar Pradesh	32	1	22	9
Uttarakhand	2	0	1	0
West Bengal	17	3	9	6
GRAND TOTAL	**566**	**41**	**388**	**185**

स्त्रोत :- वाणिज्य विभाग नई दिल्ली

मध्यप्रदेश शासन की गांव की बेटी योजना - उच्च शिक्षा में शैक्षणिक अवसर

डॉ. अमर कुमार जैन *

प्रस्तावना – उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारत आज वैश्विक स्तर पर निरन्तर प्रतिष्ठा अर्जित करता जा रहा है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा का वह वक्तव्य जिसमें उन्होंने अपने देश के युवाओं से आव्हान किया कि भारतीय नौजवानों के शैक्षिक प्रतिरूपण से सबक ले। विश्व के प्रथम शक्ति सम्पन्न राष्ट्र के राष्ट्रपति यदि शिक्षा के क्षेत्र में भारत की चुनौती को गंभीरता से ले रहे है तो निश्चित ही यह हमारे लिए गौरव की बात है। शिक्षा के क्षेत्र में विशेषकर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सरकार की बड़ी अहम् भूमिका रही है। विगत दो दशकों से निजीकरण की नीति के विस्तार के बावजूद भी सरकारी तंत्र उल्लेखनीय कार्य कर रहा है। सरकारी तंत्र की तमाम कमजोरियों के बाद भी नीतिनिर्धारण से लेकर उसके क्रियान्वयन तक जो बदलाव की बयार बही है उसने सबसे बड़ा काम ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा के प्रति एक अनूठी जागृति पैदा कर दी है, अब वे माता पिता जो गांव में रहकर स्वंय शिक्षा ग्रहण नहीं कर सके और जिनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं है वे अपनी भावी पीढ़ी को पहले शिक्षित करने की बात स्वीकार कर रहे हैं। इस सकारात्मक बदलाव में सरकारी योजनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका से कोई कैसे इंकार कर सकता है।

सरकारी योजनाओं को लेकर सामान्यत: यह भ्रम पैदा होता है कि सरकार योजनाओं के मकड़ जाल से मतदाताओं को लुभाती है और उनका लचर क्रियान्वयन सफल नहीं होता। परन्तु सरकार के हर प्रयत्न में सकारात्मकता का ऐसा बीज छिपा होता है जो समय के साथ अपनी जड़ों को मजबूती से जमा लेता है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में मध्यप्रदेश सरकार द्वारा चलायी जा रही गांव की बेटी योजना भी सरकारी दृढ़ इच्छाशक्ति का प्रत्यक्ष उदाहरण है। आंकड़े इस बात का गवाह रहे हैं कि ग्रामीण अंचलों की ऐसी हजारो मेघावी छात्राओं ने अर्थाभाव के कारण उच्च शिक्षा में अपना पंजीयन नहीं कराया जो अपने अव्वल होने का डंका बजा सकती थी। मध्यप्रदेश सरकार ने इस समस्या के मूल को समझकर गंभीरतापूर्वक विचार किया तथा योजनाकारो ने इस समस्या के समाधान के लिए गांव की बेटी योजना को साकार रूप प्रदान कर अपने ईमानदार प्रयासों को दर्शाया है। मध्यप्रदेश शासन द्वारा यह योजना वर्ष 2005 से प्रारंभ की गई। प्रारम्भिक वर्ष में 12वीं कक्षा ग्रामीण क्षेत्र से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने वाली छात्राओं में से सर्वोच्च अंक प्राप्त छात्रा को सामान्य आधारभूत विषयों से स्नातक करने पर 10 माह तक 500रू. प्रति माह तथा तकनीकी शिक्षा के लिए प्रति माह 750रू. 10 माह तक प्रदान किया जायेगा। इस योजना के अंतर्गत पंजीकृत प्रत्येक छात्रा को सम्पूर्ण स्नातक अवधि में यह लाभ प्राप्त होगा। योजना के प्रारंभिक वर्ष 2005 में प्रत्येक गांव से सर्वोच्य अंक प्राप्त केवल एक ही छात्रा को इस योजना का लाभ मिलना था अत: प्रदेश में ऐसी प्रतिभावान छात्राओं की संख्या काफी कम आई। योजना के कर्णधारों ने अगले वर्ष 2006-07 में इस योजना में संशोधन कर स्पष्ट किया कि यदि एक गांव की पाठशाला में एक से अधिक गांव में निवास करने वाली छात्राएं अध्ययनरत हैं तो मेरिट रिहायशी गांव के आधार पर बनायी जाए न कि पाठशाला के आधार पर अतएव इस संशोधन के पश्चात अगले दो वर्षों में 'गांव की बेटी योजना' की संख्या में वृद्धि हुई लेकिन जनसंख्या के आधार पर यह अभी भी अपेक्षित नहीं थी। वर्ष 2008 इस योजना के लिए मील का पत्थर साबित हुआ जब प्रदेश सरकार ने अपनी इस महत्वाकांक्षी योजना में उन सभी छात्राओं को शामिल करने का आदेश प्रसारित किया जिन्होंने ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालय से 12वीं कक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की हो तथा जो छात्राएं अपना प्रवेश उच्च शिक्षा के शासकीय, अनुदान प्राप्त अशासकीय, अशासकीय अथवा विश्वविद्यालय में से किसी एक में लिया हो। नवोदय विद्यालय में पढ़ने वाली छात्राओं के साथ वे छात्राएं भी इस योजना के लिए पात्र मानी गयीं हैं जिन्होंने 12वीं कक्षा प्रथम श्रेणी पूरक परीक्षा में उत्तीर्ण की है। म0प्र0सरकार की इस अभिनव योजना का एक सुखद पहलू यह भी है कि उच्च शिक्षा के समस्त विभागो जैसे-इंजीनियरिंग एवं पॉलीटेक्निक शिक्षा, आई.टी.आई. तथा चिकित्सा शिक्षा को इसके अंतर्गत शामिल किया गया है। वास्तव में इस योजना ने ग्रामीण क्षेत्र की ऐसी छात्राओं को उच्च शिक्षा के नए अवसर प्रदान किए हैं जो अर्थाभाव के कारण स्कूल शिक्षा को ही पूर्ण शिक्षा या अपनी नियति मान बैठती थी। वर्ष 2008 के पश्चात् तो इस योजना में विस्तार की ऐसी बयार आई जिससे योजना के लक्ष्य फलीभूत होते दिखाई दे रहे हैं।

मध्यप्रदेश में गांव की बेटी योजना की अद्यतन स्थिति (दिसम्बर 2012 तक)

क्रमांक	वर्ष	हितग्राही संख्या	प्रस्तावित राशि
1	2009-10	28141	1400.00
2	2010-11	32226	1742.43
3	2011-12	33532	2350.00
4	2012-13	32695	3100.00

स्रोत-विभागीय प्रशासकीय प्रतिवेदन-उच्च शिक्षा विभाग, 2012-13 पृ.31

मध्यप्रदेश में गांव की बेटी योजना की अद्यतन स्थिति (दिसम्बर 2012 तक) (ग्राफ देखे)

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 2009-10 से 2012-13 तक कुल 1 लाख 26 हजार 594 छात्राओं को इस योजना का लाभ मिला है जो अपने आप में इस योजना की सफलता के आंकड़े प्रस्तुत करता है। प्रदेश सरकार ने इन चार वर्षों में कुल 8592.43 लाख रू. का प्रावधान किया जो

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

अभूतपूर्व है। प्रदेश शासन की इस योजना में प्रत्येक वर्ष छात्राओं की संख्या में वृद्धि हो रही है जो इस योजना के प्रति छात्राओं के विश्वास को प्रदर्शित कर रहा है।

'गांव की बेटी योजना' को यदि समीक्षात्मक रूप में तटस्थ होकर देखा जाए तो निम्न बिन्दु/सुझाव उभरकर सामने आते है।

- ग्रामीण बेटियों की उच्च शिक्षा में अर्थाभाव से अधिक बड़ी समस्या है उनके अभिभावकों का उच्च शिक्षा के प्रति सीमित सोच की। इस सोच में भी इस योजना के आने के बाद परिवर्तन दिखाई दे रहा है और प्रदेश में 2012 में पंजीकृत छात्रों की तुलना में छात्राओं की संख्या 34177 अधिक है अर्थात् छात्र-छात्रा अनुपात 45:55 है।
- इस योजना का प्रारंभ वर्ष 2005 में किया गया था तब भी इसमें 5000 तथा 7500 रू. का वितरण क्रमश: आधार पाठ्यक्रम तथा तकनीकी पाठ्यक्रम में स्नातक करने के लिए किया जाता था। योजना के 8 वर्ष पश्चात् इस राशि में कोई वृद्धि नहीं की गयी है अत: इस राशि को बढ़ाकर क्रमश: 7500 तथा 10000 करने की आवश्यकता है।
- महाविद्यालय से 5 किलोमीटर दूर से आने वाली छात्राओं के 180 दिन के लिए आवागमन योजना शासन द्वारा चलायी जा रही है। इस योजना का लाभ भी संयुक्त रूप से इस योजना के हितग्राहियों को दिया जाए। गांव की बेटी योजना का लाभ स्नातक स्तर पर ही दिया जाता है अत: इसे विस्तार देकर स्नातकोत्तर स्तर भी दिया जाए।
- आने वाले समय में अन्य राज्य भी म0प्र0 की इस महत्त्वाकांक्षी योजना को अपने-अपने राज्यों में लागू करने की पहल करे।

इस योजना का यदि हम ईमानदारी से मूल्यांकन करें तो महत्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट होता है, वह यह है कि इन्हें तैयार करते समय भारतीय समाज और उसके ग्रामीण परिवेश की समस्याओं को विशेष महत्व दिया गया है। यही कारण है कि इन योजनाओं के माध्यम से बेटी सशक्तिकरण का जो कार्य हो रहा है उससे होने वाले बदलाव के परिणाम प्रदेश समाज में व्यापक बदलाव लाने वाले निरूपित हो रहे हैं। एक दूसरी विशेषता प्रतिभा प्रोत्साहन की है जो इन योजनाओं में सहज ही परिलक्षित हो रही है। प्रदेश के दूर दराज के ग्रामीण अंचलों से प्रतिभाओं को उच्च शिक्षा के अवसर देकर उन्हें तराशने का काम बखूबी हो रहा है। हाँलाकि यह कहना भी अतिरंजना ही होगी कि सरकारी तंत्र की खामियों से यह योजना बिल्कुल भी अछूति हैं। योजनाओं के क्रियान्वयान के साथ जो प्रशासनिक कमियां या बाबू संस्कृति का प्रभाव है उससे इन योजनाओं के दो-चार होने के बावजूद भी यह कहना गलत नहीं होगा कि इन योजनाओं जैसे गांव की बेटी, प्रतिभा किरण, उच्च शिक्षा गारंण्टी विक्रमादित्य तथा छात्रों के आवागमन की सुविधा जैसी योजनाएं बदलाव की बयार की वाहक है। सरकारी तंत्र की दुरावस्था में भी लगातार सुधारात्मक प्रयत्न दिखाई पड़ते हैं जो मिशन को सफल होने की आशा का संचार करते हैं। मौद्रिक व अमौद्रिक दोनों तरह की प्रेरणाएं किस तरह से दूरदराज में छिपी प्रतिभाओं को मुक्ताकाश प्रदान करती हैं इसका प्रत्यक्ष उदाहरण गांव से निकली हुई वो बेटियां हैं जिन्होंने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ये साबित किया कि प्रतिभाएं व सरकारी योजनाएं मिलकर इतिहास रच सकते हैं। उच्च शिक्षा में योजनाएं सकारात्मक परिणाम दे रही है जो हमारी आशा को बहुगणित करने वाली हैं और यही साबित भी करती हैं कि बराक ओबामा की चिन्ता बेमानी नहीं है।

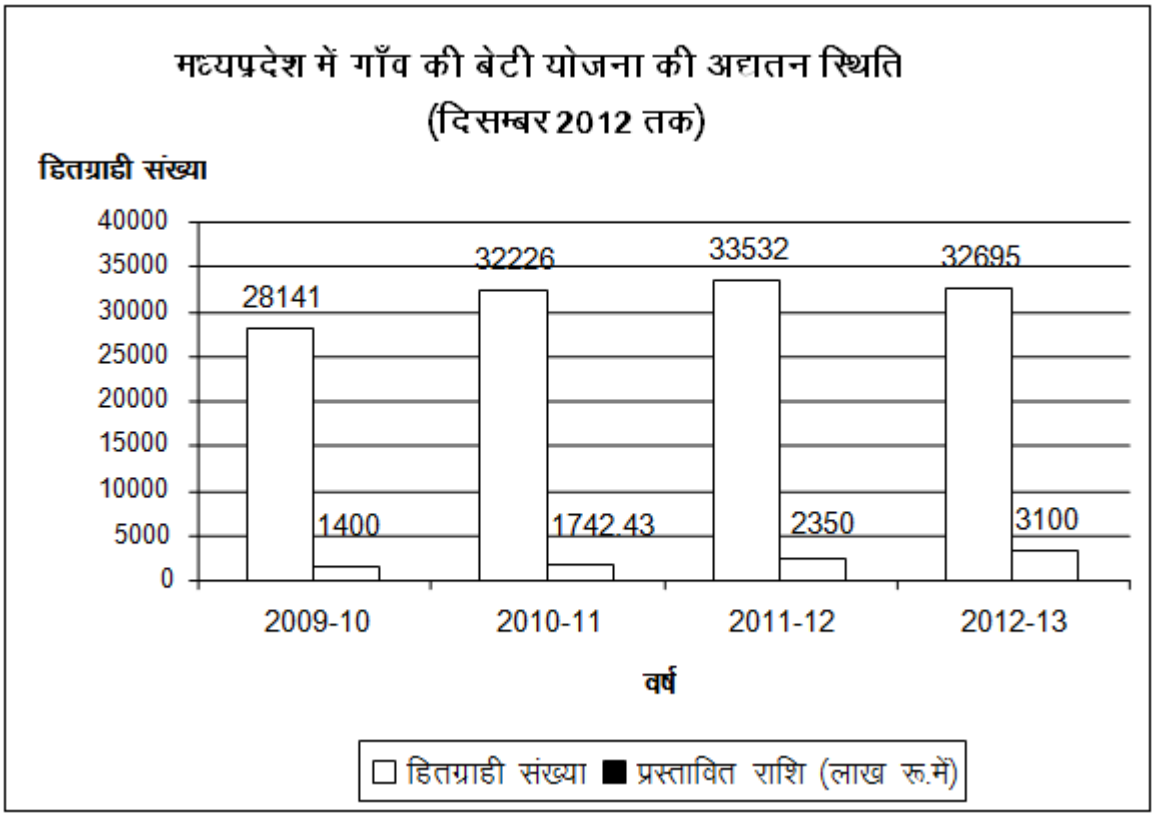

****

प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अन्तर्गत जातिगत आधार पर हितग्राहियों को प्रदत्त वित्तीय सहायता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. बी.एस. सिसोदिया *

प्रस्तावना – व्यावसायिक सफलता का मूलमंत्र, आवश्यकतानुसार वित्त की व्यवस्था करना होता है। किसी भी व्यापार एवं उद्योग को चाहे वह बड़े पैमाने पर हो या छोटे पैमाने पर, प्रांरभ एवं उसके भावी विस्तार के लिए पर्याप्त वित्त की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में देश की औद्योगिक उन्नति वित्त प्रबंध पर ही निर्भर है। वित्त प्रबंध की उचित व्यवस्था के अभाव में अनेक औद्योगिक विकास की योजनाएं मात्र कागजी योजनाएँ बनकर रह जाती है। जिस प्रकार एक इंजिन को चलाने के लिये कोयले की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यापार एवं उद्योग को स्थापित करने तथा चलाने के लिए वित्त की आवश्यकता होती है।

प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अन्तर्गत शिक्षित बेरोजगार युवाओं को अपना स्वरोजगार स्थापित करने में सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से शासन द्वारा 15 अगस्त 1993 को एक अति महत्वाकांक्षी योजना घोषित की गई जो 2 अक्टूम्बर 1993 से सम्पूर्ण देश में लागू की गई है।

इस योजना में चयनित हितग्राहियों को कुल परियोजना लागत का 15 प्रतिशत भाग या अधिकतम 12,500/– रू. सरकार द्वारा अनुदान के रूप में प्रदान किया जाता है। चयनित हितग्राहियों को इस राशि का 5 प्रतिशत से 16.25 प्रतिशत तक अंश स्वयं लगाना होता है तथा परियोजना की शेष राशि लागत का वित्त पोषण बैंक ऋण द्वारा किया जाता है। इन लघुत्तर इकाईयों के साहसियों को 15 व 20 दिवसीय प्रशिक्षण दिया जाता है, आवश्यकता होने पर कच्चामाल व विपणन सहायता भी दी जाती हैं।

अध्ययन का उद्देश्य – प्रस्तुत शोध पत्र धार जिले में प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अन्तर्गत जातिगत आधार पर हितग्राहियों को प्रदत्त वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाने में नोडल एजेन्सी, जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र एवं वाणिज्य बैंकों की विभिन्न शाखाओं द्वारा किये गये प्रयासों की सार्थकता का अध्ययन किया गया है। मुख्य रूप से यह अध्ययन निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया है–

- प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अन्तर्गत अध्ययन अवधि में जातिगत आधार पर कुल कितने ऋण प्रकरण स्वीकृत एवं वितरित किये गये?
- प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अन्तर्गत अध्ययन अवधि में जातिगत आधार पर कुल कितनी ऋण राशियाँ स्वीकृत एवं वितरित की गई?

समंक संकलन – प्रस्तुत शोध पत्र प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अन्तर्गत जातिगत आधार पर हितग्राहियों को प्रदत्त वित्तीय सहायता का विश्लेषणात्मक अध्ययन (म.प्र. के धार जिले के संदर्भ में) पर आधारित है। यह द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त समंकों पर आधारित है। उक्त अध्ययन हेतु विभिन्न वर्षो (2000–01 से 2007–08) के समंको का संकलन जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र, धार से किया गया है। प्राप्त समंको का विस्तृत विवरण अग्रतालिका में प्रस्तुत किया गया हैं।

तालिका क्रमांक–1

तालिका क्रमांक–01 (सारणी देखे)

विश्लेषण – तालिका का निरीक्षण करने से स्पष्ट होता है कि जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र, धार के अन्तर्गत निर्धारित लक्ष्य के विरूद्ध 3867 प्रकरण स्वीकृत किए गए जिनमें 1419 सामान्य वर्ग, 1809 पिछड़ा वर्ग तथा 639 अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्ग के है। स्वीकृति के विरूद्ध लाभान्वित हितग्राहियों की स्थिति का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि सामान्य वर्ग के 1149 हितग्राही लाभान्वित हुए जिन्हें रूपये 718.81 लाख का ऋण वितरित किया गया जबकि अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अनुसूचित जाति/जनजाति के क्रमश: 1495 एवं 471 हितग्राहियों को योजना का लाभ प्राप्त हुआ है जिन्हें क्रमश: रू. 929.12 लाख एवं रू. 290.22 लाख की ऋण राशि वितरित की गयी।

निष्कर्ष – इस प्रकार जातिवार विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि स्वीकृति के विरूद्ध सामान्य वर्ग के 80,97 प्रतिशत, अन्य पिछड़ा वर्ग के 82.64 प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति / जनजाति वर्ग के 73.71 प्रतिशत हितग्राही लाभान्वित हुए है जो योजना को प्रभावी सिद्ध करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र धार (म.प्र.)।
2. योजना आयोग – आर्थिक सर्वेक्षण, योजना आयोग, म.प्र. भारत सरकार।
3. गुप्ता, सुरेश आगे आये लाभ उठाये (एस.के. जोशी) – आयुक्त, जनसम्पर्क, भोपाल।
4. बैंक ऋण एवं वसूली प्रक्रिया जिला सहकारी बैंक जिला–धार।
5. पन्त डॉ. डी.सी. भारत में ग्रामिण विकास, कॉलेज बुक डिपो जबलपुर, 2009
6. मिश्रा ललित कुमार– भारत में छोटे उद्यमी और रोजगार।

****

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) महाराजा भोज शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.) भारत

तालिका कमांक–01

जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र धार में प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अन्तर्गत लाभान्वित हितग्राहियों की जातिवार स्थिति

(राशि लाख रू. में)

वर्ष	लक्ष्य	बैंको द्वारा स्वीकृत प्रकरण								बैंकों द्वारा वितरित प्रकरण							
		सामान्य		पिछड़ा वर्ग		अ.ज.जा./अ.जा		कुल		सामान्य		पिछड़ा वर्ग		अ.ज.जा./अ.जा		कुल	
		संख्या	राशि	संख्या	राशि	संख्या	राशि	संख्या	राशि	संख्या	राशि	संख्या	राशि	संख्या	राशि	संख्या	राशि
2000–01	405	162	113.22	183	127.90	60	41.93	405	283.05	104	78.14	118	68.17	39	23.34	261	169.65
2001–02	430	197	177.30	169	152.10	73	65.70	439	395.10	194	97.00	166	83.00	70	35.00	430	215.00
2002–03	442	186	148.80	194	155.20	72	57.60	452	361.60	186	111.60	184	110.40	72	43.20	442	265.20
2003–04	364	174	130.50	177	132.75	68	51.00	419	314.25	142	92.30	174	113.10	68	44.20	384	249.60
2004–05	474	197	147.75	256	192.00	63	47.25	516	387.00	137	89.05	203	131.95	42	27.30	382	248.30
2005–06	596	218	185.30	290	246.50	97	82.45	605	514.25	177	114.87	236	153.40	79	51.53	492	319.80
2006–07	585	151	128.35	322	273.70	128	108.80	601	510.85	106	68.90	252	163.80	45	29.25	403	261.95
2007–08	290	134	113.90	218	185.30	78	66.30	430	365.50	103	66.95	162	105.30	56	36.40	321	208.65
योग –	3559	1419	1145.12	1809	1465.45	639	521.03	3867	3131.60	1149	718.81	1495	929.12	471	290.22	3115	1938.15

स्त्रोत – जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र, धार (म.प्र.)

उच्च शिक्षा में निजी महाविद्यालयों का महत्व एंव प्रभाव

डॉ. एस.सी. जैन * डॉ. राजेन्द्र परमार **

प्रस्तावना – एक सामाजिक प्राणी के रूप में विख्यात बुद्धिधारी, विवेकशील व प्रगति पथगामी 'मानव' निरंतर बौद्धिक एवं क्रमिक विकास के परिणामस्वरूप नई नई विशेषताओं से अंलकृत होता गया, उक्त क्रमिक विकास ने मानव व समाज को नई दिशा व आधार प्रदान किया और मानव ने हजारों वर्षो का ज्ञान एकत्र कर एक श्रेष्ठ जीवन निर्मित करते हेतु आगे बढ़ने का मार्ग निर्मित किया। जो विश्व परिदृश्य में 'शिक्षा' के रूप में विख्यात हुआ और वर्तमान में 'शिक्षा' से उच्च शिक्षा के रूप में परिणीत कर उत्कर्षता की ओर जा रहा हैं जो मानवीय समाज के लिए शुभ संकेत है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में जब से उदारीकरण, वैश्वीकरण एवं निजीकरण का प्रादुर्भाव हुआ है तब से ही भारत और मध्य प्रदेश की उच्च शिक्षा में अमूलचूल परिर्वतन आया हैं मध्य प्रदेश की उच्च शिक्षा में वैश्वीकरण और निजीकरण के परिणामस्वरूप निजी संस्थानों का आगमन हुआ हैं। जो उच्च शिक्षा को एक अलग मुकाम पर ले जा रहे है। वर्तमान में स्कूली शिक्षा हो या उच्च शिक्षा, निम्न स्तर के लोगों की छोड़ दे तो उच्च और मध्य वर्ग परिवार उच्च शिक्षा के लिए निजी संस्थानों का रूख करते हैं जो भारत तथा मध्य प्रदेश में निजी संस्थानों के महत्व को उजागर करता हैं वर्तमान व्यवस्था को सुक्ष्म रूप से देखा जाय तो प्रत्येक व्यक्ति का विश्वास सरकारी व्यवस्था में उठ चुका हैं परन्तु प्रत्येक व्यक्ति सरकारी नौकरी चाहता है ताकि वह पूरी उम्र आराम से गुजार सके।

भारत का उच्च शिक्षा तंत्र विश्व का तीसरा सबसे बड़ा उच्च शिक्षा तंत्र है विगत 50 वर्षो में देश के विश्वविद्यालयों की संख्या में 11.6 गुना, महाविद्यालयों की संख्या में 12.5 गुना, विद्यार्थियों की संख्या में 60 गुना और शिक्षकों की संख्या में 25 गुना वृद्धि हुई हैं सभी को उच्च शिक्षा के समान अवसर सुलभ कराने की नीति के अंतर्गत सम्पूर्ण देश में महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है और साथ ही उच्च शिक्षा की अवस्थापना सुविधाओं पर विनियोग भी तदनुरूप बढ़ा है।

स्वतंत्रा प्राप्ति के पश्चात पिछले पाँच दशको में देश में उच्च शिक्षा में उल्लेखनीय प्रगति हुई। स्वतंत्रता के पूर्व देश में मात्र तीन विश्वविद्यालय थे, जो अब 250 के लगभग हो चुके हैं। वर्तमान में उच्च शिक्षा के निर्मित समर्पित इन संस्थानों में 18 भाषाओं में विज्ञान, कला, वाणिज्य, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, प्रबंधन, साहित्य, शिक्षक प्रशिक्षण एवं अनेक व्यावसायिक महत्व के पाठयक्रमों की शिक्षा की व्यवस्था हैं। इन संस्थानों में प्रतिवर्ष लगभग 75 लाख विधार्थी प्रवेश पाते हैं फिर भी कई युवक युवतियाँ उच्च शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। अत: अभी भी काफी मात्रा में नए सस्थानों को स्थापित करने की आवश्यकता है।

आज समय के साथ उच्च शिक्षा को बदलने की एक बहस ही छिड़ गई है। इस बदलाव तथा अनेक नए संस्थानों की स्थापना के लिए सरकार को बहूत बढ़ी पूँजी की आवश्यकता है। जो वर्तमान समय में संम्भव नहीं दिखती हैं। अत: उच्च शिक्षा का निजीकरण ही दुसरा विकल्प बचता है।

यदि उच्च शिक्षा की गुणवता और उसकी व्यवहारिकता पर विचार किया जाए तो वर्तमान शिक्षा प्रणाली शिक्षित बेरोजगारों की एक बहुत बडी संख्या प्रतिवर्ष तैयार कर रही है, प्रतिवर्ष 3–4 लाख बेरोजगारो के नाम रोजगार कार्यालयों में दर्ज हो रहे हैं इसके अलावा बहुत से ऐसे बेरोजगार भी हैं जो कार्यालयों में अपना नाम दर्ज नहीं करते है। बेरोजगारी के कारण कई युवक दिशाहीन होकर गैर कानूनी कार्यो की ओर उन्मुख हो रहें है।

उच्च शिक्षा का अर्थ है सामान्य रूप से सबको दी जाने वाली शिक्षा से ऊपर किसी विशेष विषय या विषयों में विशेष विशद तथा सुक्ष्म शिक्षा। यह शिक्षा उस स्तर का नाम हैं जो विश्वविद्यालयों, व्यवसायिक विश्वविद्यालयों, कम्युनिटी महाविद्यालयों, लिबरल आर्ट कॉलेजों एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों आदि के द्वारा दी जाती है। प्राथमिक एवं माध्यमिक के बाद यह शिक्षा का तृतीय स्तर है। जो प्राय: ऐच्छिक होता हैं इसके अंतर्गत स्नातक, परास्नातक एवं व्यवसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि आते है।

निजीकरण का आशय किसी व्यवसाय, उधम, एजेन्सी या सार्वजनिक सेवा के स्वामित्व को सार्वजनिक क्षेत्र (राज्य या सरकार) से निजी क्षेत्र की ओर बढ़ना है। निजी लाभ के लिए संचालित व्यवसाय या निजी गैर लाभ संगठनों के पास स्थानांतरित होने की घटना या प्रक्रिया है। सामान्य अर्थ में निजीकरण से आशय किसी भी व्यवसाय या सेवा या कार्य को सरकारी हाथों से निजी हाथों में आंशिक या पूर्ण रूप से सोपना है।

प्रस्तुत शोध पत्र में मध्य प्रदेश में उच्च शिक्षा पर शासकीय महाविद्यालयों की व्यवस्था का या निजी महाविद्यालयों या निजी संस्थानों का क्या प्रभाव पड़ रहा हैं यह बताया गया है। तथा साथ ही उच्च शिक्षा में निजीकरण के गुण एंव दोषो की समीक्षा कर सुझााव को प्रस्तुत किया गया हैं। जो मध्य प्रदेश में उपलब्ध उच्च शिक्षा के जमीनी स्तर को स्पष्ट करता है।

उच्च शिक्षा में निजी महाविद्यालयों का प्रभाव –

1 म. प्र. में उच्च शिक्षा के निजीकरण के परिणामस्वरूप चारो ओर विकास हो रहा हैं तथा विद्यार्थियों में अनुशासन, चरित्र निर्माण तथा निर्णयन क्षमता का विकास किया जा रहा है। जो विकसित मध्य प्रदेश के सपने को साकार करने की ओर अग्रसर है।

2 म.प्र. में निजी महाविद्यालयों के आगमन से उच्च शिक्षा में गुणवता का स्तर बढ़ा है तो विद्यार्थियों में कुशलता भी बढ़ी है।

* प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.) भारत
** प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.) भारत

3 उच्च शिक्षा में व्यवसायिकरण से जहाँ महाविद्यालयों का विस्तार और साधन सुविधाए बढ़ी है तो विधार्थी द्वारा अपने अथक प्रयास के बल पर उच्च प्राप्तांक प्राप्त किये जा रहे है।

4 म.प्र. में निजी महाविद्यालयों में नियमित कक्षा अध्यापन तथा शोधार्थी को शोध कार्य हेतु प्रोत्साहित कर जमीनी समस्याओं का समाधान खोजा जा रहा है तथा शोधार्थी द्वारा शोध कार्यो को वर्तमान समस्याओं को ध्यान में रखकर किया जा रहा है।

5 उचित शिक्षा और प्रोत्साहन द्वारा बड़ी कंपनियों तथा व्यवसाय जगत के लिए उपयोगी कर्मचारी तैयार किये जा रहे है।

6 निजी महाविद्यालयों में प्लेंसमेट के चलन से महाविद्यालयो में ही पाठयक्रम पुरा करने पर विद्यार्थियों को तुरंत नौकरी मिल जाती है। जो आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के लिए शुभ है।

7 निजी महाविद्यालयों में पुरे देश और आवश्यकता होने पर विदेशों से भी प्राध्यापक नियुक्त किये जाते हैं जो पढ़ाई और शोध दोनो ही कार्यो के लिए उपयोगी होते है।

उच्च शिक्षा में निजी महाविद्यालयों की भूमिका –

1 वर्तमान संदर्भ में विधार्थी के समग्र विकास के लिए निजी महाविद्यालयों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

2 वर्तमान समय में आर्थिक और तकनीकी विकास के कारण होने वाले लाभों से समाज के प्रत्येक वर्ग को जोड़ने के लिए एक सुनियोजित और समन्वित प्रयास की जरूरत है।

3 तेजी से बदल रही दुनिया के साथ ही शैक्षणिक जगत में भी परिवर्तन की लहर हैं नयी आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में नये नये पाठयक्रमो की मांग बढ़ रही है।

4 वैश्विक चुनौतियों से निपटने के लिए संधारणीय विकास के साथ-साथ हमारी चेतना में गुणात्मक विकास की भी आवश्यकता है।

5 छात्रों में राष्ट्र, समाज और देश के प्रति सवेंदनशीलता जाग्रत करने के साथ साथ छात्रों में राष्ट्रीय एवं सामाजिक आवश्यकताओं हेतु शोध कार्य को बढ़ाने की भी आवश्यकता है।

6 उच्च स्तर में गुणवत्ता लाने के लिए हमे अपनी अच्छाइयों को और अधिक कुशलता के मजबूत करना, कमजोर पक्षो पर ध्यान देंना, सुअवसरों का लाभ उठाना, स्वयं में मानसिक दृढ़ता लाना अपेक्षित है। इस तरह स्वयं में और संस्था में गुणवत्ता संस्कृति यानि 'क्वालिटी कल्चर' को विकसित करने में निजी महाविद्यालयों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

7 उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम अध्यापन और अध्यापन के तरीके, विद्यार्थियों के मूल्यांकन के तरीके और अपनायी जा रही मूल्यांकन पद्धतिया, अनुसंधान और विस्तार गतिविधियाँ, अधोसंरचना और उसके समुचित उपयोग की व्यवस्था छात्रों के लिए सहायता तथा प्रगति की देखरेख आदि के लिए निजी महाविद्यालयों की महती भूमिका है।

8 विभिन्न गतिविधियों के लिए संचालन व्यवस्था, प्रबंध एवं प्रशासन के तौर तरीके, नेतृत्व क्षमता, नवाचारी प्रयोग, सभी हितग्राहियों के बीच समन्वय तथा गुणवता प्रेरक और सृजनशीलता के निर्माण में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

उच्च शिक्षा में निजी महाविद्यालयों की सीमाएं –

उच्च शिक्षा में निजी महाविद्यालयों के आगमन से आँकड़ों में विस्तार और विकास हुआ है किन्तु वास्तविकता में तथा गुणवत्ता में कोई खास फर्क नहीं आया है। वर्तमान संदर्भ में प्रत्येक प्रकार की शिक्षा का व्यवसायिकरण हो चुका हैं और उच्च शिक्षा पूरी तरह से निजी संस्थानों की गिरफ्त में और निजी संस्थान दिंनोदिन अपनी पकड़ मजबूत करते जा रहे है। उच्च शिक्षा में निजी महाविद्यालयों की सीमाएं निम्नलिखित प्रकार स्पष्ट है –

1 निजी महाविद्यालयों के आगमन से दिखावटी सुविधाएं बढ़ी है तो भ्रष्टाचार और प्रवेश शुल्क और अन्य शुल्को में भारी इजाफा हुआ है।

2 निजी महाविद्यालयों में शोधार्थीयों सें शोध कार्य न करवाकर, औपचारिकताए पूरी कर, गलत तरीके से और अनुचित शोध पर भी भ्रष्टाचार से शोध उपाधि (डिग्री) प्रदान कर दी जाती है।

3 निजी महाविद्यालयों से कुछ सकारात्मक परिणाम आये है किन्तु इस उच्च शिक्षा के लाभ से निम्न स्तर वर्ग वंचित है। जो देश में असमानता को बढ़ा रहा है।

4 उच्च शिक्षा का पुरी तरह व्यवसायिकरण हो चुका है तो वर्चस्ववादी और शोषण प्रवृतिया दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

5 निजी महाविद्यालय, छात्रों के लिए अंको को प्राप्त करने का साधन मात्र बन कर रह गये है। जिससे बेरोजगारों की भीड़ बढ़ रही है।

6 वर्तमान आधुनिकता की होड़ में विद्यार्थियों में चरित्रहीनता, अनुशासनहीनता और कुसंस्कृति का विकास हो रहा हैं जो प्रगति की आड़ में कुछ भी करने को तैयार है।

7 मानवीय मुल्य और राष्ट्रीय एवं सामाजिक भावना का हनन हो रहा है। जो वर्तमान युवाओं में अपराध की प्रवृत्तियो को जन्म दे रहा है।

8 लाभ के लिए कम वेतन पर प्राध्यापक की व्यवस्था नें पाठ्यक्रम और अध्यापन गतिविधियों का बंटाडार कर दिया है और उनमें प्रशिक्षण का भी अभाव है।

म. प्र. उच्च शिक्षा में सुधार हेतु सुझाव –

1 वर्तमान समय में उपलब्ध समस्याओं पर ही शोधार्थियों को शोध कार्य करवाया जाए तथा नवीन खोज एवं आविष्कारों को प्रोत्साहन दे कर, नई नई तकनीको एंव प्रौद्यौगिकी का विकास किया जाए ताकि मानवीय जीवन ओर सुखमय हो सके।

2 महाविद्यालयों में उपलब्ध पाठ्यक्रमों को इस प्रकार संचालित किया जाए कि उससे छात्रों को रोजगार प्राप्त हो सके तथा गरीब एवं पिछडे छात्रों को निजी महाविद्यालयों में भी छात्रवृति की सुविधा दी जाए तथा प्रतिभावना छात्र को प्रोत्साहन राशि को प्रतिवर्ष आंबटित किया जाए।

3 सभी छात्रों में अनुशासन और चरित्र निर्माण तथा निर्णयन क्षमता के विकास हेतु नैतिक शिक्षा का एक पेपर सभी पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाए।

4 म.प्र. के निजी महाविद्यालयों को सरकार द्वारा नियंत्रित सहभागिता की आवश्यकता है ताकि महाविद्यालयों में भ्रष्टाचार न पनपे तथा शोषण प्रवृतियों पर लगाम लगाई जा सके।

5 म.प्र. के सभी महाविद्यालयों में प्रत्येक पाठ्यक्रम के लिए एक निश्चित शुल्क का निर्धारण सरकार द्वारा किया जाए और अधिक शुल्क लेने वालों पर कड़ी कार्यवाही की जाए।

6 शोध और व्यवसाय संचालन हेतु सभी महाविद्यालयों में अलग से प्रायोगिक कक्षाओं का आयोजन किया जाए ताकि छात्र शोध गतिविधियों में शामिल होने के साथ साथ व्यवसाय संचालन और उसमें उपलब्ध जोखिमों को बारीकीयों से समझ सके।

7 महाविद्यालयो में प्राध्यापक पद पर योग्य व्यक्ति को नियुक्ति किया जाए तथा इसके लिए उसके शैक्षणिक रूपरेखा तथा अनुभव को प्राथमिकता दी जाए और साथ ही साथ वह व्यक्ति उस पद के उचित मापदंडों को पुरा करता हो तथा शैक्षिक कार्य में नवीनता के लिए उसे प्रतिवर्ष प्रशिक्षण दिया जाए ताकि छात्रों की रूचि अध्यापन कार्य में बनी रहे।

8 शोध कार्य को उच्च कोटि का बनाने के लिए निश्चित विधियों और मापदण्डों के आधार पर शोध किया जाए तथा गलत तरीके से शोध और अनुचित शोध पर अंकुश लगाया जाए तथा भ्रष्टाचार से शोध उपाधि (डिग्री) प्राप्त करने वालो पर कड़ी कार्यवाही की जाए।

9 महाविद्यालयों में पाठयक्रम के लिए प्रवेश प्रक्रियाओं को सरल बनाया जाए ताकि इसकी जानकारी और सहभागिता में ग्रामीण जनता का अधिकतम योगदान हो।

10 समय में परिवर्तन तथा सामाजिक विचारधारा में बदलाव हेतु आम जनता को 'उच्च शिक्षा' जैसे शब्दों से पूरी तरह अवगत करना होगा।

11 महाविद्यालयों मे व्याप्त अतिथि विद्धान व्यवस्था को समाप्त किया जाए तथा महाविद्यालयो में प्राध्यापक पदो पर शीघ्र योग्य व्यक्ति को नियुक्ति किया जाए।

12 महाविद्यालयों मे पदस्थ सभी प्राध्यापको को अनुभव तथा प्रति पाँच वर्ष मे संबधित विषय की परीक्षा आयोजित कर, परीक्षा के उर्तीण करने पर पदोन्नति दी जाए।

अत: निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि उच्च शिक्षा के विकास और विस्तार में वैश्वीकरण का प्रभाव निजी महाविद्यालयों के रूप में देखा जा सकता है और भारत एवं म.प्र. उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात काफी परिवर्तन आया है। एक तरफ जहां निजी महाविद्यालयों से उच्च शिक्षा में गुणवता एवं छात्रों का मानसिक विकास हुआ है तो दुसरी तरफ विकास और प्रगति की होड़ में अपराधी प्रवृतियों में भी तेजी आई हैं जो विकृत सामाजिक विकास का परिचायक है।

उच्च शिक्षा में निजी महाविद्यालयों के प्रभाव से स्पष्ट है कि इसने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से समाज के सभी वर्गो को प्रभावित किया है तो वर्तमान में व्याप्त चुनौतियो के लिए निजी महाविद्यालयों की महत्वपूर्ण भूमिका है। निजी महाविद्यालयों की सीमाएं इनमें व्याप्त कमी का परिचायक है तथा सुझावों के माध्यम से इसमें सुधार और विकास की अपार संभावनाए है जो म. प्र. के उज्ज्वल भविष्य के लिए आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. प्रतियोगिता दर्पण, जनवरी 2014 पृष्ट 1156
2. Higher education in,www.google.com
3. Higher education essay in,www.google.com
4. Higher education wikipedia
5. Privatization wikipedia
6. M.p.higher education

****

सूक्ष्म, लघु मध्यम उद्यमों का कार्य निष्पादन स्थिति - एक अध्ययन

डॉ. सपना सोनी *

प्रस्तावना – भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछले पॉच दशक में सुक्ष्म,लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्र एक गतिशील क्षेत्र के रूप में परिलक्षित हुआ है। इन उद्यम ने बड़े उद्योग की तुलना में न्यूनतम पूंजी पर अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के साथ ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्र के उद्यौगीकरण एवं क्षेत्रीय असंतुलन की खाई को दूर करने में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन उद्यमों के संवर्धन विकास और प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के लिये शासकीय स्तर पर अनेक कार्यक्रमों का आयोजन, क्रेडिट नीतियों का निर्माण तथा उत्पादों और सेवाओं के लिए प्रभावशाली कार्यतंत्रो का आयोजन किया जाता रहा है।

देश में लघु सुक्ष्म एवं मध्य उद्यमों की आवधिक गणना अखिल भारतीय गणना परिषद द्वारा होती रही है। इन उद्यमों की नवीनतम गणना (चौथी गणना) 2009 में सम्पादित की गई जिसका प्रकाशन 2011-12 में हुआ। चौथी गणना के अनुसार सुक्ष्म लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम 2006 को भी काफी व्यापक किया गया जिसमें विनिर्माण के साथ सेवा उद्यमों की संकल्पना को भी जोडा गया। इस गणनान्तर्गत इन उद्यमों का कार्य निष्पादन मूल्याकन दो तरह से (पंजीकृत एवं अपंजीकृत) के माध्यम से किया गया। पंजीकृत अर्थात औपचारिक क्षेत्र की सम्पूर्ण गणना की गई तथा अपंजीकृत क्षेत्र की क्षेत्र की गणना नमूना सर्वेक्षण के माध्यम की गई है। उद्योग विकास एवं विनिमय अधिनियम सन् 1951 की प्रथम अनुसूचि में विनिर्दिष्ट, किसी उद्योग से संबंधित वस्तुओं के उत्पादन में लगा ऐसा उद्यम्, चाहे वह एकल स्वामित्व, हिन्दू अविभाजित परिवार, व्यक्तियों का समूह, सहकारी सोसाइटी, पार्टनरशिप अथवा उपक्रम के नाम से जाना जाता हो तथा विनिर्माण क्षेत्र में संलग्न हो, ऐसे उद्यमों में संयंत्र अथवा मशीनरी में किये गये निवेश में आधार पर सुक्ष्म उद्यमों में 25 लाख तक, लघु उद्यमों में 25 लाख से 5 करोड तक, एवं मध्यम उद्यमों में 5 से 10 करोड तक निवेश को सुक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्यम् माना जाता है। इसी प्रकार उद्यम यदि सेवा क्षेत्र में संलग्न हो तो किये गये निवेश में 10 लाख तक सुक्ष्म , 10 लाख से 2 करोड तक लघु उद्यम् 2 करोड से 5 करोड तक मध्यम उद्यम परिभाषित किया गया है। देश में सुक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्यमों की चौथी अखिल भारतीय गणना के दौरान पाई गई वृद्धि को निम्न तालिका क्रमांक 1 से पुष्ट किया जा सकता है।

तालिका क्रमांक - 1 (देखे अगले पृष्ठ पर)

तालिका से स्पष्ट है की देश में सुक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्यमों की इकाईयों में रोजगार निवेश एवं सकल उत्पाद की दृष्टि से वृद्धि दर कायम है।

कार्य निष्पादन स्थिति –

1. सकल घरेलु उत्पाद (जी डी पी) से इन इकाइयो की वृद्धि को मिलान किया जाये तो यह वृद्धि 2006-07 की तुलना में 2011-12 में 1198817 करोड़ रूपये बढकर 1790804 करोड़ रूपये अर्थात लगभग 37.52 प्रतिशत वृद्धि दर्ज होकर जी.डी.पी. में 7.28 प्रतिशत की भुमिका सेवा क्षेत्र से अधिक विनिमार्ण क्षेत्र में निभा रही है। देश में कुल सुक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्र में 40 प्रतिशत खुदरा व्यापार,8.75 प्रतिशत रेडिमेड, 6.94 खाद्य एवं पेय पदार्थो होटल रेस्टोरेन्ट एवं अन्य सेवा क्षेत्र में 13.61 प्रतिशत , आटोमोटिव 3.57 , विनिमार्ण 27.19 प्रतिशत इकाईया संलग्न है।
2. सुक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्यमों में सेवा क्षेत्र की तुलना में विनिमार्ण क्षेत्र में अधिक प्रगति परिलक्षित हुई।
3. सुक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्यमों की संख्या की विकास दर विनिमार्ण क्षेत्र में 22.46 , सेवा क्षेत्र में 40.60 , की दर से वृद्धि हुई।
4. सुक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्यमों की रोजगार की विकास दर विनिमार्ण क्षेत्र में 18.49 जब की सेवा क्षेत्र में 44.12 प्रतिशत की वृद्धि परिलक्षित हुई।
5. महिला उद्यमियों की संख्या में पंजीकृत क्षेत्र में 13.72 प्रतिशत जब कि अपंजीकृत क्षेत्र में 9.9 प्रतिक्षत की गणना परिलक्षित है।
6. उद्यमों के संबंध में 10 अग्रणी राज्यो में उतर प्रदेश (44.03 लाख), पश्चिम बंगाल(36.64 लाख) , तमिलनाडु (33.13 लाख), महाराष्ट्र (30.63), आंध्र प्रदेश(25.96 लाख), केरल(22.12 लाख), गुजरात (21.78 लाख), कर्नाटक (20.19 लाख), मध्य प्रदेश (19.33 लाख), राजस्थान (16.64 लाख) रहे है।
7. रोजगार के संबंध में 10 अग्रणी राज्यों में उतर प्रदेश (92.36 लाख), पश्चिम बंगाल (85.78 लाख), तमिलनाडु (80.98 लाख), आन्ध्र प्रदेश(70.69 लाख), महाराष्ट्र (70.04 लाख), केरल (49.62 लाख), गुजरात (47.73 लाख), कर्नाटक (46.72 लाख), मध्य प्रदेश (33.66 लाख) और उड़ीसा (33.24 लाख) रहे है।
8. सुक्ष्म लघु मध्यम उद्यम क्षेत्र में ग्रामीण क्षेत्र में 200.19 लाख सुक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्यम कार्यरत है जो कुल संख्या का 55.34 प्रतिशत है जब की शहरी क्षेत्रों में 161.57 लाख उद्यम कार्यरत है जो कुल उद्यमों की संख्या का 44.66 प्रतिशत है।
9. कार्यकलाप की प्रगति के अन्तर्गत 31.79 प्रतिशत उद्यम विनिमार्ण क्षेत्र में जबकि 68.21 सेवा क्षेत्र में संलग्न है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि सुक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्र में पंजीकृत (औपचारिक) क्षेत्र के साथ अपंजीकृत (औनोपचारिक) दोनों की क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद में बराबरी हिस्सेदारी रखते है। लेकिन जब बात नीतियों के क्रियान्वयन की आती है तो जितनी सक्रियता औपचारिक या

* प्राध्यापक (वाणिज्य) श.भी.ना.शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

पंजीकृत क्षेत्र में दिखती है दुसरे क्षेत्र के लिए नहीं दिखाई देती है। सबसे ज्यादा आवश्यकता वित्तीय सुविधा और सुरक्षा मुहैया करने के सबन्ध में होती है। यह समस्या पूर्ववर्ती सरकार द्धारा गठित रंगराजन समिति 2008 ने भी अपनी रिर्पोट में असुरक्षित समूहों को कम लागत पर वित्तीय सेवा में और समय से पर्याप्त ऋण पहुचॉने को सुनिश्चित करने की बात कही थी। इस चौथी गणना में रिजर्व बैक के डिप्टी गवर्नर आर गांधी के अनुसार महज 5.2 प्रतिशत ईकाइयों को संस्थागत स्त्रोत से पैसा मिला है जबकि 94 प्रतिशत इकाइयों को खुद ही इंतजाम करना पड़ता है

सुक्ष्म लघु मध्यम उद्यम क्षेत्र बड़ी औद्योगिक इकाइयों के लिए सहयोगी का भी काम करता है लेकिन कई बार बडी इकाइयाँ समय पर भूगतान नहीं करती है नतीजा ऊँची ब्याज दर पर इन्हें ऋण लेने के लिए विवश होना पड़ता है इस हेतु सुक्ष्म,लघु एवं मध्यम उद्यम विकास अधिनियम 2006 बनाया गया है, इन उद्यमों को बड़े उद्योगों देरी से मिलने वाले भुगतान की दशा में दंडात्मक ब्याज का भी प्रावधान है किन्तु अब आवश्यकता इस बात की है कि इन उद्यमियों को इस कानून की समुचित जानकारी तथा कदम उठाने की हिम्मत हो।

हाल ही में वित्त मंत्री ने 10 जूलाई 2014 को अपने बजट भाषण में सुक्ष्म लघु और मझोले उद्यम के लिए औपचारिक वित्त प्रवाह को बढाने के लिए विशेष समिति प्राप्त कर सुझाव देने (रिपोर्ट) हेतु कहा गया था। इन ही सब आधारों पर नई योजना प्रधानमंत्री जन धन योजना मिशन के रूप में लागू हुई जिसमें 26 जनवरी 2015 तक 7.5 करोड लोगों के खाते खुलवाये गये ताकि इन परिवारो को दुर्घटना बीमा सुविधा साथ साथ ऋण लेने में आसानी होगी इस योजना से बड़े पैमाने पर अपंजीकृत / औनोपचारिक क्षेत्र को फायदा मिलेया।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सुक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्योग विकास वार्षिक रिर्पोट 2013-13
2. योजना पत्रिका - अक्टूम्बर 2014
3. भारतीय वाणिज्य मंत्रालय वेबसाईट
4. आर्थिक सर्वेक्षण रिपोर्ट 2005-06

तालिका क्रमांक - 1

सूलम उद्यम इकाइयों का कार्य निशपादन रोजगार निवेश की स्थिति

क्र.	वर्ष	कुल कार्यरत उद्यम (लाख) में	रोजगार (लाख) में	नियत परिसम्पतियों का बाजार मूल्य (करोड़ रू. में)
1	2001-02	105	249	154,349
2	2002-03	109	260	162,317
3	2003-04	113	271	170,219
4	2004-05	118	282	178,699
5	2005-06	123	294	188,113
6	2006-07	361	805	868,543
7	2007-08 #	377	842	920,459
8	2008-09 #	393	880	977,114
9	2009-10 #	410	921	1,038,546
10	2010-11 #	428	965	1,105,934
11	2011-12 #	447	1011	1,183,332
12	2012-13 #	467	1061	1,269,338

स्त्रोत -

1. आर्थिक गणना 2005 केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय नई दिल्ली।
2. सुक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्यमों की चौथी अखिल भारतीय नमूना सर्वोक्षण 2006 से प्राप्त।
3. # अनुमानित रूप से प्रकाशित चौथी अखिल भारतीय गणना रिपोर्ट 2013-14।

****

विश्व व्यापार संगठन का भारतीय उद्योगों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन एवं विश्लेषण

राखी कुशवाह * राजेश्वरी बागौरे **

प्रस्तावना – विश्व व्यापार संगठन का भारतीय उद्योगों पर जो प्रभाव पडे है उससे देश में रोजगार के अवसर बढ़ने की बजाय घट रहें है। हांलाकि विदेशी माल के बाधा रहित आयात कम्प्युटरीकरण, देशी उद्योग धंधों के पतन एवं कार्यरत श्रमिकों एवं कर्मचारियों को ऐच्छिक सेवानिवृति (VRS) के कारण आज भी भारतीय उद्योगों में कमी महसुस हो रही है। लेकिन भारत में भारतीय उद्योगों का निर्यात व्यापार बढ़ रहा है। विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया जो है –

1. भारतीय उद्योगों का सर्वप्रथम उद्देश्यों देश में रोजगार की कमी का पता कर विश्लेषण करना है।
2. विश्व व्यापार संगठन का भारतीय उद्योगों में निरंतर विकास की अवधारणाओं को स्वीकार कर उसका क्रियान्वयन करना।
3. भारतीय उद्योगों में उत्पादन एवं व्यापार में वृध्दि के लिए वस्तुओं के उत्पादन एवं व्यापार का प्रसार करना ताकि विश्व का प्रत्येक राष्ट्र अधिक प्रगति कर सकें।
4. आयात शुल्कों में सरकार को बहुत कमी करना पड़ी है। आयात शुल्क की सामान्य दर घटाकर 10% कर दी गयी है, इससें भारतीय उद्योगों के उद्योग-धंधों पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ रहा है।
5. विश्व व्यापार संगठन का देश की प्रत्येक अनुकुलतम साधनों का उपयोग करना।

विश्व व्यापार संगठन का उद्योगों पर विश्लेषण – भारत के विदेशी व्यापार का विश्लेषण करते हुए हमने विश्व व्यापार संगठन की इस रिपोर्ट में यह बताया है, कि अप्रैल – सितम्बर 2008 के दौरान भारत में भारतीय बाजार में विदेशी माल का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। जिससें एक तरफ लोगों का श्रेष्ठ विदेशी वस्तुओं का उपयोग करने का अवसर मिल रहा है। हालाकि भारत के वस्तुगत निर्यात 94.98 अरब डॉलर के रहें है। लेकिन विश्व के 30 बड़े निर्यातकों कि सूची में भारत का नाम शामिल नही है।

व्यापार निष्पादन

वर्ष	निर्यात वृद्धि दर (%) में	आयात वृद्धि दर (%) में
2002-03	20.3	19.4
2003-04	21.1	27.3
2004-05	30.8	42.7
2005-06	23.4	33.8
2006-07	22.6	24.5
2007-08	29.0	35.5
2008-09	13.6	20.7
2009-10	(-) 3.5	(-) 5.0
2010-11 (अप्रैल-दिसम्बर)	29.5	19.01

ताजा उपलब्ध आंकडों के अनुसार (2010-11) की पहले 9 महिनों में डॉलर मुल्यों में वस्तुगत निर्यातों में 29.5 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है जबकि आयातों में वृद्धि 19.01 प्रतिशत कि रही है।

विश्व व्यापार संगठन का उद्योगों पर प्रभाव – भारत विश्व व्यापार संगठन का संस्थापक सदस्य होने के साथ भारत इसके समझौतों को लागू करने के लिए वचनबध्द है। संगठन के समझौतों एवं प्रावधानों को लागू करने के फलस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर इसका जो प्रभाव पड़ा है अथवा पड़ेगा, विश्व व्यापार संगठन के नियम कानुन भारतीय अर्थव्यव्स्था के समक्ष किस तरह कि चुनौतियाँ उत्पन्न कर रहें है, या करेंगे उसका परिक्षण करना आवश्यक होगा।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने हेतु व्यापार अवरोधों को कम करने तथा मात्रात्मक प्रतिबंधों को हतोत्साहित किये जाने कि परिप्रेक्ष्य में विश्व व्यापार संगठन भारत पर यह दबाव डालता रहा है, कि वह आयात शुल्कों को कम करे, उपभोग वस्तुओं के आयात पर लगाई जाने वाली पाबंदियों को हटाए तथा मात्रात्मक प्रतिबंध कम करे। विश्व व्यापार संगठन के प्रस्तावों के अनुरूप भारत सीमा शुल्कों को साल-दर-साल घटाता गया। आयात शुल्कों द्वारा किये गये संरक्षण को हटायें जाने के फल स्वरूप भारतीय उद्योगों को विदेशी वस्तुओं के साथ बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है।

लघु-आकार की इकाईयों पर प्रभाव – उदारीकरण, वैष्वीकरण, और निजीकरण पर आधारित आर्थिक सुधारों की अनवरत प्रक्रिया तथा विश्व व्यापार संगठन के आगमन के साथ अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक परिदृष्य के परिवर्तनों ने देश के लघु क्षेत्र के लिए नई चुनौतिया एवं अवसर उत्पन्न किए है, अब तक देश के लघु उद्योग क्षेत्र को शुल्कों कि दिवारों और आरक्षण नीति से आमतौर पर संरक्षण दिया गया था। परंतु शुल्कों का घटायें जाने के बाद लघु उद्योग क्षेत्र को सस्ते आयातो रूप में विदेशी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है। इस क्षेत्र के साथ 'बलिष्ठ- अतिजीविता का नियम लागू होने से बहुत सी लघुस्तर इकाईया बन्द होती जा रही है। लघुस्तर क्षेत्र की वास्तविक कठिनाई यह है कि उसके पास डम्पिंग विरोधी मामला तैयार करने के लिये पर्याप्त साधन नहीं है। इसके फल स्वरूप भारत का लघुउद्योग क्षेत्र जो विनिर्माण उत्पादन का 39 प्रतिशत उपलब्ध कराता है, 50 प्रतिशत रोजगार जुटाता है तथा 33 प्रतिशत निर्यात करता है, कृषि के बाद यह क्षेत्र 312.52 लाख लोगों को रोजगार दिलाता है।

* शोधार्थी, श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

विश्व व्यापार संगठन एवं भारत का विदेशी व्यापार – वर्ष 1995 में विश्व व्यापार संगठन में शामिल होने के उपरान्त भारत द्वारा भूमण्डलीय करण की नीतियों का अनुपालन करने के परिणाम स्वरूप विश्व निर्यात व्यापार में भारत का भाग जो 1990 में 0.5 प्रतिशत था, वह बढ़ कर 2005 में 1.0 प्रतिशत तक पॅहुच गया है।

औषधि व्यवसाय पर प्रभाव – बौध्दिक सम्पदा, अधिकार सम्बन्धी समझौतें का भारत के औषधी व्यवसाय पर भारी प्रभाव पड़ेगा ऐसा अनुमान है कि लगभग 70 प्रतिशत दवॉए इसके अंतर्गत आ जाएंगी इससें भारत में दवाईयों की किमतें 5 से 10 गुना तक बढ़ जाएंगी इसका भारत सहित विकासशील देश विरोध कर रहे है क्योंकि इससे इनके उद्योग एवं व्यापार बुरी तरह प्रभावित होंगे।

पुरानी कारों के आयात पर प्रभाव –भारत में पुरानी कारों के आयात की अनुमति नही दिये जाने से भारत के ऑटोमाबाईल उद्योग पर गहरी चोट लगी है आज पूरे विश्व में यह अनुभव किया जा रहा है कि जहॉ कहीं भी पुरानी कारों के आयात की अनुमति दी गई, उसका स्वदेशी कार उद्योग पर भारी असर पड़ा। फोर्ड इण्डिया के प्रबंध निदेशक फिल स्पेन्डर ने भारत में प्रयुक्त कारों के आयात नीति पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा है कि – 'दि सरकार हमसें पुछे कि पुरानी कारों के बारे में क्या करना चाहिए तो में सबसे पहले पुरानी कारों को भारत से बाहर रखने का परामर्श दुंगा' इसी तरह रिचर्ड स्वानों, प्रबंध निदेशक, जनरल मोटर्स का मत है कि पुरानी कारों पर 40–50 प्रतिशत की अपेक्षा 100 प्रतिशत आयात शुल्क होना चाहिए।

चीनी वस्तुओं का आयात – चूंकि चीन विश्व व्यापार संगठन का सदस्य है अत: चीनी डम्पिंग के विरूध्द् कार्यवाही विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों के तहत ही कि जा सकती है चीनी वस्तुंए ना केवल व्यापार के सामान्य मार्ग से आ रही है बल्कि इनका आयात नेपाल के रास्ते बिना शुल्क के गैर–कानुनी ढंग से भी किया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप देश के उपभोक्ता वस्तु उद्योगों पर काफी दुष्प्रभाव पड़ा।

भारतीय कृषि पर प्रभाव – कृषि के क्षेत्र में विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों को लागू किये जाने के फलस्वरूप कृषि एवं सम्बध्द् क्षेत्र में आयात पर से मात्रात्मक प्रतिबंध हटा कर विदेशी उत्पादों के लिए दरवाजे पुरी तरह से खोल दिये गए है। वर्तमान में कृषि एवं संबंधित वस्तुओं का देश के कुल निर्यात में अंशदान 10.5 प्रतिशत है वह पर्याप्त मात्रा में घट जाएगा।

उपसंहार –विश्व व्यापार संगठन (WTO) के देशों के बीच व्यापार की सुविधा है जो एक नियम आधारित बहुपक्षीय व्यापार संगठन है जो विश्व व्यापार संगठन के समझौतों पर बातचीत की है और दुनिया के व्यापारिक राष्ट्रों के थोंक द्वारा हस्ताक्षर किये और उनके संसदों में पुष्टि कर रहे है। विश्व व्यापार संगठन के इस प्रकार माना जाता है कि आर्थिक वृद्धि और विकास के लिए योगदान दें। इसका मुख्य समारोह में व्यापार से संबंधित नीतियों और सदस्य सरकारों के लिए आचार संहिता के निर्माण पर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए इक मंच के रूप में कार्य करने के लिए, इसके अलावा यह भी कुछ बुद्धिमानी समस्याओं की सुक्ष्म, लघु, और मध्यम उद्यम चेहरें पर प्रकाश डाला गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. ग्लोबसयन प्रबन्धन सम्मेलन 6 जून 2014 google .com
2. Wikipedia.com
3. Economic servey of india
4. Ugc upkar of commerce from "Manu Prakash Srivastav"

****

भारतीय अर्थव्यवस्था में गरीबी के कारण एवं प्रभाव का अध्ययन

डॉ. एस.सी. जैन * डॉ. राजेन्द्र परमार **

प्रस्तावना – भारत ही नहीं विश्व के सभी अल्प–विकसित या विकासशील देशों में जहाँ प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है आय की असमानताओं और बेरोजगारी ने कई बुराईयों को जन्म दिया है जिनमें से सर्वाधिक गंभीर बुराई निर्धनता या गरीबी हैं तात्पर्य यह है कि गरीबी असमानता और बेरोजगारी के मध्य बहुत नजदीकी संबंध हैं वैश्वीकरण की ओर तीव्रता से बढ़ते हुए भारत की सबसे बड़ी आर्थिक–सामाजिक चुनौती गरीबी की है। भारत में गरीबी हमेशा से ही एक मुलभूत समस्या रही है और समय समय सरकारो द्वारा गरीबी दूर करने के उपाय भी किये है। भारत की लगभग 60 फीसदी आबादी अभी भी भरपेट खाना नहीं खा पाती है। यह गरीबी लोकतंत्र एवं शान्ति तथा सुरक्षा के लिए चुनौती है। भुख का अपना व्याकरण होता है और उसमें अधिकारो के अलंकरण की कोई जगह नहीं होती हैं। देश में आर्थिक विकास के साथ् आर्थिक असमानताएं बढ़ती जा रहीं है।

भारत में गरीबी तय करने के लिए बनाये गये अनेक मापदण्ड विवादित बने हुए है। गरीबों की सख्या को लेकर योजना आयोग एवं विभिन्न संगठनो के संमकों में काफी अंतर हैं। योजना आयोग के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 2400 कैलोरी व शहरी क्षेत्रों के लिए 2100 कैलोरी भोजन प्रतिदिन जिन्हें नहीं मिलता है वह गरीब माना जाता हैं। पौष्टिकता को मौद्रिक रूप में देख जाए तो यह 107 रू. प्रति व्यक्ति प्रतिमाह गॉवों में तथा 122 रू प्रति व्यक्ति प्रतिमाह शहरी क्षेत्रों में आता हैं। वह गरीब माना जाता हैं। इसके बाद ग्रामीण क्षेत्रों में 11060 रू एवं शहरी क्षेत्रों में 11850 रू प्रतिगृह वार्षिक उपभोग ठ का मापदण्ड निर्धारित किया गया। योजना आयोग के नवीनतम आंकडों के अनुसार शहरी क्षेत्रों में 26 रू प्रतिदिन एवं ग्रामीण क्षेत्रों में 21 रू प्रतिदिन से कम मजदूरी पाने वाले व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे माने जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र द्वारा गरीबी व भूख पर आयेजित सम्मेलन में कहा गया कि विश्व में हर 03 सेकण्ड में एक आदमी भूख से मर रहा हैं एन. एस. एस. के अनुसार 'देश में गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वालों की कुल जनसंख्या में 19.7 प्रतिशत अनुमानित हैं। यह सामान्य धारणा हैं कि जब किसी देश का विकास होता हैं तो वहां गरीबी कम होती हैं विकास एवं गरीबी में धनात्मक सहसंबंध माना जाता हैं लेकिन कुछ विद्धानों के मतानुसार देश में विकास के साथ–साथ गरीबी कम होने के स्थान पर बढ़ रही है। सरकारी आंकडों के विपरीत सुरेश तेन्दुलकर समिति की रिर्पोट के अनुसार भारत में गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वालो लोगों का कुल आबादी पर 37.2 प्रतिशत है तथा छठी पंचवर्षीय योजना में भी यह बात कही गई की हमारे देश में लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है। विश्व बैंक के अनुसार भारत में अत्यंत गरीबी से जीवन गुजारने वाले लोगों का प्रतिशत वर्ष 1990 में 51.3 प्रतिशत तथा वर्ष 2005 में 41.6 प्रतिशत था जो वर्ष 2015 में 31.5 करोड (25.4 प्रतिशत) रहने का अनुमान है।

सामान्यत: जीवन, स्वास्थ्य तथा दक्षता के लिए न्यूनतम उपभोग की आवश्यकताओं को प्राप्त करने की असमर्थता को गरीबी कहते है। जब समाज का बहुत बड़ा भाग न्यूनतम जीवन स्तर को भी प्राप्त नहीं कर पाता हैं अर्थात केवल निर्वाह स्तर पर ही गुजारा करता हैं तो इसे समाज में व्यापक निर्धनता की संज्ञा दी जाती है। गरीबी की अवधारणा को सापेक्ष एवं निरपेक्ष दोनों रूप में देखा जा सकता हैं। सापेक्ष गरीबी से अर्थ आय की असमानताओं से होता है जब दो देशो की प्रति व्यक्ति आय की तुलना करते है तो उसमें भारी अन्तर पाया जाता है, इस अन्तर के आधार पर हम गरीब अमीर देश की तुलना करते है, जिसे सापेक्षिक गरीबी कहते है। निरपेक्ष गरीबी को सामान्यत: जीवन की आवश्यकताओं को जुटानें के लिए पर्याप्त धन के अभाव के रूप में परिभाषित किया जाता हैं। इसमें गरीबी से अर्थ मानव की आधारभूत आवश्यकताओं जैसे खाना, कपड़ा, स्वास्थ्य सहायता आदि की पुर्ति हेतु पर्याप्त वस्तुओं व सेवाओं को जुटा पाने में असमर्थता से होता है। अमेरिका जैसे राष्ट्रो में गरीबी की माप निरपेक्ष आधार पर की जाती है। इसकें अंतर्गत गरीबी की माप वार्षिक आय के स्तर पर की जाती है।

देश में निर्धनता अनुपात एंव निर्धनों की संख्या के संबंध में ताजा आँकड़ें जुलाई 2013 को योजना आयोग द्वारा जारी किये गये। तेंदुलकर समिति द्वारा सुझाए गए नए फॉमूले के आधार पर वर्ष 2009–10 के लिए 19 मार्च 2012 को जारी किए गऐ थे। इस फाँमूले के अनुसार निर्धनता रेखा का आंकलन भोजन में कैलोरी की मात्रा के बजाय, प्रत्येक राज्य में निर्धनता रेखा के लिए शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग व्यय के आधार पर अलग–अलग निर्धारित किया गया है। अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में 816.8 रू प्रतिमाह व शहरी क्षेत्रों में 1000 रू प्रतिमाह के उपभोग व्यय को जहाँ वर्ष 2011–12 में निर्धनता रेखा की पहचान की गई। ग्रामीण क्षेत्रों में ओडिशा में जहाँ यह 695 रू न्यूनतम हैं वहीं नागालैण्ड में यह सर्वोच्च 1270 रू है। शहरी क्षेत्रों में छतीसगढ़ में 849 रू न्युनतम है। तथा नागालैण्ड 1302 रू सर्वोच्च है। योजना आयोग के वर्ष 2011–12 के अनुसार देश में निर्धनों की सर्वाधिक सख्या वाले राज्य क्रमश: उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र है। जबकि निर्धनता अनुपात की दृष्टि से पहले तीन राज्य क्रमश: छतीसगढ़, झारखंण्ड, मणिपुर है। राज्यों में न्युनतम निर्धनता अनुपात क्रमश: गोवा (5.9%) केरल (7.05%) हिमाचल प्रदेश(8.0%) है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय अर्थव्यवस्था में व्याप्त गरीबी के कारण एवं प्रभाव, सुझावों को प्रस्तुत किया गया है।

*प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.) भारत
**प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.) भारत

गरीबी के कारण –

1. अवसरो में असमानता और भ्रष्टाचार के करण योग्य व्यक्ति को योग्य स्थान नहीं मिल पाता है, जिससे वह पिछड़ जाता है और समाज में गरीब और गरीब होता चला जाता हैं।
2. भारत में ज्यादातर जनता निम्न और मध्यम वर्ग की है और यहां प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर उद्योग लगाने के बजाए नौकरी करना पसंद करता है। जिससे उद्योग में पिछड़ापन पाया जाता है।
3. भारत में राजनैतिक चेतना का अभाव है। यहां ज्यादातर व्यक्ति जाति, भाई भतीजावाद और भ्रष्टाचार में लिप्त होकर मतदान करते है तथा भारत में सभी राजनितिक पार्टीयों कों चुनाव के समय ही गरीबों का दर्द दिखाई देता है। जो भारतीय समाज में गरीबी का बड़ा कारण है।
4. भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत व्यवस्था तथा कई सामाजिक कुप्रथाएं जैसे साहूकारी प्रथा, जमीदारी प्रथा, मृत्युभोज देने की प्रथा, विवाह में आय से अधिक खर्च करना, जादु टोना, झुठी प्रतिष्ठा आदि देश की आर्थिक प्रगति में बाधक है। जिससे गरीबी का स्तर बना हुआ है।
5. भारत मे बढ़ती जनसंख्या, पुँजी की कमी, अविकसित व्यवसाय, रोजगार प्रधान शिक्षा प्रणाली का अभाव, मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों का अपूर्ण दोहन, बढ़ती बेरोजगारी और खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती बेरोजगारी आदि गरीबी के बड़े कारण है।
6. शिक्षा और जागरूकता कमी से प्रत्येक व्यक्ति अपना आर्थिक विकास नहीं कर पाता है और उसमें गरीबी के कारण स्वस्थ मानसिकता का विकास नहीं हो पाता है और वह हमेशा परंपरागत तरीके से चलता है।

गरीबी का प्रभाव –

1. भ्रष्टाचार और अवसरों में असमानता के कारण समाज में अपराधी प्रवृतिया बढ़ रही है।
2. गरीबी के कारण बच्चों में कुपोषण एंव व्यक्तियों में निम्न जीवन स्तर पाया जाता हैं जिससे उनकी मानसिक सोच और शारीरिक स्वास्थ पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
3. भारत में निर्धनता के कारण अशिक्षा एवं जागरूकता के अभाव के कारण परिवार नियोजन न अपनाने के कारण जनसंख्या वृद्धि हो रही है।
4. भारत में व्याप्त जाति व्यवस्था एवं कुप्रथाओं के कारण उद्योगों में पिछड़ापन पाया जाता है। तथा निष्क्रियता एवं भाग्यवादीता से भिक्षावृति में वृद्धि हो रही है।
5. गरीबी से त्रस्त लोगों द्वारा गॉवों से शहरों की तरफ रूख किया जाता हैं जिससे शहरी क्षेत्रों में गंदी बस्तियों का निर्माण हो रहा हैं और कई समस्याए उत्पन्न हो रही है।
6. गरीबी के कारण व्यक्तियों की आय कम होती है तो व्यय कम होता और इस व्यय से बाजार, उद्योग, प्रति व्यक्ति आय, राष्ट्रीय आय, पुँजी निर्माण आदि पर इसका विपरित प्रभाव पड़ता है और इसका प्रभाव संम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है।

गरीबी निवारण केसुझाव –

1. गरीब वर्ग के लिए शिक्षा एवं जागरूकता के लिए अलग से नीतियों का निर्माण करना होगा तथा उन्हें उद्योग के लिए प्रोत्साहित करना होगा।
2. सरकारों द्वारा चलाई जा रही योजनाओं का सही तरह से क्रियान्वयन करना होगा ताकि योजनाओं का लाभ सही हाथों में पहुच सके।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं कुटीर उद्योगों को बढ़ाने के साथ-साथ पशुपालन, वानिकी व सहायक उद्योगों को भी बढ़ाना होगा।
4. सरकार को भारतीय परिस्थितियों और जमीनी स्तर पर मुलभूत समस्याओं को ध्याान में रख कर नीतियों का निर्माण करना होगा ताकि संम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का विकास हो सके।
5. ग्रामीण क्षेत्रों में विकास हेतु सार्वजनिक कार्य तेजी से शुरू कर पुरा किया जाना चाहिए इसके लिए सड़के, नहरे, कुएं ग्रामीण मकान, बिजली, पानी की व्यवस्था आदि कार्य किये जा सकते है जिससे बेरोजगारी और निर्धनता दोनों कम होगी।
6. जनशक्ति नियोजन, कृषि आधारित उद्योग धंधों का विकास, प्राकृतिक संसाधनों का उचित दोहन, पुँजी निर्माण में वृद्धि, मुद्रा स्फीर्ति पर नियंत्रण, समान अवसरों की उपल्ब्धता, आर्थिक विकास में तेजी, ग्रामीण औधोगीकरण, सामाजिक सेवाओं का विस्तार आदि उपाय कर गरीबी पर नियंत्रण किया जा सकता है।

अत: निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि गरीबी एक गंभीर समस्या है किन्तु सही दिशा में प्रयास और उचित संचालन तथा वास्तविक क्रियान्वयन से इसका निदान संभव है, इसमें कोई दो राय नहीं है कि विकास में अनेक बाधाए होती है, लेकिन इन बाधाओं को धीरे धीरे दूर किया जा सकता है यदि ऐसा होना सम्भव न होता तो कोई भी अर्द्ध विकसित देश विकसित नही हो सकता था।

अत: अन्त में यही कहा जा सकता है कि अल्प विकसित व अर्द्ध विकसित देशो में गरीबी का कुचक्र तो चलता है, लेकिन उसको धीरे धीरे तोड़ा जा सकता है और देश का विकास किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सामान्य अध्ययन, आंनद कुमार पाण्डेय एंव श्रीमती अर्चना पाण्डेय, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ आकादमी, भोपाल, तृतीय(संशोधित परिवर्द्धित) 2013
2. योजना आयोग, नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002)
3. राजस्थान पत्रिका, 11 फरवरी 2007 (रविवारीय)
4. भारत का आर्थिक और सामाजिक विकास, मैगबुक, भारतीय अर्थव्यवस्था, अरिहंत पब्लिकेशन्स इंडिया लिमिटेड, वर्ष 2013
5. सामान्य अध्ययन, आंनद कुमार पाण्डेय एंव श्रीमती अर्चना पाण्डेय, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ आकादमी, भोपाल, तृतीय(संशोधित परिवर्द्धित) 2013
6. व्यष्टि अर्थशास्त्र, डॉ. जे.सी. पंन्त, डॉ. जे.पी. मिश्रा, साहित्य भावन पब्लिकेशन्स, वर्ष 2013,
7. प्रतियोगिता दर्पण (लघु अतिरिक्ताक) सामान्य अध्ययन अर्थव्यवस्था एक दृष्टि में, द्वितीय संशोधित एंव परिवर्द्धित सस्करण 2013-14ब
8. भारतीय आर्थिक नीति, डॉ. पी.डी. महेश्वरी, डॉ. शीलचंद गुप्त, कैलाश पुस्तक सदन भोपाल, वर्ष 2013

****

रतलाम के दो बत्ती क्षेत्र में विज्ञापन माध्यमों का अध्ययन

प्रो. विनोद जैन *

शोध सारांश – सौंदर्य मानव के मन मस्तिष्क के लिए एक आवश्यक तत्व है क्योंकि वह उसे सुकून देता है। यह कहा जाए कि सौंदर्य मानव मस्तिष्क के लिए भोज्य पदार्थ है तो अतिश्योक्ति न होगी। सौंदर्य प्रेमी–प्रेमिका के रूप से आरम्भ होकर दिव्य सौंदर्य के अनुभव हेतु आध्यात्मिक आरोहरण की ओर प्रेरित करता है और यही आत्मा के उत्कर्ष का साधन बनता है। अखोरी गंगाप्रसाद जी ने पद्माकर को 'सौंदर्य का कवि माना है। सौंदर्य भाव क्षेत्र का सामंजस्य है। भावों के इस सामंजस्य में आकर्षण उत्पन्न होता है। और संवेदनशीलता जागृत होती है और प्रेम का संयोग होता है।

शब्द कुंजी – सौंदर्य, प्रेमी–प्रेमिका, अलौकिक आनन्द, संवेदनशीलत ।

प्रस्तावना – रतलाम मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र का प्रमुख व्यवसायिक शहरो में से एक है, रतलाम की अपनी पहचान तीन कारणो से है– रतलामी सेवं, स्वर्णनगरी, एंव पश्चिमी रेलवे का प्रमुख रेलवे स्टेशन। रतलाम का पुराना व्यवसायिक क्षेत्र पुराने शहर में स्थित है लेकिन बाद में धीरे–धीरे रतलाम का दो बत्ती क्षेत्र भी व्यवसायिक क्षेत्र के रूप में विकसित होगया है। दोबत्ती क्षेत्र के बाजार का स्वरूप आधुनिक एंव परम्परागत का मिश्रित रूप है अत: यह जानने की जिज्ञासा हुई कि क्षेत्र में विज्ञापन के कौन – कौन से माध्यमो एंव साधनो का उपयोग किस तरह से हो रहा है।

विज्ञापन के माध्यम से आशय– विज्ञापनकर्ता जिन साधनो के माध्यम से अपनी वस्तुओ, सेवाओ, या विचारो के संबंध में वाछितं बाजारो तक पंहुँचते है उन्हें विज्ञापन माध्यम कहा जाता हैं। वस्तुत: विज्ञापन माध्यम ऐसा भौतिक साधन है जिसके द्वारा एक निर्माता अथवा वितरक अपनी वस्तुओ या सेवाओ के संबंध में उपभोक्ताओ को जानकारी देता है और उनके व्यवहारो को प्रभावित करता है।

समाचार पत्रीय विज्ञापन– समाचार पत्रीय विज्ञापन आधुनिक युग का सार्वाधिक प्रचलित, लोकप्रिय, एंव महत्वपूर्ण साधन है जिसके द्वारा जन सामान्य को सूचित किया जाता है। इलेक्ट्रानिक उत्पाद, कृषि उपकरण विक्रेता एंव मोबाईल विकेता द्वारा इस माध्यम का प्रयोग तीन प्रकार से किया जाता है– अ. स्थानीय समाचार पत्र में स्वयं की फर्म का विज्ञापन ब. समाचार के वर्गीकर्त विज्ञापन में विज्ञापन करते है जो साज सज्जा रहित एंव मितव्ययी होता है स. उत्पादक द्वारा राष्ट्रीय एंव प्रादेशिक समाचार पत्रो में उत्पादक के साथ विक्रेता का नाम, साज सज्जा विज्ञापन जो आकर्षक रंगो चित्रो आदि के माध्यम से सुसज्जित होता है । पत्रिकाओ में इस क्षेत्र में इस माध्यम के विज्ञापन नहीं होते है।

जर्नलस् एंव निर्देशिकाए– इस माध्यम का उपयोग कृषि उपकरण विक्रताओ द्वारा किया जाता है। स्थानिय टेलिफोन डायरेक्टरी में विक्रेताओ द्वारा अपना विज्ञापन दिया जाता है।

बाहय विज्ञापन–

पोस्टर्स – पोस्टर्स से आशय लिखित एंव मुद्रित एंव चित्रित विज्ञापनो से है जिन्हें कागज, कार्डबोर्ड, धातु की प्लेटो,फ्लेक्स, एक्रेलिक शीटो के माध्यम से दीवारों, सार्वजनिक चौराहो, सडको के किनारे, कार्यालयो के अंदर एंव बहार चिपकाया एंव लगाया जाता है जिससे ग्राहक आकर्षित हो इस माध्यम का क्षेत्र में बहुतायात उपयोग होता है।

यातायात विज्ञापन– यह क्षेत्र का लोकप्रिय विज्ञापन का साधन है जो कि शहर में भ्रमण करने वाले आटो पर फ्लेक्स बैनर लगाकर किया जाता है। होटल व्यवसायियो द्वारा बसो के अंदर स्टीकर लगाकर इस तरह का विज्ञापन किया जाता है।

विज्ञापन बोर्डो – विज्ञापन बोर्ड ये आकार में बडे होकर किसी एक उत्पाद या एक निर्माता की वस्तु की जानकारी प्रदान करते है जिसमें प्राय: शब्दो का प्रयोग कम होकर चित्र द्वारा सरल तरीके से जानकारी देने का प्रयास किया जाता है यह माध्यम क्षेत्र के चौराहो पर तथा सडक के किनारो पर हो रहा है।

सेंडविच विज्ञापन– इस तरह के विज्ञापन क्षेत्र की फर्मो द्वारा तीन पहिया साईकिल के माध्यम से दोनों साईडो में तथा पीछे फ्लेक्स के बोर्ड लगाकर किया जाता है पुरे शहर में इस साईकिलो का भ्रमण करवाया जाता है।

आकाशलेखन विज्ञापन – कभी कभी या विशेष अवसर पर जैसे त्यौहार आदि पर गुब्बारो के माध्यम से क्षेत्र में चौराहो या भवन के ऊपर के हिस्सो पर इस माध्यम का उपयोग किया जाता है।

विद्युत सजावट द्वारा– आजकल फर्म के नाम को आधुनिक तरीको द्वारा लाईटिंग ट्यूब से रात्रि में आकर्षक कलर में विज्ञापन कर ग्राहको को आकर्षित किया जाता है। त्यौहारो के अवसर पर विषेश लाईटिगं भी की जाती है।

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

आजकल एल.ई.डी. का प्रयोग भी काफी बढ गया है।

डाक द्वारा विज्ञापन – इस माध्यम का उपयोग कृषि उपकरणो के व्यवसायी नये माल की सुचना देने,मूल्य परिवर्तन की जानकारी देने आदि के लिये करते है।

मनोरंजन विज्ञापन–

रेडियो – दोबत्ती क्षेत्र में आकाशवाणी का विविधभारती केन्द्र का प्रसारण स्थानीय स्तर पर होता है

टेलिविजन– टेलिविजन एक ऐसा उपकरण है जो शब्दो एंव दृश्यो को दर्शको के समक्ष प्रस्तुत करता है जो विज्ञापन का एक प्रभावी माध्यम है। लोकल केबल आपरेटर द्वारा इस प्रकार के विज्ञापन किये जाते है।

सिनेमा स्लाइड – बाइक एंव कार विक्रताओ द्वारा अपने विभिन्न माडलो की जानकारी अपने शोरूम में स्थापित बडे टी.वी. स्क्रीन पर दी जाती है एंव सिनेमा हाल में स्लाइड द्वारा किया जाता है।

मेला एंव प्रदर्शिनियो – मेलो का चलन हमारे देश में प्राचीन काल से है षहर में समय समय पर तीन मेंले लगते है – नवरात्री मेंला, त्रिवेणी मेला, तेजाजी का मेंला इन मेलो में उत्पादको एंव स्थानीय फर्मो द्वारा विज्ञापन किया जाता है।

क्रय केन्द्र विज्ञापन–

काउटंर सजावट – इस माध्यम को क्षेत्र में अधिकांश रिटेल व्यापारी उपयोग करते है तथा दुकान पर आये ग्राहको को प्रभावित करने के लिए है जो कि इस माध्यम का निम्न प्रकार से प्रयोग करते है– दुकान के प्रवेश पर कांच की दिवार बनाकर जिससे की दुकान का आंतरिक दृष्य सम्पूर्ण रूप से बाहर से ग्राहक को दृष्टिकोचर होता है। रेडिमेंड व्यवसायी कांच की दीवार का उपयोग वस्त्रो को आकर्शक रूप से लगाकर करते है एंव कहीं – कहीं चित्र वाले फ्लेक्स लगाकर प्रदर्शन किया जाता है।

कांच के काउंटर – ये पारदर्शि काउंटर मिठाई एंव नमकीन के विक्रेता तथा मोबाईल शॉपो द्वारा अपनी वस्तुओ को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए करते है इसी तरह से कुछ विक्रेता अपनी सम्पूर्ण फर्नीचर में कांच के दरवाजे का प्रयोग करते है जिससे उसकी दुकान का सम्पूर्ण माल कि जानकारी आकर्षक ढंग के साथ सरलता से ग्राहको को हो सके।

दुकानो में विस्तृत दिखावट– क्षेत्र के कुछ विक्रेता मालो की तरह प्रत्येक छोटी और बडी वस्तु को वर्गीकृत करके दृश्य रूप में व्यक्त करते है जिससे ग्राहक अपनी आवश्यकता अनुसार वस्तुओ को लेकर काउंटर पर बिलिंग करवाता है।

दुकान के अंदर वस्तु को कार्य रूप में प्रदर्शित करना– इस माध्यम का उपयोग इलेक्ट्रानिक उपकरणो के विक्रेता द्वारा वस्तुओ का डेमो देकर किया जाता है जिससे क्रेता वस्तुओ की जानकारी प्रत्यक्ष लेकर अपनी आवष्यकतानुसार वस्तु खरीदने में सुविधा होती है।

वातायन सजावट– यह माध्यम राह चलते व्यक्ति को अपनी और आकर्षित करता है इसका उपयोग क्षेत्र में निम्न तरीको से दृश्टिकोचर होता है – वस्तुओ को बहार प्रदर्शित करना, वस्तुओ की खाली पैकिगं बहार प्रदर्शित करना, प्लास्टिक के माँडल पर वस्तु को बहार टागंकर प्रदर्शन करते है। क्षेत्र में एकरेलिक शीट कागज की प्रिंटेड, फ्लेक्स आदि पर ब्राण्ड नेम के विज्ञापनो का प्रयोग बहुतायात में होता है, फर्मो के नाम के साइन बोर्ड, फ्लेक्स, धातु, एक्रेलिक शीट आदि में होता है।

अन्य माध्यम–

लाउड स्पीकर– यह क्षेत्र में लोकप्रिय विज्ञापन का साधन है इसके अंतर्गत स्थानीय तौर पर तांगो, रिक्शा, एंव मोटरगाडी पर वस्तु की जानकारी, विशेष आफर, नई वस्तुओ की जानकारी, सरकारी योजनाओ की जानकारी के लिये किया जाता है।

विशिष्ट एंव अभिनव विज्ञापन– यह तरीका संभावित ग्राहको को आकर्षित करने के लिये किया जाता है जिसमें उनहे कोई उपहार देकर जानकारी की प्रिटंडे साम्रगी भी दी जाती है इसका उपयोग सीए परीक्षा के दौरान कोचिगं की जानकारी, एंव अन्य परीक्षाओ में प्रोफेशनल कोर्स की जानकारी देने के लिए होता है।

प्रदर्शन द्वारा– किसी वस्तु का प्रदर्शन उसकी प्रयोग विधि के साथ किया जाता है जिससे ग्राहक उसकी उपयोगिता जान सकता है इस तरह का प्रदर्शन कटलरी एवं वाटर फील्टर आदि के लिये किया जाता है।

इंटरनेट पर विज्ञापन– कुछ विक्रेताओ द्वारा नेट पर अपनी साइड बनाकर इस माध्यम का उपयोग किया जाता है।

निष्कर्ष– क्षेत्र में विज्ञापन का स्वरूप, आकार, एंव रीति आदि को देखकर प्रतीत होता है कि छोटे बडे सभी व्यवसायि विज्ञापनो के किसी न किसी माध्यम का प्रयोग कर रहे है अर्थात विज्ञापन का महत्व बड रहा है।

संदर्भग्रंथ सूची:–

1. विपणन के सिद्धांत डॉ एस. के. भारल।
2. विपणन के सिद्धांत प्रो. भदभदा।
3. दैनिक भास्कर 2014–15
4. नईदुनिया 2014–15

****

उच्च शिक्षा में परीक्षा पद्धति एवं मूल्यांकन

डॉ. आर. के. वर्मा *

प्रस्तावना – महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में दी जाती रही, उच्च शिक्षा का पांरपरिक अर्थ कला, विज्ञान और वाणिज्य की शिक्षा से रहा है। 20वी सदीं के अंतिम दो दशको में उसका प्रारूप बदलने लगा। और 21वीं सदी में आकर पारंपरिक विषय सिकुड गये तथा उच्च शिक्षा का अर्थ हो गया तकनीकी शिक्षा, प्रौद्योगिकी शिक्षा, नक्षत्र विज्ञान, कास्मोलॉजी और रोबाटिक्स की शिक्षा। वर्ष 1964-66 में भारत सरकार द्वारा गठित कोठारी आयोग ने जब अपनी रिपोर्ट दी तो प्रारंभ में ही कहा था कि उच्च शिक्षा उत्कृष्टता की शिक्षा हो, उत्पादकता की शिक्षा हो, राष्ट्रीय चरित्र निर्माण की शिक्षा हो आत्म निर्भर बनाने के हूनर की शिक्षा हो। आज देश में 659 विश्वविद्यालय और तीस हजार से अधिक महाविद्यालय है। जिसमें से 17 विश्वविद्यालय व 405 महाविद्यालय म.प्र. में है। इसके बावजूद देश व प्रदेश में शिक्षा को वह मुकाम नहीं मिल पाया हैं जिसका सपना स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने देखा था।

परीक्षा ज्ञानार्जन की गहनता और गुणवत्ता का निष्पक्षता पूर्वक मूल्यांकन की प्रक्रिया है। इसे शिक्षा की सफलता का मापदण्ड माना जाता है। यह किसी न किसी रूप में हर युग में रही है। प्राचीनकाल में गुरू अपने विषयों के अतिरिक्त उनके सम्पूर्ण व्यवहार, आचरण, चरित्र, संस्कार, व गुरू निष्ठा की परीक्षा लिया करते थे। आरूणि, उपमन्यु, अर्जुन, युधिष्ठिर, एकलव्य एवं कर्ण इसके उदाहरण है।

उच्च शिक्षा में वर्तमान परीक्षा पद्धति में परीक्षा की शुचिता, विश्वसनीयता, वैधता, गोपनीयता, उसकी सार्थकता एवं औचित्य पर प्रश्नचिन्ह उपस्थित हो रहे है। सम्पूर्ण परीक्षा तंत्र की कमियॉ एवं दुर्बलताएं उच्च शिक्षा जगत में एक बहुत बडी चुनौती के रूप में उभरती जा रही है। आजादी के बाद भारत में पहली बार राधाकृष्णन आयोग, मुदालियर और कोठारी, राममूर्ति, यशपाल समिति एवं भारतीय ज्ञान आयोगो ने भी परीक्षा प्रणाली पर कई सुझाव दिये। **राधाकृष्णन आयोग के शब्दो में 'उच्च शिक्षा में अगर कोई सुधार करना हो तो परीक्षा प्रणाली में करना होगा।'** इस आयोग ने यह भी चेतावनी दी थी कि इस बारे में शीघ्र कदम न उठाये गये तो हमारा शिक्षा का ढॉचा ही चरमरा जायेगा। आयोग की यह टिप्पणी समयानुकूल प्रतीत होती हैं

परीक्षा सफलता की प्रथम सीढ़ी है यह विद्यार्थी को उसकी सफलता और असफलता का बोध कराती है। यह विद्यार्थी की मानसिक योग्यता, रूचियों, अभिरूचियों, अभिवृत्ति एवं व्यक्तित्व विकास के विभिन्न पक्षों की जॉच का माध्यम है। इसके द्वारा न केवल विद्यार्थियों की उपलब्धियों का पता चलता है। वरन कक्षाओं में प्रदान की जाने वाली शिक्षा एवं पाठ्यक्रमों की गुणवत्ता, अध्यापन स्तर, शिक्षण की प्रभावशीलता आदि का मूल्यांकन भी आसानी से हो जाता है। यह किसी भी शिक्षा प्रणाली के मूल्यांकन का आधार होती है। **एन.सी.ई.आर.टी के अनुसार मूल्यांकन एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि किस सीमा तक उद्देश्य प्राप्त किये गये है? कक्षा में दिये गये अधिगम अनुभव कहा तक प्रभावशील सिद्ध हुए है और कहा तक शिक्षा के उद्देश्य पूर्ण किये गये है।'**

मूल्यांकन शैक्षणिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। प्रयत्नों की सफलता,असफलता या आंशिक सफलता के कारणो का जिस कारण एवं जिस प्रकार पता लगाया जाता है, उसी का नाम मूल्यांकन है। विद्यार्थियों में बौद्धिक, मानसिक एवं व्यावहारिक परिवर्तन अपेक्षा अनुसार हुए या नहीं? यदि हुए है तो किस सीमा तक और नहीं हुए है तो क्यों? इसका पता परीक्षा माध्यम से ही लगाया जा सकता है। शिक्षण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसके निम्न पॉच आधारभूत तत्व होते है। -

1. शिक्षक 2. विद्यार्थी 3. पाठ्यक्रम
4. परीक्षा पद्धति 5 मूल्यांकन

1. शिक्षक- यह एक ऐसा स्त्रोत है जिससे विद्यार्थी अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफलता प्राप्त कर सकता है। शिक्षक शैक्षिक प्रक्रिया का आधारभूत तत्व है जिसके अभाव में शिक्षा प्रक्रिया पूरी नहीं हो सकती है।

2. विद्यार्थी/शिक्षार्थी – शिक्षण प्रक्रिया विद्यार्थी/शिक्षार्थी के बिना संभव नहीं है। शिक्षार्थी ही वह तत्व है जिसे शिक्षा प्राप्त करनी होती है।

3. पाठ्यक्रम- शिक्षण प्रक्रिया का एक महत्पपूर्ण एवं प्रमुख तत्व पाठ्यक्रम है। पाठ्यक्रम ही वह साधन है जिससे शिक्षक शिक्षार्थी को शिक्षा देता है तथा शिक्षण प्रक्रिया चलती है। शिक्षार्थी को क्या सिखाना है,यह निर्धारण ही पाठ्यक्रम है।

4. परीक्षा पद्धति – यह वह साक्ष्य है जो सफलता या असफलता का बोध कराती है।

5. मूल्यांकन – यह वह प्रक्रिया है जिसके बिना शैक्षणिक प्रक्रिया अधूरी रहती है। विद्यार्थी अपनी कमियों तथा सुधार के संबंध में इसके द्वारा विचार करते हैं तथा शिक्षक भी यह जान पाते है कि विद्यार्थी किस सीमा तक लाभान्वित हो रहे है। शासन भी परीक्षा परिणामों के आधार पर शिक्षा संबंधी नीति का निर्धारण करता है। अत: वर्तमान वैश्वीकरण,उदारीकरण एवं कम्प्युटरीकरण के युग में हमे **'उच्च शिक्षा में परीक्षा पद्धति एवं मूल्याकन'** षषिय पर पुन: विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। हमारी आज की परीक्षा प्रणाली दोषों से परिपूर्ण है। इसका समाज एवं विद्यार्थियों पर बहुत विपरीत प्रभाव पडा है। इसका सबसे बडा दोष है कि सम्पूर्ण शिक्षा परीक्षा पर ही केन्द्रित होती जा रही है। स्कूलों में मासिक,त्रैमासिक,अर्द्ध वार्षिक और

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय कन्या महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.) भारत

वार्षिक परीक्षाएं तथा महाविद्यालयों एंव विश्वविद्यालयों में कही सेमेस्टर तो कही वार्षिक परीक्षाएं होती हैं । इसके कारण स्कूलों,महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का अधिकांश समय परीक्षा संचालन में लगता हैं।

पूर्व राष्ट्रपति डॉ.राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि–'परीक्षा पास करने के बाद विद्यार्थी अपने को नये युग की मांगो का सामना करने में असमर्थ पाते है। परीक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात प्राप्त उपाधि या प्रमाण पत्र के अनुरूप योग्यता हासिल नहीं रहती है।'

वर्तमान परीक्षा पद्धति के दोष– वर्तमान में लगभग सभी विभागों एवं क्षेत्रों में नौकरी एवं उच्च शिक्षा में प्रवेश आदि के लिये बाहरी परीक्षा ली जाती है अर्थात अलग से लिखित, मौखिक या ऑन लाईन परीक्षा आयोजित की जाती है और इन्हीं परीक्षाओं में उत्तीर्ण विद्यार्थियों का चयन किया जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि विद्यार्थी ने पूर्व में जो अध्ययन किया है वह ठीक नहीं है या जिन शिक्षकों ने अपने परिश्रम द्वारा विद्यार्थियों को तैयार किया है वह ठीक नहीं हैं। आज की सस्ती व लोकप्रिय परीक्षा प्रणाली ने विद्यार्थियों को आलसी एवं लोकप्रिय आर्ट नोट्स जिनमें गाईड,कुंजी,सरल अध्ययन माला,विद्या अध्ययनमाला,वन–डे सीरिज तथा 20 प्रश्न पुस्तिका प्रमुख है, से पढकर परीक्षा उत्तीर्ण करना सिखा दिया है। 3 घंटे की अवधी में निश्चित पाठ्यक्रम से पूछे गये प्रश्नों के उत्तर लिखकर सफलता मिल जाती है। परिणाम स्वरूप विद्यार्थी वर्ष भर पढ़ाई न करते हुये परीक्षा दिनो में सिर्फ परीक्षापयोगी पुस्तकों का ही अध्ययन करते हैं। यहां तक की कुछ प्राध्यापक भी उसी प्रकार की पुस्तके लिखने में व्यस्त हो गये है। प्रश्न पत्रों की रचना भी वन–डे सीरिज या 20 प्रश्न पुस्तिका के अनुरूप करने लगे है। यह उच्च शिक्षा के लिये अच्छा संकेत नहीं है। इसका ज्वलन्त उदाहरण जानना चाहे तो इस वर्ष विक्रमविश्वविद्यालय उज्जैन द्वारा नवंबर–दिसंबर, 2014 में आयोजित स्नातकोत्तर स्तर पर सेट किये गये विभिन्न विषयों के प्रश्न पत्रो का परीक्षण किया जा सकता हैं। जिनमें सभी प्रश्न 20, प्रश्न पुस्तिका के दिये है। इसी प्रकार पिछले 05 वर्षो के स्नातक व स्नातकोत्तर के विभिन्न विषयों के प्रश्न पत्रों का मिलान 20 प्रश्न पुस्तिका से किया जा सकता है। सरकार को इसे गंभीरता से लेकर ऐसे प्रश्न पत्र सेट करने वाले प्राध्यापको पर भी कार्यवाही की जानी चाहिए। इसके परिणाम स्वरूप आज विद्यार्थी भी कक्षाओ मे बैठना नहीं चाहता है तथा कक्षाओ मे भी उनके पास पाठ्यपुस्तकों के स्थान पर गाईड या 20 प्रश्न पुस्तिका बैग में पायी जाती है। इस प्रकार पाठ्यक्रम के लिये निर्धारित एवं अनुशंसित पुस्तकों के अध्ययन में विद्यार्थियों की अरूचि दृष्टिगत हो रही है एवं विद्यार्थियों ने पुस्तके खरीदना बंद कर दिया है। इस कार्य में कोचिंग कक्षाओं का भी बहुत योगदान रहा है, कोचिंग कक्षाओ के संचालको एवं शिक्षकों द्वारा तैयार नोट्स दिये जाते है तथा पुस्तको से अध्यापन नहीं कराया जाता है। केवल परीक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम ही पढाते है फलस्वरूप कक्षाओं में भी विद्यार्थियों की प्राध्यापको से यही अपेक्षा रहती है कि वे भी उन्हे सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का अध्यापन न कराकर केवल महत्वपूर्ण परीक्षापयोगी प्रश्नों का ही अध्यापन करावे। इस स्थिति में प्राध्यापको को भी विद्यार्थियों की मांग के आधार पर ही अपने ज्ञान को सीमित करना पडता है और जिन प्राध्यापको ने उनकी इन मांगो को नहीं माना है उनकी कक्षाओं में विद्यार्थी बैठना भी पसंद नहीं करते है। यही कारण है कि कक्षाओं में उपस्थिति भी घटती जा रही है लेकिन इससे विद्यार्थियों का ही नुकसान हो रहा है। वे केवल परीक्षा उत्तीर्ण करने मात्र ही ज्ञानार्जन करते है, मौलिकता या ज्ञान की गहनता से उनका कोई संबंध नहीं है। परिणाम स्वरूप विद्यार्थी जितनी शीघ्रता से विषय याद करता है,उतनी ही शीघ्रता से वह भूल भी जाता है। **आचार्य विनोबा भावे के अनुसार –'यदि किसी स्त्री को 100 रोटियां बनाने को कहा जाये और वह 33 रोटियां ठीक बनाये और 67 रोटियां जला दे तो क्या आप उसे रोटियां बनाने में कुशल मान लेगें।'** परन्तु हमारी परीक्षा पद्धति यही कह रही है। वर्तमान परीक्षा पद्धति में विद्यार्थियों की बुद्धि, रूचियों, प्रवृत्तियों व कुशलताओं एवं समझदारी को नहीं मापा जाता अपितु उनकी लेखन शक्ति एवं भाषा शैली को प्रधानता दी जाती है जिससे विद्यार्थियों में परीक्षा भय एवं तनाव उत्पन्न करती है। कई विद्यार्थियों द्वारा अपनी जीवन लीला भी समाप्त कर ली जाती है।

मूल्यांकन में दोष/कमियां –परीक्षा पद्धति के अंतर्गत उत्तर पुस्तिकाओं, सीसीई, प्रोजेक्ट कार्य, एवं प्रायोगिक कार्य के मूल्यांकन एवं मौखिकी पर विचार करते है तो यह भी दोष पूर्ण है। उत्तर पुस्तिकाएं जॉचने में समय कम मिलता है जिससे कई बार उचित मूल्यांकन नहीं हो पाता। कुछ उत्तर पुस्तिकाएं बण्डल के रूप में प्राध्यापकों के घरो पर मूल्यांकन हेतु भेजी जाती है तो कुछ का केन्द्रीय मूल्यांकन करा लिया जाता है जिसमें विषय सें संबंधित प्राध्यापकों एवं पेपर सेटर से मूल्यांकन न कराकर अन्य प्राध्यापको से मूल्यांकन कार्य सम्पन्न करा लिया जाता है। परिणाम स्वरूप अच्छे एवं योग्य विद्यार्थियों को भी कम अंक मिलने की शिकायते निरंतर बढती जा रही है। यदि विद्यार्थी पूर्ण:मूल्यांकन कराना चाहता है तो भी नहीं करा सकता क्योंकि सेमेस्टर पद्धति में पूर्ण:मूल्यांकन पर भी विश्वविद्यालयों ने प्रतिबंध लगा दिया है।

कक्षा अध्यापन के दौरान सीसीई, प्रोजेक्ट कार्य, आंतरिक मूल्यांकन, प्रायोगिक परीक्षा का आयोजन महाविद्यालय स्तर पर ही विश्वविद्यालय की अनुमति से कराया जाता है। चूंकि कक्षाओ में विद्यार्थियों की नियमित उपस्थिति नहीं रहती है। अत: उक्त कार्यो के मूल्यांकन के लिये अलग–अलग विधाओं का आयोजन अधिकांश महाविद्यालयों में नहीं किया जाता है प्रतिवर्ष कोई न कोई बहाना बनाकर घर से लिखकर लाने के लिये कुछ प्रश्नों के उत्तर लिखकर मंगवाकर मूल्यांकन कार्य की इतिश्री कर ली जाती है। विज्ञान विषयों में जहां महाविद्यालयों के निजी भवन भी नहीं है, न हीं नियमित प्राध्यापक है, अतिथि विद्धान अतिथि की तरह आते व चले जाते है वहां विद्यार्थियों को नियमित प्रायौगिक कार्य की सुविधा नहीं मिल पाती है। मजबूरीवश जो भी प्राध्यापक यह मूल्यांकन कार्य करता है प्राचार्यो की मंशानुसार विद्यार्थियों को अंक प्रदान कर अपना कार्य पूर्ण करता है।

सत्र 2008–09 से प्रत्येक सेमेस्टर में प्रत्येक कक्षा के विद्यार्थी से प्रोजेक्ट कार्य कराया जाता था। वर्तमान में यह कार्य अंतिम सेमेस्टर में कराया जाने लगा है अर्थात स्नातक के छठें सेमेस्टर व स्नातकोत्तर के चतुर्थ सेमेस्टर में प्रोजक्ट कार्य कराये जाने का प्रावधान है जिसके अंक भी निर्धारित है और परीक्षा परिणाम में भी जोड़े जाते है। उच्च शिक्षा विभाग के निर्देशानुसार कला,विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों को उनके विषयानुसार एवं रूचिनुसार रोजगार परक प्रोजेक्ट कार्य सौंपा जाकर, लिखित में प्रतिवेदन लेकर एवं मौखिक परीक्षा ओयोजित कर मूल्यांकन कार्य सम्पन्न कराना चाहिए किन्तु इस कार्य को शासन एवं प्राध्यापकों के निर्देशानुसार अधिकांश विद्यार्थियों द्वारा नहीं किया जाता है। बाजार में तैयार प्रोजेक्ट क्रय कर विद्यार्थी अपने शिक्षक निर्देशक के पास जमा करा देता हैं। यदि उसे मौलिक कार्य करने के निर्देश दिये जाते है तो प्राध्यापको पर अच्छे नंबर देने का दबाव बनाया जाता है किन्तु मौलिकता नहीं रहती हैं। इस प्रकार हमारी परीक्षा पद्धति तो दोष पूर्ण है हि साथ ही मूल्यांकन पद्धति भी दोषपूर्ण है।

इस प्रकार वर्तमान परीक्षा प्रणाली आधुनिक वैश्वीकरण, ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था कम्प्युटर एवं इंटरनेट, मशीनीकरण, नवीन गतिशील युग के अनुरूप विद्यार्थियों का मूल्यांकन करने में पूर्णत: सक्षम दृष्टिगत नहीं हो रही है। इसलिये आज सतत और व्यापक मूल्यांकन पद्धति की अधिक आवश्यकता है।

सुझाव– वर्तमान परीक्षा पद्धति एवं मूल्यांकन पद्धति में सुधार हेतु निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं–

1. पाठ्यक्रमों में बार–बार परिवर्तन नहीं किये जाना चाहिए।
2. आवश्यक होने पर उच्च शिक्षा में रूचि रखने वाले विशेषज्ञ प्राध्यापको को ही समिति में रखा जाये तथा एक बार परिवर्तन के पश्चात न्यूनतम पॉच वर्ष तक पाठयक्रमों मे कोई परिवर्तन नहीं किये जाना चाहिए।
3. पाठ्यक्रम की विषय सामग्री को पोस्टर,चार्ट,मॉडल,एवं अन्य नवाचारो के माध्यम से किया जाना उचित होगा जिससे विद्यार्थी विभिन्न आयामों से विषय सामग्री समझ एवं आत्मसात कर सकें।
4. कोचिंग कक्षाओं पर महाविद्यालयीन समय में संबंधित विषय की कोचिंग करने पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए।
5. सभी महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की परीक्षा पद्धति एवं मूल्यांकन में एक रूपता लायी जानी चाहिए।
6. परीक्षा परिणाम पद्धति एवं अंको का निर्धारण एक जैसा हो कहीं अंकन पद्धति व कहीं ग्रेडिग पद्धति न हों।
7. स्नातक कक्षाओं में सेमेस्टर पद्धति को समाप्त किया जाना चाहिए ताकि विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास एवं बौद्धिक क्षमता के विकास संबंधी गतिविधियों अधिकाधिक हो सकें।
8. वन–डे सीरिज, 20 प्रश्न पुस्तिका, गाईड पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए इससे विद्यार्थियों में पाठ्य पुस्तकों एवं संदर्भ ग्रंथो से अध्ययन की आदत विकसित होगी।
9. प्रश्न पत्र रचना के निर्देशो का कड़ाई से पालन हो ताकि प्रश्न पत्र सम्पूर्ण पाठयक्रम का प्रतिनिधित्व करता हो।
10. प्रश्न पत्रों के मॉडरेशन एवं साल्यूशन की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि मूल्यांकन कार्य में एकरूपता आ सकें।
11. पुन: मूल्यांकन का प्रावधान कर ऐसे प्राध्यापकों के उत्तर पुस्तिकाओ के मूल्यांकन करने पर प्रतिबंध लगाया जावे जिनके द्वारा मूल्यांकित उत्तर पुस्तिकाओं के नंबरों में 10 प्रतिशत से ज्यादा परिवर्तन हो तथा आवश्यक व्यय की दण्डात्मक वसूली की जानी चाहिए।
12. शिक्षण शुल्क में उचित वृद्धि की जानी चाहिए ताकि विद्यार्थी उसका सही महत्व समझ सके और यह जान सके की उच्च शिक्षा इतनी सस्ती नहीं है जिसे आसानी से प्राप्त किया जा सके।
13. निर्धारित समय पर परीक्षाएं प्रारंभ की जाकर परीक्षा परिणाम एक माह के भीतर घोषित किया जाना चाहिए।
14. रिक्त पदो पर शीघ्र–अतिशीघ्र शिक्षकों को पदस्थ किया जावे तथा अतिथि विद्वानों की नियुक्ति प्रक्रिया सत्रारंभ के पूर्व जून माह में ही पूरी की जानी चाहिए ताकि जुलाई माह से नियमित अध्यापन कार्य प्रारंभ हो सकें।
15. एन.सी.सी.एवं योग को एक अतिरिक्त विषय के रूप में पाठयक्रम में शामिल किया जावे। ताकि विद्यार्थी को रक्षा सेवा के पदो के चयन में वरीयता मिल सके।
16. अनुत्तीर्ण या एटीकेटी प्राप्त विद्यार्थियों को अगली कक्षा से छात्रवृत्ति देना बंद किया जाना चाहिए तथा उन्ही विद्याार्थियों को छात्रवृत्ति की पात्रता दी जानी चाहिए जिन्होने न्यूनतम 50 प्रतिशत अंक अर्जित किये हो। इस प्रतिबंध के फलस्वरूप विद्यार्थियों की कक्षाओ में उपस्थिति में सुधार संभव हो सकेगा।
17. किसी भी महाविद्यालय के प्राचार्य द्वारा पहले अपने महाविद्यालय की परीक्षा संचालन व्यवस्था की जावे। अतिरिक्त स्टॉफ उपलब्ध होने पर ही अन्य प्रायवेट विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं के संचालन की स्वीकृति दी जानी चाहिए इसके लिये शासन स्तर पर अनुमति भी प्राप्त की जानी चाहिए ताकि नियमित शिक्षकों को अध्यापन के दौरान परीक्षा कार्य में लगाये जाने से विद्याार्थियों का अध्यापन कार्य प्रभावित न हो।
18. प्रत्येक महाविद्यालय का वास्तविक निरीक्षण कर शिक्षको एवं उपलब्ध अध्ययन कक्षों के आधार पर प्रवेश संख्या का पुन:निर्धारण किया जाना चाहिए।
19. सभी महाविद्यालयों के अध्ययन कक्षों एवं परिसर में सीसीटीवी कैमरे लगाये लगाये जाने चाहिए।
20. महाविद्यालयों में परीक्षा के दौरान पिछले कुछ वर्षो से पुलिस बल उपलब्ध नहीं हो रहा है अत: पुलिस बल की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए ताकि परीक्षा के दौरान होने वाली अवांछित गतिविधियों एवं नकल प्रवृत्ति पर रोक लगायी जाने में मदद मिल सके।
21. परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों में विविधता लानी होगी ताकि विद्यार्थी कुछ ही महत्वपूर्ण प्रश्नों पर आधारित न रहे।
22. अतिलघु उत्तरीय,लघुउत्तरीय एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्नों का निर्धारण करते समय शब्द सीमा का ध्यान रखा जाना चाहिए।
23. नकल प्रकरण बनने पर संबंधित विद्यार्थी को छात्रवृत्ति एवं अन्य सुविधाओं से वंचित रखा जाना चाहिए।

इस प्रकार परीक्षा पद्धति का उद्देश्य उपाधि न देकर विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास पर आधारित होनी चाहिए। इसके लिये परीक्षा तंत्र का स्वॉट विश्लेषण कर परीक्षा एवं मूल्यांकन पद्धति को समुन्नत, उपयोगी ,एवं सार्थक बनाया जा सकता है। यद्यपि 'परीक्षा प्रबंध' एक जटिल एवं श्रमसाध्य कार्य है परन्तु समुचित योजना,प्रबंध एवं प्रयत्नो से इसमें सुधार कर इसे सक्षम एवं प्रभावशाली बनाया जा सकता है ताकि यह वर्तमान समय की आवश्यकता एवं अपेक्षाओं के अनुरूप खरी उतर सके। इस प्रकार विद्यार्थियों को कोर्स की किताबों और परीक्षाओं के अंको के दायरे तक सीमित नहीं रखा जाना चाहिए वरना वे बाहरी दुनिया का ज्ञान अर्जित नहीं कर पायेगें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. मासिक पत्रिका 'रचना'
2. www.highereducation .mp.gov.in
3. www.mhrd.gov.in/highereduction
4. व्यक्तिगत अनुभव, अनुसंधान एवं प्रयोग

****

वित्त आयोग – प्रभाव, सिफारिशे तथा प्रासंगिकता

डॉ. धीरज शर्मा * डॉ. विशाल पुरोहित * *

प्रस्तावना – केन्द्र से राज्यों को वित्तीय हस्तांतरण हेतु दिशा–निर्देश सुझाने हेतु वित्त आयोग का गठन किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 280(1) में यह व्यवस्था है कि राष्ट्रपति द्वारा प्रत्येक वर्ष के पश्चात् या आवश्यकता पड़ने पर उससे पूर्व एक वित्त आयोग का गठन किया जाएगा जिसमें अध्यक्ष के अतिरिक्त चार अन्य सदस्य होंगे।

अनुच्छेद 280(1) के अनुसार आयोग का कर्त्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति को अग्रलिखित के संबंध में अपनी संस्तुतियाँ दे –

1. केन्द्र व राज्यों के बीच विभाजनीय करों से प्राप्त शुद्ध राजस्व का वितरण तथा इसमें विभिन्न राज्यों का हिस्सा।
2. भारत की संचित निधि में से राज्यों को दिए जाने वाले अनुदानों के लिए सिद्धांत।
3. सुदृढ़ वित्त के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को निर्दिष्ट किया गया अन्य कोई मामला।

उपर्युक्त संदर्भ में ही भारत में अब तक 13 वित्त आयोगों का गठन हो चुका है पहले वित्त आयोग का गठन 1951 में श्री के.सी. नियोगी की अध्यक्षता में किया गया था।

आयोग द्वारा दी गई सिफारिशों को तीन शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है –

a) आय कर तथा अन्य करों का विभाजन तथा वितरण
b) अनुदान
c) संघ द्वारा राज्यों को दिए गए ऋण

13 वां वित्त आयोग – केन्द्र और राज्यों के बीच राजस्व के बंटवारे के लिए मानक तय करने के लिए राष्ट्रपति (तत्कालीन) प्रतिभा पाटिल ने 13 वें वित्त आयोग का गठन 13 नवम्बर 2007 में किया था पूर्व वित्त सचिव डॉ. विजय दल. केलकर को इस आयोग का अध्यक्ष बनाया गया था। आयोग ने 30 दिसम्बर 2009 को अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपी जिसमें निम्न सिफारिशें की गई –

1. विभिन्न केन्द्रीय करों की निबल प्राप्तियों में से राज्यों का हिस्सा संचार की अवधि के प्रत्येक वर्ष के लिए 32% होगा अब तक यह 30.5% था।
2. केन्द्र सरकार के विभिन्न करों की निबल प्राप्तियों में से 32% प्राप्तियाँ राज्यों को जाएगी।
3. केन्द्र अपने सकल कर राजस्व में अपना हिस्सा कम करने के उद्देश्य से उपकरों तथा अधिभारों के उद्गुदण की समीक्षा करें।
4. राजस्व खाते पर राज्यों को समग्र अंतरणों पर निर्दिष्टात्मक सीमा केन्द्र की सकल राजस्व प्राप्तियों के 39.5% पर नियत की जाए।
5. मध्यावर्धक राजकोषीय योजना एक आशय विवरण के बजाय प्रतिबद्धता का विवरण होना चाहिए।
6. वित्तीय विनियमन एवं बजट प्रबंध अधिनियम में उन प्रघातों के स्वरूप को निर्दिष्ट किया जाना आवश्यक है जिनके लिए उसके तहत लक्ष्यों में ढील दिया जाना आवश्यक होगा।
7. वर्ष 2011–12 से 2014–15 के चार वर्षों के लिए सड़कों व पुलों के अनुरक्षण अनुदान हेतु 19,930 करोड़ की राशि की अनुशंसा।
8. प्रारंभिक शिक्षा के लिए अनुदान राशि 27,945 करोड़ रू. की अनुशंसा।
9. वन अक्षय ऊर्जा तथा जल क्षेत्र प्रबंधन अनुदानों के रूप में 5000 करोड़ रू. अनुदान की अनुशंसा।
10. राज्यों को सहायता अनुदान के रूप में पंचार अवधि के लिए 3,18,581 करोड़ रू. की राशि अनुशंसित की गई।

इस तरह तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों से 2010–11 से 2014–15 की पांच वर्षो की अवधि में राज्यों को केन्द्रीय करों व शुल्कों के हिस्से के रूप में कुल 14,48,096 करोड़ रू. तथा सहायता अनुदान के रूप में 2,58,581 करोड़ रू. प्राप्त होंगे। तेरहवें वित्त आयोग ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि यदि किसी राज्य को केन्द्रीय करों व शुल्कों में छोटी–सी धनराशि प्राप्त हो रही है किंतु पर्यावरण संरक्षण सामाजिक क्षेत्रक–शिक्षा एवं स्वास्थ्य के विकास तथा सड़कों आदि के अनुसरण से जुड़ी आवश्यकताएँ अधिक है तो उसे अनुदान सहायता के रूप में अधिक धनराशि प्राप्त हो जाए, जैसे कि पूर्वोत्तर के राज्य तथा कश्मीर। तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों से महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक, हरियाणा व पंजाब जैसे विकसित राज्यों को अपेक्षाकृत कम धनराशि प्राप्त हो सकी है जबकि उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और राजस्थान जैसे पिछड़े राज्य अधिक धनराशि प्राप्त करने में सफल रहे हैं।

14 वां वित्त आयोग – इस आयोग का गठन पूर्व रिजर्व बैंक गवर्नर श्री वाई वी. रेड्डी की अध्यक्षता में किया गया इसके अतिरिक्त इसमें निम्न सदस्य हैं –

1. प्रोफेसर अभिजित सेन
2. सुश्री सुषमा नाथ
3. डॉ. गोविन्द राव
4. डॉ. सुदीप्तो मुण्डले

अजय नारायण झा इस कमीशन के सचिव होंगे कमीशन अपनी रिपोर्ट 31 अक्टूबर 2014 को सौंपेगा। रिपोर्ट–सौंपने का समय 31 दिसम्बर तक बढ़ा दिया गया है।

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) एम.एल.बी. शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत
* * सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) एम.एल.बी. शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

वित्त आयोग का प्रभाव और प्रासंगिकता –

1. केन्द्र व राज्य के मध्य वित्त संबंधों के सुधार हेतु वित्त आयोग आवश्यक है।
2. कर अंतरण के लिए मानदण्ड व भार निर्धारित किए जाने हेतु वित्त आयोग आवश्यक है।
3. संविधान के अनुसार इसका गठन अनिवार्य अत: यह सदैव प्रासंगिक है।
4. केन्द्र व राज्यों के बीच वित्त का बंटवारा उचित तरीके से करने हेतु यह प्रभावी आयोग है।
5. इसका अध्यक्ष गैर राजनैतिक और वित्त क्षेत्र का महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है। अत: निर्णय में पक्षपात व राजनीति हावी नहीं रहती।
6. बजट बनाने के पूर्व इस आयोग द्वारा की गई वित्तीय सिफारिशें सहयोगी।
7. कम अविकसित राज्यों को अधिक सहायता व विकसित राज्यों को कम सहायता की सिफारिश देकर यह आयोग अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वित्त आयोग एक अनिवार्य संवैधानिक संस्था है जो केन्द्र व राज्यों के बीच वित्तीय बंटवारों संबंधी मामलों का निर्णय करता है तथा केन्द्र व विविध राज्यों के मध्य समुचित वित्त वितरण संबंधी सिफारिशें देता है यद्यपि इसकी सिफारिशें यथावत लागू हो यह आवश्यक नहीं किंतु फिर भी इनका प्रभाव बजट व अन्य आर्थिक समीक्षा में देखने को मिलता है। अत: यह संवैधानिक संस्था भारत जैसे प्रजातांत्रिक व बड़े देश के लिए अत्यंत अनिवार्य है।

निष्कर्ष – वित्त आयोग संघीय ढांचे को बनाने और बनाए रखने हेतु अत्यंत आवश्यक है राज्यों को वित्त का बंटवारा इसके द्वारा बनाए गए निर्देशों के अनुसार ही करना होता है अत: वर्तमान में यह अत्यंत प्रासंगिक है तथा इसे और अधिक पारदर्शी बनाने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. दैनिक भास्कर (दैनिक समाचार पत्र)
2. रोजगार और निर्माण (साप्ताहिक समाचार पत्र)
3. प्रतियोगिता दर्पण (मासिक और वार्षिक पत्रिका)
4. Fincomindia.nic.in
5. Reports of The Finance Commission of India
6. The Constitution of India

****

उच्च शिक्षा के गुणात्मक उन्नयन में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका

डॉ. नीना गोयल *

प्रस्तावना – सूचना प्रौद्योगिकी का अर्थ अत्यन्त व्यापक है, इसमें सूचना प्रणालियाँ और सूचना प्रौद्योगिकी दोनों सम्मिलित है। कम्प्यूटर विज्ञान तथा दूरसंचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए विकास को सम्मिलित रूप से अभिव्यक्त किया जाता है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दूरसंचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए विकास ने विश्वव्यापी टेलीफोन प्रणाली, रेडियो तथा टेलीविजन नेटवर्क को सम्भव बनाया। निरंतर शोध व अनुसंधान ने संचार प्रणाली को कुशल, विश्वसनीय और कम लागत वाली बनाकर अधिकाधिक लोगों तक पहुँचाया। कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी में बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विकास शुरू हुआ। कम्प्यूटर के विभिन्न उपकरण बनाने की प्रौद्योगिकी में हुए तीव्र विकास के कारण कम्प्यूटर प्रसंस्करण व्यापक रूप से उपलब्ध होने लगे एवं कम्प्यूटर प्रयोग क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न हो गई।

उपरोक्त दोनों प्रौद्योगिकियों के एकीकरण (मेल) ने सूचना प्राप्ति संग्रहण तथा इसके प्रसंस्करण के अन्तर को कम कर दिया। सूचना को कहीं भी, किसी भी समय, तीव्र गति से सम्प्रेषित करने की क्रिया को सम्भव बनाया तथा भौगोलिक दूरियों को असंगत और महत्वहीन कर दिया।

सूचना प्रौद्योगिकी के महत्वपूर्ण घटक निम्नलिखित हैं –

1. कम्प्यूटर हार्डवेयर जिसमें एक सीपीयू, मेमोरी चिप्स, स्टोरेज डिस्क, विडियो डिस्प्ले यूनिट, प्रिंटर, आदि उपकरण सम्मिलित है।
2. डॉस, विन्डोस तथा यूनिक्सजन्य परिचालन प्रणालियां जो अनुप्रयोग प्रोग्राम तथा कम्प्यूटर हार्डवेयर के बीच इन्टरफेस के रूप में कार्य करती है।
3. सफ्टवेयर पैकेज तथा विकास उपकरण जो आंकड़ों का संग्रहण तथा उनके प्रसंस्करण में उपयोग में लाए जाते हैं। डेटाबेस प्रणालियां, फ्रन्ट एन्ड टूल्स, प्रोग्रामिंग भाषाऐं इसके कुछ उदाहरण हैं।
4. नेटवर्किंग प्रणालियां जिनके द्वारा कम्प्यूटर दूरस्थ स्थानों से आपस में संपर्क करके फाइलें स्थानांतरित करते हैं। संसाधनों का मिलकर उपयोग करते हैं। इससे सीमित क्षेत्र नेटवर्क से विश्वव्यापी नेटवर्क सम्मिलित हैं।
5. दृश्यमूलक तथा अंकीय नेटवर्क, सेटेलाइट नेटवर्क जैसी दूरसंचार प्रणालियां, जो आंकड़े प्रेषित करने का माध्यम तथा उपयोग करने एवं प्रसंस्करण (प्रोसेसिंग) करने के लिये नेटवर्किंग उपलब्ध कराता है।

सूचना प्रौद्योगिकी के प्रभाव की तुलना अठारहवीं शताब्दी में निर्माण और कृषि क्षेत्र में आई औद्योगिक क्रांति, उन्नीसवीं शताब्दी में भाप के इंजन का आविष्कार एवं थर्मल विद्युत उत्पादन, परिवहन की गति में आई तीव्रता से की जा सकती है। पिछले 10 वर्षों में कुल रोजगार का 40 प्रतिशत हिस्सा आईटी कम्पनियों ने उपलब्ध कराया है। आज रेलवे टिकट एवं आरक्षण का कम्प्यूटरीकरण, बैंकों का कोर बैंकिंग सिस्टम, एटीएम, ई–बैंकिंग, मोबाईल बैंकिंग, ऑनलाइन आयकर रिटर्न फाइलिंग, एफआईआर, पासपोर्ट, लाइसेंस, भू अभिलेख, सूचना के अधिकार के अंतर्गत जानकारी, शिकायतें, आय–जाति प्रमाणपत्र, न्यायालयीन निर्णय एवं जानकारी, सरकारी योजनाऐं, शिक्षा, चिकित्सा सम्बन्धी सभी जानकारी एवं सुविधा इंटरनेट पर उपलब्ध है। ऑनलाइन शॉपिंग सुविधा से ग्राहकों को क्रय–विक्रय की सुविधा सूचना क्रांति के द्वारा संभव हुई है।

सूचना प्रौद्योगिकी (सूचना क्रान्ति) सरकारी और सामाजिक सेवाओं, रक्षा सेवाओं, व्यापार, वाणिज्य, बैंकिंग, बीमा, व्यवसाय, यातायात, शिक्षा, चिकित्सा जैसे आधारभूत क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इसका अत्याधिक प्रभाव शिक्षा एवं शोध पर पड़ा है। उच्च शिक्षा के गुणात्मक सुधार में भी महत्वपूर्ण भूमिका है।

सूचना प्रौद्योगिकी किसी विषय के सम्बन्ध में आँकड़े संकलित करने और उनके प्रसंस्करण का ही पर्याय है। अत: सीखने में प्रक्रिया और शिक्षा के अधिक निकट है। इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध उच्च शिक्षा तथा शोध से है। इंटरनेट का उपयोग उच्च शिक्षा एवं शोध का अभिन्न अंग बन चुका है। कम्प्यूटर आधारित प्रशिक्षण पैकेजों का उपयोग शिक्षा के क्षेत्र में, प्राथमिक शिक्षा से लेकर शोध तक, हो रहा है। उच्च शिक्षा का क्षेत्र इसमें अछूता नहीं है। मल्टीमीडिया जैसे विडियो उपकरण, उपयोगकर्ता को स्वयं अपना उपयोग करना सिखाते हैं तथा रेखाचित्र और ग्राफ द्वारा सीखने की प्रक्रिया को आसान बनाते हैं। शिक्षण तथा शोध नेटवर्क (ईआरएनईटी) के आने से विश्वविद्यालय शोध संस्थान कम्प्यूटर के माध्यम से एक–दूसरे से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं तथा विश्वभर में हो रहे शोध के सम्बन्ध में सूचनाओं का आदान–प्रदान कर सकते हैं। कम्प्यूटर का उपयोग जटिल गणितीय तथा सांख्यिकीय गणनाओं तथा संख्यात्मक निर्णय लेने की क्रिया को आसान बनाता है।

उच्च शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिये सूचना प्रौद्योगिकी की अहम् भूमिका है। विश्व के प्रत्येक विश्वविद्यालय, महाविद्यालय एक–दूसरे से जुड़ चुके हैं, जिसका अत्याधिक प्रभाव विद्यार्थी वर्ग के उन्नयन में हुआ है। आज विद्यार्थी इंटरनेट के माध्यम से ऑनलाइन शिक्षा विदेशों से प्राप्त कर रहा है, अपने ज्ञान को अद्यतन कर रहा है। प्रवेश से परीक्षा तक समस्त सूचनाऐं क्षणों में प्राप्त कर रहा है, नेट पर विषय विशेषज्ञों से सम्पर्क, संदर्भ ग्रंथ द्वारा समस्याओं का समाधान, संवाद, सम्प्रेषण द्वारा व्यक्तित्व विकास, प्रबंध निर्णयन नेतृत्व, अनुशासन, आत्मविश्वास आदि गुणात्मक पहलुओं का विकास कर रहा है। वैश्वीकरण की चुनौतियों का सामना करने में समर्थ है। उच्च प्रशासन की दृष्टि में योजनाओं व निर्णयों का क्रियान्वयन, आदेशों का तुरंत परिपालन, वीडियो कान्फ्रेसिंग द्वारा समस्याओं का समाधान, फीडबेक आदि शीर्ष नेतृत्व को अधिक सशक्त बनाते हैं। शीर्ष नेतृत्व और विद्यार्थी की दोनों के बीच की कड़ी के रूप में प्राध्यापक वर्ग भी सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग में गुणात्मक सुधार का हिस्सा है तथा अपने समय, श्रम व धन की बचत कर गुणात्मक सुधार की ओर अग्रसर हो रहा है।

संदर्भ सूची :–

1. व्यवसाय में कम्प्यूटर अनुप्रयोग – डॉ. अशोककुमार शर्मा, डॉ. अभय उपाध्याय।
2. सूचना प्रौद्योगिकी – ए.के. हिरवे, दीक्षित।
3. समाचार–पत्र।
4. इंटरनेट।

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

'उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम' संशोधन व उद्देश्य वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

डॉ. विशाल पुरोहित * डॉ. धीरज शर्मा * *

प्रस्तावना – देश जैसे-जैसे विकासशील से विकसित अवस्था की ओर बढ़ रहा है वैसे-वैसे बेईमानी और भ्रष्टाचार भी तेजी से बढ़ता जा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न व्यक्ति संस्था व कंपनी ज्यादा लाभ कमाने हेतु ग्राहक के साथ धोखा करते हैं। अत: उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना और अधिकारों का हनन होने पर उन्हें न्याय प्रदान करना यह उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के माध्यम से उचित प्रकार से किया जा रहा है।

वर्तमान युग उपभोग प्रधान युग है, वर्तमान में व्यक्ति केवल रोटी, कपड़ा व मकान जैसी अनिवार्य वस्तुओं को ही नहीं खरीदता बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य मनोरंजन, परिवहन आदि पर भी समुचित राशि खर्च करता है। कई बार विक्रेताओं या सेवा पूर्तिकर्ताओं द्वारा उपभोक्ता के साथ जानबूझकर धोखाधड़ी की जाती है या अज्ञानवश खराब माल की पूर्ति कर दी जाती है ऐसी स्थिति में क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिए न्यायालय में वाद प्रस्तुत करना उपभोक्ता के लिए संभव नहीं होता। अत: उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए भारत में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 बनाया गया।

24 दिसम्बर, 1986 को भारतीय संसद में यह अधिनियम लागू किया गया और 15 अप्रैल, 1987 से जम्मू कश्मीर को छोड़कर संपूर्ण भारत में, लागू किया गया प्रारंभ में इसमें 31 धाराएं और चार अध्याय थे।

अधिनियम के उद्देश्य –

1. खराब वस्तु, सेवा और अधिक मूल्य वसूल करने की दशा में उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण।
2. उपभोक्ताओं के अधिकारों का संवर्द्धन और संरक्षण –
   a) घातक माल के विपणन के प्रतिसुरक्षा
   b) माल की किस्म, मात्रा, शुद्धता, मूल्य स्तर आदि के बारे में सूचना प्राप्त करने का अधिकार
   c) अनुचित व्यापार, व्यवहार के विस्तृत शिकायत प्रस्तुत करने का अधिकार
   d) उपभोक्ता शिक्षा पाने का अधिकार
   e) विवाद की दशा में निपटारे व क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार
3. उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा हेतु संस्थाओं की स्थापना।
4. उपभोक्ताओं को सस्ता व शीघ्र न्याय प्रदान करने का उद्देष्य।

शिकायत योग्य मामले –

1. व्यापारी का अनुचित व्यापार व्यवहार जिसके कारण ग्राहक को हानि हो।
2. शिकायत में वर्णित माल में एक या अधिक दोष।
3. किराये पर की गई सेवा में एक या अधिक दोष।
4. निर्धारित या निश्चित मूल्य से अधिक मूल्य वसूल किया हो।
5. जीवन एवं सुरक्षा के लिए खतरनाक माल बिक्री हेतु प्रस्तुत किया हो।

उपभोक्ता विवाद निवारण एजेंसी –

a) जिला मंच b) राज्य आयोग c) राष्ट्रीय आयोग

संशोधन – इस अधिनियम में सन् 1991,1993 और 2002 में संशोधन किए गए। उपभोक्ता अधिकारों के बेहतर संरक्षण के लिए नया उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अधिनियम 2002, 15 मार्च 2003 को विश्व उपभोक्ता अधिकार दिवस के दिन से प्रभावी किया गया है। इसी क्रम में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1987 में भी संशोधन हुआ और उसे 5 मार्च 2004 को अधिसूचित किया गया।

अधिनियम के दायरे का विस्तार करते हुए नकली सामान व सेवाओं की बिक्री को भी इसके तहत लाया गया है। वादी अथवा प्रतिवादी के निधन के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी अब संबंधित वाद को जारी रख सकेंगे। संशोधित् अधिनियम के तहत् जिला फोरम में 20 लाख रूपए तक के व राज्य स्तरीय फोरम में 1 करोड़ रू. तक के मामलों की सुनवाई हो सकेगी। राष्ट्रीय आयोग में अब 1 करोड़ से अधिक राशि के मामले दर्ज हो सकेगें। अभी तक जिला फोरम में 5,00,000 रू. तक व राज्य फोरम में 20 लाख रू. तक के मामले दर्ज किए जा सकते थे।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम –

1. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने में काफी हद तक सफल रहा है।
2. विज्ञापनों में जो विभिन्न समाचार पत्र और टेलीविजन के विभिन्न चैनलों पर दिखाए जाते हैं के प्रति उपभोक्ता सजग व सचेत हुआ है।
3. जिला, राज्य व राष्ट्रीय आयोग में मामलों की वृद्धि उपभोक्ता की सजगता और अधिनियम की सफलता को दर्शाते हैं।
4. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की नियुक्ति निकट भविष्य में की जाएगी।
5. UPSC से केन्द्र में और PSC से राज्यों में इन अधिकारियो की नियुक्ति होगी।
6. 23 July 2014 तक 41,69,564 वाद प्रस्तुत हुए जिनमें से 38,01,037 वादों का निपटारा हुआ जो कि 90% है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अनिवार्य हो चुका है तथा इस अधिनियम को विस्तारित व संशोधित करने का कार्य सतत् लागू है जो उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा हेतु अनिवार्य है।

निष्कर्ष – उपरोक्त से स्पष्ट है कि उपभोक्ता संरक्षण परिषद अधिनियम वर्तमान स्वरूप में प्रासंगिक हो चुका है और इसका क्षेत्र भी संषोधनों की उपरांत विस्तारित हो चुका है। उपभोक्ता विवादों से संबंधित मामलों का शीघ्र निराकरण इस अधिनियम को और सशक्त बनाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. प्रतियोगिता दर्पण (मासिक और वार्षिक पत्रिका)
2. रोजगार और निर्माण (साप्ताहिक समाचार पत्र)
3. चाणक्य (प्रतियोगी परीक्षा हेतु)
4. दैनिक भास्कर (दैनिक समाचार पत्र)
5. Law of Consumer Protection in India (P.K. Majumdar) Othedition
6. Commentary on Consumer Protection Act (Sukhdev Agrawal) 2nd Addition

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) एम.एल.बी. शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत
* * सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) एम.एल.बी. शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

Continuous Auditing Through The Use Of Technology And Automation

Dr. Pournima Patel * Dr. Vandana Jain ** Dr. Anu Mehta ***

Abstract - **Continuous auditing** is an automatic method used to perform auditing activities, such as control and risk assessments on a more frequent basis. Technology plays a key role in continuous audit activities by helping to automate the identification of exceptions or anomalies, analyze patterns within the digits of key numeric fields, review trends, and test controls, among other activities. The "continuous" aspect of continuous auditing and reporting refers to the real-time or near real-time capability for financial information to be checked and shared. Not only does it indicate that the integrity of information can be evaluated at any given point of time, it also means that the information is able to be verified constantly for errors, fraud, and inefficiencies. It is the most detailed audit. Each instance of continuous auditing has its own pulse. The time frame selected for evaluation depends largely on the frequency of updates within the accounting information systems. Analysis of the data may be performed continuously, hourly, daily, weekly, monthly, etc. depending on the nature of the underlying business cycle for a given assertion.

Introduction - The objective of financial reporting is to provide information that is useful to management and stakeholders for resource allocation decisions. For financial information to be useful, it should be timely and free from material errors, omissions, and fraud. In the real time economy, timely and reliable financial information is critical for day-to-day business decisions regarding strategic planning, capital acquisition, credit decisions, supplier partnerships, and so forth. Advances in accounting information systems such as the advent of enterprise resource planning (ERP) systems have enabled the generation of real time information. However, the practice of traditional auditing has not kept pace with the real time economy. Traditional manual audit procedures are labour and time intensive, which limits audit frequency to a periodic basis, such as annually. These time and effort constraints can be alleviated through the use of technology and automation. Continuous auditing enhances the delivery of auditing services by making the audit process more efficient and effective through the use of technology and automation. The increased efficiency and effectiveness of the audit process enables more frequent or real time audits and hence enhances the reliability of the underlying information

Components of continuous auditing - Continuous auditing is made up of three main parts: continuous data assurance (CDA), continuous controls monitoring (CCM), and continuous risk monitoring and assessment (CRMA)

Continuous Data Assurance - Continuous data assurance verifies the integrity of data flowing through the information systems. Continuous data assurance uses software to extract data from IT systems for analysis at the transactional level to provide more detailed assurance. CDA systems provide the ability to design expectation models for analytical procedure at the business-process level, as opposed to the current practice of relying on ratio or trend analysis at higher levels of data aggregation. CDA software can continuously and automatically monitor transactions, comparing their generic characteristics with predetermined benchmarks, thereby identifying anomalous situations. When significant discrepancies occur, alarms are triggered and routed to appropriate stakeholders and auditors.

Continuous Controls Monitoring - Continuous controls monitoring consists of a set of procedures used for monitoring the functionality of internal controls. CCM relies on automatic procedures, presuming that both the controls themselves and the monitoring procedures are formal or able to be formalized. CCM can be used for monitoring access control and authorizations, system configurations, and business process settings. CDA and CCM are complementary processes. Neither process is self-sufficient or comprehensive. Even if no data faults are found it cannot be concluded that controls are fail-safe. Further, even if controls are being implemented, data integrity cannot be assumed. When combined, however, these monitoring approaches present a more complete reliance picture.

Continuous Risk Monitoring and Assessment -Continuous risk monitoring and assessment is used to dynamically measure risk and provide input for audit planning. CRMA is a real-time integrated risk assessment approach, aggregating data across different functional tasks in organizations to assess risk exposures and provide reasonable assurance

*Associate Profesor, SJHS Gujarati Innovative College of Commerce & Science, Indore (M.P.) INDIA
** Profesor, SJHS Gujarati Innovative College of Commerce & Science, Indore (M.P.) INDIA
*** Associate Profesor, SJHS Gujarati Innovative College of Commerce & Science, Indore (M.P.) INDIA

on the firms' risk assessments. Continuous reporting is the release of financial and non-financial information on a real-time or near real-time basis. The purpose of continuous reporting is to allow external parties access to information as underlying events take place, rather than waiting for end of period reports. The adoption of XBRL by companies makes the release of continuous reporting information more feasible. Continuous reporting also benefits users under Regulation Fair Disclosure. Continuous reporting is a point of constant debate. Some parties, including analysts and investors, are interested in knowing how a company is doing at a given point in time. They argue that near real-time information would provide them with the ability to take advantage of important business moves as they happen. However, opponents are skeptical of how the raw information can be useful and fear information overload, or that there would be too much irrelevant information out there. Additionally, some companies are fearful that continuously reported financial information would give away important strategic moves and undermine competitive advantage.

Implementation of continuous auditing - Generally, the implementation of continuous auditing consists of six procedural steps, which are usually administered by a continuous audit manager. Knowing about these steps will enable auditors to better monitor the continuous audit process and provide recommendations for its improvement, if needed These steps include:

- **Establishing priority areas.** This entails choosing which organizational areas to audit. When performing the actions listed above, auditors need to consider the key objectives from each audit procedure. Objectives can be classified as one of four types: detective, deterrent (also known as preventive), financial, and compliance. A particular audit priority area may satisfy any one of these four objectives.
- **Identifying monitoring and continuous audit rules.** The second step consists of determining the rules or analytics that will guide the continuous audit activity, which need to be programmed, repeated frequently, and reconfigured when needed. In addition, monitoring and audit rules must take into consideration legal and environmental issues, as well as the objectives of the particular process.
- **Determining the process' frequency**. Although the process is called continuous auditing, the word continuous is in the eye of the beholder. Auditors need to consider the natural rhythm of the process being audited, including the timing of computer and business processes as well as the timing and availability of auditors trained or with experience in continuous auditing.
- **Configuring continuous audit parameters**. Rules used in each audit area need to be configured before the continuous audit procedure (CAP) is implemented. In addition, the frequency of each parameter might need to be changed after its initial setup based on changes stemming from the activity being audited. When defining a CAP, auditors should consider the costs and benefits of error detection as well as audit and management follow-up activities.
- **Following up.** Another type of parameter relates to the treatment of alarms and detected errors. Questions such as who will receive the alarm (e.g., line managers, internal auditors, or both ¯ usually the alarm is sent to the process manager, the manager's immediate supervisor, or the auditor in charge of that CAP) and when the follow-up activity must be completed, need to be addressed when establishing the continuous audit process.
- **Communicating results**. A final item to be considered is how to communicate with auditees. When informing auditees of continuous audit activity results, it is important for the exchange to be independent and consistent.

Demand - Demand for continuous auditing has come from a variety of sources, primarily user-driven requirements. External disclosure, internal drivers, laws and regulation, and technology all play important roles in pushing up demand.

External disclosure - More frequent disclosure will drive the nature of the audit process. This increase improves the quality of earnings while reducing manager aggressiveness and decreasing stock market volatility.

Internal drivers - As companies have become more integrated within their own departments and with other companies, such as suppliers and retailers, a desire for data integrity throughout the electronic data exchange process is also driving demand for continuous auditing

Laws and regulation - Laws and regulation require activities and ways a company followed in order to achieve a specific goal to be monitored. Under such laws and regulation company commenced for continuous auditing.

Technology -

XBRL *- XBRL facilitates the development of continuous auditing modules by providing a way for systems to understand the meaning of tagged data. Proper use of XBRL assures that relevant data gathered from multiple sources is easily comparable and analyzable. XBRL is a derivative of the XML file format, which tags data with contextual and hierarchical information. It is expected that many enterprise resource planning systems will provide data in the XBRL-GL format to facilitate machine readability.*

Security Because of the nature of the information passing through continuous auditing systems, security and privacy issues are also being addressed. Data assurance techniques, as well as access control mechanisms and policies are being implemented into CA systems to prevent unauthorized access and manipulation, and CCM can help test these controls.

Challenges - For many organizations, there are a number of challenges to implementing a continuous auditing approach. The following are some common challenges with associated recommendations.

Accessing complex, diverse system environment - Few organizations have a completely homogenous, seamless system environment. There is typically a mix of ERPs or multiple instances of one ERP, mainframe systems, off-the-shelf applications, and legacy systems - all of which may

contain valuable data. Technology is available to access all of this data to gain a complete picture**.**

Reluctance to expand the use of technology - Technology may be viewed as a threat to those who perceive that automation might replace jobs. A benefit of continuous auditing is that it performs routine, repetitive tasks and provides the opportunity for the more interesting exploratory work that adds far more value to the organization.

Training - Training is essential for optimum results. A number of institutions, including ACL Services Ltd., offer training on computer-aided audit techniques including continuous auditing through automation. Training can be conducted either on-site or remotely, depending on the need of companies.

Comparison to Computer-Aided Auditing - Continuous auditing is often confused with computer-aided auditing. The purpose and scope of the two techniques, however, are quite different. Computer-aided auditing employs end user technology including spreadsheet software, such as Microsoft Excel, to allow traditional auditors to run audit-specific analyses as they conduct the periodic audit. Continuous auditing, on the other hand, involves advanced analytical tools that automate a majority of the auditing plan. Where auditors manually extract data and run their own analyses in computer-aided auditing during the course of their traditional audit, high-powered servers automatically extract and analyze data at specified intervals as a part of continuous auditing.

Conclusion - When Continuous Audit is not properly implemented, continuous auditing can result in hundreds - even thousands - of false positives and wasted efforts. Many companies that have experienced success with continuous auditing recommend that you start small. Select which area of the company poses the greatest risk and where its transactions and control systems are most important to the company for your initial foray into continuous auditing. Automate a small number of key initial tests, such as comparing your accounts payable vendor master file with the employee address file, to uncover potential policy violations or fraud. Moving forward, increase the tests and gradually expand into other business processes in stages. From the above observation it can be concluded that continuous audit through technology and automation system must be adopted with proper training as well as organizations should monitors the transactions at a particular interval of time and should intimate the clients.

References :-

1. Vasarhelyi, Miklos and David Y. Chan. “Innovation and Practice of Continuous Auditing” International Journal of Accounting Information Systems. (Special Issue on Research Methods) 12, (2011) 152-160.
2. Vasarhelyi, M.A. and Halper, F. B., 1991, The Continuous Audit of Online Systems, Auditing: A Journal of Practice and Theory, 10(1), 110-125.
3. Vasarhelyi,Miklos. “The Coming Age of Continuous Assurance.” Insights. Melbourne Business and Economics. April 2011. 23-30.
4. Alles, Michael, Alexander Kogan, and Miklos Vasarhelyi. “Black Box Logging and Tertiary Monitoring of Continuous Assurance Systems.”Information Systems Control Journal 1. (2003): 37-39.
5. Vasarhelyi, Miklos, Carlos Elder Maciel De Aquino, Nilton Sigolo, and Washington Lopes Da Silva. “Six Steps to an Effective Continuous Audit Process.” The Tech Forum, Institute of Internal Auditors. July 2008.
6. Hunton, J., A. Wright, and S. Wright. 2002. Assessing the Impact of More Frequent External Financial Statement Reporting and Independent Auditor Assurance on Quality of Earnings and Stock Market Effects. Working paper presented at the Fifth Continuous Auditing Symposium.
7. Van Decker, J., 2004, The Need for Continuous Controls Monitoring, Available Online, Delta 2951: METAgroup,
8. http://www.aclchina.com/solution/Continuous%20Auditing.pdf

****

Branding Indian Tourism: Entering in Phase of Progress

Dr. Renu Jatana * Surbhi Dharmawat **

Abstract - India has already started 'Incredible India' campaign which is running successfully & reaping good rewards. But India's counterparts in south-east Asia already have the early mover advantage. So what are the factors that are to be looked into more closely while India enters the second phase of its tourism branding? It is important in this phase to build onto already running campaign. The challenges that lie ahead are plentiful and there needs a proper integrated branding strategy rather than numerous isolated efforts. It is also imperative to get to the root of many issues such as infrastructure, maintaining heritage sites etc. while we are moving ahead aggressively with branding. Implementing best international practices in tourism development is one of the important tasks that should be looked into. Secondary data was accumulated through various sources like internet, reference materials, newspapers, magazines etc. The objective of this research paper is to explore the methods to develop the branding strategies for Indian tourism so as position India on the top list of tourist destinations.

Introduction - To position a nation so that it can achieve the maximum success in the world system, including garnering the maximum international recognition and clout, robust business relations with the world, and a healthy tourism industry. By doing this, a nation brings the maximum benefit to its people by giving them dignity, and by creating jobs and wealth.

Developing a strong image for any brand requires a carefully planned brand strategy based on:

1. A well defined and unique brand personality
2. Selection of the correct positioning strategies
3. 'Themed' product development
4. Consistent and appropriate advertising and promotion
5. Careful brand guardianship

While the tourism sector pats itself on its back with facts and figures that seem to be growing each passingyear, but the fact is that in the year 2006, India represented a paltry 0.52 % of the world tourism marketshare. So India still lags behind in tourism scenario.

Secondary data was accumulated through various sources like internet, reference materials, newspapers, magazines etc. The World Economic Forum 2008, has come up with its annual 'Travel and Tourism CompetitivenessReport 20082 . This report measures the T&T (Travel and Tourism) competitiveness of economies, byusing an index called the Travel and Tourism Competitiveness Index (TTCI). The TTCI measures eacheconomy on the following criterion – Rules and regulations of an economy, how environmentally friendly the economy is, the safety andsecurity an economy provides to its travelers, air transport, tourism infrastructure, natural resources,cultural resources, and few others. In total there are about 14 criterion where in an economy ismeasured.

- India ranks a lousy 65. Switzerland comes in 1 and Lesotho is a 130.Its sad as the recent rapes,murders, thefts have propelled India in the list of countries that are not safe for tourists. UK, US,Canada and Australia have issued warnings to its citizens about visiting India.
- The Travel & Tourism Industry in India is expected to grow and generate US $ 128 billion by 2016.The Total Demand is expected to grow by 8% per annum, in real terms, between 2007 and 2016. In theyear 2006, India represented 0.52 % of the world market share in International Tourist Arrivals.

Suggestions - India's Tourism brand compared to mature countries. The diagram above shows two life cycles, one of Indian tourism and other of mature tourist destinations.As depicted in above Life Cycle diagram for tourism brand, India at present is in early growth stage whilemost of tourism developed countries are in maturity stage.India took higher Introduction period because of prior lack of branding it's tourism.But now is the time to really have a jumpstart by properly chalked out plans.So by the end of next 5 years we would be on fast track growth period. During these 5 years India hasgolden opportunity to make it big on tourist's list.So India's tourism branding vision should be in two phases, viz, short term (for 2 years) & long term (for 5years).

First phase broadly consist of mainly capacity building, infrastructure development, generating awarenessrelated to niche areas like Ecotourism. Also domestic tourism should be promoted vehemently so as driveinternal tourism movement first before forging onto international tourism development.

Tourism policing - The concept of 'tourism police' - a boon to tourists, particularly women - is receiving a major thrust.

* **Professor (Banking and Business Economics) UCCMS, M.L.S.U., Udaipur (Raj.) INDIA**
** **Research Scholar (Banking and Business Economics) UCCMS, M.L.S.U., Udaipur (Raj.) INDIA**

The idea is to sensitize the police to problems faced by tourists, guide them to their destination, assist themwhen there is loss of passport or money, and ensure safety at tourist spots. Tourism police is also expectedto deter harassment of women tourists, especially foreigners. Continued incidents of violence against tourists have forced the Centre to advise states to recruit ex-servicemenfor stepping up the security of tourists, particularly foreigners, and deploy them as 'touristpolice' or as an alternative security force. But the action the states have taken on Centers suggestion seemslargely token. In Delhi, the tourism police have just about 80 personnel and 10 PCR vans for touristassistance. This is when government statistics reveal the Capital sees the highest number of tourists in thecountry (20 lakh in 2006). "Ten vans for a destination like Delhi is just not enough. They need to sensitizethe entire police force to make tourists feel comfortable," says a Delhi tourism department official. Today,only 10 states have implemented the measure — the communication had first been sent last year — whilethe rest continue to drag their feet.But even in those states that have deployed special tourist police, it is open to question whether this ismerely a token measure or a genuine effort. Incidents have been reported from at least four of the 10 states— Maharashtra, Uttar Pradesh, Himachal Pradesh and Rajasthan.

The criminal incidents dent India's image as a safe tourist destination — despite the Incredible India campaignabroad — and several prominent countries, including the US and the UK, have issued warnings in officialtravel advisories to their citizens who are bound for India. Other states where the step has beenimplemented are Andhra Pradesh, Goa, Jammu & Kashmir, Karnataka and Kerala.

In Goa, a big attraction for foreign travellers, several cases of rape, molestation and other crimes againsttourists have been reported. Officials at the ministry pleaded inability to intervene directly, pointing out thatlaw and order being a state subject, they could only urge the states to take adequate steps to protect thetourists.

"Whenever such incidents occur, we get a report on them from our regional tourist offices. There is also acomplaints cell in our ministry where grievances of tourists are recorded and followed up for action.

Besides, in our media campaigns we try to create awareness among those engaged in the tourism and traveltrade as well as general public on the issue," said a senior official.

A report said - "The committee noteswith concern that incidents of cheating, fleecing criminal acts and harassment of foreign tourists bring abad name to the country and have an adverse impact on the foreign tourist arrival. The committee feels thatthe issue related with safety and security is vital in creating goodwill and the Union Ministry of Tourismcannot wash its hands off stating that policing is a state subject."So the plan for tourist security should not remain only on paper but should transform into some reality andproper implementation should be carried out.

Internet as a branding medium - The size of the place doesn't matter when it comes to an innovative online branding and marketingstrategy. It provides a highly effective means of reaching prospective customers economically throughattractive designs and navigation, plus search engine optimization and clever linking.The Internet has opened a world for the countries to create a brand for themselves. The internet can be usedas a medium for information dissimilation of features offered by the country. This could be done throughplatforms like websites, other online support like merchandise for sale, offering integrated packages, travelbooking facilities.

Development of niche tourism areas - Given India's unique endowments of biodiversity, forests, rivers, mountains, historical places, temples andpilgrims, caves, museums, monuments and culture, the industry holds immense strength for obtaininghigher growth rate. The challenges in the sector lie in successfully preserving these in their original form,and making them accessible to domestic and international travellers. India offers various categories oftourism products, such as adventure tourism; medical tourism (ayurveda and other forms of Indianmedications), eco-tourism; rural tourism; cruise tourism; meetings, incentives, conferences, and exhibitions(MICE) tourism; etc.Eg. Medical tourism: With global revenues of approximately US$ 20 Billion (2005), the medical tourismindustry is one of the world's largest industry. India's cost effective treatment makes it an importantplayer in this industry.

- Growing Medical tourism in India will be one of the major sources for foreign exchange.
- With increasing number of non-insured population in western countries and increasing healthcareexpenditure to GDP resulting in people opting for treatment choices outside their country.

But there are still hurdles like

1. Upgradation of basic amenities and hospital infrastructure
2. Co-ordination between the healthcare and tourism sectors
3. Creating a resource pool of highly skilled and cordial manpower
4. Standardization of services and accreditation of hospitals So It is imperative that we looked into such matters as early as possible and such niche tourism areasshould be promoted by the government because of their potential to become good revenue earners.

Infrastructure build-up -It is very important to beef up the infrastructure for tourist facilitation. Following measures should beimplemented with well chalked out plan:

1. Building highways to connect to the destinations throughout the country.
2. Identifying and developing new and existing destination circuits.

3. Introducing special tourist trains and tourist buses to connect to most sought after destinations
4. Establishment of budget and luxury hotels on surplus land available with government near tourist places.

Development of all sectors related to tourism - Tourism, being one of the largest industries, plays a key role in achieving the socio-economic goals of thedevelopment plans of a nation. It is an important service-oriented sector which has made rapid stridesglobally in terms of gross revenue and foreign exchange earnings. It is a composite of service providers,both public and private, which includes travel agents and tour operators; air, rail and sea transportationoperators; guides; owners of hotels, guest houses and inns, restaurants and shops; etc. They are involved inmeeting the diverse interests and requirements of domestic and international tourists. The tourism industryshould provide incentives to foster the quality of environment, generates more employment opportunities(particularly in remote and backward areas) as well as develops necessary infrastructure facilities likeroads, telecom and medical services, in the economy.

Role of private players -India has long history of big corporate houses, which have been instrumental in generating hugeemployment. But it is time now for these organizations to step up and help in improvement andmaintenance of tourism. This can be done through measures such s funding the maintenance of heritagesites, helping build string network of road connectivity etc. Also through PPP(Public Private Partnership)many activities could be undertaken.

Manpower development -India has huge human resources, which can be tapped in to boost tourism. It will also create jobopportunities for vast population.

Background to Recent Initiative in Tourism development - Sustainable Tourism Initiative (STI)

The UK STI was kick started by Tony Blair at a WWF conference on the state of the global environment in2001. At this meeting Mr Blair declared his intention to bring together the chief executive officers of anumber of leading industries, including tourism, in order to realise a significant contribution to sustainabledevelopment in the run up to the 2002 World Summit. The STI is driven by the Foreign Office and isintended to bring together government departments, industry and NGOs to achieve a step change insustainable tourism practice of the UK outbound industry and to establish a basis for continualimprovement. The four major UK tour operators are involved in the process – although with varyingdegrees of participation, alongside many more small and/or specialist operators and trade associations.

Conclusion - India is venturing into the second phase of its tourism branding and it is important at this stage to properlychalk out the plan for tourism development. This is because the competition for attracting major chunk oftourism pie is gearing up.India is already projecting a vibrant, colourful image of it's diversity in terms of customs, lifestyle, heritagesites etc. through its campaigns. It is time now for a committed effort by the governmental authorities witha co-ordination among various entities related to tourism along with participation of private players is ofprime importance if India has to become a top priority for tourists.

References :-

1. www.incredibleindia.org
2. www.thehindubusinessline.com
3. www.tourism.nic.in

****

Recommendations of Narasimham Committee and its Impact on Banking Sector in India

Dr. Vandana Jain * Dr. Pournima Patel **

Abstract - The Finance Ministry of Government of India set up various committees with the task of analyzing India's banking sector and recommending legislation and regulations to make it more effective, competitive and efficient. Two such expert Committees were set up under the chairmanship of M. Narasimham. They submitted their recommendations in the 1990s in reports widely known as the Narasimham Committee-I (1991) report and the Narasimham Committee-II (1998) Report. These recommendations not only helped unleash the potential of banking in India, they are also recognized as a factor towards minimizing the impact of global financial crisis starting in 2007.

The purpose of the Narasimham-I Committee was to study all aspects relating to the structure, organisation, functions and procedures of the financial systems and to recommend improvements in their efficiency and productivity. The Committee submitted its report to the Finance Minister in November 1991 which was tabled in Parliament on 17 December 1991.The Narasimham-II Committee was tasked with the progress review of the implementation of the banking reforms since 1992 with the aim of further strengthening the financial institutions of India. It focused on issues like size of banks and capital adequacy ratio among other things. M. Narasimham Chairman, submitted the report of the Committee on Banking Sector Reforms (Committee-II) to the Finance Minister in April 1998. This article is about the recommendations of the first and Second Narasimham Committee, the Committee on Banking Sector Reforms.

Introduction - During the decades of the 60s and the 70s, India nationalized most of its banks. This culminated with the balance of payments crisis of the Indian economy where India had to airlift gold to International Monetary Fund to loan money to meet its financial obligations. This event called into question the previous banking policies of India and triggered the era of economic liberalization in India in 1991. Given that rigidities and weaknesses had made serious inroads into the Indian banking system by the late 1980s, the Government of India post-crisis, took several steps to remodel the country's financial system. The banking sector, handling 80% of the flow of money in the economy, needed serious reforms to make it internationally reputable, accelerate the pace of reforms and develop it into a constructive usher of an efficient, vibrant and competitive economy by adequately supporting the country's financial needs. In the light of these requirements, two expert Committees were set up in 1990s under the chairmanship of M. Narasimham (an ex-RBI governor) which are widely credited for spearheading the financial sector reform in India. The first Narasimhan Committee (Committee on the Financial System – CFS) was appointed by Manmohan Singh as India's Finance Minister on 14 August 1991, and the second one (Committee on Banking Sector Reforms) was appointed by P.Chidambaram as Finance Minister in December 1997. Subsequently, the first one widely came to be known as the Narasimham Committee-I (1991) and
the second one as Narasimham-II Committee(1998).

Assumptions of the committee - There were protests by employee unions of banks in India against the report. The Union of RBI employees made a strong protest against the Narasimham II Report. There were other plans by the United Forum of Bank Unions (UFBU), representing about 1.3 million bank employees in India, to meet in Delhi and to work out a plan of action in the wake of the Narasimham Committee report on banking reforms. The committee was also criticized in some quarters as "anti-poor". According to some, the committees failed to recommend measures for faster alleviation of poverty in India by generating new employment this caused some suffering to small borrowers (both individuals and businesses in tiny, micro and small sectors).

Problems Identified By the Narasimham Committee

1. Directed Investment Programme - The committee objected to the system of maintaining high liquid assets by commercial banks in the form of cash, gold and unencumbered government securities. It is also known as the statutory liquidity Ratio (SLR). In those days, in India, the SLR was as high as 38.5 percent. According to the M. Narasimham's Committee it was one of the reasons for the poor profitability of banks. Similarly, the Cash Reserve Ratio- (CRR) was as high as 15 percent. Taken together, banks needed to maintain 53.5 percent of their resources idle with the RBI.

2. Directed Credit Programme - Since nationalization the government has encouraged the lending to agriculture and small-scale industries at a confessional rate of interest. It is known as the directed credit programme. The committee opined that these sectors have matured and thus do not need such financial support. This directed credit programme was successful from the government's point of view but it affected commercial banks in a bad manner. Basically it deteriorated the quality of loan, resulted in a shift from the security oriented loan to purpose

* Prof., SJHS Gujarati Innovative College of Commerce & Science, Indore (M.P.) INDIA
** Associate Prof., SJHS Gujarati Innovative College of Commerce & Science, Indore (M.P.) INDIA

oriented. Banks were given a huge target of priority sector lending, etc. ultimately leading to profit erosion of banks.

3. Interest Rate Structure - The committee found that the interest rate structure and rate of interest in India are highly regulated and controlled by the government. They also found that government used bank funds at a cheap rate under the SLR. At the same time the government advocated the philosophy of subsidized lending to certain sectors. The committee felt that there was no need for interest subsidy. It made banks handicapped in terms of building main strength and expanding credit supply.

4. Additional Suggestions - Committee also suggested that the determination of interest rate should be on grounds of market forces. It further suggested minimizing the slabs of interest.Along with these major problem areas M. Narasimham's Committee also found various inconsistencies regarding the banking system in India. In order to remove them and make it more vibrant and efficient, it has given the following recommendations.

Recommendations of Narasimham Committee on Commercial Banking System (1991) & Banking Reforms (1998)

1. Narasimham Committee on Banking Sector Reforms (1991) - The narasimham committee-I assumed that the financial resources of the commercial banks from the general public and were by the banks in trust and that the bank funds were to be deployed for maximum benefit of the depositors. This assumption automatically implied that even the government had no business to endanger the solvency, health and efficiency of the nationalized banks under the pretext of using banks funds for social banking, poverty eradication, etc. Accordingly, the narasimham committee aimed at achieving three major changes in the banking sector in India;

- Ensuring a degree of operational flexibility.
- Internal autonomy for the banks in their decision making process.
- Greater degree of professionalism in banking operations.

Towards this end, narasimham committee recommendations covered such subjects as directed investments, directed credit programmes, structural of rate of interest, structural reorganization of the Indian banking system, and organization, methods and procedures of banks in India.

In Structural Reorganization of The Banking System

To bring about greater efficiency in banking operations, the narasimham committee I proposed substantial reduction in number of public sector banks through mergers and acquisition. According to committee, the broad pattern should consist of;

- Three or four large banks including SBI should become international in character.
- Eight to ten banks should national bank with wide network of branches throughout the country.
- The rest should remain as local banks with operations be confined to a specific region.
- RBI should permit the establishment of new banks in the private sector, provided they conform to the minimum start-up capital and other requirements. The government should make declaration that no further banks be nationalized.
- Foreign banks are allowed to open their branches in India either as fully owned or subsidiaries. This would improve efficiency.
- Foreign banks and Indian banks are allowed to set-up joint ventures in regard to merchant and investment banking.
- Since the country had already a network of rural and semi-urban branches, the system of licensing of branches with the objective of spreading the banking habit should be discontinued. Banks should have freedom to open branches.

On Organization And Methods And Procedures In Banks

In order to tone up the working of the banks, the narasimham committee I recommended that;

- Each bank should be free and autonomous.
- Every bank should go for a radical change in working technology and culture, so to become competitive internally and to be in step with wide- ranging innovations taking place.
- Over- regulation and over- administration should be avoided and greater reliance should be placed on internal audit and internal inspection.
- The various guidelines issued by government or RBI in regard to internal administration should be examined in the context of the independence and autonomy of bank.
- The quality of control over the banking system between RBI and the banking division of ministry and finance should end forthwith and RBI should be the primary agency for regulation.
- The appointment of chief executive of bank and the board of directors should not be based on political considerations but on professionalism and integrity.

So despite impressive quantitative achievements in resources mobilization and in extending the credit reach, several distortions had crept into the banking system over the years. Several public sector banks had become weak financially and were unable to meet the challenges of the competitive environment. The narasimham committee was forthright in apportioning the blame to the government of India and the finance ministry of this sad state of affairs. The public sector banks has been used and abused by the government, the officials and the bank employees and the trade unions. The recommendations of narasimham committee I has been revolutionary in many aspects and were opposed by trade unions and even by finance ministry of central government and of course, the progressive economist who generally championed the public sector banks. The government however accepted many of the recommendations of the narasimham committee I.

2. Narasimham Committee on Banking Sector Reforms (1998) - The finance ministry of government of India appointed Mr. M. Narasimham as chairman of one more committee, this time it was called as the committee on banking sector reforms. The committee was asked to "review the progress of banking sector reforms to the date and chart a programme on financial sector reforms necessary to strengthen India's financial system and make it internationally competitive". The narasimham committee on banking sector reforms submitted this report to the government in April 1998. This report covers the entire issues relating to capital adequacy, bank mergers, the condition of global sized banks, recasting of banks boards etc. some important findings are as follows;

- **Need For Stronger Banking System** - The narasimham committee has made out a stronger banking system in country, especially in the context of capital account convertibility (CAC) which would involve large amount of inflow and outflow of capital and consequent complications for exchange rate management and domestic liquidity. To handle this India would need a strong resilient banking and financial system.
- **Experiment With The Concept of Narrow Banking**- The narasimham committee is seriously concerned with the rehabilitation of weak public sector banks which have accumulated a high percentage of non-paying assets (NPA), and in some cases, as high as 20% of their total assets. They suggested the concept of narrow banking to rehabilitate such weak banks.
- **Small Local Banks** - The narasimham committee has argued that "While two or three banks with an international orientation and 8 to 10 of larger banks should take care of their needs of the large and medium corporate sector ad larger of the small enterprises, there will still be a need for a large number of local banks." The committee has suggested the setting up of small local banks which should be confined to states or clusters of districts in order to serve local trade, small industry etc.
- **Capital Adequacy Ratio** - The narasimham committee has also suggested that the government should consider raising the prescribed capital adequacy ratio to improve the inherent strength of banks and to improve their risk taking ability.
- **Public Ownership And Real Autonomy** - The narasimham committee has argued that government ownership and management of banks does not enhance autonomy and flexibility in working of public sector banks. Accordingly, the committee has recommended a review of functions of banks boards with a view to make them responsible for enhancing shareholder value through formulation of corporate strategy.
- **Review And Updating Banking Laws** - The narasimham committee has suggested the urgent need to review and amended the provisions of RBI Act, Banking Regulation Act, State Bank of act etc so as to bring them on same line of current banking needs.Really speaking there was no purpose of setting up the second narasimham committee on banking sector reforms even before a decade has elapsed for the full implementation of the recommendations of First committee. As one critics has commented: " barring this is, a stray recommendation here or there like the categorical rejection of the merger of weak with strong banks and the suggestion to try out narrow banking, as far as all other issues are concerned"

Execution of recommendations - In 1998, RBI Governor Bimal Jalan informed the banks that the RBI had a three to four-year perspective on the implementation of the Committee's recommendations Based on the other recommendations of the committee, the concept of a universal bank was discussed by the RBI and finally ICICI bank became the first universal bank of India. The RBI published an "Actions Taken on the Recommendations" report on 31 October 2001 on its own website. Most of the recommendations of the Committee have been acted upon (as discussed above) although some major recommendations are still awaiting action from the Government of India.

Response - Initially, the recommendations were well received in all quarters, including the Planning Commission of India leading to successful implementation of most of its recommendations Then it turned out that during the 2008 economic crisis of major economies worldwide, performance of Indian banking sector was far better than their international counterparts. This was also credited to the successful implementation of the recommendations of the Narasimham Committee-II with particular reference to the capital adequacy norms and the recapitalisation of the public sector banks. The impact of the two committees has been so significant that elite politicians and financial sectors professionals have been discussing these reports for more than a decade since their first submission applauding their References.

Conclusion - It appears that the reforms suggested by the Narasimham Committee have far reaching impact in the process of financial liberalization and growth of money and capital markets in India .Recommendations were well received, leading to successful implementation of most of its recommendations During the seconomic crisis, performance of Indian banking sector was far better than their international counterparts . This was credited to the successful implementation of the recommendations of the Narasimham Committee-II with particular reference to the capital adequacy norms and the recapitalization of the public sector banks Impact of the two committees has been so significant that the financial-economic sector professionals have been applauding there positive contribution. The basic aim of banking sector reforms is to establish a sound and viable banking system ,which would help the development of the real economy .The objective of promoting efficiency in the real economy cannot be fulfilled unless there is reforms of the financial sector as well .the two reports of Mr M.Narasimham committee have been instrumental in bringing about a major shift in the approach to the development of the banking sector and financial sector in India.

References :-

1. "Prime Minister's address at RBI Platinum Jubilee Celebrations". Press Information Bureau, Government of India. 1 April 2010. Retrieved 22 February 2011.
2. "Financial reforms and development". S.D.Naik, Business Line, the Hindu. 26 April 2002. Retrieved22 February 2011.
3. Committee on the Financial System; M. Narasimham (1992). Narasimham Committee report on the financial system,1991. Standard Book Co. Retrieved23 February 2011.
4. "Financial sector reforms – an assessment". Sudha Sharma, Expressindia.com. 30 December 1997. Retrieved23 February 2011.
5. "Narasimham Committee Report 1991 1998 – Recommendations". Gaurav Akrani. 16 September 2010. Retrieved 2011-02-19.
6. "Banking Sector Reforms 1999–2000". Banknetindia.com. Retrieved 2011-02-19.
7. "RBI ActionTaken Report".Rbi.org.in.Retrieved2011-02-19.
8. "INDIA'S ECONOMIC REFORMS: AN APPRAISAL" Montek Singh Ahluwalia.26 August1999.Retrieved23 Februar
9. Government of India (1998) ,report of committee on Banking sector reforms .
10. Reserve bank of india Report on the Trend and progress of banking in India (various year)
11. Banking and finance perspectives on reforms", B.S.Sreekantaradhya,Deep& Deep publication New Delhi

मध्यप्रदेश में महिलाओं की स्थिति में जनांकिकीय परिवर्तन

डॉ. अनामिका सारस्वत *

प्रस्तावना – मध्यप्रदेश भारत का हृदय प्रदेश है जो भारत के 23.250 उत्तर तथा 77.410 पूर्व में स्थित है। इसमें पुराना अवन्ति महा-जनपद भी सम्मिलित है, जिसकी राजधानी उज्जैन थी, जो छठी शताब्दी के समय भारत के प्रमुख शहरों में से एक था व यह कला, संस्कृति, साहित्य के साथ-साथ व्यापार का भी प्रमुख केन्द्र हुआ करता था। बाद में इस क्षेत्र में मौर्य, गुप्त, हर्षवर्धन, राजपूत, परमार, चन्देल, बुंदेला, तोमर, मुगल, मराठा व अन्त में अंग्रेजों ने शासन किया।

स्वतंत्रता के समय यह क्षेत्र मध्यप्रदेश के नाम से बना जिसकी राजधानी नागपुर थी। तत्पश्चात् 1 नवम्बर 1956 में नये मध्यप्रदेश की स्थापना हुई, जिसमें मध्यभारत, विंध्यप्रदेश व भोपाल के क्षेत्र सम्मिलित थे व इसकी राजधानी भोपाल घोषित की गई। यह स्थिति वर्ष 2000 तक रही जब छत्तीसगढ़ का क्षेत्र अलग प्रदेश के रूप में विभाजित हुआ व वर्तमान मध्यप्रदेश बना जिसकी राजधानी भोपाल है।

मध्यप्रदेश का कुल क्षेत्रफल 308252 वर्ग किमी. है व क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत का दूसरा बड़ा प्रदेश है। यहाँ की कुल जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 7,25,97,565 है व जनसंख्या की दृष्टि से यह भारत का छठा बड़ा प्रदेश है। मध्यप्रदेश तेजी से विकास करता हुआ प्रदेश है। पूर्व में यह बीमारू राज्यों में से एक था किन्तु अपने विकास के प्रयासों से यह उस श्रेणी से बाहर आ चुका है। कृषि क्षेत्र में यह सोयाबीन प्रदेश के नाम से जाना जाता है व लगातार तीसरी बार राष्ट्रीय कृषि कर्मण अवार्ड से नवाजा गया है किन्तु जनांकिकीय दृष्टि से यह अभी भी भारत के अन्य राज्यों से काफी पीछे है जैसे लिंगानुपात, साक्षरता आदि में।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य – प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य मध्यप्रदेश में पिछले दशक (2001 से 2011) में महिलाओं की जनांकिकीय स्थिति में परिवर्तन देखना है कि विकास के साथ-साथ महिलाओं की जनांकिकीय स्थिति में परिवर्तन आया है या नहीं क्योंकि मानव संसाधन की स्थिति में सुधार के बिना विकास असम्भव व बेमानी है। साथ ही भारत में महिलाओं की जनांकिकीय स्थिति से तुलना कर उसकी तुलना करना है।

शोध प्रविधि – प्रस्तुत शोध आलेख में द्वितीयक समंकों का प्रयोग किया गया है, जिन्हें विभिन्न पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, वेबसाईट व शोधपत्रों से प्राप्त कर भारत व मध्यप्रदेश के आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन किय गया है।

प्रकल्पना – प्रस्तुत शोध पत्र हेतु यह प्रकल्पना ली गई है कि बीमारू श्रेणी से निकलने के बावजूद भारत की तुलना में मध्यप्रदेश में स्त्रियों की स्थिति कमतर स्थिति में है।

मध्यप्रदेश में महिलाओं की जनांकिकीय स्थिति-मध्यप्रदेश में जनांकिकीय दृष्टि से महिलाओं की स्थिति निम्नानुसार है –

1. **महिला जनसंख्या –** प्रदेश में महिलाओं की संख्या निम्नानुसार है।

भारत व मध्यप्रदेश में महिला जनसंख्या (सारणी देखे)

जनसंख्या में दशकीय परिवर्तन (सारणी देखे)

तालिकाओं से स्पष्ट है कि भारत व मध्यप्रदेश दोनों में महिलाओं की संख्या में प्रतिशत परिवर्तन पुरूषों की तुलना में अधिक हुआ है यानि भारत में 17.1 प्रतिशत पुरूषों की तुलना में 18.3 प्रतिशत महिलाओं की संख्या बढ़ी है व मध्यप्रदेश में भी 19.6 प्रतिशत पुरूषों की तुलना में महिलाओं की संख्या 21.1 प्रतिशत बढ़ी है। इसका अर्थ है कि स्त्री जन्म दर में वृद्धि हो रही है।

मध्यप्रदेश में दशकीय परिवर्तन 1991-2001 में 24.34 प्रतिशत वृद्धि की तुलना में घटकर 20.3 प्रतिशत वृद्धि पर आ गया है यानि कुल जनसंख्या की वृद्धि दर वर्तमान दशक में घटी है।

0-6 वर्ष के बच्चों की जनसंख्या का अनुपात

देश/राज्य	2001		2011	
	पुरूष	महिला	पुरूष	महिला
भारत	15.97	15.88	13.3	12.93
मध्यप्रदेश	17.7	18.00	14.7	14.4

Source : Census of India 2011 Press Conference

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 0 से 6 वर्ष के बच्चों की जनसंख्या के अनुपात में भारत व मध्यप्रदेश दोनों में कमी आई है जिसका प्रमुख कारण जन्म दर में कमी है। 0-6 वर्ष के बच्चों की जनसंख्या में मध्यप्रदेश, भारत में चौथे स्थान पर है। वर्ष 2012 में भारत में जन्मदर 21.6 प्रति हजार थी वहीं मध्यप्रदेश में 26.6 प्रति हजार थी।

2. **स्त्री-पुरूष अनुपात –** स्त्री-पुरूष अनुपात का अर्थ होता है, प्रति हजार पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या। जो देश या राज्य जितना विकसित होता है वहाँ लिंगानुपात उतना ही अधिक होता है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात लिंगानुपात कम हो रहा था, किन्तु 1991 के पश्चात इसमें सुधार आया है।

भारत व मध्यप्रदेश में स्त्री-पुरूष अनुपात

	भारत			मध्यप्रदेश		
	2001	2011	परिवर्तन	2001	2011	परिवर्तन
कुल	933	940	+07	920	931	+11
ग्रामीण	946	949	+03	927	936	+09
शहरी	900	929	+29	898	918	+20

Source : Census of India 2011

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत व मध्यप्रदेश दोनों में ही स्त्री-पुरूष अनुपात में सुधार आया है, जहाँ भारत में 2001 से 2011 में परिवर्तन (+7) है, वहीं मध्यप्रदेश में परिवर्तन की दर इसी काल में (+11) है, किन्तु अभी भी मध्यप्रदेश, भारत के स्त्री-पुरूष अनुपात से पीछे है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ग्रामीण क्षेत्र में स्त्री-पुरूष अनुपात अधिक है जिसका प्रमुख

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

कारण पुरूषों की प्रवासी प्रवृत्ति है जो उन्हें शहरों की ओर लेकर आता है व शहरों में पुरूषों की संख्या अधिक हो जाती है व ग्रामों में महिलाओं की।

शिशु लिंगानुपात

	2001	2011
भारत	927	919
मध्यप्रदेश	932	918

Source : Census of India 2011

शिशु लिंगानुपात का अर्थ है 0-6 वर्ष के प्रति हजार लड़कों पर लड़कियों की संख्या। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत व म.प्र. दोनों में ही शिशु लिंगानुपात पिछले दशक में गिरा है जो चिंतनीय है, जिसके पीछे हमारे धार्मिक, सामाजिक परिवेश व लड़कों के प्रति मोह व लड़कियों को बोझ समझने की प्रवृत्ति है।

3. जीवन प्रत्याशा - जब बच्चा जन्म लेता है तो यह अनुमान लगाया जाता है कि वह कितने वर्ष जीवित रहेगा, इसे ही प्रत्याशित आयु या औसत आयु या जीवन प्रत्याशा कहते हैं। जो देश जितना विकसित होता है, वहाँ जीवन प्रत्याशा उतनी ही अधिक होती है।

भारत व मध्यप्रदेश में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (वर्ष में)

	2001			2010		
	कुल	**पुरूष**	**महिला**	**कुल**	**पुरूष**	**महिला**
भारत	63.9	63.87	66.91	66.1	64.6	67.7
मध्यप्रदेश	-	59.19	58.01	62.4	-	-

Source - Ministry of Health and Family Welfare, Govt. of India

विश्व स्वास्थ्य संगठन के हेल्थ स्टेटिक्स 2011 के अनुसार विश्व की जीवन प्रत्याशा (जन्म के समय) 68 वर्ष है। मध्यप्रदेश में 2001 से 2010 के मध्य, मध्यप्रदेश में (3.1 वर्ष) की वृद्धि हुई है, जो मध्यप्रदेश में बढ़ रही चिकित्सा सुविधाओं का द्योतक है।

4. साक्षरता दर - साक्षरता दर भी विकास का घटक है। भारत व मध्यप्रदेश में साक्षरता की निम्न दर है -

भारत व मध्यप्रदेश में साक्षरता दर में दशकीय परिवर्तन

	भारत			**मध्यप्रदेश**		
	2001	**2011**	**परिवर्तन**	**2001**	**2011**	**परिवर्तन**
कुल	64.8	73.0	+8.2	63.7	69.3	+5.6
पुरूष	75.3	80.9	+5.6	76.1	78.7	+2.6
महिला	53.7	64.6	+10.9	50.3	59.2	+8.9

Source : Registrar General of India

भारत व मध्यप्रदेश में साक्षरता दर में पिछले दशक में वृद्धि हो रही है, किन्तु मध्यप्रदेश में आज भी 59.2 प्रतिशत महिलाऐं ही साक्षर हैं।

5. कार्यभागिता दर - भारत में 15 से 59 वर्ष की आयु को कार्यकारी आयु माना गया है। वर्तमान में भारत सबसे युवा राष्ट्र माना जा रहा है, लेकिन ये युवा विकास में तभी सहायक हो सकते हैं जब उन्हें रोजगार प्राप्त हो, इसके लिये कार्यभागिता दर देखना आवश्यक है -

भारत व मध्यप्रदेश में कार्यभागिता दर (प्रतिशत में)

	भारत			**मध्यप्रदेश**		
	2001	**2011**	**परिवर्तन**	**2001**	**2011**	**परिवर्तन**
कुल	39.1	39.8	+0.7	42.7	43.5	+0.8
पुरूष	51.7	53.3	+1.6	51.5	53.6	+2.1
महिला	25.6	25.5	-0.1	33.2	32.6	-0.6

Source : Census of India 2011

मध्यप्रदेश में महिला कार्यभागिता का प्रतिशत भारत से अधिक है किन्तु 2001 से 2011 में कार्यभागिता प्रतिशत में कमी आई है।

किसी भी देश या प्रदेश के आर्थिक विकास को देखने के लिये वहाँ की प्रति व्यक्ति आय के साथ मानवीय विकास सूचकांक को भी देखा जाता है, क्योंकि मानवीय विकास रिपोर्ट (1997) के अनुसार - 'आय, एक साधन है, व मानवीय विकास ध्येय।' मानवीय विकास सूचकांक के तीन माप विकसित किये गए - मानवीय विकास सूचकांक, लिंग सम्बन्धी विकास सूचक और मानवीय विकास सूचक। मानवीय विकास सूचकांक औसत उपलब्धि बताता है यानि स्त्री व पुरूष का सम्मिलित विकास, किन्तु लिंग सम्बन्धी सूचकांक स्त्री-पुरूष असमानता को दर्शाते हैं, जिसे हम स्त्री जीवन प्रत्याशा, स्त्री साक्षरता व स्त्री प्रति व्यक्ति आय को मापते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण में हमने इसे ही देखने का प्रयास किया व पाया कि इन सभी आयामों में मध्यप्रदेश में स्त्रियों की स्थिति भारत की स्थिति से कम है, जबकि यहाँ उल्लेखनीय है कि भारत की स्वयं की स्थिति विश्व में मध्यम मानवीय विकास में है, यानि मध्यप्रदेश की स्थिति उससे भी नीचे है। मध्यप्रदेश में स्त्री-पुरूष असमानता का प्रमुख कारण - गरीबी, बड़ा आदिवासी बहुल क्षेत्र, ग्रामीण एवं कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था, सामाजिक पिछड़ापन एवं अज्ञानता एवं उदासीनता है। मध्यप्रदेश सरकार द्वारा मध्यप्रदेश में महिलाओं की जनांकिकीय स्थिति सुधारने के लिये कई योजनाऐं चलाई जा रही है जैसे-

1. स्त्री-पुरूष अनुपात सुधारने, जीवन प्रत्याशा बढ़ाने हेतु महिला एवं बाल विकास विभाग व स्वास्थ्य विभाग के माध्यम से लाड़ली लक्ष्मी योजना, विभिन्न टीकाकरण, पौष्टिक आहार, किशोरी बालिकाओं व महिलाओं हेतु विभिन्न कार्यक्रम, रक्तल्पता की कमी दूर करने हेतु नि:शुल्क दवाई वितरण, बेटी बचाओ कार्यक्रम, कन्या भ्रूण हत्या पर रोक हेतु कार्यक्रम, भ्रूण जांच प्रतिबंध, मुख्यमंत्री कन्यादान योजना आदि।
2. महिला शिक्षा हेतु सर्व शिक्षा अभियान सहित बालिकाओं हेतु मुफ्त शिक्षा, मुफ्त पुस्तकें, यूनिफार्म, साइकिल, छात्रवृत्ति प्रदाय, छात्रावास सुविधाऐं, मुफ्त स्टेशनरी आदि।
3. महिला प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने एवं कार्यभागिता स्तर बढ़ाने हेतु नौकरियों में 33 प्रतिशत आरक्षण, महिलाओं हेतु विशेष स्वरोजगार योजनाऐं, अनुदान, ऋण योजनाऐं, स्वयं सहायता समूह, विभिन्न मेलों का आयोजन आदि। इसके अलावा विभिन्न शासकीय-अशासकीय संस्थाओं, विभिन्न संगठनों, विभागों के माध्यम से मध्यप्रदेश में जनजागरण कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, जिससे म.प्र. में महिलाओं की जनांकिकीय स्थिति में सुधार आ सके।

सरकारी प्रयासों के साथ ही आवश्यकता इस बात की है कि आम जनता भी अपनी जिम्मेदारी महसूस करे। जब तक हमारे दिमाग में लड़का-लड़की का भेद रहेगा, लड़कियों को कमतर समझा जाएगा व समाज में उन्हें उचित स्थान व सम्मान नहीं मिलेगा, स्थिति में तेजी से परिवर्तन नहीं आ सकता। इसके लिये विभिन्न अशासकीय संगठनों, संस्थाओं को आगे आकर जागृति कार्यक्रम चलाने होगें, विशेषकर आदिवासी बहुत क्षेत्रों में जहाँ रोजगार हेतु प्रवासी प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है व महिला शिक्षा का स्तर निम्न है। यदि योजनाओं को ईमानदारी से लागू किया जाए व यह केवल सरकारी खानापूर्ति न बनकर रह जाए तथा जनता का सहयोग मिले तो निश्चित ही अगली जनसंख्या (2021) तक मध्यप्रदेश में महिलाऐं भी जनांकिकीय

दृष्टि से समानता के स्तर पर आ सकेंगी एवं मध्यप्रदेश का मानवीय विकास सूचकांक ऊपर आ सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारतीय अर्थव्यवस्था - रूद्र, दत्त एवं सुन्दरम - एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली
2. भारतीय अर्थव्यवस्था - डॉ. जे.सी. पंत, डॉ. जे.पी. मिश्रा - साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
3. अर्थशास्त्र - अनुपम अग्रवाल, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, इंदौर
4. जनांकिकी - डॉ. जयप्रकाश मिश्रा, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
5. कृषि अर्थशास्त्र - डॉ. जे.पी. मिश्रा, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
6. भारतीय आर्थिक नीति - माहेश्वरी एवं गुप्ता, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल
7. Ministry of Health and Family Welfare, Govt of India.
8. Census of India 2011
9. wwww.registrargeneralofindia.com
10. wwww.censusindia.net

भारत व मध्यप्रदेश में महिला जनसंख्या

भारत			मध्यप्रदेश		
लिंग	2001	2011	लिंग	2001	2011
कुल	1027015247	1210193422	कुल	60385118	72597565
पुरूष	531277078	623724248	पुरूष	31456873	37611370
महिला	495738169	586469174	महिला	28928245	34984645

Source : Census of India 2011

जनसंख्या में दशकीय परिवर्तन
(वर्ष 2001 से 2011)

देश/राज्य	सकल वृद्धि (करोड़ में)	पुरूष वृद्धि (करोड़ में)	% वृद्धि पुरूष	पुरूष वृद्धि (करोड़ में)	% वृद्धि महिला
भारत	18.20	9.10	17.1%	9.10	18.3%
मध्यप्रदेश	01.13	0.62	19.6%	0.61	21.1%

Source : Registrar General of India

****

रोजगार सृजन एवं आर्थिक विकास में पर्यटन की भूमिका

राजू बघेल *

शोध सारांश – पर्यटन को आर्थिक विकास और रोजगार सृजन का एक सशक्त माध्यम माना जाता है। पर्यटन क्षेत्र देश का सबसे बड़ा सेवा उद्योग है। वर्ष 2007-08 में पर्यटन का देश के सकल घरेलू उत्पादन में 5.92 फीसदी और नौकरियों में 9.24 फीसदी का योगदान रहा। पर्यटन भारत की सामाजिक-आर्थिक विकास का रीढ़ रहा है क्योंकि यह राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं बल्कि स्थानीय स्तर पर भी रोजगार के असीमित अवसर प्रदान करता है। यह सुदूरवर्ती और अल्प विकसित इलाकों के विकास के साथ-साथ रोजगार सृजन का भी बहुत ही महत्वपूर्ण उपकरण है। परन्तु भारत में पर्यटकों की जरूरतों की पूर्ति के लिए सत्कार से प्रशिक्षित लोगों की कमी है, विभिन्न पर्यटन स्थलों में समन्वय और सामंजस्य का अभाव है। देश में पर्यटन के धारणीय विकास का प्रश्न है- ऐसा विकास जो पर्यावरण के साथ सहकार स्थापित कर सके और बगैर उसे नुकसान पहुंचाऐं आगे बढ़ सकें।

शब्द कुंजी – पर्यटन, रोजगार, आर्थिक विकास, धारणीय विकास, सेवा उद्योग, आय ।

प्रस्तावना – पर्यटन भारत की सामाजिक-आर्थिक विकास का रीढ़ रहा है क्योंकि यह राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं बल्कि स्थानीय स्तर पर भी रोजगार के असीमित अवसर प्रदान करता है। भारत में तीर्थस्थलों की यात्रा का इतिहास सदियों पुराना है।[1] देश के आर्थिक विकास में जिस प्रकार कृषि की अहम भूमिका है ठीक उसी प्रकार वर्तमान में परिवर्तन की बेला में प्रकृति व सांस्कृतिक धरोहर (पर्यटन) आर्थिक विकास में अहम भूमिका निभा रहा है।

पर्यटन को आर्थिक विकास और रोजगार सृजन का एक सशक्त माध्यम माना जाता है। पर्यटन क्षेत्र देश का सबसे बड़ा सेवा उद्योग है। वर्ष 2007-08 में पर्यटन का देश के सकल घरेलू उत्पादन में 5.92 फीसदी और नौकरियों में 9.24 फीसदी का योगदान रहा। पर्यटन क्षेत्र के वर्तमान विकास में वृद्धि या 12वीं योजना अवधि में इसे बरकरार रखने की चुनौतियों में होटल, सड़कें, वाहन, रास्ते की सुविधाएँ सुगम बनाने वाले केन्द्र जैसी अतिरिक्त पर्यटन अवसंरचना सुविधाओं का सृजन करना शामिल है। देश में पर्यटन के विकास हेतु अक्टूबर 1966 में भारतीय पर्यटन विकास निगम की स्थापना की गई थी, निगम ने समूचे देश में एक वृहद होटल श्रेणी बनाने में सफलता प्राप्त की है। महलों, हवेलियों, दुर्गो, किलों के अलावा 1950 से पहले बने आवासीय भवनों में चल रहे होटलों के लिए 'हेरिटेज' नाम का नया वर्ग बनाया गया, यह पर्यटनों को अत्यन्त प्रिय भी है।[2] पर्यटन निर्यातोन्मुखी सेवा क्षेत्र है। जिसमें विशेष रूप से अकुशल और अर्द्धकुशल श्रमिकों के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर पैदा करने की क्षमता है। यह उद्योग गरीबी उन्मूलन, पर्यावरण संरक्षण, रोजगार सृजन, महिलाओं एवं अन्य वंचित समूहों के विकास के द्वारा सतत मानवीय विकास का प्रमुख साधन बन रहा है।

उद्देश्य –

1. रोजगार सृजन एवं आर्थिक-सामाजिक विकास में पर्यटन की भूमिका का अध्ययन करना।
2. भारत में विदेशी पर्यटक एवं मुद्रा आय का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि – प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक समंकों पर आधारित है। द्वितीयक समंको का संकलन पर्यटन मंत्रालय भारत सरकार, की रिपोर्ट, संबंधित पुस्तकों एवं शोध पत्रिकाओं से किया गया है। शोध पत्र के उद्देश्य प्राप्ति के लिए मुख्य रुप से द्वितीयक समंकों का सहारा लिया गया है। तथा विश्लेषणात्मक विधि के माध्यम से निष्कर्ष निकाला गया है।

रोजगार सृजन में पर्यटन – पर्यटन एक ऐसा व्यवसाय है, जो किसी रूप में पूरे समूह को प्रभावित करता है। ऐसे में पर्यटन समूचे गाँव के लोगों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार उपलब्ध कराएगा। यदि गाँव में ही वाहन, खानपान व अन्य तरह के स्टॉल खुलेंगे और पर्यटन उसे खरीदेंगे तो हमें रोजगार मिलेगा। इसके अलावा भी ग्रामीण एवं परंपरागत रोजगार को भी बढ़ावा मिलेगा। क्योंकि गाँवों से तमाम परंपरागत रोजगार सिर्फ इसलिए खत्म होते जा रहे है कि उनके खरीदने वाले न के बराबर है। दूसरा कारण यह भी सामने आता है कि लागत और बाजार तक पहुंचाने में जो खर्च आता है, वह काफी अधिक हो जाता है। लेकिन जब पर्यटन गाँव में ही आएंगे तो संबंधित गाँव में बनने वाली चीजें खरीदने में पीछे नहीं रहेंगे। ऐसे में ग्रमीण विकास को बढ़ावा मिलेगा[3] और नये रोजगार का सृजन होगा। पर्यटन देश का सबसे बड़ा सेवा क्षेत्र है। यह सुदूरवर्ती और अल्प विकसित इलाकों के विकास के साथ-साथ रोजगार सृजन का भी बहुत ही महत्वपूर्ण उपकरण है।

आर्थिक-सामाजिक विकास में पर्यटन – पर्यटन स्थलों के विस्तार एवं विकास का उन क्षेत्रों के आर्थिक-सामाजिक विकास में बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। इससे रोजगार के व्यापक अवसर मिलने के साथ घरेलू उद्योगों को भी बढ़वा मिलता है। वहां की कला और संस्कृति तथा हस्तशिल्प को पहचान मिलती है और उन क्षेत्रों कर समृद्ध विरासत को राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिलती है।

यात्रा मार्गो के बीच एक नया बाजारवाद प्रचलित हुआ है। जिनमें वहां की स्थानीय वस्तुएं जगह-जगह बिक्री के लिए उपलब्ध होती है इससे लघु उद्योगों के पनपने के अवसर बढ़ रहे हैं पहाड़ी क्षेत्रों में तरह-तरह के फलों के जूस, आचार-मुरब्बें, चाय से लेकर हस्तशिल्प की वस्तुऐं स्मृति चिह्न के रूप में उन यात्राओं की स्मृति को तरोताजा बनाएं रखती हैं। रेगिस्तानी क्षेत्र में जहां कलात्मक वस्तुऐं उपलब्ध होती है। वहीं स्थानीय साड़ी, चादरों एवं खानपान की वस्तुओं को बाजार मिलता है। समुद्र तटीय क्षेत्रों में नारियल से बनी कलात्मक वस्तुओं, शंख-सीपी तथा वहां परंपरागत साड़ियों आदि को

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) श. च. आ. शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.) भारत

सुदूर तक जाने का अवसर मिलता है। भारत अनेकता में एकता का सबसे बड़ा प्रतीक है। इसको समृद्ध करने में पर्यटन को सबसे बड़ा योगदान है। बिना किसी निवेश के छोटी-छोटी चीजें पर्यटकों को बेचने के काम में सैंकड़ों परिवार लगे हैं और वहीं उनकी रोजी-रोटी भी है।[4] मौसम के अनुसार फल एवं उनके जूस आदि को बेचकर वे अपना गुजारा करते हैं।

तालिका क्रमांक -1 (अगले पृष्ठ पर देखे)

तालिका क्रमांक -1 के अनुसार वर्ष 2008 में विदेशी पर्यटकों की कुल संख्या 5.28 मिलियन थी जो 2009 मे 5.17 हो गई थी। वर्ष 2011 के दौरान भारत की यात्रा पर आने वाले विदेशी पर्यटकों की कुल संख्या 6.31 मिलियन थी, जो एक वर्ष पूर्व 2010 में 5.78 मिलियन रही थी। रूपयें के अर्थ में 2010 में पर्यटन से प्राप्त विदेशी मुद्रा अर्जन 2009 के दौरान 53700 करोड़ की तुलना में 20.8 प्रतिशत की वृद्धि दर के साथ 64889 करोड़ थी। वर्ष 2011 में विदेशी मुद्रा अर्जन की राशि बढ़कर 77591 करोड़ थी एवं 2012 में 94487 करोड़ हो गई। मंत्रालय के इन आकड़ो के अनुसार 2012 में भारत की यात्रा पर आने वाले विदेशी पर्यटकों में सर्वाधिक संख्या अमरीकियों की थी। जबकी ब्रिटेन व बांग्लादेश का इस मामले में दूसरा व तीसरा स्थान था। 2011 की तुलना में 2012 में भारत आने वाले अमरीकी पर्यटकों की संख्या में जहाँ वृद्धि हुई, वहीं ब्रिटेन व बांग्लादेश से भारत आने वाले पर्यटकों की संख्या में कुछ कमी दर्ज की गई थी।

तालिका क्रमांक -2 (अगले पृष्ठ पर देखे)

तालिका क्रमांक -2 के आँकड़ों के अनुसार 2008 में देश में घरेलू पर्यटकों की संख्या 563.03 मिलियन थी जो बढ़कर 2009 में 668.80 मिलियन तथा 2010 में 747.70 मिलियन रही थी। इस प्रकार घरेलू पर्यटकों की संख्या में 11.8 तथा 15.6 प्रतिशत की वृद्धि 2010 तथा 2011 में दर्ज की गई थी एवं 2012 में 20.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई। पर्यटन मंत्रालय के इन आँकड़ों के अनुसार 2010 में सर्वाधिक 15.58 करोड़ घरेलू पर्यटन आन्ध्रप्रदेश में गए, जबकि 14.48 करोड़ पर्यटकों के साथ उत्तरप्रदेश का दूसरा तथा 11.16 करोड़ पर्यटको के साथ तमिलनाडु का इस मामले में तीसरा स्थान रहा।[6]

भारत में पर्यटन उद्योग को प्रोत्साहित करने के लिए वर्तमान में सरकार द्वारा चालु की गई कुछ महत्वपुर्ण स्कीमें निम्न प्रकार है-

1. एक्सपोर्ट प्रोमोशन केपीटल गुड्स स्कीम
2. सर्वड फ्राम इंडिया स्कीम
3. निर्यात गृह योजना
4. विदेशी निवेश

घरेलू पर्यटकों की बढ़ती इच्छा, जिज्ञासा, कमाई में बढ़ोतरी और घुमक्कड़ी के ताजा शौक को भी शामिल कर लें तो हमारे सम्मुख जिस पर्यटन उद्योग की तस्वीर तैयार होती है। वह संभवत: दुनियाभर में सबसे तेज गति से बढ़ रहे पर्यटन उद्योग की तस्वीर है।

निष्कर्ष एवं सुझाव - पर्यटन उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास में बहुमूल्य योगदान कर रहा है। यह अन्य उद्योगों को भी बढ़ावा देता है एवं रोजगार के लाखों अवसर उत्पन्न करता है। इससे विदेशी मुद्रा की आय होती है। पर्यटन अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों जैसे हस्तशिल्प, परिवहन, बागवानी, कुक्कुट पालन, निर्माण आदि क्षेत्रों के अप्रत्यक्ष रूप से विकास में सहायक है। भारतीय पर्यटन क्षेत्र में अभी काफी कुछ किये जाने की दराकार है। हालांकि हमारे पास पर्यटन की बढ़ोतरी के लिए अपेक्षित संसाधन मौजूद हैं, लेकिन अधिकांश जगहों पर बुनियादी सुविधाए बेहद नगण्य और प्राथमिक है। पर्यटन स्थलों तक पहुंच की समस्या है, आधुनिक सुविधायुक्त ठहरने की जगह की समस्या है। पर्यटकों की जरूरतों की पूर्ति के लिए सत्कार से प्रशिक्षित लोगों की कमी है, विभिन्न पर्यटन स्थलों में समन्वय और संमजस का अभाव है। देश में पर्यटन के धारणीय विकास का प्रश्न है- ऐसा विकास जो पर्यावरण के साथ सहकार स्थापित कर सके और बगैर उसे नुकसान पहुंचाएं आगे बढ़ सके ऐसे पर्यटन विकास की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कुरूक्षेत्र (मई 2010) ग्रामीण विकास मंत्रालय नई दिल्ली 110011 पृ. 10।
2. कुरूक्षेत्र (मई 2012) ग्रामीण विकास मंत्रालय नई दिल्ली 110011 पृ. 17।
3. कुरूक्षेत्र (मई 2012) ग्रामीण विकास मंत्रालय नई दिल्ली 110011 पृ. 21।
4. कुरूक्षेत्र (मई 2010) ग्रामीण विकास मंत्रालय नई दिल्ली 110011 पृ. 11।
5. भारतीय पर्यटन आंकड़े एक झलक (जुलाई - 2014) 'मार्केट अनुसंधान प्रभाग' पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली।
6. भारतीय अर्थव्यवस्था (प्रतियोगिता दर्पण 2014) उपकार प्रकाशन 2/ए स्वदेशी बीमा नगर आगरा - 282002 पृ. 136।
7. माहेश्वरी पी.डी. एवं गुप्ता शीलचन्द (2007) 'भारत में आर्थिक पर्यावरण' कैलाश पुस्तक सदन भौपाल।
8. Rathore, devendra And Sharma, L.N. And Sharma Ashish "Contribution of truism industry in employment growth in India" Naveen shodh sansar (An International Refereed Journal) May 2014 Online Edition. pp18-20.
9. hhttp://turism.gov.in/
10. http://en.wikipedia.org/wiki/turism_in_india.

तालिका क्रमांक -1- 2 (अगले पृष्ठ पर देखे)

तालिका क्रमांक –1
भारत में विदेशी पर्यटकों का आगमन एवं मुद्रा आय

वर्ष	भारत में विदेशी पर्यटक आगमन(मिलियन में)	पिछले वर्ष की तुलना में प्रतिशत बदलाव	भारत में पर्यटन से विदेशी मुद्रा आय (करोड़ रूपयों में)	पिछले वर्ष की तुलना में प्रतिशत बदलाव
2008	5.28	4.0	51294	15.6
2009	5.17	–2.2	53700	4.7
2010	5.78	11.8	64889	20.8
2011	6.31	9.2	77591	19.6
2012	6.97	4.3	94487	21.8

स्त्रोत – भारतीय पर्यटन आंकड़े एक झलक (जुलाई–2014) पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार 5

तालिका क्रमांक –2
भारत में सभी राज्यों/ संघ राज्य क्षेत्रों में घरेलू पर्यटक यात्राओं की संख्या

वर्ष	**सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में घरेलू पर्यटक यात्राओं की संख्या (मिलियन में)**	**पिछले वर्ष की तुलना में प्रतिशत बदलाव**
2008	563.03	6.9
2009	668.80	18.8
2010	747.70	11.8
2011	864.53	15.6
2012	1045.05	20.9

स्त्रोत – भारतीय पर्यटन आंकड़े एक झलक (जुलाई–2014) पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार

****

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और भारतीय अर्थव्यवस्था

डॉ. विवेक पटेल * डॉ. आरती मिश्रा ** डॉ. रामजी गर्ग ***

प्रस्तावना – भारतीय अर्थव्यवस्था में सरकार चाहे किसी भी दल की हो उसकी विकास की अवधारणा विदेशी निवेश से होकर गुजरती है। अर्थव्यवस्था को विकसित करने के लिए वर्तमान आर्थिक व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता है। आर्थिक सुधार देश की अर्थव्यवस्था को पटरी में लाने के लिए किये जाने वाले प्रयासों से है। लेकिन सबसे बड़ी बात है कि यह आर्थिक सुधार है क्या और वे क्यों होने चाहिए।लेकिन इसकी वास्तविकता पर कभी ध्यान नहीं दिया गया। ऐसा मान लिया कि विदेशी पूंजी को खुले तौर पर देश में आने दिया जाये और विदेशी निवेदकों को आकर्षित करने के लिए उन्हें सुविधाएं दी जाये अर्थात ऐसा मान लिया जाये कि विदेशो से आने वाले आयातो पर टैरिक की बाधाएं दूर हो जाये। वर्तमान सरकार भी आर्थिक सुधारों को इसी प्रकार परिभाषित करने का काम कर रही है। विदेशी निवेश आधारित अवसंरचना खासतौर पर बुलेट ट्रेन इंडस्ट्रीयल कॉरिडोर एयरपोर्ट इत्यादी इस विकास मॉडल के महत्वपूर्ण घटक माने जा रहे है।

देश में विदेशी निवेदकों को बढ़ावा देने के लिए मेक इन इंडिया का आहवान भी विदेशी निवेश की तरफ सरकार के रूझान को दिखाता है। परिस्थिति ये बन गई की जिन क्षेत्रों में विदेशी निवेशकों की अनुमति ही नहीं थी या थी तो कम थी उसे भी और आगे बढ़ाने की सरकार के प्रयास जारी है। प्रतिरक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में निवेश की सीमा 26 प्रतिशत से बढ़ाकर 49 प्रतिशत ,इसी तरह अन्य क्षेत्रों में जैसे बीमा पेंशन फंडों में शून्य से 49 प्रतिशत और कुछ क्षेत्रों में तो 100 प्रतिशत विदेशी निवेश की अनुमति सरकार की विदेशी निवेश के प्रति झुकाव का परिचालक है।

भारत जैसे अल्पविकसित देश में पूंजी की कमी रही है। विकास की गति तीव्र करने के लिए पूंजी की आवश्यकता में वृद्धि हुई है,लेकिन बचत में तदनुरूप वृद्धि नहीं होती इसलिए सैद्धांतिक रूप से कह सकते है,कि विदेशी पूंजी इस कमी की पूर्ति कर सकती है। इस कमी को पूरा करने के लिए विदेशी ऋण अनुदान और निवेश लेना आवश्यक हो जाता है।

एफ.डी.आई. में एक देश की कंपनी दूसरे देश में कई तरीकों से एफ.डी.आई. कर रही है। वह दूसरे देश में या तो खुद अपनी एक सहायक कंपनी खोल सकती है,और उसके माध्यम से पूजी लगा सकती है,या वह देश किसी अन्य कंपनी की इक्विटी में निवेश कर सकती है।

उदारीकरण के साथ बढ़ा विदेशी निवेश का चलन – भारत में विदेशी निवेश की गति आर्थिक उदारीकरण का दौर शूरू होने के साथ साथ ही बढ़ी, अस्सी के दशक तक भारतीय अर्थव्यवस्था विकास के लिए आवश्यक विदेशी पूंजी लाने के मामले में द्विपक्षीय और बहुपक्षीय ऋण समझोतों पर ज्यादा निर्भरता थी। वर्ष1991 में आर्थिक सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत देश में उदारीकरण प्रारंभ होने से एफ.डी.आई. की अनुमति गिने चुने क्षेत्रों में प्रदान किया गया था लेकिन उसमें भी कई प्रतिबंधों के साथ।इनमें साझेदारी उधम में स्थानीय हिस्सेदारी स्थानीय सामग्री की अनिर्वायता एवं निर्यात दाखिल जैसी शर्ते शामिल थी। वर्ष 1991 के बाद आने वाली विभिन्न सरकारों ने एफ.डी.आई.की नीतियों को और उदार बनाया। वर्ष1991 में सरकार ने एफ.डी.आई. में इंडीग्रेटेड टाउनशिप,रक्षा उधोग एवं टी प्लांटेशन जैसे कई नये क्षेत्रों में एफ.डी.आई.की अधिकतम सीमा को बढाया गया, विदेशी कम्पनियों को भारत में पूर्ण स्वामित्व वाली कम्पनियां खोलने की अनुमति दी गयी। इस प्रक्रिया से विदेशी कंपनियों को भारत में संयुक्त उधम वाली कंपनियों में बदलने की छूट प्रदान की गयी। वर्ष 1991 में 35 क्षेत्रों को प्राथमिकता प्रदान करते हुए उनमें 51 प्रतिशत तक एफ.डी.आई. की अनुमति प्रदान की गयी। इसके बाद आने वाले वर्षो में वर्ष 1997 में कुछ क्षेत्रों में तो शत–प्रतिशत एफ.डी.आई. की अनुमति दी गयी। लेकिन बाद के वर्षो में 111 क्षेत्रों में 74–51–50 प्रतिशत तक एफ.डी.आई में छूट की अनुमति दी गयी।

साल 2000 में एफ.डी.आई. नीति में और उदारता लाते हुए कुछ विशेष क्षेत्रों को छोड़कर लगभग सभी क्षेत्रों में 100प्रतिशत तक एफ.डी.आई. की अनुमति सरकार द्वारा प्रदान कर दी गयी।

भारत में विदेशी निवेश की वर्तमान स्थिति– अंकटाड की वर्ल्ड इन्वेस्टमेन्ट रिपोर्ट 2014 के अनुसार बीते वर्ष 2013 में भारत में एफ.डी.आर.का व्यापार 28.20 अरब डालर का रहा। पहले के वर्षो में वर्ष 2012 में यह 24.20 आब डालर और वर्ष 2011 में 36.19 अरब और वर्ष 2010 में 27.43 अरब डालर था। याने बीते वर्षो के दौरान इसमें उतार–चढाव आता रहा है।

विदेश निवेश पर भारी अनिवासी भारतीयो की बचतें – जिनता गुणगान विदेशी निवेश(F.D.I) का किया जाता है उतना अनिवासी भारतीय द्वारा भेजे गये धन पर नहीं होता है लेकिन भारत से विदेश में जाकर बसे अथवा काम के लिए गए भारतीयों द्वारा भेजी गई राशियों पर नजर डाले तो पता चलता है कि अनिवासी भारतीय निवेशी निवेश से कहीं अधिक विदेशी मुद्रा देश के लिए जुटा रहे है। गौरतलब है कि वर्ष 2001–2002 में 15.4 अरब डालर हो अनिवासी भारतीयों ने देश में भेजे जो अब बढकर 2013–14 में 65.4 अरब हो गया है।

अनिवासी भारतीयों की बचत और सॉफ्टवेयर निर्यात– विदेशी निवेशकों द्वारा निवेश से होने वाली आप का एक बड़ा हिस्सा बाहर ले जाने वाले आकडों के आधार से स्पष्ट है कि बढ़ते आयातों और निर्यात की धीमी गति के कारण बढ़ते हुए व्यापार घाटा को कम करना संभव हो पा रहा है तो

* सहायक प्राध्यापक शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला – अनूपपूर (म.प्र.) भारत
** अतिथि विद्वान, शासकीय महाविद्यालय, गुढ़रीवा (म.प्र.) भारत
*** अतिथि विद्वान, शासकीय महाविद्यालय, तेन्दूखेड़ा (म.प्र.) भारत

वह है अनिवासी भारतीयो द्धारा देश में भेजी जाने वाली राशियां और सॉफ्टवेयर निर्यातों से होने वली आमदानी है आंकडों के आाधार पर वर्ष 2012-13 में जबकि हमारा व्यापार घाटा 195.7 अरब डालर था,इस घाटे को कम करने के लिए अनिवासी भारतीयो का योगदान 55.6 अरब डालर और सॉफ्टवेयर निर्यातो का योगदान 55.6 अरब डालर था। यदि ये दोनों प्राप्त न हुई होती तो हमारे देश को विदेशी मुद्रा का कितना भारी संकट का सामना करना पड़ता। सामान्यत: अनिवासी भारतीयों की बचतों पर कोई विशेष देनदारियां नहीं बढ़ती है लेकिन इसके विपरीत विदेशी निवेश के कारण देनदारियां बढती ही जाती है।

सही आर्थिक नीतियों की आवश्यकता – गत वर्षो से कीमतों में वृद्धि लगातार जारी है। प्रारंभ में मुद्रा स्फीति बढने के लिए खाद्ध पदार्थो की ज्यादा जिम्मेदारी रही और वह है खाद्य मुद्रा स्फीति। कृषि की लगातार अनदेखी और बढती आमदानियों के कारण खाद्य वस्तुओं की मांग एवं पूर्ति में असंतुलन बढ़ता गया है। कीमतों में तेजी से वृद्धि होने लगी,और यह वृद्धि 7 प्रतिशत से 11 प्रतिशत तक बढ़ गयी।पिछले कुछ समय पहले तक रूपये के कमजोर होने पसे आयातित वस्तुओं विशेषतौर पर पेट्रोलियम उत्पादों,धातुओं और अन्य प्रकार के कच्चे माल की कीमतों में वृद्धि में मुद्रा स्फीति और अधिक भयंकर स्तर पर पहुंच चुकी थी।इन सब के बावजूद सरकार कीमतों को थामने में लगाकर असमर्थ दिखाई दे रही थी। कीमतों के बढ़ने से ब्याज की दर भी ऊँची बनी हुई है। जिससे एक और निवेश प्रभावित हो रही है तो दूसरी और मांग में भी वृद्धि नहीं हो पा रही है।,नतीजा यह है कि विकास दर घटता जा रहा है।आयतों मे वृद्धि और निर्यातों में कमी के कारण हमारा व्यापार घाटा लगातार बढता जा रहा है। देश में आर्थिक विकास की दर घटने का सबसे प्रमुख कारण औधोगिक विकास में धीमी गति है, इसके दो प्रमुख कारण एक कच्चे माल और ईधन की कीमतों में वृद्धि और दूसरा कारण ब्याज दरों में लगातार वृद्धि।

कच्चे तेल और ईधन की कीमतों में वृद्धि रूपये की कमजोरी के कारण ज्यादा हुई, जरूरत इस बात की है रूपये को मजबूत बनाया जाये और इसके लिए आवश्यक है कि भुगतान शेष को कम रखा जायें,उसका एक मात्र तरीका की गैर जरूरी वस्तुओं के आयातों पर अंकुश। ब्याज दरें कम करते हुए हम उत्पादन निवेश और अन्य क्षेत्रों में निवेश को प्रोत्साहित करते हुए अर्थव्यवस्था को गति प्रदान किया जा सकता है।

चाहे मुद्रा स्फीति हो या घटता हुआ औधौगिक उत्पादन या अवसंरचना के विकास में धीमापन,यह सब इसलिए है कि सरकार कीमतों में अंकुश नहीं लगा पा रही है ऐसी स्थितियों में सरकार नीतियों में परिवर्तन करते हुए कृषि विकास को प्रोत्साहित कर,उधोगों के लिए ब्याज दर में कमी और आयातों विशेषतौर पर गैर जरूरी वस्तुओं सोने चांदी और चीन से चीजों के आयातों पर अंकुश जारी रख रूपये को मजबूती प्रदान करें। तभी भारतीय अर्थव्यवस्था विकास की पट्टी पर आ पाएगा।

देश में उन्नत प्रौद्योगिकी युक्त उद्योगों के लिए विदेशी निवेश जरूरी है, लेकिन आंकडों को देखा जाए तो अनिवासी भारतीय की बचत वास्तव में बेहतर हैं इसलिए सरकार को अनिवासी भारतीय बचतों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और उन्हें पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराते हुए अनिवासी भारतीयों के धन को देश के आर्थिक विकास हेतु उपयोग में लगाया जाना चाहिए।

निष्कर्ष – भारतीय अर्थव्यवस्था में सरकार चाहे किसी भी दल की हो उसकी विकास की अवधारणा विदेशी निवेश से होकर गुजरती है। लेकिन अर्थव्यवस्था को विकसित करने के लिए वर्तमान आर्थिक व्यवस्था में सुधार की आवश्कता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में पूंजी की कमी हमेशा रही है विकास की गति को तीव्र करने के लिए कहीं न कहीं पूंजी की आवश्यकता होती है इसके लिए सरकार विदेशी ऋण या विदेशी निवेश पर अधिक निर्भर रही। 1991 के आर्थिक सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत् सरकार ने विदेशी निवेश को बढाावा देने के लिए विभिन्न प्रकार की छूट प्रदान की गयी। विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि इससे देश का आर्थिक विकास होगा, रोजगार में वृद्धि होगी लेकिन वर्तमान में इस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता है प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (F.D.I) का मतलब विदेशी निवेशको द्धारा किसी अन्य अर्थव्यवस्था में पूंजी निवेश करने से है। इस तरह के पूँजी निवेश का सीधा संबंध लगायी गयी पूँजी पर लाभ हासिल करना है देश में उदारीकरण के बाद विदेशी निवेश प्रतिवर्ष बढ़ता ही गया। आने वाली प्रत्येक सरकार विदेशी निवेश के प्रति झुकाव अधिक दिखता गया। लेकिन यदि वास्तविकता पर ध्यान दे तो (F.D.I) की अपेक्षा अनिवासी भारतीयों की द्धारा वतन को भेजी जाने वाली राशि और सॉफ्टवेयर निर्यात से देश को विदेशी पूंजी अधिक प्राप्त हो रही है। सरकार को अनिवासी भारतीयों की बचत को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए। सरकार को आर्थिक विकास के लिए सही आर्थिक नीतियों पर विशेष ध्यान देना चाहिए, इसके लिए कृषि की उत्पादक को बढ़ाना चाहिए। औधोगिक क्षेत्रों को विशेष मदद करना, और अन्य क्षेत्रों में निवेश करना जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. योजना पत्रिका।
2. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार।
3. दैनिक भास्कर।
4. पत्रिका।
5. इंडिया टुडे।

****

हिन्दी भाषा विकास एवं वैश्वीकरण

डॉ. अंजना चतुर्वेदी *

प्रस्तावना – प्रत्येक भाषा मात्र भाषा ही नहीं वरन वह इतिहास, समाज, संस्कृति,देश , काल की अस्मिता एवं उसके भविष्य के उद्देश्यों को अभिव्यक्त करने का साधन भी होती है। हमारी राष्ट्र भाषा हिन्दी भी मात्र एक भाषा नहीं है वह भारतीय संस्कृति की सशक्त,समर्थ एवं सबल संवाहिका है।

श्री नरमदेश्वर चतुर्वेदी जी का कहना है – 'कि हिन्दी वास्तव में किसी एक भाषा या बोली का नाम नहीं, अपितु एक सामाजिक भाषा परम्परा की संज्ञा है, जिसका आकार प्रकार हिन्दी की विभिन्न उपभाषाओं, बोलियों के ताने – बाने द्वारा निर्मित हुआ है। इस प्रकार हिंदी अपनी बोलियों और उपभाषाओं का समष्टि रूप ही है।' [1]

हमारी हिंदी भाषा ऐसी भाषा है जिसके बारे में कहा जाता है कि पिछले सवा सौ सालों में जितनी प्रगति इस भाषा ने की है उतनी शायद ही किसी और भाषा ने की होगी और वह भी इन परिस्थितीयों में जब किसी क्षेत्र के लोगों ने अपनी क्षेत्रीयता से जोड़ा नहीं। 'हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति 'सिंधु' शब्द से मानी जाती है। प्राचीन समय मे सिंधु नदी के आसपास का क्षेत्र सिंधु देश कहलाता था। मुसलमान आक्रमणकारी रूप में जब हिन्दु कुश पहाड़ियों से भारत में प्रविष्ट हुए तो सबसे पहले उन्होंने सिंधु देश को जाना और चूँकी ईरानी (फारसी) भाषा में 'स' ध्वनि के स्थान पर 'ह' ध्वनि है अत: 'सिंधु ' उन लोगों के द्वारा 'हिन्दु' बोला जाने लगा, और हिन्द देश की बोली जाने वाली भाषा को 'हिन्दवी' या हिन्दी कहा जाने लगा। [2]

हिन्दी साहित्य का उद्भव दसवी शताब्दी से माना जाता है एवं हिन्दी को अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी कहा गया है।[3]

किसी भाषा का सार्वभौमिक रूप से व्यवहार प्रचार –प्रसार व विकास तभी संभव है जब वह भाषा राजकाज और साहित्य के अलावा ज्ञान विज्ञान और व्यवसाय की भाषा बन जाए अर्थात् उसका उपयोग प्रयोजन मूलक हो। हिन्दी के प्रारंभिक रूपो का आभास आचार्य हेमचंद के 'शब्दानुशासन में दिए उदाहरणों द्वारा होता है।' कुछ विद्धान हिन्दी का उद्भव सातवीं सदी से एवं कुछ इसका विक्रास क्रम ग्यारवीं शती के उतरार्ध को मानते है।'[4]

हिन्दी भाषा के विकास समय की अपेक्षा उसका विस्तार अधिक प्रभावित करता है। भाषा में निहित सुदूर तक विस्तृत क्षेत्र की शब्दावली में परस्पर बहुत विभन्नता देखने को मिलती है, क्योंकि इस हिन्दी क्षेत्र में लगभग अठाहर बोलियॉ आती है। ये बोलियां अलग –अलग उपभ्रंशो से विकसित हुई और वृहत्तर हिन्दी में समाहित हो गई । हिन्दी की विकास यात्रा का चरण बद्ध वर्गीकरण करने का श्रेय आचार्य रामचंद शुक्ल जी को जाता है। उन्होने विभिन्न समयों पर रचित साहित्य के आधार पर यथोचित काल विभाजन प्रस्तुत किया –

1. वीरगाथा काल	–	(संवत् 1050– 1375 वि.)
2. भक्ति काल	–	(संवत् 1375 से 1700 वि.)
3. रीति काल	–	(संवत् 1700 से 1900 वि.)
4. गद्यकाल	–	(संवत् 1900– 1948 वि.) [5]

इस विकास काल विश्लेषण का आगामी काल आधुनिक काल कहलाया। आधुनिक हिन्दी के मानक स्वरूप और शैली को स्थिरत प्रदान करने में सिद्ध सरहपा, गुरू गोरखनाथ, अब्दुल रहमान ,खुसरो, बनारसी दास आदि अनेक संत महात्माओं एवं मनीषियो ने योगदान दिया। [6]

हिन्दी भाषा ही सम्पूर्ण भारत में संचार का आधार रही है। समस्त दिशाओं एवं सभी धर्मो एवं मतो ने हिन्दी के वृहद स्वरूप को स्वीकार किया है। अंग्रेज , इसाईयों ने अपने मिशनरी प्रचार के लिए हिन्दी भाषा का सहारा लिया। उन्होंने हमारी भाषा के मूल पर अपनी शब्दों को बनाया भी है।

'शैम्पू शब्द का मूल रूप हिन्दी का चम्पी शब्द है। इस चम्पी (सिर की मालिश) शब्द से बना शैम्पू अब अंग्रेजी के अलावा विश्व की अनेक भाषाओं मे जरा–जरा से उच्चारण भेद के साथ मौजूद है।' [7] यही हिन्दी दक्षिण के संतो की भाषा रही। पश्चिम बंगाल का साहित्य का माध्यम हुई एवं मिथिला के चैतन्य एवं विद्यापति की बोली बनी। सिख समाज के दसवें गुरू गोविंद सिंह जी ने हिन्दी में काव्य रचा। देश के राष्ट्र पिता गांधी जी ने जो मूलत: गुजरात के थे, मुक्तहृदय से हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया। इसके पूर्व पं.हजारी प्रसाद द्विवेदी जी सहित समस्त बुद्धिजीवियों को इस बात का अहसास होने लगा था कि बिना किसी राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्रवाद की परिकल्पना संभव नहीं हो पाएगी। भारत में अन्य देशो की तुलना में स्थिति सर्वथा भिन्न थी क्योंकि यह अनेक भाषा एवं बोलियों वाला देश था। हिन्दी ही सबसे ज्यादा लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा थी। अत: हिन्दी को खड़ा कर राष्ट्र भाषा का दावा प्रस्तुत करने हेतु खड़ी हिन्दी का स्वरूप प्रदान किया गया, एवं ''ऐसी हिन्दी की परिकल्पना की गई जिसमें हिन्दी के विविध रूपों और कथित जनपदीय भाषाओं बोलियों के लिए कोई जगह न बचे।' [8]

राष्ट्र भाषा बनने एवं नया स्वरूप धारण करने के पश्चात् हिन्दी भाषा हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों के साथ ही अन्य देशों के साथ भी संचार के माध्यम के रूप में विकसित होती गई। विकास यात्रा में नए स्वरूप का इतिहास भी सृजन होने लगा आचार्य शुक्ल ने इतिहास को परिभाषित करते हुए अपने ग्रंथ में लिखा – 'प्रत्येक देश का साहित्य वहॉ की जनता की चित्रवृत्ति के परिवर्तन के साथ –साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्रवृन्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।' [9]

हिन्दी ने जहॉ जन जीवन के सामान्य व्यवहार की समर्थ भाषा बनकर राष्ट्र को एक संगठित इकाई बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, साहित्य अभिव्यक्ति के लिए भी एक सशक्त माध्यम बनकर सामने आई है। 'मणिपुर में प्रथम मौलिक हिन्दी पुस्तक 1951 में प्रकाशित हुई और अनुदित पुस्तक 1962 में।' [10]

हमारी राष्ट्र भाषा का महत्व देश की सीमाओं को पार कर के दूसरे देशो द्वारा भी स्वीकार किया जा रहा है। फिजी,कनाडा एवं बुलगारिया में भी हिन्दी भाषा एवं साहित्य का अध्ययन अध्यापन किया जाता है। 'फिजी में

* प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

हिन्दी को संवैधानिक संसदीय मान्यता प्राप्त है और वहॉ देश का कोई भी सांसद हिन्दी भाषा में अपने विचारों को रख सकता है।' [11]

हिन्दी में अपार क्षमता है भाषा विज्ञान की दृष्टि से हिन्दी संप्रेषण शीलता और सरलता में विश्व की श्रेष्ठतम् भाषा है। अपनी संश्लेषणात्मक प्रवृति की क्षमता के कारण यह उच्च स्तर के कार्य व्यवहार विचार-विमर्श और अभिव्यक्ति का श्रेष्ठ माध्यम है। किसी भाषा का मानवीकरण ही उसके विस्तार में वृद्धि करता है। भाषा में ज्ञान विज्ञान की अभिव्यक्ति देने की प्रक्रिया में किया जाने वाला भाषिक परिवर्तन ही भाषा का आधुनिकीकरण है। बदलते हुए जीवन मूल्यों मान्यताओं व आवश्यकता के साथ -साथ प्रयोजन मूलक हिन्दी के स्वरूप में भी प्रगति संगत परिवर्तन हो रहे है। प्रयोजन मूलक भाषा का तात्पर्य उस भाषा से है जो किसी विशिष्ठ प्रयोजन परक हेतु से प्रयुक्त होती है। प्रयोजनपरक हिन्दी को हम -1. कार्यालयीन/ प्रशासनिक 2. वाणिज्यक/व्यावसायिक 3. वैज्ञानिक /तकनीकी 4. विधि हिन्दी 5. जनसंचारी 6. सामाजिक 7. शास्त्रीय हिन्दी में विभक्त कर सकते है।

वर्तमान समय में हिन्दी न केवल राजभाषा के रूप में केन्द्रीय एवं सरकारी कार्यालयों तक ही सीमित बल्कि वैश्वीकरण के इस दौर में प्रयोजनमूलक हिन्दी में व्यवसाय के क्षेत्र में अपनी एक विशिष्ठ पहचान स्थापित की हैं। सम्पूर्ण विश्व बाजार की खोज में भारत की ओर निहार रहा है एवं अपनी वस्तुओं की पहचान स्थापित करने के लिए हिन्दी का सहारा प्राप्त कर रहा। सभी विकसित देश अपने पाठ्यक्रम में हिन्दी का समावेश अपनी भविष्य की व्यावसायिक पूर्ति के लिए कर रहे है। सोशलमिडिया पर भी संचार की भाषा के रूप में हिन्दी ने प्रतिष्ठा प्राप्त की है। बहुराष्ट्रीय कंपनिया अपने उत्पाद के विक्रय के लिए विज्ञापनों में हिन्दी का सहारा ले रही है। इन सभी प्रक्रियाओं में हिन्दी के स्वरूप में कुछ परिवर्तन हो रहा है। परंतु यह चिंता का विषय नहीं है। हिन्दी भाषा स्वरूप पर आयोजित संगोष्ठी में साहित्यकार डॉ. सुरेश आचार्य जी ने कहा - हिन्दी भाषा तो कल्प वृक्ष के समान है। भारतीय चिकित्सा पद्धति हिन्दी में ही प्रचलित है। हिन्दी की पाचन शक्ति गजब की है, सारी भाषाओं में हिन्दी का प्रवेश हो रहा है यह हिन्दी का परकाया प्रवेश का समय है।[12] भाषा अपनी संप्रेषणीय क्षमता से मनुष्य को मनुष्य से,धर्म को धर्म से,संप्रदाय को संप्रदाय से,व्यवसाय को व्यवसाय से, संस्कृति को संस्कृति से,क्षेत्र को क्षेत्र से ,राष्ट्र को राष्ट्र से जोड़कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की कल्पना को साकार करती है। हिन्दी विश्व के सबसे बडे लोकतंत्र की भाषा ही नहीं अपितु जनगणना के अनुसार उसे विश्व की सर्वाधिक सृजनशीलता सहनशीलता सरलता एवं उदारता के कारण उसमें 'अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के प्राय: सभी गुण है विद्यमान है।' [14]

हिन्दी को वैश्विक पटल लाने में कम्प्यूटर का उल्लेखनीय योगदान है। कम्प्यूटर में हिन्दी में कार्य करना बहुत सुगम एवं सहज है। प्रशासनिक कार्योंमें हिन्दी पूर्णत: समर्थ भाषा है। भारतीय रेल आरक्षण ,बैक ,चुनाव कार्य एवं अन्य कार्यो में हिन्दी का प्रयोग उसकी बढ़ती लोकप्रियता का परिचालक है।

वैश्विक परिदृश्य में सूचना एवं प्रोद्योगिकी के पटल पर शीर्ष में लाने के लिए देश प्रेमियों एवं भाषा प्रेमियों, प्रर्वतकों को हिन्दी के मार्ग में आने वाले अवरोधो एवं चुनौतियों को दूर करने का हल निकलना होगा। यह अच्छे भाषाविद् एवं सूचना प्रोद्योगिकी विशेषज्ञों के प्रयासों एवं संकल्प द्वारा किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. लेख - डॉ. पांचाल परमानंद ,राष्ट्र भाषा पत्रिका मई 2012 पृ. 05
2. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास -बाबू गुलाब राय प्रकाशक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा 2005 पृ. 01
3. लेख -हिन्दी के उद्भव विकास में अपभ्रंश का योगदान - हरिदास राम जी शेण्डे, मध्यभारती - 63,2011 पृ. 119
4. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास -बाबू गुलाब राय प्रकाशक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा 2005 पृ. 02
5. प्रतियोगिता दर्पण अतिरिक्तांक हिन्दी भाषा 2014 स्वदेशी बीमा नगर आगरा पृ. 144
6. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास -बाबू गुलाब राय प्रकाशक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा 2005 पृ. 03
7. ज्ञानोदय- भारतीय ज्ञान पीठ दिल्ली सितम्बर 2013 पृ. 13
8. नया ज्ञानोदय - भारतीय ज्ञान पीठ दिल्ली जनवरी 2014 पृ. 08
9. मध्य भारती - डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि. प्रकाशन मार्च - सितम्बर 2006 पृ. 09
10. भाषा - सितम्बर-अक्टूबर 2001-केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय नई दिल्ली पृ. 59
11. भाषा - सितम्बर-अक्टूबर 2001-केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय नई दिल्ली पृ. 201
12. बुन्देली दुनिया मासिक समाचार पत्र- सागर 26 जनवरी 2014 पृ. 06
13. मध्यभारती 62 डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि. प्रकाशन 2010 पृ. 31
14. विज्ञान गरिमा सिंधु (संयुक्तांक 34-35) 2000, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग नई दिल्ली पृ. 66

****

ई-बैंकिंग के प्रति ग्राहकों की अविश्वसनीयता एवं भय के कारणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. राजीव कुमार झालानी * कार्तिका गुप्ता मेहता * *

शोध सारांश – आधुनिक युग तकनीक का युग है जहां एक क्लीक के माध्यम से सम्पुर्ण संसार की गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। व्यक्ति घर बैठे अपनी पसंदीदा वस्तु को क्रय कर सकता है तथा उसका भुगतान भी घर बैठे ही कर सकता है। इन प्रकार की सभी सुविधाओं का लाभ प्राप्त करने की एक ही कुंजी है वो है इन्टरनेट। इसी के कारण बैंक की कार्यप्रणाली में बहुत बडा परिवर्तन आया है। समस्त बैंकों द्वारा विभिन्न स्थानों पर एटीएम मशीनों को स्थापित कर विभिन्न ग्राहकों और बैंकिंग संस्थाओं को परस्पर जोडा गया है ताकि ग्राहकों को नगद की जोखिम न उठानी पडे। इसे ई-बैंकिंग सुविधा के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है जिसने सम्पुर्ण संसार के धन संबंधित लेनदेनों को सरल बना दिया है। ई-बैंकिंग के कई लाभ होने के बावजुद भी इसे हमारे देश में पर्याप्त मात्रा में उपयोग में नहीं लिया जाता है। शिक्षा का इतना अधिक विकास होने के बाद भी इसे हमारे देश में भुगतान का एक अविश्वसनीय साधन माना जाता है। प्रस्तुत शोधपत्र में ई-बैंकिंग के प्रति जनता के अविश्वास एवं भय के कारणों को ज्ञात कर उनका विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तावना – अधिकांश विकासशील देशों में मौद्रिक लेनदेनों का माध्यम प्राय: चैक, बैंक नोट व सिक्के ही हुआ करते थे।जिसमें प्रमुख समस्या इनके गलत हाथों में लग जाने या चोरी चले जाने की हुआ करती थी। चैक, नोट व सिक्कों का स्थान आधुनिक युग में डाटा ने ले लिया है। धन का हस्तांतरण टेलीफोन लाईनों और सेटेलाइट के माध्यम से किया जाने लगा है। यह गतिशील तकनीकी पद्धति और विकास के कारण ही संभव हो पाया है। ई-बैंकिंग के अंतर्गत ग्राहक अपने बैंक खातों को इंटरनेट से जोड़ते है तथा इसके माध्यम से ही अपने समस्त लेनदेन करते हैं। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि ई-बैंकिंग, बैंकों द्वारा अपने वेब पेज का निर्माण करना है जिस पर समय-समय पर बैंक ग्राहकों को अपनी विभिन्न योजनाओं से अवगत करवाता है। विशिष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि इसमें विभिन्न प्रकार की सुविधाओं का समायोजन होता है जैसे - खातों का संचालन, कोषों का हस्तांतरण और ऑनलाइन वस्तुओं और सेवाओं का क्रय। 1990 के बाद से बैंकों की कार्यप्रणाली में एक अभुतपुर्व परिवर्तन आया हैं जब बैंकों ने इलेक्ट्रोनिक संचार माध्यमों का उपयोग प्रारम्भ किया। हमारे देश में भी ई-बैंकिंग का विस्तार होता जा रहा है जो सामान्य व्यक्तियों के जीवन को सरल बना रहा हैं। चाहे रेल्वे का टिकिट हो या किसी बिल का भुगतान, विद्यालय या महाविद्यालय की शुल्क हो या वेतन का भुगतान आज अधिकतम संस्थाएं ऑनलाइन भुगतानों को बढावा दे रही हैं।

लेकिन कहीं न कहीं आज भी ई-बैंकिंग को लेकर ग्राहकों के मन में अविश्वसनीयता एवं भय बना हुआ है इस ही कारण बैंकों में आज भी विभिन्न कार्यो के लिए ग्राहकों की भीड लगी रहती हैं।

2. विषय का चयन – प्रस्तुत शोधपत्र के विषय का चयन पूर्व में किए गए कुछ शोधों को ध्यान में रखते हुए किया गया हैं। विभिन्न शोधपत्रों में ई-बैंकिंग के कार्य, क्षेत्र, इसकी बढती हुई लोकप्रियता, इसके लाभ-हानि आदि का वर्णन किया गया है।

E-Banking:Status, Trends, Challenges and Policy Issues(November 2003) के शोध में यह ज्ञात हुआ कि ई-बैंकिंग की सुविधा को बढाना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि इसके लिए लोगों को सचेत करना और सुरक्षा की भावना जागृत करना भी आवश्यक है।

सन् 2006 में दुबई में Diffusion of internet banking amongst educated consumers in a high income non-OECD country पर किए गए शोध में यह पाया गया कि ई-बैंकिंग कि कार्यप्रणाली में शीथिलता लाई जानी चाहिए, इसकी सेवाओं में सुधार किया जाना चाहिए तथा लागत को कम करने के प्रयास किए जाने चाहिए।

Consumers and Mobile Financial Services 2014 कि रिपोर्ट में यह पाया गया कि आधुनिक युग में औसतन प्रत्येक व्यक्ति के पास मोबाइल फोन है फिर भी लोग ई-बैंकिंग का लाभ नहीं लेते क्योंकि उनके मन में सुरक्षा की भावना का अभाव है।

इरान में A General View on the E-banking पर किए गए शोध में यह ज्ञात हुआ कि अपर्याप्त ज्ञान और विश्वास के अभाव के कारण लोग ई-बैंकिंग का उपयोग नहीं करते है। इसमें सुधार के लिए सरकार और बैंकों को जनता की सुविधा के अनुसार परिवर्तन करने होगें ताकि इसके प्रचलन में वृद्धि की जा सके।

3. अध्ययन के उद्देश्य –प्रस्तुत शोधपत्र का प्रमुख उद्देश्य ई-बैंकिंग के प्रति जनता की अविश्वसनीयता एवं भय के कारणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है।

4. अध्ययन का महत्व – इस अध्ययन की महत्ता उन बैंकों के लिए है जो अपने ग्राहकों को ई-बैंकिंग की सुविधा उपलब्ध करवाते हैं। इस अध्ययन से यह ज्ञात होगा कि वर्तमान में किन कारणों से ग्राहक ई-बैंकिंग का उपयोग नहीं करते हैं। वर्तमान में उन्हें कौन-सी असुविधाओं का सामना करना पड़ रहा है ताकि बैंक अपनी ई-बैंकिंग सुविधाओं में सुधार कर सके तथा इस

* प्राचार्य, रू. प. ल. माहेश्वरी महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक, रू. प. ल. माहेश्वरी महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

सुविधा का लाभ ग्राहक निसंकोच उठा सके फलस्वरूप बैंकों के कार्य ओर कम हो जाएंगें तथा ग्राहकों के मौद्रिक लेनदेन और अधिक सुविधाजनक।

5. अध्ययन की परिकल्पना – ई-बैंकिंग के प्रति ग्राहकों की अविश्वसनीयता एवं भय में वृद्धि हो रही है।

6. अध्ययन पद्धति – प्रस्तुत शोधकार्य हेतु प्राथमिक संमको को साक्षात्कार व प्रश्नावली विधि के द्वारा प्राप्त किया गया है, जबकि द्वितीयक समंको हेतु मुख्यत: लेख, पुस्तिका, पत्र-पत्रिका, वार्षिक प्रतिवेदनों इत्यादि का प्रयोग किया गया है।

7. विश्लेषण – ई-बैंकिंग – प्राय: सभी बैंकों द्वारा अपने ग्राहकों के लिए इलेक्ट्रानिक बैंकिंग सेवाएं प्रारंभ की गई हैं। IDBI, UTI, ICICI, SBI, BOB आदि ऐसे बैंकों के कुछ उदाहरण हैं। ये कोषों के हस्तांतरण एवं बहुत से कार्यों के लिए कम्प्यूटरों एवं उपग्रहों का प्रयोग करते हैं। ई-बैंकिंग के अंतर्गत व्यक्तियों एवं व्यावसायिक फर्मो को इंटरनेट के माध्यम से अपने कम्प्यूटरों एवं मोबाइल फोन पर व्यावसायिक लेनदेन करने की सुविधा प्रदान की जाती है। इस प्रकार एक बैंक ग्राहक अपनी शेष राशि की जांच कर सकता है, बिलों का भुगतान कर सकता हैं, दुसरों को धन का हस्तांतरण कर सकता है तथा ई-बैंकिंग सुविधाओं के प्रयोग द्वारा नगदी निकलवा सकता हैं।

ई-बैंकिंग के प्रति अविश्वास एवं भय के कारण –

1. व्यक्तिगत जानकारियों की चोरी का भय – ई-बैंकिंग के उपयोग में सबसे बडा बाधक तत्व व्यक्तिगत सुचनाओं की चोरी का है। जब ऑनलाइन लेनदेन के विकल्प का चयन किया जाता है तब सर्वप्रथम ग्राहक को अपनी व्यक्तिगत जानकारियों को रिक्त स्थानों पर भरना होता है। जब उन्हें भरा जाता है तब ही ग्राहक बैंकिंग लेनदेन कर सकता है। इन जानकारियों के गलत उपयोग का भय सदैव बना रहता है फलस्वरूप ग्राहकों को परेशानियों का सामना करना पडता है।

2. गोपनीयता का अभाव – ग्राहकों से संबंधित समस्त सुचनाएं बैंकर के पास उपलब्ध रहती है, यदि इन सुचनाओं को बैंकर किसी ओर से साझा कर ले या गलती से ऐसा हो जाए तो ग्राहकों के खाते हैक होने का भय बना रहता है। जो उनके खातों पर विपरित प्रभाव डालता है।

3. धोखे की स्थिति में जिम्मेदारियों का अभाव – ई-बैंकिंग की विभिन्न सेवाओं को करने के दौरान कई बार ग्राहकों को धोखे का सामना करना पड सकता है। उदाहरण के लिए ए.टी.एम. से धन निकालते समय यदि धनराशि कम प्राप्त होती है तो इसके लिए ग्राहक किसे जिम्मेदार ठहराए तथा उसकी भरपाई करना भी कठिन कार्य होता है।

4. पारम्परिक बैंकिंग प्रणाली के प्रति विश्वास – आधुनिक युग में भी ग्राहक ई-बैंकिंग प्रणाली का उपयोग करना पसंद नहीं करते है। परिवर्तनों को अपनाना तथा नवीन तकनीक का उपयोग करने में ग्राहक सकुचाते हैं उन्हें जिस प्रकार वे आजतक बैंकिंग लेनदेन करते आए है वो तरीका सुरक्षित लगता है। जिसमें धन जिसे दिया जाए उसके हस्ताक्षर व रसीद प्राप्त की जाए, पासबुक में समय-समय पर होने वाले लेनदेनो कि प्रविष्टि करवाना आदि सम्मिलित है।

5. मशीनों की अपेक्षा मानवीय व्यवहार में विश्वास – ग्राहक बैंक में अपनी पहचान बनाने के लिए ऐसा करते हैं उनकी सोच यह होती है कि जितना अधिक धन बैंक में जमा करवाया जाएगा उसकी ख्याति में उतनी ही अधिक वृद्धि होगी।बैंक द्वारा उन्हें नई-नई बचत एवं विनियोग योजनाओं के संबंध में जानकारी समय-समय पर उपलब्ध करवाई जाएगी।

6. ई-बैंकिंग की जानकारी का अभाव – न केवल अशिक्षित वर्ग बल्कि शिक्षित वर्ग भी ई-बैंकिंग की सुविधा की जानकारी प्राप्त करने में रूचि रखता हैं।आज सभी व्यक्ति अच्छा मोबाइल जिसमें इंटरनेट की सुविधाओं का उपयोग करते है लेकिन फिर भी ई-बैंकिंग का उपयोग नहीं करते हैं। बैंकों में ई-बैंकिंग की जानकारी देने के लिए एक कमर्चारी उपलब्ध होने पर भी ग्राहक उसके सुझावों पर ध्यान नहीं देते हैं।क्योंकि यह सब सिखना ग्राहकों को समय की बर्बादी लगती है तथा वे इसे एक उलझन भरा कार्य लगता है।वे अधुरे ज्ञान के आधार पर ई-बैंकिंग करना हानिकारक मानते है।

7. धन हस्तांतरण में धन के गुम होने का भय –जब ग्राहक ई-बैंकिंग के माध्यम से धन का हस्तांतरण करते हैं तब एक गलत क्लीक के कारण धन किसी ओर व्यक्ति या संस्था के खाते में जमा होने, एक नम्बर की गलती होने पर धनराशि के नुकसान होने का भय बना रहता है। ऐसे धन हस्तांतरण में प्राप्तकर्ता के प्रति उत्तर प्राप्त न होने तक भय बना रहता है। यदि धनराशि उस तक न पहुचे तो यह पता लगाना कठिन होता है कि राशि कहां गुम हो गई या प्राप्तकर्ता गलत बोल रहा है या सही।

8. ए.टी.एम. से संबंधित समस्याएं – ए.टी.एम. से धन निकालते समय ग्राहकों को कई परेशानियां अनायास ही झेलनी पड़ती है। जैसे-एक ए.टी.एम. में रूपये न होने पर अन्य ए.टी.एम. से धन निकालने के लिए भटकना, ए.टी.एम. से धनराशि कम निकलना या न प्राप्त होने पर भी खाते का षेष कम होना, एक निश्चित सीमा तक ही धनराषि निकाल पाना, ए.टी.एम. में रूपये फंस जाना, गार्ड न होने की स्थिति में महिलाओं के साथ छेड़छाड़ होना आदि। इन छल-कपटों की क्षतिपूर्ति करना भी बहुत कठिन कार्य होता है। जो प्राय: ग्राहकों को प्राप्त नहीं होती है।

9. सुरक्षा का अभाव – सुरक्षा के अभाव में ग्राहक ई-बैंकिंग का उपयोग नहीं करते है। जैसे- ग्राहक की व्यक्तिगत सुचनाओं का चोरी हो जाना तथा उसका गलत उपयोग होना, हैकर द्वारा ग्राहक के खाते को नुकसान पहुँचाना, इंटरनेट के माध्यम से विभिन्न सेटिंग्स को बदल कर ग्राहकों के खाते से धनराशि को किसी ओर के खाते में हस्तांतरित करना। इन सभी कारणों से ग्राहक ई-बैंकिंग का उपयोग नहीं करते है।

10. संचालन संबंधित जोखिमें – ग्राहकों को ई-बैंकिंग के संचालन के अधूरे ज्ञान से संबंधित जोखिमों को वहन करने का सामना करना पड़ता है। लेनदेन की प्रक्रिया में गलती, अनुबन्ध की अस्पष्टता, सुचनाओं के एकत्रीकरण, सुचनाओं की गोपनीयता, बैंकिंग प्रणाली का अनाधिकृत संचालन और लेनदेन के कारण यह जोखिम वहन करनी पड़ती है। जब बैकिंग सुचना प्रणाली का आकार कमजोर हो, उसे उचित रूप से लागू न किया गया हो तथा उसका निरीक्षण समय-समय पर न किया जाता हो।

11. सर्वर डाउन होने का भय – हमारे देष में सर्वर डाउन होने की समस्या प्राय: देखने को मिल जाती है। ऐसी स्थिति में लेनदेन की प्रविष्टियां अधूरी रह जाती है। कई बार ग्राहको के खाते से राशि कम हो जाती है तथा सर्वर डाउन होने पर प्राप्तकर्ता के खाते में जमा नहीं होती है। इस कारण भी ग्राहक ई-बैंकिंग का उपयोग नहीं करते है।

12. चैक व नगद जमा करने में असहाय – ग्राहक के पास उपस्थित चैक व नगद धनराशि को ग्राहक ई-बैंकिंग के माध्यम से बैंक में जमा नहीं करवा सकता है और न ही वह उसे किसी अन्य व्यक्ति के खाते में जमा करवा सकता है।

13. एक ही बैंक की शाखा के लिए उपयोगी – यदि लेनदेन एक ही बैंक की अन्य शाखा से करना हो तो ई-बैंकिंग के माध्यम से करना लाभदायक

होता है क्योंकि वह उसी दिन हस्तांतरित हो जाता है लेकिन किसी ओर बैंक में धन हस्तांतरण करने पर वह एक से दो दिन में हस्तांतरित होता है जो ग्राहकों के लिए नुकसानदायक सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में ग्राहकों को मानसिक अशांति का सामना करना पड़ता है।

14. समस्याओं का समाधान शीघ्र न होना – ई–बैंकिंग में आई हुई समस्याओं का समाधान ग्राहकों को तुरन्त प्रभाव से नहीं मिलता है। उन्हें अपनी शिकायतों को दर्ज करवाने में भी कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ग्राहकों मशीनों की गलती, इंटरनेट की गड़बड़ जैसी समस्याओं से हानि वहन करनी पड़ती है। कहां शिकायत की जाए तथा शिकायत दर्ज होने के बाद भी असंतुष्ट उत्तरों से ही काम चलाना पड़ता है।

निष्कर्ष– उपर्युक्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि आधुनिक युग मे जहां ई–बैंकिंग के उपयोग में वृद्धि हो रही है वही इसके अनुपयोग के कई कारण भी है जो इसके प्रति अविश्वास में वृद्धि उत्पन्न कर रहे हैं। हमारे देश में ई–बैंकिंग के अप्रचलन का कारण भी यही है क्योंकि ग्राहक अपनी गाढी कमाई को इस प्रकार नहीं गवा सकता। एक छोटी सी गलती से बहुत अधिक धन की हानि होने की संभावना रहती है। बैंक खाते की जानकारी आज भी ग्राहक पासबुक की प्रविष्टियों को देख कर करते है। ई–बैंकिंग सेवाओं में ग्राहक सर्वाधिक उपयोग ए. टी. एम. का करता है क्योंकि वह अधिक धनराशि नगद साथ में लेकर नहीं चल सकता। अत: परिकल्पना सत्य सिद्ध होती कि ई–बैंकिंग के प्रति ग्राहकों की अविश्वसनीयता एवं भय में वृद्धि हो रही है । केवल वे ही ग्राहक ई–बैंकिंग का उपयोग करते है जो इंटरनेट का संपूर्ण ज्ञान रखते हैं तथा जिन्हें ई–बैंकिंग का सुरक्षित उपयोग करना आता हो । ई–बैंकिंग सामान्य ग्राहकों की पहुँच व समझ से बहुत दूर है।विभिन्न प्रकार की धोखेबाजी से बचने के लिए ग्राहक आज भी व्यक्तिगत रूप से लेनदेन में विश्वास रखते है। एक क्लीक की प्रकिया ग्राहकों के लिए परेशानियों का कारण बन जाती है। ग्राहकों के पास इस तकनीक को सीखने के लिए समय नहीं होता है तथा अधूरे ज्ञान की स्थिति में वे ई–बैंकिंग का उपयोग नहीं कर पाते है। बैंको को ग्राहकों को ई–बैंकिंग से संबंधित सूचनाएं प्रदान करनी चाहिए तथा ग्राहकों की शिकायतों के निपटारे के लिए उचित व्यवस्था करनी चाहिए । हमारे देश में आज भी ई–बैंकिंग से संबंधित तकनीक का विकास करने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. E-banking:Status, Trends, Challenges and Policy
2. Implications(CBRC Seminar), Report of Consumers and Mobile Financial Services 2014,
3. www.financialexpress.com,
4. ijcrb.webs.com,
5. www.garph.co.uk,
6. www.tyk.ut.ee,
7. Simon S M Ho and Victor T F Ng (1994), "Customers' Risk Perceptions of Electronic Payment Systems",International Journal of Bank Marketing, Vol. 12, No. 8, pp. 26-38, www.ccsenet.org/jms,
8. Diffusion of internet banking amongst educated consumers in a high income non-OECD country', Journal of Internet Banking and Commerce, vol. 11, no. 3, pp. 1-17,
9. International Journal of Research in Business Management (IJRBM) Vol. 1, Issue 1, June 2013, 19-26.
10. E- Banking & security transactions (Agrawal, Jain, Bhargava),
11. Banking services operations (Jain, Rathi, Sharma).

****

गाँधीजी के सामाजिक , आर्थिक विचार

डॉ. पंकज माहेश्वरी *

प्रस्तावना – गांधीजी का जीवन दर्शन ही गांधीवाद था। उन्होंने जो सोचा, मनन किया, वह किया। उनकी अंतरात्मा ही उनकी पथप्रदर्शक थी। भारत की आत्मा का प्रतीक गांधीवादी दर्शन ही था। गांधीजी के विचारों का आशय यह है कि व्यक्ति के जीवन और समाज की संरचना को फिर से नैतिक ऊँचाई की ओर ले जाया जाय। गांधीजी एक नए सामाजिक चेतना युक्त मानव की रचना करना चाहते थे। उनका लक्ष्य एक सामाजिक मानव का निर्माण करना था। सामाजिक मानव से तात्पर्य एक ऐसे मानव से है जो समाज की समस्याओं के प्रति सजग हो और उन्हें हल करने में स्वैच्छिक तौर से अपनी भूमिका निभाता हो।

गांधीजी का मानना था कि सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति ही भारतीय समाज की मुख्य विशेषता है। गांधीजी के अनुसार सामाजिक एकता ही भारत का लक्ष्य है। इसके लिए समाज के अन्दर व्याप्त भेदभावों को दूर करना होगा। गांधीजी के अनुसार अस्पृश्यता भारतीय समाज की सबसे बड़ी बुराई है जिसे जड़ से समाप्त करना अति आवश्यक है। गांधीजी के सपनों का भारत ऐसा नहीं था, जहाँ गोरे साहबों की जगह काले साहब आकर बैठ जाए। गांधीजी कहते थे ''अंग्रेजियत चली जाए भले ही अंग्रेज रह जाएँ।'' पर स्वतंत्रता के पश्चात् अंग्रेज तो चले गये पर हमने अंग्रेजियत को गले लगा लिया।

गांधीजी ऐसा व्यक्ति और समाज चाहते थे जो मौजूदा शोषण आधारित व्यवस्था को बदल कर उसे असमानता तथा एक वर्ग पर दूसरे के हावी होने की प्रकृति से मुक्त कराए मानव में हृदय परिवर्तन लाने के लिए गुणात्मक स्तर पर एक ऐसा मानवीय तरीका अपनाना होगा जिसमें जीवंत आचरण का आदर्श सामने रखकर मन से मन पर विजय प्राप्त की जा सकती है। इसी को गांधीजी ने अहिंसा का तरीका कहा था। वह प्रेम की ही ताकत है जो समस्त मानवता और सृष्टि को जीवंत बना टिकाए रखती है। गाँधीजी ने अपने सत्य और प्रेम के सतत् प्रयोगों के माध्यम से इस सनातन शक्ति की खोज की थी और उसी का उपयोग मानव और समाज को बदलने के लिए किया।

गांधीजी के विचार से भारत की मूलभूत इकाई गाँव होना चाहिए, जो अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए आत्मनिर्भर हो और अपनी स्थानीय समस्याओं का हल पंचायतों द्वारा करें एवं किसी बाहरी ताकतों पर निर्भर न करें। संविधान का प्रारूप जब गांधीजी को दिखाया गया तो उन्होंने कहा था कि संविधान में पंचायतों का प्रावधान नहीं है। आजादी के बाद बिनोबा, लोहिया, जयप्रकाश नारायण ने भी एक विकेन्द्रित व्यवस्था की ओर ध्यान दिलाया था। बाद में संविधान में संशोधन करके पंचायतों का प्रावधान किया गया आज का विकास उपभोक्तावाद को बढ़ावा देता है और आम आदमी को और छोटी इकाईयों को आश्रित और कमजोर बनाता है एवं साथ ही सामाजिक मूल्यों में गिरावट भी लाता है।

गांधीजी मशीनों को व्यर्थ का महत्व देने के लिए तैयार नहीं थे। गांधीजी बेलगाम मशीनीकरण और औद्योगिकीकरण के पक्षधर नहीं थे। वह विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के पक्षधर थे। आज अंधाधुंध मशीनीकरण और औद्योगीकीकरण के दुष्परिणाम सबके सामने है। देश के गाँव का शोषण कम होना तो दूर रहा बल्कि बढ़ ही रहा है। ये धारणा गलत है कि गांधीजी टेक्नोलॉजी के विरोधी थे, उनकी टेक्नोलॉजी आदमी प्रधान थी जो व्यक्ति एवं छोटे समूहों को सशक्त करे और उन्हें आत्मनिर्भर बनाये।

गांधीजी के मतानुसार औद्योगीकरण से हम आवश्यक वस्तुओं की उपेक्षा करके अनावश्यक वस्तुओं का प्रचुर मात्रा में निर्माण करते है। इससे अनेक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न होती है। औद्योगीकरण तथा मशीनीकरण से लोक-जीवन का सामाजिक और आर्थिक स्वावलम्बन नष्ट हो जाता है और सम्पत्ति का केन्द्रीकरण हो जाता है। इस केन्द्रीकरण के कारण सारा आर्थिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। गांधीजी के अनुसार सम्पत्ति के केन्द्रीकरण से सुरक्षा के कारण सेना तथा शस्त्रीकरण की वृद्धि होती है और उससे युद्ध वृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। गांधीजी आर्थिक जीवन में स्वावलम्बन और साझेदारी का समर्थन करते है। वह सहयोगी समाज चाहते है और इस सहयोगी समाज की प्रतिष्ठा के लिए नैतिक गुण स्वयं ही अनिवार्य हो जाते हैं।

गांधीजी ने स्वराज्य के लिए संघर्ष इसलिए नहीं किया था कि वह गोरी चमड़ी से सत्ता लेकर काली चमड़ी को दे दें। वह तो यह कहा करते थे कि उनका अंग्रेजों से कोई विरोध नहीं है, उनका विरोध तो अंग्रेजी शासन पद्धति से है। उस शासन पद्धति से, जिसने कि उन्हें भारत का मालिक और भारतीय जनता को उनका दास बना दिया। आज अंग्रेज चले गये, लेकिन क्या शासन की पद्धति बदल गयी। क्या आज जनता की सेवा हो रही है ? क्या भ्रष्टाचार कम हुआ है ? क्या लोगों की शिकायतें सरकार सुनती है ? तहसील, थाना एवं कोर्ट जनता के लिए पहले से अधिक सुलभ हैं ? आज आम आदमी का जीवन कष्टो से भरा है एवं गरीब वर्ग की कहीं कोई सुनवाई नहीं है। आम आदमी महज एक वोटर है जिसकी जरूरत नेताओं को पांच वर्ष में एक बार लगती है। सारा राजकीय और प्रशासनिक ढ़ाँचा बोझिल और भ्रष्ट है एवं देश में वह सब कुछ चल रहा है जिसका गांधीजी विरोध किया करते थे। वही अशिक्षा है, बेरोजगारी है, भुखमरी है, गरीबी है और परवक्षता है। गांधीजी की इच्छा थी – सच्चा स्वराज्य हासिल करने की, जिसमें हमारी अपनी भाषा होती, हमारी अपनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति होती, हमारी अर्थ नीति होती और होती हमारी राजनीति परन्तु दुर्भाग्य से ऐसा कुछ नहीं है। गांधीजी का कहना था कि सुधार कार्य अपने से ही शुरु करना चाहिए। इसलिए हमारा यह व्रत होना चाहिए कि हम अपने को सुधारें, अपने को अनुशासित करें। उसके बाद अपने घर को सुधारें और तदुपरांत अपने समाज को।

भारत गांधीजी द्वारा प्रतिपादित आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था द्वारा ही आगे बढ़ सकता है। पूंजीवाद और साम्यवादी व्यवस्था का खोखलापन स्पष्ट है। आज गांधीजी के विचार 'सर्वधर्म समान्तव पूरी दुनिया को अपनाना होगा तथा इसकी शुरुआत भारत को ही करनी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. वेद प्रकाश सोनी, राष्ट्रीय एकता : महात्मा गांधी, एक्सल पब्लिकेशन, दिल्ली, वर्ष 2005
2. सुधासिंह, भारत के मसीहा महात्मा गांधी, सन फ्लावर बुक्स, नई दिल्ली, वर्ष 2008
3. पी. के. अग्रवाल एवं शिखा अग्रवाल, गांधी-विचार और हम, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, वर्ष 2012
4. राजेन्द्र टोकी, गांधी जीवन और दर्शन, सुमित बुक्स दिल्ली, वर्ष 2012

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, तराना, जिला – उज्जैन (म.प्र.) भारत

मध्यप्रदेश में सुशासन की पहल - विकास की कुँजी

डॉ. रवीन्द्र कुमार सोहोनी * प्रो. शांतिलाल ईरवार **

प्रस्तावना – शासन करने के प्रचलित तरीकों में प्रजातांत्रिक तरीकों की श्रेष्ठता निर्विवाद है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था के लागू होने के बावजूद भी हमारे समाज में मूलभूत सुविधाओं से वंचित रहना, भेदभाव, ऊँच-नीच मौजूद हैं। शिक्षा के विकास और जागरूकता के परिणामस्वरूप पहले की तुलना में इनमें पर्याप्त कमी आई है। यद्यपि आदर्श स्थिति की कल्पना करें तो हमें अपनी प्रजातांत्रिक प्रणाली में बहुत कमियां नजर आती है। वर्तमान कमियों के बावजूद भी हम राजतंत्र या निरकुंश तंत्र की वकालत नहीं करते।

प्रजातांत्रिक प्रणाली की कमजोरियों का इलाज हम अधिक प्रजातांत्रिकरण में ढूँढते है। स्पष्ट है कि प्रजातंत्र प्रणाली का कोई बेहतर विकल्प नहीं है जो इससे बेहतर हो। प्रजातांत्रिक प्रणाली भी केन्द्रीकृत और विकेन्द्रीकृत हो सकती है। दोनों के अपने-अपने लाभ-हानियां है किन्तु फिर भी विकेन्द्रीयकरण का पलड़ा भारी दिखाई पड़ता है। प्रजातंत्र को जब जनता का शासन, जनता के लिए, जनता द्वारा होने की बात कहीं जाती है तो विकेन्द्रीकृत प्रणाली इसके ज्यादा नजदीक खड़ी दिखलाई पड़ती है। संभवत: यही कारण कि भारत की राजनीतिक व्यवस्था प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीयकरण की ओर सत्त अग्रसर होती चली गयी।

01 नवंबर, 1956 को भाषाई आधार पर प्रांतों के पुनर्गठन के फलस्वरूप मध्यप्रदेश का जन्म हुआ।[1] प्रदेश की राजधानी भोपाल रखी गयी तथा पं. रविशंकर शुक्ल प्रदेश के प्रथम मुख्यमंत्री बने। 1 नवंबर, 2000 को देश में 26 वें राज्य छत्तीसगढ़ के गठन के फलस्वरूप मध्यप्रदेश का विभाजन हुआ। मध्यप्रदेश का वर्तमान स्वरूप 31 अक्टूम्बर 2000 का प्रतिनिधित्व करता है। देश की पंद्रहवीं जनगणना 2011 के आँकड़ों के अनुसार प्रदेश की कुल जनसंख्या 7 करोड़, 25 लाख, 97 हजार, 565 है। 476 शहरों और 54903 गाँवों में बिखरी यह विशाल जनसंख्या अपने विशिष्ठ, सामाजिक, सांस्कृतिक सौष्ठव के कारण अलहदा पहचान रखती है। 2011 के अनुसार ग्रामीण और शहरी जनसंख्या का अनुपात क्रमश: 72.4 तथा 27.6 है।[2]

1956 से 56 वर्ष तक की तस्वीर देखें तो मध्यप्रदेश की झोली में अनेक उपलब्धियाँ हैं। इन 56 वर्षों में विकास तो हुआ है, जो 2012 में नजर भी आता है। विभिन्न सरकारों ने इस विकास को अपने-अपने तरीकों और अपनी-अपनी योजनाओं के माध्यम से गति प्रदान की। निश्चित् ही 1956 के मध्यप्रदेश और आज के मध्यप्रदेश में बहुत कुछ बदल गया है। मध्यप्रदेश की तुलना जब हम अन्य राज्यों से करते हैं तो हम पाते हैं कि समस्त संसाधनों से लैस, भारत का हृदय कहे जाने वाले इस राज्य के विकास की धड़कन और उसकी रफ्तार अपेक्षाकृत कम है। जी.डी.पी. के ताजा आँकड़ों के हिसाब से विकास की गति 12 प्रतिशत दिखलाई देती है किन्तु जब हम इसी आधार पर अन्य राज्यों से इसकी तुलना करते हैं तो मध्यप्रदेश हमें ग्यारहवीं पायदान पर खड़ा नजर आता है।[3]

भारतवर्ष के शीर्ष पाँच राज्यों में स्थान बनाने का संकल्प सुशासन के माध्यम से साकार हो सकता है। सुशासन की पहल हेतु सुनियोजित लक्ष्य, साफ सुथरी नौकरशाही और दृढ़ राजनैतिक एवं प्रशासनिक इच्छा शक्ति की आवश्यकता है जिसके अभाव में यह सपना साकार और मूर्तस्वरूप ग्रहण नहीं कर सकता। 73 वें और 74 वें संविधान संशोधन के पश्चात् सुशासन एवं विकेन्द्रीयकरण की दिशा में जो कदम उठाएं गये वे निश्चित् तौर पर मील के पत्थर कहे जा सकते हैं। सन् 2005 में पारित सूचना के अधिकार अधिनियम ने सुशासन का न केवल मार्ग प्रशस्त किया अपितु लोकहित की दृष्टि से शासन में पारदर्शिता एवं जवाबदेही तथा भ्रष्ट आचरण को नियंत्रित करने के उद्देश्य से यह कानून अधिनियमित भी किया गया।

मध्यप्रदेश की वर्तमान सरकार ने सुशासन को एक नयी दृष्टि से फलीभूत करने के उद्देश्य से '**मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारंटी अधिनियम 2010**' को पारित कर न केवल सकारात्मक अपितु प्रशासन की दृष्टि से क्रांतिकारी नवाचार को प्रतिष्ठित किया है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा सही अर्थों में तभी अर्थ पा सकती है जबकि प्रशासन की चाल, चरित्र और चेहरा वास्तव में उजला हो। भय, भूख और भ्रष्टाचार से मुक्त सभ्य तथा सुसंस्कृत समाज की स्थापना में, लोक सेवाओं के प्रदान गारंटी अधिनियम राज्य का अस्त्र और शस्त्र साबित हो सकता है।

21वीं शताब्दी के इस दूसरे दशक में विकास और सुशासन सभी सराकारो की कार्यसूची में सर्वोच्च स्थान पर विराजित है। विसेन्ट आसट्रम प्रशासनिक ढाँचें को चुनौती देते हुए अपनी विवादास्पद पुस्तक 'The Intellectual crisis in American Public Administration' में तीन मान्यताओं का प्रमुखता से खण्डन करते हुए वे लोकतांत्रिक प्रशासन के लिए तीन मूलभूत सिद्धांतों की वकालत करते हैं –

1. निर्णय निर्माण के विभिन्न प्रजातांत्रिक केन्द्र (Diverse Democratic Decision Making Centres)
2. प्रशासन में जनसहभागिता (People's Participation in Administration)
3. प्रशासनिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण (Decentralisation of Administrative Authority)

सुशासन की दृष्टि से लोकतांत्रिक प्रशासन के संगठनात्मक और व्यावहारिक लक्षणों को फ्रांसीसी लेखक (Ordway Tead) 'आर्डवें टीड' ने भी वर्गीकृत किया है –

* प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (भूगोल) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.) भारत

(A) राजनीतिक निर्देशन और उत्तरदायित्व (Political Direction and Accountability)
(B) प्रशासन का न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review of Administration)
(C) जनता के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility towards the people)
(D) प्रशासन में जनसहभागिता (People's Participation in Administration)
(E) सहकारी प्रशासन (Co-operative Administration)
(F) खुला प्रशासन (Unsecretive Administration)

इनके अतिरिक्त टीड ने मानवीय सम्बंध दृष्टिकोण, शक्तियों का विकेन्द्रीकरण, पारस्परिक परामर्श, भर्ती की व्यापक प्रणाली, समितियों की स्थापना जैसे अनेक लक्षणों पर प्रकाश डाला हैं।

21 वीं सदी के दूसरे दशक में मध्यप्रदेश जैसे अल्पविकसित राज्य के लिए विकास और सुशासन एक प्रमुख चुनौती के रूप में मुँह-बाएँ खड़ा है। बाधाओं में बवंडर में प्रगति के पाँव न लड़खड़ाएं इसके लिए जरूरी है कि जनआकांक्षाओं की जमीन पर सुशासन का हल चलाकार दृष्टि (Vision) और दृष्टिकोण (Approch) को अमली जामा पहनाया जाय।

संयुक्त राष्ट्र संघ और विश्व बैंक के द्वारा समय-समय पर जारी किए गए आँकड़ों का यदि सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो हम पाते हैं कि सुशासन और मानव विकास की दृष्टि से म.प्र. ही नहीं भारतवर्ष भी अत्यंत पिछड़ा राष्ट्र है। हमें खुले हृदय से यह स्वीकारना होगा कि न केवल विश्व में अपितु **कई एशियाई देशों की तुलना में भी भारत पीछे है।** विकास की पायदान की दृष्टि से **भारत स्वतंत्र राष्ट्रों में 138 वीं पायदान पर खड़ा है।** आज भी भारत तीसरी दुनिया के विकासशील राष्ट्रों की पंक्ति में खड़ा है और चमकीले विकास की लम्बी डगर अभी बाकी है। विकासशील समाजों में सुशासन का प्रश्न उठना अनुचित न होकर समसामयिक और प्रासंगिक भी हैं।

सैद्धांतिक अवधारणाओं के क्रम में तीसरी दुनिया की विशिष्टताओं को समझना समीचीन होगा। विकासशील समाज की विशिष्टताओं में गरीबी, पिछड़ापन, भ्रष्टाचार, जनसहभागिता का अभाव, प्रभावशील दक्षता का अभाव, उत्तरदायित्व की भावना की कमी जैसे कई अन्यान्य बिंदु पर्याप्त गंभीर विमर्श की अपेक्षा रखते हैं। भारत के 64 वर्षों के सफल प्रजातंत्र के बाद भी राजनैतिक व्यवस्था बेहद लचर और कमजोर दिखलाई पड़ती है। बहुलवादी समाज होने के कारण जाति, भाषा, धर्म, प्रांत और क्षेत्र जैसे तत्व सुशासन तथा विकास का मार्ग अवरूद्ध करते हैं। सामाजिक विघटन और आर्थिक वंचनाओं के फलस्वरूप सामाजिक न्याय का सपना आज भी अधूरा है। हाल ही के वर्षो में नवधनाड्य रूप से संभ्रात एवं कुलीन कहे जाने वाले तबके का तेजी से उद्भव व विकास हुआ है जो एक नए प्रकार चुनौती है। 15 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि को प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू का लाल किले की प्राचीर से दिया गया ऐतिहासिक उद्बोधन धन सुशासन की दिशा और सुशासन के मार्ग का चार्टर निरूपित किया जा सकता है, किंतु वास्तविकता के जमीन पर उगने वाली फसल बेहद कमजोर और पीली पड़ गयी प्रतीत होती है। बहुमत पर अल्पमत की तानाशाही और दलों के दलदल में फंसे प्रजातंत्र में विकास और सुशासन की सांसे फूल रही हैं।

सुशासन और विकास एक-दूसरे के परिपूरक है। जहाँ सुशासन विकास का मार्ग प्रशस्त करता है वहीं विकास सुशासन के अवसर उपलब्ध कराता है। 64 वर्षो के सफल प्रजातांत्रिक अनुभवों के पश्चात् भी भारतवर्ष और विशेषकर मध्यप्रदेश सुशासन की दृष्टि से शैशव अवस्था में है।

नागरिकों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना और जवाबदेह प्रशासनतंत्र दोनों मिलकर कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का निर्माण करते हैं। नागरिकों को निर्बाध सेवाओं का मिलना, न केवल उनकी अपेक्षा है बल्कि उनका अधिकार भी हैं। मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारंटी अधिनियम के माध्यम से नागरिकों को और अधिकार सम्पन्न बनाने का सपना मूर्त रूप लेगा वहीं दूसरी तरफ लोकसेवाओं के अधिक जवाबदेही और संवेदनशील भी बनायेगा

सुशासन के लिए स्मार्ट (SMART) होना अपेक्षित है -

Strategies for making government "SMART" (The new Governance model)

S	-	Sympathetic	संवेदनशील
M	-	Moralistic	नैतिक
A	-	Accountable	जवाबदेह
R	-	Responsive	उत्तरदायी
T	-	Transparent	पारदर्शी

आम आदमी राजनीतिक प्रणाली से नहीं, बल्कि प्रशासनिक व्यवस्था और गवर्नेंस की निष्ठुरता का शिकार है। गवर्नेंस के जन विरोधी चरित्र को दुरूस्त करने की महती आवश्यकता है। आम आदमी को थोड़ी बहुत राहत यदि कहीं मिलती है तो राजनीतिक प्रणाली से ही मिलती है। इस प्रणाली को अपनी वैधता हासिल करने के लिए समय-समय पर आम आदमी के पास जाना पड़ता है। जबकि प्रशासन चलाने वालों के लिए ऐसा करना जरूरी नहीं है। प्रशासन चलाने वालों को जन-वैधता नहीं सत्तारूढ़ दल के नेताओं के विश्वास और शाबाशी की दरकार होती है। मध्यप्रदेश लोकसेवाओं के प्रदान की गारंटी अधिनियम को 25 सितम्बर 2010 से प्रवृत्त होने के फलस्वरूप सुशासन के उपर्युक्त लक्ष्यों को प्राप्त करना सहज एवं सरल होगा। यह अधिनियम अधिसूचित सेवाओं को समय-सीमा में नागरिकों को उपलब्ध कराएगा जिससे प्रशासन में समय सीमा का पालन होगा तथा भ्रष्टाचार मुक्त, पारदर्शी, जवाबदेह एवं संवेदनशील प्रशासन का प्रस्फुटन होगा, यही प्रस्फुटन सुशासन को पुष्पित, पल्लवित और सुवासित करेगा।

सार्वजनिक महत्त्व के विषयों के सम्बंध में उचित और तर्कपूर्ण सार्वजनिक नीतियों द्वारा समुचित कदम उठाना सरकार का दायित्व है। आज आधुनिक समाजो में लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के सम्बंध में एक आम सहमति पायी जाती है। जिसका लक्ष्य है- सामान्य सामाजिक सेवाएँ उपलब्ध कराना और निरंतर विकास को गतिशीलता प्रदान करना। सार्वजनिक नीतियां न केवल विकास के लक्ष्यों एवं मूल्यों को निर्धारित करती है अपितु अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक उद्देश्यों को प्रतिस्थापित करते हुए उनकी प्राथमिकताओं का निर्धारण भी करती है। विकास चूँकि बहुविध, बहुमुखी एवं बहुस्तरीय होता है। अत: उसे प्राप्त करने के लिए एक समेकित (Integrated) सुशासन की नितान्त आवश्यकता है।

यह कहना गलत होगा कि राजनीति का विकास से कोई संबंध नहीं हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि लोकतंत्र राजनीति से चलता है और राजनीति का विकास से गहरा सम्बंध है। क्योंकि लोकतंत्र और मानव विकास एक दूसरे के पूरक हैं। जो लोग सत्ता में नहीं होते उन्हें अपने दिल की बात सुनने और अपने विचारों के अनुसार काम करने की स्वतंत्रता लोकतांत्रितक व्यवस्था की अपूर्व देन है, लेकिन सत्ता चलाने वालों और न्याय देने वालों के लिए यह आवश्यक है कि वे दिल से नहीं दिमाग से लिए गये निर्णयों के अनुसार

सुशासन की व्यवस्था स्थापित करे। यदि पंडित जवाहरलाल नेहरू की परम्परा को आदर्श माना जाये तो सुशासन के लिए आवश्यक है कि आम जनता से जुड़े राजनेताओं और प्रशासन से जुड़े अधिकारियों के बीच सम्बंधों की लक्ष्मण रेखा तय हो। निहित स्वार्थो और राजनीतिक पूर्वाग्रहों से बचने और बचाने के लिए पंडितजी ने मंत्रियों, सचिवों और अधिकारियों के बीच दूरी को आवश्यक माना था, वे किसी गिरोह की तरह काम नहीं करते थे। मंत्रालयों के सचिव, संयुक्त सचिव केवल मंत्रियों की इच्छा और कृपा पर तैनात नहीं होते थे। कैबिनेट सचिव, प्रधानमंत्री, गृह और कार्मिक मंत्री के साथ पर्याप्त विचार विमर्श कर हर मंत्रालय या विभाग में अधिकारियों को तैनात करते थे।

सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध में सुशासन को लेकर एक प्रकार की गिरावट देखने में आने लगी। राजनेताओं, अधिकारियों, प्रभावशाली व्यापारियों और कुछ हद तक अपराधियों की मिली भगत से प्रशासन तंत्र बनने लगा। इसका दुखद परिणाम यह हुआ कि मनमानी, ज्यादती, भ्रष्टाचार और अव्यवस्था बढ़ने लगी और सुशासन जैसा मुद्दा हासिएं पर चला गया। कोई भी दल और उसका कोई भी नेता यह तर्क देकर अपनी जवाबदेही से बच नहीं सकता कि व्यापक भ्रष्टाचार और प्रशासनिक गड़बड़ियों के कारण लोक कल्याणकारी योजनाओं और विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन ही हो पाया। भ्रष्टाचार और अव्यवस्था को रोकने के लिए ही तो उनको निर्वाचित किया गया है।

विकास और सुशासन पर प्रकाश डालते हुए पूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने कुमाराकोम से अपने अवकाशकालीन चिंतन में जनवरी 2001 को राष्ट्र को भेजे संदेश में कहा था 'अब समय आ गया है कि विकास सम्बंधी मूलभूत सुधार लाए जाएं जिसमें आर्थिक सुधारों के अलावा प्रशासनिक और न्यायिक सुधार भी सम्मिलित हो। इन सुधारों का सबसे महत्वपूर्ण पहलू सभी स्तरों पर पारदर्शी जवाबदेही निर्धारित करना तथा विकास से जुड़ी सभी ऐजेंसियों के कार्यो की निगरानी में लोगों की भागीदारी को बढ़ाना है। यह भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के लिए जरूरी है, जिसके कारण केंद्र और राज्यों का काफी मात्रा में बजट संसाधन बेकार चला जाता है। विकास ऐसा महत्वपूर्ण पहलू है जिसे केवल नौकरशाही के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता।'[4]

भारत और विशेषत: मध्यप्रदेश के संदर्भ में दो और बिंदुओ पर गंभीरता से विमर्श की आवश्यकता है इसमें प्रथम है विकास का पर्यावरणीय आकलन और वनवासियों का कल्याण और उनकी अस्मिता की रक्षा। दरअसल, समूची दुनिया ही आज पर्यावरण के संकट से जुझ रही है और उसके सामने सबसे बड़ी चुनौती है हरित या साफ-सुथरी तकनीक का विकास और उसका ज्यादा से ज्यादा प्रचलन। वर्ष 2011 के कानकुन में हुए जलवायु परिवर्तन सम्मेलन में हम देख चुके हैं कि विकसित और सम्पन्न राष्ट्रों की बिरादरी विकासशील और गरीब देशों के सामने आर्थिक मदद के टुकड़े डालकर उन पर यह दबाव बनाती है कि वे अपने यहां ग्रीन-हॉउस गैसों के उत्सर्जन पर कटौत्री करें, लेकिन स्वयं अपनी जिम्मेदारियों से हाथ झटक लेते हैं। जलवायु परिवर्तन के गंभीर खतरों को देखते हुए हमारे सत्तावान नीति-नियामक विकास की मौजूदा अवधारणा के मोहजाल से अपने आपको मुक्त करें जिसमें नीतिगत फैसले करते समय पर्यावरण जैसे गंभीर मसलें को दोयम दर्जे पर रखते हुए या उससे नजरअंदाज कर दिया जाता है। अब यह तथ्य आम हो चुका है कि विकास की मौजूदा अवधारणा और इस अवधारणा के अंतर्गत बनाई गई औद्योगिक नीतियों के चलते हमारे पर्यावरण को गंभीर नुकसान पहुँच रहा है। इसी अहसास के चलते विनाशकारी विकास और पर्यावरण के बीच टकराव तेज होता जा रहा है।

मुख्य समस्या यह है कि सकल घरेलू उत्पाद में से पर्यावरण के नुकसान को घटाने के मानक कैसे तैयार किए जाएँ। उत्पादन की प्रक्रिया में न केवल मानव श्रम और पूँजी का ह्रास होता है बल्कि पर्यावरणीय ह्रास, जैवतंत्रों का असंतुलन तथा प्राकृतिक संसाधनों का भी क्षय होता है। इस प्रकार के सही आकलन के लिए दो प्रकार की पूर्व तैयारी जरूरी है। प्रथम राष्ट्रीय संसाधनों का सूचना आधार तैयार करना होगा। दूसरा प्रदूषित प्राकृतिक संपदा के स्वच्छीकरण की लागत का आकलन भी करना होगा। म.प्र. में यह अभ्यास इसलिए भी जरूरी है कि प्राकृतिक संसाधनों का भंडार सही सलामत रहे और भावी आय पर प्रतिकूल असर दिखलाई न पड़े। क्षय की भरपाई के उक्त क्रिया कलापों पर खर्च पूंजीगत खपत में जोड़ा जा सकता है और प्राकृतिक संसाधनों की बिक्री से हुई आमदनी में से निकाला जा सकता है। अब आवश्यकता केवल इस बात है कि केवल विकास दर परिचर्चा नहीं करते हुए इसे पर्यावरण पर पड़ रहे प्रभावों और इनके प्रति जागरूकता सम्बंधी अभियान के विषय पर प्रदेश स्तर के साथ-साथ राष्ट्रीय स्तर पर कोई कार्य योजना तैयार की जाय। पर्यावरण के प्रति उदासीनता एक संगीन राष्ट्रीय अपराध है और इसका मुख्य अभियुक्त है हमारा समूचा राजनीतिक नेतृत्व।

आदिवासियों के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए 1972 से 'विशेष आदिवासी उप योजना' (Sub Plan) बनती रही है। केन्द्र सरकार ने 2006 में राष्ट्रीय आदिवासी विकास नीति की घोषणा भी की थी। प्रमुख राजनीतिक दल आदिवासी क्षेत्रों राजनीतिक प्रभुत्व के प्रयास लगातार करते रहें है। भोले-भाले आदिवासी यदि प्रभावशाली ढंग से आगे बढ़ने लगे तो उन्हें कठपुतली की तरह इस्तेमाल किया गया और उन्हें भ्रमित कर दिशा भ्रष्ट कर दिया गया। इस दृष्टि से आदिवासी क्षेत्रों में जल, जंगल, जमीन के साथ सड़क, पानी, बिजली, चिकित्सा और शैक्षणिक सुविधाएँ बढ़ाने को सर्वोच्च प्राथमिकता दिए जाने की आवश्यकता है। आदिवासी क्षेत्रों के लिए राज्य योजना आयोग में बैठकर कार्यक्रम बनाने और बजट का प्रावधान करने मात्र से आदिवासी क्षेत्रों का कल्याण संभव नहीं है। पहले उन क्षेत्रों में न्यूनतम सुविधाएँ पहुंचाने की व्यवस्था करना जरूरी है।

आज म.प्र. मानव विकास के अनेक मापदण्डों पर देश के अन्य राज्यों से ही नहीं, विश्व के अनेक देशों से भी पिछड़ा है। बाल मृत्यु दर तो यहाँ विश्व में सबसे ज्यादा है। यह बात एशियन लीगल रिसोर्स सेंटर की भारत सम्बंधी रिपोर्ट में सामने आई है। जो संयुक्त राष्ट्र मानव विकास परिषद् को सौंपी गई है जिससे कि यह संस्था सम्बद्ध है। ये आँकड़े इसलिए चौंकाने वाले नहीं है क्योंकि यह बात कई तरह से कई और आँकड़ो के द्वारा सामने आ चुकी है। प्रदेश में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले परिवारों की तादात 65 लाख से अधिक है। 1/3 डॉक्टरों के पद रिक्त हैं।

विकास की राह पर एक नियत सुनिश्चित गति से लगातार आगे बढ़ना दुष्कर और दूरगामी उपक्रम है। विकास चाहे व्यक्ति का हो या समाज का कोई एक दिन में पूरी हो जाने वाली प्रक्रिया नहीं है। यह निरंतर चलने वाला एक ऐसा उपक्रम है जिसका सतत् पीछा करते रहना जरूरी ही नहीं अनिवार्य सा है। बिना किसी 'फॉलो अप' के विकास की गाड़ी डगमगाने लगती है स्पष्ट है कि फॉलो अप विकास का अनिवार्य भाग है। विकास की अवधारणा भी उसके स्वरूप को तय करने के लिए एक आवश्यक शर्त है। अवधारणा यदि सम्यक और समग्र नहीं होगी तो उसके आस-पास बुना जाने वाला जाल बेकार साबित होगा।

मध्यप्रदेश में उसके जन्म के समय से ही विकास के सुर, लय और ताल इतने बिखरे हुए और बेतरतीब रहे है कि पुरजोर शोर-शराबे के बावजूद

विकास की जितनी बातें हुई उतनी मात्रा में परिणाम हासिल नहीं हुए हैं। सरकारी विभागों के समन्वय एवं समायोजन के अभाव में विकास का जो रेखाचित्र उभरना चाहिए था वह उभर ही नहीं पाया। विकास की अवधारणा की अस्पष्टता, अव्यावहारिकता और उसका धुंधलापन इसके लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

राजनीतिक दबावों और सामाजिक सरोकारों के साथ-साथ अधोसंरचनात्मक जरूरतों को प्राथमिकता में ऊपर रखना नितांत आवश्यक है। इस अधोसंरचना विकास में भी शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क-पानी और बिजली हमारे लिए गरीबी, अज्ञानता, बेरोजगारी और बीमारी के विरूद्ध लड़ने वाले कारगर औजार साबित हो सकते हैं।

हमारे यहाँ औद्योगिक उत्पाद का तीन चौथाई से भी अधिक भाग संगठित औद्योगिक क्षेत्र में होता है, अर्थात् बड़े और आधुनिक उद्योगों में किंतु उनमें रोजगार बढ़ते नहीं, उनका उत्पाद बढ़ता है किंतु रोजगार कम होते जाते है। इस स्थिति को रोजगार विहीन विकास कहा जाता है। यह रोजगार विहीन विकास तभी खत्म होगा जब हमारे आर्थिक विकास का मॉडल बदलेगा और इसे बदलने के लिए वैचारिक सफाई की नितान्त जरूरत है। हमें न्याय के साथ विकास और समावेशी विकास के स्थान पर जनता के साथ विकास की धारणा को अपनाना होगा।

अधोसंरचना विकास के स्रोत – 56 बरस बाद भी म.प्र. विकास की राह में संभवत: अभी आधा रास्ता भी तय नहीं कर पाया है। इसके लिए आवश्यक है कि संकल्प के साथ क्रिया कलापों में सामाजिक सहभागिता के बगैर लक्ष्यों को पाना संभव नहीं है। शासन की प्रतिबद्धता के साथ राजनीतिक इच्छा शक्ति, स्थानीय भागीदारी और समाज के सहयोग का टीमवर्क हमें आशातीत सफलता दिलवा सकता है।

प्रदेश की सरकार अभी भी अपने अधिकांश अधोसंरचना विकास के लिए स्वयं के बजट से विकास कार्यो का क्रियान्वयन कर रही है। अधोसंरचनात्मक विकास कार्यो हेतु 'राज्य बजट' के बाहर से भी भारी मात्रा में धनराशि एकत्रित की जा सकती है। इसका लाभ देश के कई बड़े एवं विकसित राज्यों ने सफलतापूर्वक उठाया है। अधोसंरचनात्मक विकास के लिए जिन छ: स्रोतों का लाभ अन्य राज्यों ने उठाया है वह है –

1. देशी/विदेशी संस्थागत निवेशक
2. देशी एवं विदेशी बहुराष्ट्रीय अधोसंरचनात्मक विकास कंपनियां
3. वित्तीय संस्थानों के कंसोरटियम से कम ब्याज पर उपलब्ध प्रचुर धनराशि
4. बहुपक्षीय एवं द्विपक्षीय संस्थानों में उपलब्ध परियोजना सहायता
5. विदेशों के विभिन्न ट्रस्ट फंड में जमा आइडल धनराशि।
6. देश में उपलब्ध निजी निवेश।

समय रहते अन्य राज्यों की भाँति उपर्युक्त छ: स्रोतों का भरपूर लाभ उठाया गया होता तो बिजली उत्पादन-वितरण, सड़क एवं पुलों का निर्माण, जलप्रदाय, सिंचाई व्यवस्था, यातायात के साधन के मामले में हम कोसों आगे निकल गए होते, और इसका लाभ हमें कृषि, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे अन्य आर्थिक एवं सामाजिक विकास में मिलता और प्रदेश की विकास यात्रा की रफ्तार दो गुनी हो चुकी होती। इससे जहाँ रोजगार के अवसर पैदा होते, बढ़ते और जनता में खुशहाली आ जाती। अभी समय है सरकार सजग हो और सुशासन के साथ-साथ एक मजबूत आर्थिक प्रशासन विकसित करें, जो नए सिरे से नीति और ऐजेण्डा तैयार कर तीव्रगति से उनका क्रियान्वयन भी करे।

म.प्र. में विकास की कुँजी –

1. म.प्र में भूमि उपजाऊ है 70% भाग कृषि आजीविका से काम चलाता है। राज्य के घरेलू सकल उत्पादन में कृषि का योगदान 20.53% है इसे बढ़ाना होगा। कृषि लाभ का धंधा होना चाहिए। म.प्र. तीसरा बड़ा खाद्यान्न उत्पादक राज्य है। कृषि क्षेत्र में निवेश तीन गुना करना होगा।
2. जैव संपदा के दोहन करने के जितने अवसर यहाँ है उतने और कहीं नहीं है। जैविक उत्पादकों की गुणवत्ता महत्वपूर्ण है इसे बरकरार रखने की आवश्यकता है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
3. वन, औषधीय फसल और पौधे, फल, पशुधन, डेयरी विकास को ताकत बनाना चाहिए।
4. ट्रांसपोर्ट में भ्रष्टाचार के कारण यातायात बिगड़ रहा है एवं मोटा अनुमान है कि प्रदेश में प्रतिमाह 2.50 से 3 करोड़ रूपया प्रतिमाह रिश्वत में जाता है। अधिकारी वर्ग का हिस्सा अलग है। सड़कों की उपलब्धता बढ़ानी होगी। यह सफलता की कुँजी साबित हो सकती है। ग्रामीण सड़कों को प्राथमिकता देनी होगी।
5. 15 से 20 लाख की आबादी वाले शहरों को '**काउंटर मैग्नेट सिटी**' की तरह विकसित किया जाना चाहिए।
6. बिजली में प्रति व्यक्ति प्रति यूनिट के मान से उपलब्धता अत्यंत कम है। 2014 तक बिजली में आत्मनिर्भरता प्राप्त करनी होगी। 2000 मेगावॉट के दो थर्मल पॉवर स्टेशनों की स्थापना कर इस कमी और असंतुलन को पाटा जा सकता है।
7. प्रशासनिक सुधारों के माध्यम से नेता की दाता और जनता की याचक की भूमिका खत्म होनी चाहिए यह भूमिकाएँ विकास में बड़ी बाधक है।
8. सार्वजनिक निवेश दो बातों से तय होता है कि कहाँ रूपया सबसे ज्यादा उत्पादक साबित होगा और कहाँ सबसे ज्यादा जन कल्याणक होगा। अभी सब कुछ उल्टा-पुल्टा है। अभी पैसा वहाँ लगाया जा रहा है जहाँ सरकार और प्रशासन का हस्तक्षेप बरकरार रहे। अपने हित के क्षेत्रों में पैसा आवंटित किया जा रहा है। शासन और प्रशासन की ऑब्जेक्टिव (वस्तुपरक) होना होगा। यह वस्तुपरकता ही विकास का मार्ग प्रशस्त करेगी।
9. प्रदेश के 50 जिलों में से 23 जिलों को उद्योग विहीन जिलो की श्रेणी में रखा जाता है। विकास के लिए आवश्यक है कि खनिज आधारित उद्योगों को प्राथमिकता से स्थापित किया जाय। उद्योगों को प्रशिक्षित मानव संसाधन उपलब्ध कराने की दृष्टि से कौशल उन्नयन का कार्यक्रम प्राथमिकता से हाथ में लेकर विकास को गति दी जा सकती हैं।
10. प्राथमिक शिक्षा के लोक व्यापीकरण के अंतर्गत संचालित योजनाओं को गंभीरता से लागू करना होगा।
11. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल से वंचित तीन चौथाई आबादी को वांछित जल उपलब्ध कराना।
12. ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुधार को इस स्तर तक ले जाना कि शिशु मृत्युदर के साथ नवजात शिशु मृत्युदर को वर्तमान से आधी दर पर ले जाना।
13. नर्मदा-क्षिप्रा लिंक के पश्चात् अब खान-कालीसिंध, कालीसिंध-चंबल में नर्मदा का जल मिलाना। इससे 2.5 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में नई सिंचाई व्यवस्था की स्थापना हो सकेगी।
14. जनसंख्या वृद्धि दर वर्तमान से आधा करने का गंभीरता से प्रयास करना।
15. अलाभकारी योजनाएँ जो समय के साथ जीर्ण-शीर्ण हो गयी है उन्हें बंद करना।

16- 2009-10 की वार्षिक योजना 16174 करोड़ की स्वीकृत हुई थी।[5] इस प्रकार 12 वीं योजना 80,000 हजार करोड़ की रखनी होगी।

विकास के लक्ष्यों की प्रतिपूर्ति के लिए आवश्यक है कि 12 वीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत म.प्र. शासन को दोहरे वित्त पोषण के आधार पर अपनी व्यूह रचना करनी होगी। राज्य बजट की वित्तीय व्यवस्था के अंतर्गत आने वाले विकास कार्य तथा द्वितीय स्तर पर बाहर से जुटाए जाने वाले वित्तीय संसाधनों से सम्पन्न किए जाने वाले कार्य। इस हेतु गवर्नेंस से जुड़े व्यक्तियों को पर्याप्त सजगता और ईमानदारी और नेक नियत से दोहरे दस्तावेजों को तैयार करना होगा। पहला योजना आयोग से स्वीकृत होने वाले विकास कार्य तथा दूसरे स्तर पर बाहरी निवेश से सम्पन्न किए जाने वाले विकास कार्य।

यहाँ चेतावनी के तौर पर एडमंडबर्क के ये शब्द प्रभावी है कि 'जनता के लिए सबसे अधिक शोर मचाने वालों को उसके कल्याण के लिए सबसे अधिक उत्सुक मान लेना सर्वमान्य प्रचलित त्रुटि है।

आस-पास की दशा देखकर यह गर्व किया जा सकता है कि भारतीय जनतंत्र की नीवं मजबूत हुई है। कई थपेड़े सहकर भी लोकतंत्र की यह इमारत काँपी तक नहीं है। लेकिन यह विश्वास चादर ओढ़कर सो जाने की इजाजत नहीं देता है, क्योंकि जनतंत्र एक सत्त चुनौती है, जिसमें हर दिन, हर पल जनतंत्र की रक्षा का दायित्व हर नागरिक के कंधों पर हैं।

मध्यप्रदेश कडॉर की वरिष्ठ आई.ए.एस. अधिकारी श्रीमती अरूणा लिमये शर्मा ने अपने 25 से अधिक वर्षो के प्रशासनिक अनुभवों के आधार पर सरकार के आर्थिक संसाधनों के दस दिशाओं में भागते घोड़ो को एक विजयरथ में जोड़ने के मूल मंत्र वाला दस्तावेज वर्ष 2009 में तैयार किया था। जिसे यूएनडीपी ने भी अपनी मान्यता प्रदान की है। 'रिसोर्स कन्वर्जेस मंत्र मॉडल नामक केवल यह दस्तावेज ही पूरी ईमानदारी से क्रियान्वित किया जाय तो अगले 10 वर्षो में म.प्र. ही नहीं पूरे भातरवर्ष का कायाकल्प हो सकता है। अरूणा लियमे का आग्रह है कि आर्थिक विकास से जुड़ी लगभग दो हजार योजनाएँ है, जिन्हें नदी-नालों की तरह दिशाहीन होने से बचाने की महती आवश्यकता है। पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की कम्प्यूटर क्रांति के बाद यह कदम और भी आसान हो गया है। सत्ता और प्रशासन के विक्रेन्द्रीकरण के लक्ष्य को सही अर्थो में पूरा करने के लिए जिला एवं पंचायत स्तर तक कार्यक्रमों, क्रियान्वयन की सफलताओं और कमियों को पारदर्शी बनाना होगा। अभी हाल यह है कि एक ही क्षेत्र के संसाधनों के उपयोग के लिए कई तरह के कार्यक्रम और क्रियान्वयन ऐजेंसियाँ सक्रिय हैं और उनमें समन्वय का पूर्णत: अभाव है।

सचमुच लगभग 52 हजार करोड़ रूपयों के प्रावधान वाले विकास कार्यक्रमों को सही समन्वित ढंग से क्रियान्वित किया जाए तो हर जिले को 1200 करोड़ रूपये मिल जाएँगे और वे योरप-अमेरिका के गाँवों-कस्बों से अधिक विकसित तथा सुखी दिखने लगेंगे।[6]

अंतत: निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि मध्यप्रदेश जैसे विकासोन्मुख राज्य को नए विकास मॉडल और अपनी रणनीति के साथ-साथ निर्धारित प्राथमिकताओं से कार्य निष्पादन संस्कृति, नौकरशाही के व्यवहार, रणनीति और धनराशि के पर्याप्त प्रावधान जैसे विषयों पर गंभीरता से पुनर्विचार करना होगा। तब कहीं जाकर विकास का लक्ष्य प्राप्त हो सकेगा और तब ही समृद्धि आएगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सातवाँ संविधान संशोधन।
2. 15 वीं जनगणना, मार्च 2011
3. जन सम्पर्क विभाग द्वारा जारी आंकड़े।
4. नई दुनिया दैनिक, इंदौर, 03 जनवरी 2001, मुख्य पृष्ठ।
5. नई दुनिया दैनिक, इंदौर, 08.09.2008, मुख्य पृष्ठ।
6. लिमये, अरूणा : रिसोर्स कन्वर्जेस मंत्र मॉडल, 2009।

****

कार्यपालिका का विशेषाधिकार अध्यादेश

डॉ. अनिल कुमार जैन *

प्रस्तावना – लोकतंत्र में सरकार के तीन स्तम्भ है । व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। इनमें सिर्फ संसद को ही कानून बनाने का सर्वोपरि अधिकार है। जब संसद सत्र में नहीं होती है और सरकारों को किसी कानून की त्वरित आवश्यकता होती है, तब भारत के संविधान का अनुच्छेद 123 भारत के राष्ट्रपति को अध्यादेश पारित करने की शक्ति प्रदान करता है। अध्यादेश को बाद में कानून का रूप देने के लिये संसद का सत्र शीघ्र बुलाना आवश्यक है। संसद के सत्र में आखिरी दिन से लेकर अगले सत्र के प्रथम दिन के बीच अधिकतम 06 महिने में संसद द्वारा इसे पारित कराना आवश्यक है। अर्थात् यह माना जा सकता है कि अध्यादेश की समय सीमा 6 मास होती है। प्राय: सरकारे संसद में बहस से और विपक्ष को विश्वास में लेने के बजाय अध्यादेश के माध्यम से कानून बनाती रही है।

अध्यादेश के माध्यम से, कानून बनाने की विधि कार्यपालिका को कानून बनाने का एक अतिरिक्त अधिकार है। जो वस्तुत: सरकार के सत्ता संतुलन की प्रजातांत्रिक व्यवस्था को बिगाड़ता है। क्योंकि संविधान में अध्यादेश लाने के लिए किन्हीं विशेष स्थितियों के विद्यमान होने का उल्लेख है। अर्थात् सामान्य स्थितियों में अध्यादेश लाना संविधान की भावना के अनुकूल नहीं हैं। जब किसी शासन प्रणाली में लोकतंत्र की मूल भावना के खिलाफ जाने की प्रवृत्तियाँ बलवती होने लगती है तो अध्यादेश से राज का प्रचलन बढ़ता है। ऐसी सरकार में संसद का सामना करने के नैतिक साहस का अभाव परिलक्षित होने लगता है। तब संसद को गौण बनाकर अध्यादेश जारी कर, कानून बनाने का नया गलियारा निकाला जाता है।

कोई भी सरकारी किसी भी विषय पर अध्यादेश जारी कर सकती है, लेकिन यह तब जब संसद या विधानसभा का सत्र नहीं चल रहा हो और नये कानून की जरूरत ऐसी हो कि सरकार उसके बिना जरा भी समय नहीं खींच पाये। वास्तविकता यह है कि पिछले कुछ दशकों से इस मान्य संवैधानिक परम्परा को जैसे सरकारो द्वारा करीब-करीब तिलांजलि दे दी गई है। प्राय: संसद में इतना हंगामा होता है कि वहाँ कानून बनाने लायक माहौल ही नहीं हो पाता है। ऐसी स्थिति में सरकारे जैसे इन्तजार करती है कि कब संसद का सत्र समाप्त हो और वह अध्यादेश जारी करे। यह कार्य प्राय: सभी दलों की तथा गठबंधन की सरकारो द्वारा किया गया है और सभी एक दूसरे पर आरोप भी लगाती रही है।

केन्द्रिय मंत्रिमण्डल की सलाह पर राष्ट्रपति कार्य करते है । अत: मंत्रिमण्डल की अनुशंसा पर राष्ट्रपति अध्यादेश पर हस्ताक्षर करते है। यदि राष्ट्रपति को आवश्यक लगता है तो अध्यादेश की तात्कालिक आवश्यकता के बारे में वह सरकार से पूछ सकते है। इसके अलावा वे इसे पुनर्विचार के लिये मंत्रिमण्डल को भेज भी सकते है। यदि मंत्रिमण्डल इसे वापस राष्ट्रपति को भेजता है तो परम्परा यह है कि राष्ट्रपति इस पर हस्ताक्षर कर देते है । राष्ट्रपति के पास अध्यादेश वापस लेने का अधिकार है लेकिन इसे तभी वापस लिया जा सकता है, जबकि मंत्रिमण्डल ने इसकी सिफारिश की हो। वे इसे स्वविवेक से रद्द नहीं कर सकते। इस तरह की भी कोई पाबंदी नहीं है कि अध्यादेश सरकार के कार्यकाल की शुरूआत में या आखिरी सत्र के बाद नहीं लाया जा सकता। संसद के आखिरी सत्र के बाद भी और पहले भी अध्यादेश लाया जा सकता है। किसी मामले में यह पूर्ववर्ती प्रभाव से भी लागू किया जा सकता है। यह किसी कानून में भी बदलाव या निरस्त करने के लिये उसी तरह इस्तेमाल किया जा सकता है, जैसाकि विधेयक का इस्तेमाल किया जाता है।

राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद अध्यादेश यद्यपि सामान्य कानून की तरह लागू हो जाता है कि तदापि इसका प्रभाव अस्थाई कानून जैसा होता है। स्थाई कानून का दर्जा दिलाने के लिये इसे संसद के अगले सत्र में कम से कम छह माह के भीतर पारित करना आवश्यक है । संसद इसे निरस्त भी कर सकती है। यदि संसद के दोनों सदनों में नियत अवधि में भी इसे पारित नहीं कराया जाता है तो यह स्वत: निरस्त हो जाता है । अध्यादेश संविधान के विरूद्ध हो तो इसे न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है । यदि अध्यादेश कानून नहीं बन पाता है तो फिर से अध्यादेश लाना लोकतांत्रिक रूप से सही नहीं माना जाता है । अध्यादेश के लिये यह अपेक्षित है कि संसद में बहस प्रक्रिया के बाद ही इसे कानून बनाया जाए। यदि संसद में गतिरोध के कारण निर्धारित समय सीमा में अध्यादेश को कानून बनाने की प्रक्रिया पूरी नहीं हो पाती है तो एक से अधिक बार भी अध्यादेश लागू किया जाता है । पूर्व अतिरिक्त अधिवक्ता विवेक तनखा के अनुसार संविधान में कहीं नहीं कहा गया है कि एक से अधिक बार अध्यादेश नहीं लाया जा सकता।

नब्बे के दशक में बिहार की विधानसभा में रोज-रोज के चलते हंगामे के कारण वहां बिल पास होना संभव नहीं हो पाता था। इस कारण वहां हर सत्र के बाद अध्यादेश पुन: जारी कर दिये जाते थे। इस अध्यादेश राज के संदर्भ में डी.सी.वाधवा बनाम स्टेट ऑफ बिहार राज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने एक से अधिक बार अध्यादेश लाने को लोकतंत्र की भावना के विरूद्ध मानते हुए कहा था कि कार्यपालिका अध्यादेश जारी करने की अपनी विधायी शक्ति का इस्तेमाल अपवाद स्वरूप ही करे।

सरकारे कभी मजबूरी या कभी लाभ की मंशा से अध्यादेश लाती रही है। किसी एक सदन में संख्या बल में कभी कमी की मजबूरी कारण हैं तो कभी सरकारे राजनीतिक लाभ के लिये अध्यादेश लाती है और बहाना संसद में गतिरोध का बनाया जाता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि संविधान लागू होने के साथ ही, विपक्ष में भी संख्या बल कमजोर होने पर भी प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने अध्यादेश लागू करने की परम्परा डाल दी थी । इस मामले में प्रथम लोकसभा अध्यक्ष जी.वी.मावलंगकर ने लोकतंत्र के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए नेहरूजी को पत्र भी लिखा था। संविधान के अनुसार सरकार की जवाबदेही संसद में हैं, और सदस्यों की जवाबदेही जनता के प्रति। जनता की सम्प्रभुता को व्यवहार में सुनिश्चित करने का यही सही तरीका है। अध्यादेश लाने से जनता और संसद दोनों की अवमानना होती है। इसलिये अध्यादेश के माध्यम से कानून बनाना हमारी लोकतांत्रिक संवैधानिक

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

व्यवस्था की भावना के विपरीत है। अनुच्छेद 123 में अध्यादेश लागू करने का प्रावधान जरूर है पर संविधान इसकी अनुमति तभी देता है जब किसी प्रकार की अरजेन्सी या इमरजेन्सी होनी चाहिए। इस प्रतिबंध का अनुचित लाभ उठाता जाता है।

अध्यादेश लाने का विरोध सभी राजनीतिक दलों द्वारा विपक्ष में रहने की स्थिति में किया जाता है, और सभी दलों की सरकारों द्वारा संविधान लागू होने से आज तक 647 अध्यादेश लाये गये है। प्रतिवर्ष देश में 10.40 अध्यादेश पारित होते रहे है तथा प्रत्येक लोकसभा में औसतन 40.31 अध्यादेश लागू हुए है। इनका विस्तृत विवरण निम्नानुसार है।

लोकसभा	वर्ष	प्रधानमंत्री	अध्यादेश
पहली	1952-57	पं.जवाहरलाल नेहरू	39
दूसरी	1957-62	पं.जवाहरलाल नेहरू	20
तीसरी	1962-67	पं.नेहरू, शास्त्री, इंदिरा गांधी	31
चौथी	1967-70	इंदिरा गांधी	38
पांचवीं	1971-77	इदिंरा गांधी	99
छठी	1977-80	मोरारजी देसाई, चरणसिंह	28
सातवीं	1980-84	इंदिरा गांधी	58
आठवीं	1984-89	राजीव गांधी	35
नवीं	1989-91	वी.पी.सिंह, चन्द्रशेखर	16
दसवीं	1991-96	पी.वी.नरसिम्हा राव	77
ग्यारहवीं	1996-98	वाजपेयी, देवगौड़ा, गुजराल	77
बारहवीं	1998-99	अटलबिहारी वाजपेयी	25
तेरहवीं	1999-04	अटलबिहारी वाजपेयी	33
चौदहवीं	2004-09	डॉ.मनमोहनसिंह	36
पन्द्रहवीं	2009-14	डॉ.मनमोहनसिंह	25
सोलहवीं	आठ माह	नरेन्द्र मोदी	10

अगर अध्यादेश के विषयों पर ध्यान दें तो स्पष्ट होता है कि सरकारों ने अध्यादेश के माध्यम से जटिल आर्थिक तथा वाणिज्यिक मामले हल किये हैं। सन् 1950 से 2008 के बीच 129 वित्त मामले, 102 गृह मामले, 46श्रम मामले, 29 कानून व न्याय तथा 28 वाणिज्य व उद्योग मामलोमें अध्यादेश लागू किये गये।

गठबंधन सरकारो के समय सबसे अधिक अध्यादेश लाये गये। संसद का सामना करने में अनिच्छुक या अक्षम होने के कारण इन सरकारों ने सन् 1989-1999 के दस वर्ष की अवधि में 195 अध्यादेश से राज किया। वी.पी.सिंह का मण्डल कमीशन भी इस अवधि में अध्यादेश की ही देन है। सिर्फ 1996 व 1998 की अवधि में, सिर्फ 61 बिल व 77 अध्यादेश पारित किये गये। इस अवधि में तीन प्रधानमंत्री रहे।

इस सच्चाई को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि अध्यादेशों की जरूरत कार्यपालिका की गति व क्षमता बढ़ाने के लिये होती है। वे शासन के बुनियादी दर्शन को परिवर्तित नहीं करते। सन् 2014 में लोकसभा निर्वाचन में भाजपा को सत्ता के लिये पूर्ण बहुमत मिल गया परन्तु राज्यसभा में वह अल्पमत में है। अत: इस सरकार के राज में प्रतिमाह में एक अध्यादेश लाया गया। इससे कार्यपालिका व नौकरशाही की शक्तियों में वृद्धि होती है। मोदी सरकार ने भूमि अधिग्रहण, बीमा, कोल माइन्स पर संसद सत्र समाप्त होते ही अध्यादेश लागू किये, पिछली लोकसभा में इसी दल ने संसद का पूरा सत्र नहीं चलने दिया था। अब वहीं हंगामा विपक्ष कर रहा है। आवश्यकता यह है कि सरकार विपक्ष का सम्मान करे तथा कानून बनाने के मार्ग में आ रहे रोड़ों को समाप्त करे।

मोदी सरकार ने सिर्फ आठ महीने के अपने कार्यकाल में 10 अध्यादेश लागू किये। स्वाभाविक ही विरोधी दल से सहयोग नहीं मिलने पर यह सब कुछ किया गया हैं। इसका समर्थन नहीं किया जा सकता है। सरकारो की कार्यशैली पर राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने भी सवाल उठा दिया है। उन्होंने 19 जनवरी 2015 को एक प्रश्नोत्तर में कहा है कि 'अध्यादेश द्वारा कानून बनाना ठीक नहीं है। यह सारे दलों का दायित्व है कि वे मिलकर कोई हल निकाले ता कि ताबड़तोड अध्यादेश लाने की आवश्यकता ही नहीं पड़े।' उन्होंने भूमि अधिग्रहण बिल पर जल्दबाजी के लिये वित मंत्री से स्पष्टीकरण भी मांगा है।

राष्ट्रपति ने संविधान का भी उल्लेख किया जिसमें सिर्फ असाधारण या आपात स्थिति में ही अध्यादेश लाने का प्रावधान है। उन्होंने यह भी कहा कि 'किसी पार्टी को राज्य सभा में बहुमत नहीं हैं उसे लगे कि संसद का संयुक्त सत्र बुलाकर कानून बना लिया जाए तो यह भी व्यवहारिक नहीं है। विपक्ष को विरोध करने का, कलई खोलने का भी अधिकार है।'

सत्ता पक्ष के अनुसार विपक्ष सिर्फ मोदी सरकार को नाकाम करने की रणनीति पर काम कर रहा है। वह सहमति की भाषा समझना ही नहीं चाहता। धर्मान्तरण जैसे विषय पर राज्यसभा में छ: दिनों तक हंगामा लोकतंत्र का मजाक है। अत: सत्तापक्ष को विवश होकर अपने कार्यक्रम व नीतियों के अनुरूप आर्थिक व विकास के मोर्चे पर अध्यादेश लाने पडे है। संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार का उपयोग करने पर, प्रश्न उठाने का कोई औचित्य नहीं है। सरकार चलाने की जिम्मेदारी के तहत ही कोयला खदान आवंटन तथा भूमि अधिग्रहण व बीमा जैसे विषयों पर अध्यादेश की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता है। बीमा क्षेत्र भी विवाद का विषय रहा है। अत: सरकार ने अपनी नीति का क्रियान्वयन कर दिया है।

विश्व के अन्य देशों में भी अध्यादेश लाने की परम्परा हैं, परन्तु इनके विषय प्राय: सीमित हैं। ब्रिटेन में सार्वजनिक सेवा तथा शिक्षा के क्षेत्र में काफी अध्यादेश लाये गये है। अमेरिका में राष्ट्रपति मुख्य कार्यपालक है और वहां भी बुनियादी सेवाओं और सुविधाओं जैसे खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य सुविधा, वृद्धों की देखभाल आदि के क्रियान्वयन के लिये अध्यादेश का उपयोग होता रहा है।

संसद को अगर सियासत का अखाड़ा नहीं बनने देना है तो विपक्ष को विश्वास में लेकर ही लोकतंत्र को सही दिशा में ले जाया जा सकता है। अहंकार और सत्ता के मद पर अंकुश के लिये ही प्रजातंत्र में सत्तापक्ष के साथ प्रभावी विपक्ष की उपस्थिति के अनिवार्य माना गया है। अध्यादेश सिर्फ सामयिक उपचार है, इसके सहारे आगे बढ़ने पर खतरा अधिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. जैन, सुभाष सी - भारत का संविधान (पंचम संस्करण 2002) भारत सरकार नईदिल्ली।
2. सिंह अमिता (जे.एन.यू.दिल्ली) - अध्यादेश के सहारे सरकार - दैनिक 'पत्रिका' रतलाम दिनांक 04 जनवरी 2015
3. शेखर सुधांशु - लोकतंत्र नीति और नियति - विश्वविद्यालय प्रकाशन, सागर।
4. येचुरी सीताराम - लोकतंत्र का मजाक है - दैनिक भास्कर इंदौर दि. 25.12.2014
5. सम्पादकीय - सरकार रोड़े हटाए अध्यादेश न लाए - दैनिक जागरण, दिल्ली दि. 03.01.2015
6. गुप्ता के.के. विधायिका का कार्यपालिका पर नियंत्रण 'विधायनी' म.प्र.विधानसभा सचिवालय प्रकाशन भोपाल, जुलाई सितम्बर 2005
7. प्रणव मुखर्जी - अच्छा नहीं है ताबडतोड़ अध्यादेश लाना - रतलाम भास्कर दि. 20 जनवरी 2015, पृष्ठ 01
8. सम्पादकीय - राष्ट्रपति की चिंता पर गौर फरमाएं - रतलाम भास्कर, दिनांक 20 जनवरी 2015, पृष्ठ 08

भारतीय संविधान, सामाजिक न्याय और डॉ. अम्बेडकर

डॉ. रवीन्द्र कुमार सोहोनी *

प्रस्तावना – न्याय समाज दर्शन की एक ऐसी बुनियादी अवधारणा है जिस पर भारतीय सामाजिक चिन्तन में ऋग्वेद काल से ही विचार होता रहा हैं। इतिहास में न्याय की अनेक प्रकार से व्याख्या हुई है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में न्याय का स्पष्ट उल्लेख विशिष्ट महत्व का विषय है। भारतीय संस्कृति की मान्यता है कि 'न्याय' के बिना क्षमता और स्वतंत्रता के आदर्श निस्सार हो जाते है। इसलिये संविधान की प्रस्तावना में 'न्याय' को 'स्वतंत्रता' और 'समानता' से भी ऊपर रखा गया है। न्याय की भावना का मूल स्वर है समाज के विभिन्न वर्गो और व्यक्तियों के हितों का सामंजस्य और उन सबका समान अभ्युदय।

भारत में सामाजिक न्याय की संकल्पना 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख' की पाश्चात्य् अवधारणा से बहुत आगे 'सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया' के क्षितिज तक जाती है। भारतीय चिन्तन और दर्शन की मान्यता है कि न्याय क्रान्ति की संतति और समाज की शाश्वतता है ।

'न्याय की संकल्पना में भारत के परम्परागत सामाजिक दर्शन के सर्वश्रेष्ठ तत्वों का ही समाहार नहीं हो जाता– प्रत्युत रुसी क्रांति द्वारा प्रसूत समाजवादी और साम्यवादी चिन्तन के सर्वश्रेष्ठ तत्व भी आ जाते है। इस संबंध में श्री नेहरु ने एक बार ठीक ही कहा था कि लाखों करोड़ो लोगो के लिये, मार्क्सवाद के प्रति आकर्षण का स्त्रोत उसका वैज्ञानिक सिद्धांत नहीं है, प्रत्युत सामाजिक न्याय के प्रति उसकी तत्परता है।'[1]

सामाजिक न्याय से अभिप्राय यह है कि मनुष्य–मनुष्य के बीच सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेद न माना जाये, प्रत्येक व्यक्ति को अपने सामर्थ्य और शक्तियों के समुचित विकास के समान अवसर उपलब्ध हो, किसी व्यक्ति का किसी भी रुप में शोषण न हो और उसके व्यक्तित्व को एक पवित्र विभूति माना जाये, किसी परोक्ष लक्ष्य की सिद्धा साधन मात्र नहीं। सामाजिक न्याय सुलभ कराने के लिये यदि आवश्यक था कि स्वतंत्र भारत की राजसत्ता विधायी और कार्यकारी कृत्यों के द्वारा समतायुक्त समाज की स्थापना का प्रयत्न करे।

संविधान की प्रारुप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अम्बेडकर सहित संविधान निर्माताओं के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती यह थी कि पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों में स्वीकार्य उदारवाद के मूल्यों और दूसरी ओर समाजवाद के सिद्धांतों के बीच किस प्रकार एक सुखद संश्लेषण स्थापित किया जाये। जिससे स्वतंत्र भारत में सामाजिक न्याय के एक नये युग का समारम्भ किया जा सके। डॉ. अम्बेडकर ने अन्याय की शक्तियों का अभिनिर्धारण करके अपने महान कार्य का शुभारम्भ किया।

पं. नेहरु ने संविधान सभा की उदार और उदात्त भावनाओं को स्वर प्रदान करते हुए कहा था 'इस सभा का पहला कार्य भारत को नये संविधान के माध्यम से मुक्त कराना हैं, भूखे लोगों को खाना खिलाना है, नंगेजनों को कपड़ा पहनाना है और हर एक भारतीय को पूर्णतम अवसर प्रदान करना है ताकि वह अपनी क्षमता के अनुसार अपना विकास कर सकें।'[2]

भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय के आदर्श को अनेक रुपों में स्वीकार किया गया है। संविधान के तीसरे भाग (मूल अधिकार) और चौथे भाग (राज्य की नीति के निदेषक तत्व) में सामाजिक न्याय की सिद्धी के विविध उपायों का उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 14 में भारत के सभी नागरिकों को विधि के समक्ष समता और अधिनियमों के अंतर्गत समान सुरक्षा प्रदान की गई है और अनुच्छेद 15 में धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध किया गया है। अनुच्छेद 16 के फलस्वरुप राज्याधीन पदों पर नियुक्ति के संबंध में सब नागरिकों को अवसर की समता प्राप्त है। संविधान ने अस्पृष्यता का अंत कर दिया है (अनुच्छेद 17), मानव के पण्य और बलात् श्रम अथवा 'बेगार' का प्रतिषेध किया है (अनुच्छेद 23(1)) और अनुच्छेद 24 द्वारा कारखाना आदि में बच्चों से काम कराना वर्जित कर दिया है। संविधान में दिये गये षिक्षा और संस्कृति संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29 और 30) भी सामाजिक न्याय के सोपान है। संविधान ने नागरिकों का कुछ अवस्थाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार स्वीकार किया है (अनुच्छेद 41)। अनुच्छेद 42 में संविधान ने राज्य को यह जिम्मेदारी सौंपी है कि वह काम की यथोचित और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिये तथा प्रसूति सहायता के लिये उपबंध करेगा। अनुबंध 43 (श्रमिकों के लिये निर्वाह, मजदूरी का प्रबंध), 44 (नागरिकों के लिये समान व्यवहार संहिता), 45 (बालकों के लिये नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध), 46 (अनुसूचित जातियों, आदिम जातियों तथा दुर्बल वर्गो के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की उन्नति) और 47 (आहार पुष्टि तल और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के सुधार करने का राज्य का कर्त्तव्य) भारत में सामाजिक न्याय का स्वर्ण विहान लाने में सहायक होंगे।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर आधुनिक भारत के राजनीतिक चिन्तकों में प्रथम ऐसे चिन्तक है जिन्होंने सर्वप्रथम यह स्पष्ट कर दिया है कि पाश्चात्य पद्धति का लोकतंत्र शब्दश: भारतीय परिप्रेक्ष्य में लागू करना संभव नहीं है। डॉ. अम्बेडकर राज्य और समाज, राज्य और सरकार तथा राज्य और राष्ट्र के अंतरों को स्वीकार करते हैं, किंतु वे इन संस्थाओं के महत्व और इसी के माध्यम से लोकतंत्र के पक्षधर थे। पाश्चात्य् लेखकों, विशेषकर हैराल्ड लॉस्की और मैकाईवर का जहां तक प्रश्न है, इन दोनों ही बहुलवादी विचारकों ने राज्यों को केवल सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से थोड़ा विशिष्ट माना है और संप्रभुता के एकत्व को समाप्त करने का प्रयास किया है।

डॉ. अम्बेडकर ने राज्य की महत्वपूर्ण भूमिका और स्वीकार्य किया हैं, जहां तक प्रजातंत्र को परिभाषित करने का प्रश्न है वहां डॉ. अम्बेडकर

* प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.) भारत

वाल्टर वैजाहट और अब्राहम लिंकन द्वारा दी गई परिभाषाओं से भी पूर्णत: संतुष्ट दिखलाई नहीं पड़ते है।[3]

डॉ. अम्बेडकर की सुदृढ़ मान्यता थी कि वास्तविक प्रजातंत्र की स्थापना के लिये हमें भारतवर्ष के सामाजिक और आर्थिक ढाँचें में आधारभूत परिवर्तन करना होगें। सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में किया गया यह परिवर्तन अहिसंक ढंग से करना होगा। भारत में लोकतंत्र की स्थापना के मार्ग में वे सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को सबसे बड़ी बाधा मानते थे।

डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट शब्दों में अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए कहा था 'आर्थिक और सामाजिक प्रजातंत्र के अभाव में राजनीतिक प्रजातंत्र की स्थापना करना केवल कठिनाईयों को जन्म देना नहीं होगा, अपितु किसी खतरे को आमंत्रित करने के समान होगा।

राजनीतिक स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में लोकतंत्र के प्रवेश के साथ न्याय की अवधारणा और इसका अभिप्राय अब केवल आचारशास्त्र और विधिशास्त्र के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रह गया है। न्याय की अवधारणा का इस ढंग से विस्तार हो गया है कि अब इसके अंतर्गत जीवन के सभी क्षेत्र समाहित हो गये हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के इन छह दशकों में एक नई चेतना का विकास हुआ है कि व्यक्ति के अधिकारों को समुदाय के हित में तर्कसंगत रुप प्रतिबंधित किया जाये, ताकि सही अर्थ में सामाजिक और आर्थिक न्याय के उद्देश्य को उपर्युक्त रुप और ढंग से प्राप्त किया जा सके। सामाजिक न्याय के सदंर्भ में डॉ. अम्बेडकर की मान्यता थी कि व्यक्ति के अधिकारो और समाज कल्याण में समन्वय और समाधान स्थापित न हो पाये और दोनों में विरोध की स्थिति निर्मित हो तो समुदाय के हित को व्यक्ति के अधिकारों पर प्राथमिकता प्रदान की जाये। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से डॉ. भीमराव अम्बेडकर को एक क्रांतिकारी चिन्तक कहा जा सकता है। जिन्होंने स्वतंत्रता के पूर्व तथा स्वतंत्रता पश्चात् दलित, शोषित तथा पीड़ित वर्ग के लिये सतत् संघर्ष किया। सामाजिक न्याय के संदर्भ में डॉ. भीमराव अम्बेडकर स्वयं भारतवर्ष के एक ऐसे अग्रदूत है जिन्होंने सामाजिक अन्याय की टीस, पीड़ा और कसक का न केवल सामना किया अपितु दृढ़ता के साथ उसके खिलाफ संघर्ष भी किया। सामाजिक न्याय पर अपना दृष्टिकोण रखने के पूर्व डॉ. अम्बेडकर के प्रथमत: न्याय के सिद्धांत, उसकी प्रकृति और तत्वों पर गहन चिन्तन तथा मनन किया। डॉ. अम्बेडकर, प्रो.बर्गबोन द्वारा परिभाषित न्याय की परिभाषा से सहमत और संतुष्ट दिखलाई पड़ते हैं। प्रो. बर्गबोन न्याय को परिभाषित करते हुए लिखते है :-

"Justice has always evoked ideas of equality, of proportion of `Compensation'. Equity signifies equality. Rules and regulation, right and righteousness are concerned with equality in value. If all men are equal, all men are of the same essence and the common essence entitles them to the same fundamental rights and to equal liberty"[5]

मानवीय मूल्यों के धरातल पर न्याय को परिभाषित करते हुए डॉ. साहब कहते है -

"Is simply another name for libery equality and franternity"[6]

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक न्याय का मुख्य स्वर यह था कि मानव मात्र की मूल प्रतिष्ठा तथा उसके अधिकारों को समाज में समुचित एवं सम्मानजनक स्थान प्राप्त हो।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर न्याय की पूर्ववर्ती अवधारणाओं तथा प्राचीन भारत की वर्ण व्यवस्था, यूनान के महान दार्शनिक प्लेटों द्वारा प्रतिपादित न्याय की योजना, अरस्तु द्वारा उल्लेखित व्यवस्था, प्रसिद्ध जर्मन विचारक नीत्शे द्वारा प्रतिपादित उत्कृष्ट और देवी सिद्धांत, मध्ययुगीन दृष्टिकोण, मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सर्वहारा वर्ग का समाजवादी सिद्धांत और यहां तक कि गांधी द्वारा प्रतिपादित 'सर्वोदय समाज' को स्वीकार नहीं करते हैं।

डॉ. अम्बेडकर का कहना है कि सामाजिक न्याय को अभिव्यक्त करने में उपर्युक्त ये सभी विचार अधूरे एवं एकांगी है, क्योंकि इनमें से कोई भी सिद्धांत, दलित, शोषित, पीड़ित और कमजोर वर्ग के अधिकारों की सही वकालत नहीं करता है -

In "Dr. Ambedkar`s view. Social justice includes all the sorts of justice in its scope. Social justice stands for the whole of social order which means the entire social system: whereas other types of justice stand for any one part of our social system. Whether it is a legal justice, economic or political justice it covers only one aspect, and become an issue of limited field of life."[7]

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार सामाजिक न्याय की अवधारणा एक ऐसी व्यापक अवधारणा है कि जिसमें न्याय के सभी पक्ष स्वत: समाहित हैं। डॉ. अम्बेडकर का चिन्तन और दर्शन पूर्णत: मानवतावादी हैं, मानव स्वरुप और मानव के सामर्थ्य में अम्बेडकर की अकूत और अटूट आस्था है।

'डॉ. अम्बेडकर का मानववादी चिन्तन वास्तव में ऐसे नये समाज के निर्माण की ओर उन्मुख था जो उन नये मूल्यों और नये मानवीय संबंधों पर आधारित हो, जिन्हें आदमी ने आदमी के लिये सृजित किया है। उनका मानवतावादी चिन्तन वर्णाश्रम धर्म व कर्म पर आधारित समाज व्यवस्था का विरोधी था।[8]

आज स्वाधीनता के छह दशक व्यतीत हो जाने पर भी दु:खद और कटु सत्य यह है कि यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से हम बंधन-मुक्त और स्वतंत्र है फिर भी हमारा देश न्यायपूर्ण समाज के मानवीय आदर्श से कोसों दूर खड़ा है। मानव मात्र की मूल प्रतिष्ठा और उसके अधिकारों की अत्यधिक उपेक्षा निरंतर जारी है। एक महान् संविधान के बावजूद जनता के बहुत बड़े हिस्से का निर्दयतापूर्वक ढंग से अपमान हो रहा है, उन पर जुल्म ढाये जा रहे है और पल-प्रतिपल उनका बहिष्कार हो रहा है।

'भीमराव के अनुसार, नैतिक मानदण्ड स्वतंत्रता, समता एवं भातृभाव में निहित है। ये शब्द एक दूसरे से पृथक न होकर परस्पर सम्बद्ध है और एक त्रयी के रुप में नैतिक मानदण्ड के रुप में काम करते है। वे समस्त कर्म जो इस त्रयी को अमृत बनाते है शुभ या कुशल कर्म है, और इसके विपरीत जो कर्म हैं, वे अशुभ या अकुशल हैं। किसी भी समाज व्यवस्था को सुचारु रुप से संचालित करने के लिये मानव प्राणियों का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वे स्वतंत्रता समता एवं भातृभाव के अनुकुल आचरण करें।'[9]

डॉ. भीमराव अम्बेडकर की मान्यता थी कि मनुष्य को न केवल भूख मिटाने के लिये रोटी चाहिये, अपितु मानसिक संतुष्टि के लिये अच्छे विचार भी आवश्यक है। डॉ. साहब की दृष्टि से विचार आदमी का अनोखा एवं विलक्षण खजाना है। अत: उन्होंने दलित एवं पिछड़ों में विचार-शक्ति का संचार किया। इस विचार-शक्ति में मात्र तीन शब्द थे, अर्थात शिक्षा, संगठन और संघर्ष जिनके कारण भारत वर्ष में जनजागृति तथा सामाजिक परिवर्तन का वातावरण बना। एक दार्शनिक और युगदृष्टा होने के नाते डॉ. अम्बेडकर ने आम आदमी की चिन्तन प्रक्रिया को भी सुदृढ़ किया ताकि एक नया वातावरण बन सके और समय के साथ सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक न्याय का विचार फलीभूत हो सके।

'सामाजिक न्याय का दुर्दान्त शत्रु शोषण ही है। शोषण के उन्मूलन के बिना सामाजिक न्याय पंगु है। स्वतंत्रता और समानता सामाजिक न्याय की धुरी है। इनकी उपेक्षा किये जाने से ही शोषण चक्रव्यूह की अनुभूति उत्पन्न होती है और मानवतावादी समाज की संरचना में बाधा उत्पन्न होती है। मानव व्यवहारों की मधुरता और सम्बद्धता पर खड़ा समाज सच्चे अर्थो में मानव को उन दुरुहताओं से बचा सकता है जिनके कारण मनुष्य को पशुवत जीवन ढ़ोना पड़ता है। सामाजिक न्याय पाने में यही सबसे बड़ी बाधा है।[10]

उच्च मानव-सभ्यता का मार्ग प्रशस्त करने वाले डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर को भारत सपूत कहने में गर्व का अनुभव होना स्वाभाविक है, परंतु वास्तव में तो इतिहास उन्हें **'विश्व मानव'** कहेगा। डॉ. अम्बेडकर के समस्त जीवन का लक्ष्य दुनिया के कोने-कोने में बसे सभी मानवों को बंधनों से मुक्त कर स्वाधीन करना था। डॉ. अम्बेडकर जैसे महामानव को क्षेत्रीय सीमाओं में बांधना उचित न होगा क्योंकि उनके संदेश की प्रासंगिकता सार्वभौम है। डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन और दर्शन का महत्व हर क्षण बना रहेगा, जहां मनुष्य-मनुष्य के प्रति अन्याय कर रहा है।

अन्तत: निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि डॉ. अम्बेडकर की सामाजिक न्याय की अवधारणा प्रगति का सर्वश्रेष्ठ उद्घोष है। अपनी साहसिक स्पष्टवादिता, बेजोड़ निपुर्णता तथा महान गरिमा के कारण मित्रों, अनुयायियों और वैचारिक विरोधियों में भी उनके नाम का स्मरण अत्यन्त सम्मान के साथ किया जाता है। देश डॉ. अम्बेडकर के प्रति इतना अधिक ऋणी है, जिसे कभी भी चुकाया जाना संभव नहीं है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक ऐसे महान तथा उदारवादी मनुष्य थे जिन्होंने उन लागों के प्रति कोई दुर्भावना, प्रतिशोध या घृणा की प्रवृत्ति नहीं रखी जो हजारों वर्षो से जाति प्रथा का शोषण करते आ रहे थे। अम्बेडकर ने भारतवासियों को एक ऐसा संविधान दिया जिसकी मुख्य विशेषता उसका समता पर आधारित व्यवहार है जो एक ऐसे समतावादी समाज की व्यवस्था करता है जिसमें धर्म, वर्ण, जाति, लिंग, वंश तथा निवास या जन्म स्थान के आधार पर कोई भी उपेक्षित या सुविधाभोगी वर्ग नहीं होगा। डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय और एकीकरण की दिशा में जिस प्रकार एकनिष्ठ होकर कार्य किया वह श्लाघ्य ही नहीं अपितु सही अर्थों में स्तुत्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. काश्यप, सुभाष - संविधान की आत्मा, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1971, पृ. 50
2. Nehru J.L. - Unity of India, P.11
3. बग्गा, एस.एस. सोहोनी आर.के.- भारतीय राजनीति विचार, इंदौर, श्री सुनीता प्रकाशन, (नवीन संस्करण), पृ. 158
4. उपरोक्त पृ. 159
5. Jatava, D.R.-Social Justice in India, Jaipur, INA Shree Publisher, 1998, pp. 77-78
6. उपरोक्त पृ. 78
7. उपरोक्त पृ. 88
8. जाटव, डी.आर.-विश्व धर्म और अम्बेडकर, जयपुर, सबलाइम पब्लिकेशन्स, 2001, पृ. 176
9. उपरोक्त पृ. 176
10. खिमेसरा, ज्ञानचंद - डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक चिन्तन, भोपाल, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1995 (प्रथम संस्करण), पृ. 28

****

जोधपुर नगर निगम चुनाव 2014 – समस्याऐं तथा समाधान

डॉ. ज्योति गोस्वामी *

प्रस्तावना – भारत एक जनतांत्रिक देश हैं जिसमें स्थानीय प्रशासन का अपना ही एक विशेष महत्व है। स्थानीय सरकार समाज के सबसे निचले स्तर पर कार्य करती है। इनका कार्य जनता के अतिसमीप होता है। राज्य तथा राष्ट्रीय सरकारो से भी ज्यादा यह जनता के ज्यादा करीब होती है। यह प्रशासन की ओर कदम बढ़ाने की पहली सीढ़ी है। नगर निगम स्थानीय प्रशासन का एक अंग है। नगर निगम सर्वप्रथम मद्रास (1687) में प्रारंभ हुआ था। नगर निगम का मुख्य कार्य आम जनता के संपर्क में रहकर शहर की गंदगी को मिटाना हैं जॉन जे क्लार्क के अनुसार 'स्थानीय शासन सरकार का एक ऐसा अंग है जो कि आम जनता के सीधे संपर्क में रहकर उनके शहर की समस्याओं से जनता के साथ डील करती है।' किसी भी क्षेत्र के विकास के लिए स्थानीय प्रशासन का विकास आवश्यक है। यदि स्थानीय प्रशासन सुदृढ होगा तो नगर भी विकास के पथ पर सुदृढ़ होगा।

उदेश्य– जोधपुर कुल 65 वार्डो में विभक्त हैं। जिनमें से सर्वाधिक सीटें सूरसागर विधान सभा क्षेत्र से हैं जिनमें 23 वार्ड आते है। वहीं जोधपुर शहर तथा सरदारपुरा में 21–21 वार्ड है।

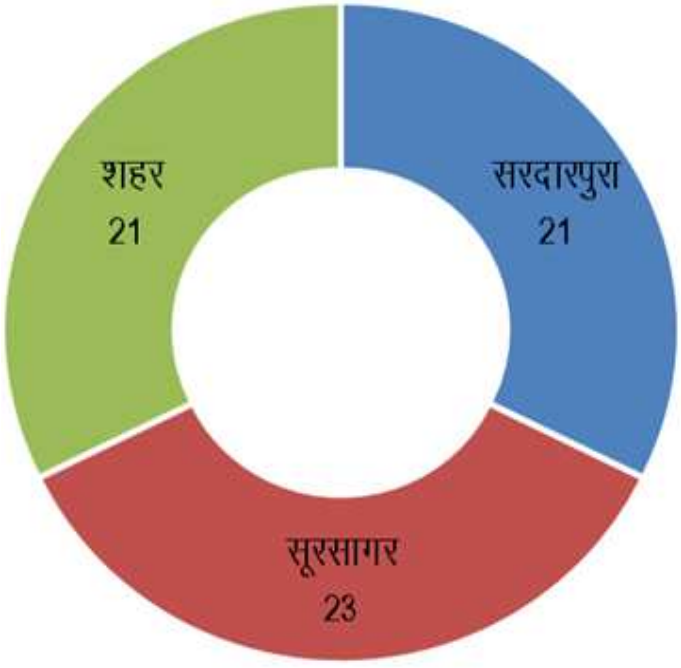

65 वार्डो में कुल मतदाता 6,53,818 थे जिनमें से कुल 4,09,421 मतदाताओं ने मतदान किया। मतदान में कुल पुरूष मतदान प्रतिशत 65,69% तथा कुल महिला मतदान प्रतिशत 59.93% रहा। सबसे अधिक मतदान वार्ड 50 में जो कि 78.90% तथा सबसे कम मतदान वाला वार्ड 39 रहा, जो कि 47.20% ही रहा। मतदान में सबसे बुजुर्ग पार्षद वार्ड 1 के मेघाराम (73) तथा सबसे युवा पार्षद वार्ड 26 तथा 65 से क्रमश: पूजा गुजराती (22) तथा गिरीश लूणा (22) के थे।

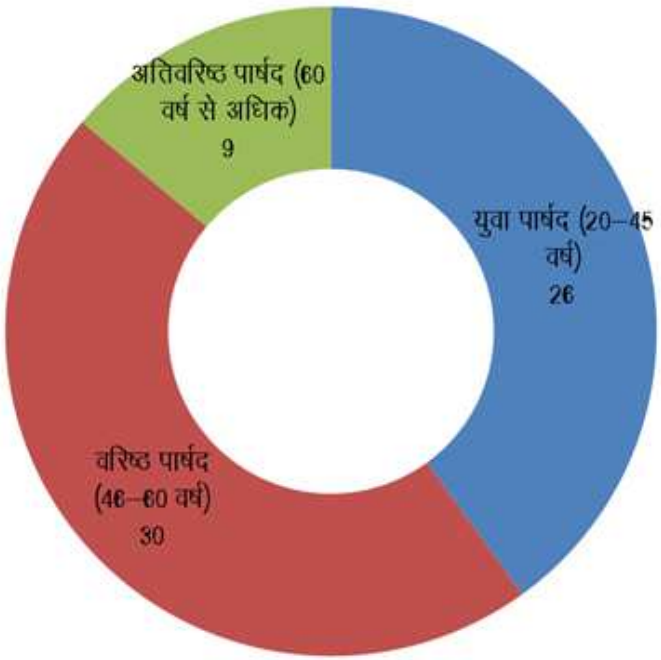

जोधपुर शहर की तस्वीर नगर निगम चुनावों में सर्वाधिक नोटा का उपयोग वार्ड संख्या 13 में हुआ। जोधपुर नगर निगम में 1994 से अब तक के चुनाव प्रतिशत निम्न प्रकार से है:–

जैसा कि ग्राफ से स्पष्ट है कि 1994 में 48.42% 1999 में 48.41% 2004 में 49.46% तथा पिछले वर्ष के ऑकडे देखे तो पायेंगे कि 2008 में 58.53% तथा 2014 में 62.62% मतदान हुआ और 2009 में हुए चुनावों से करीब 5% ज्यादा मतदान हुआ, इस प्रकार आँकड़ों से स्पष्ट है कि 20 वर्षो में पहली बार रिकॉर्ड तोड़ वोटिंग हुई। अत: जागरूकता की वजह से मतदान के प्रतिशत में वृद्धि हुई।

चुनाव में उत्पन्न हुई समस्याएँ–

1. ई.वी.एम मशीन का खराब होना– 2014 नगर निगम चुनाव में 596 ईवीएम मशीनें इस्तेमाल की गई जिनमें से 27 मशीनें मतदान के दौरान खराब हो गई जिससे समय का दुरूपयोग हुआ मतदाता बिना मत दिए चले गए।

* प्राचार्य, महर्षि दाधिची महिला महाविद्यालय, जोधपुर (राज.)भारत

2. समर्थकों या दलों का आपस में भिडना– कई स्थानों पर फर्जी मतदान या बिना ID वोट देने को लेकर समर्थक या प्रत्याशी आपस में भिड़ गए। जैसे– एक वार्ड में बिना ID Card व वोट देने की बात पर हंगामा हो गया, जिससे 20–25 मिनट तक वोटिंग रोकनी पड़ी। ऐसे ही फर्जी मतदान को लेकर वार्डो आदि में भिंडत की वारदातें सामने आई।

3. मतदान में प्रशासन चोटिल– मतदान के दौरान दो अलग अलग स्थानों पर लोगों ने पथराव किया। इसमें कई पुलिसकर्मी तथा कर्मचारी भी घायल हुए।

4. नये पार्षदों के प्रशिक्षण कार्यक्रम भी निर्धारित समय पर नहीं करवाये गए। दलीय व्यवस्था के कारण आपसी सहयोग का अभाव रहा।

5. अन्य बाधाएँ– कई मतदाता मतदान के लिए छुट्टी चाह रहे थे लेकिन उन्हें छुट्टी नहीं दी गई तथा इसी तरह मतदान की स्याही की खराबी भी सामने आई। कई वार्डो में स्याही अंगुली पर नहीं टिकने की शिकायतें भी उजागर हुई।

समाधान – प्रस्तुत शोध पत्र के आधार पर चुनाव आयोग को कई समस्याओं से जूझना पड़ा है जिससे कार्य अवरूद्ध हो जाते है इन समस्याओं के निराकरण हेतु कुछ समाधान प्रस्तुत कर रही हूँ।

1. जनप्रतिनिधि ऐसा हो जो जनता की समस्या सुने तथा उसका यथासंभव जल्दी से जल्दी समाधान कराऐं।
2. जनप्रतिनिधि स्वयं वार्ड का निरीक्षण करे। उन्हें सफाई व्यवस्था की मॉनिटरिंग स्वयं करनी चाहिए। वार्ड में कितने सफाईकर्मी नियुक्त है, कितने समय सफाई करनी है तथा गंदगी, सीवर या अन्य किसी तरह की समस्या दिखने पर उसका समाधान करे।
3. जनप्रतिनिधि यदि कर्तव्यानुसार कार्य नहीं कर पा रहा है तो जनता के पास उसे `Right to recall' के तहत वापस बुलाने का अधिकार हो, ताकि निरंकुशता ना आ पाए।
4. निगम द्वारा आमजनों के लिए बुलाई जा रही है योजनाओं से वार्ड की जनता को जोड़ना चाहिए, जिससे लोगों को उसका लाभ मिल सके। जानकारी के अभाव में लोग योजनाओं का लाभ नहीं उठा पाते।
5. निगम अधिकारी अपने पद का दुरूपयोग करे तो इसके लिए तुरन्त कार्यवाही की व्यवस्था होनी चाहिए।
6. पेड़ न्यूज पर रोक लगनी चाहिए।
7. उम्मीदवार तब तक निर्वाचित घोषित नहीं किया जाए जब तक वह कुल मतो का 50%+1 मत प्राप्त कर लें।
8. अदालत ने यदि किसी प्रतिनिधि के आपराधिक आरोप तय कर दिए हो तो चुनाव आयोग की तरफ से उसकी सदस्यता, तुरंत खारिज करने की कार्यवाही हो।
9. ई.वी. एम यदि खराब हो तो इंजीनियर वहॉ उपलब्ध होने चाहिए। इस सन्दर्भ में चुनाव आयोग को तुरन्त कार्यवाही करनी चाहिए।

निष्कर्ष – उपरोक्त विवेचन के पश्चात् यह तथ्य सामनें आए है कि राजनीतिक दलों की भूमिका स्वच्छ तथा पारदर्शी होनी चाहिए। आमजन पर नगर निगम से जुड़े कार्य पारदर्शी होनी चाहिए। आमजन पर नगर निगम से जुड़े काम सीधे असर डालते है जैसे– सफाई, रोशनी, यातायात, अतिक्रमण, मकान पट्टे, जन्म व मृत्यु प्रमाण पत्र, विवाह प्रमाण पत्र आदि। अत: आम जनता की परेशानियों का ठोस हल निकालने के बजाय शहरी निकाय भ्रष्टाचार, रिश्तवखोरी के अड्डे माने जाते है अत: नगर निगम में चुनें पार्षद प्रमुखों की जिम्मेदारी हैं कि वे हालात सुधारे तथा पारदर्शिता से शहरों का विकास करें। तथा राजनीतिक दलों के लिए यह भी आवश्यक है कि वे अपने संगठन में सुधार करें, एवं आयोग को भी सशक्त बनाए ताकि चुनाव सुधार के ज्यादा से ज्यादा प्रयास हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. पत्रिका समाचार पत्र – 20 नवम्बर 2014
2. पत्रिका समाचार पत्र– 23 नवम्बर 2014
3. भास्कर समाचार पत्र– 23 नवम्बर 2014
4. डा. एम.पी.शर्मा– लोक प्रशासन के सिद्धान्त
5. जी.एस. बन्धु– भारत में नगर निकाय– नगर निकाय प्रशासन संस्था (जर्नल)
6. बी. वेंकटेश कुमार – भारत में चुनाव सुधार

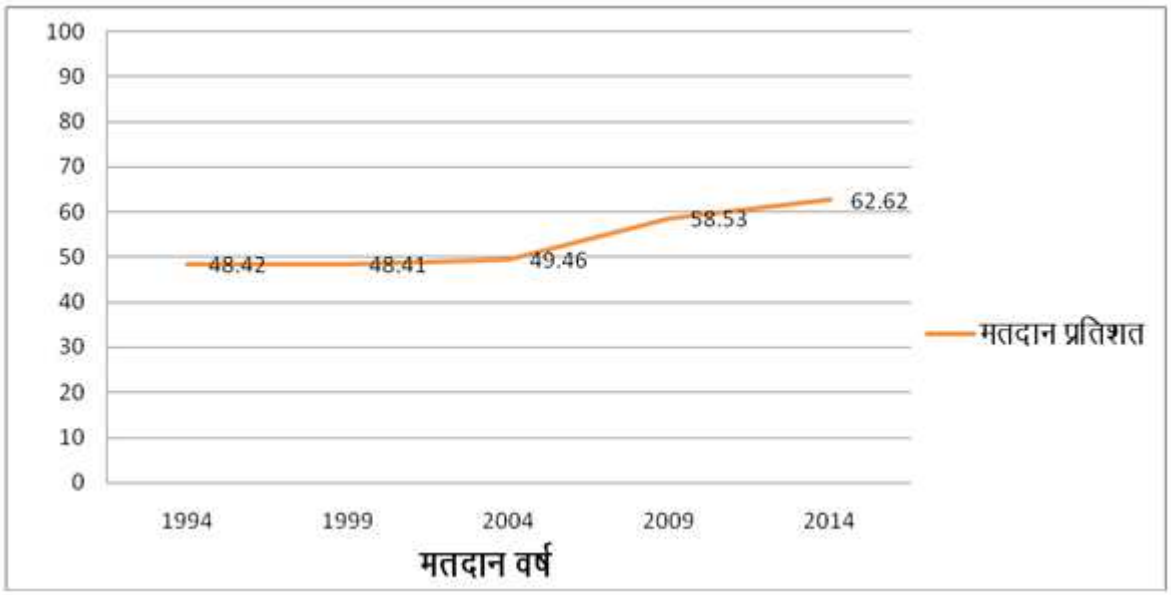

****

भारतीय लोकतंत्र की नवीन चुनौतियाँ

डॉ. अनिल कुमार जैन *

शोध सारांश – विज्ञान और तकनीकी ने वैश्वीकरण के माध्यम से विश्व के राष्ट्रों के सोच एवं आकांक्षा में जो परिवर्तन उपस्थित किया हैं, उससे राज्यो के कार्य क्षेत्र में असाधारण वृद्धि हुई है। मानव अधिकार, सूचना का अधिकार तथा राजनीति में सोशल मीडिया की भूमिका या जन आंदोलनों आदि की राजनीति में प्रभावी भूमिका से व्यक्तियों में जहाँ जागरूकता बढ़ी हैं, वहीं व्यक्ति शीघ्रताशीघ्र समानता द्वारा समाज में विकासोन्मुख भी होना चाहता है। वह सभी सुविधाओं तथा सुख को आज और अभी प्राप्त करना चाहता है। अत: यदि केन्द्र सरकार और राज्य सरकारे उन्हें यथाशीघ्र सुखी नहीं बना सकती हैं, तो सामाजिक रूप में जन आक्रोश में वृद्धि होती है। इस स्थिति का लाभ अपने ढ़ंग से राजनीतिक दल उठाते है। नेताओं के आश्वासनों पर सहज विश्वास करने वाली जनता की भावुकता मनोवृत्ति का लाभ उठाकर चतुर नेता सत्ता भी हथिया लेते है। सभी का साथ, सभी का विकास, समाजवादी दर्शन का मूल मंत्र है , जो सर्व साधारण को सदैव प्रभावित करता रहा है। इस पर विश्वास सत्ता परिवर्तन का कारण बन जाता है। 'गरीबी हटाओ' नारे से गरीब भले राष्ट्रीय रंगमंच और चर्चा से हट गया परन्तु कई की गरीबी भी मिट गई। स्वाधीनता प्राप्ति के 68 वर्ष बाद भी 'नौ दिन चले ढ़ाई कोस' की स्थिति आज भी समाज में यथावत है। यह भी सच है कि हमारे भारतीय लोकतंत्र की राजनीति में, भारत जैसे बड़े व विकासशील देश में गरीबी, अभाव, अशिक्षा और रोगों से मुक्त समाज की रचना के प्रयासों के साथ-साथ आमजन के लिये सामान्य सुख समृद्धि लाने के योजनाबद्ध रूप से यथासमय प्रयत्न अवश्य हुए है। वैश्वीकरण से भी आर्थिक विकास को बढ़ावा ही मिला है। मध्यम वर्ग के उपभोक्ताओं की संख्या में वृद्धि भी हुई है। किन्तु इस पर भी गरीबी, बेरोजगारी और सत्ता में भ्रष्ट आचरण में अपेक्षित कमी नहीं आ पा रही है।

प्रस्तावना – आजादी प्राप्ति के समय राष्ट्रीयता की जो तीव्र लहर देश में विद्यमान थी - लोकतंत्रीय शासन पद्धति में, वोट की राजनीति का महत्व होने से, उसमें शनै-शनै कमी आने लगी। क्षेत्रवाद तथा भाषावाद ने भारत की विविधता में एकता के आदर्श के सामने प्रश्न चिन्ह लगा दिया। संसदीय लोकतंत्र में मुख्य रूप में राजनीतिक दलों का अस्तित्व व सफलता उनके सदस्यों व समर्थकों का एकजूटता तथा परस्पर विश्वास पर निर्भर करती है। भारत में धर्मनिरपेक्षता व साम्प्रदायिकता के नाम पर जो बड़ी राजनैतिक चुनौतियाँ रही है। उसने बंटवारे की पीड़ा के बाद भी, पाकिस्तान देने पर भी कश्मीर समस्या के रूप में स्थाई रूप से पड़ौसी से मतभेद और दुश्मनी का जहर दे दिया है। आतंकवाद भारत के लिये स्थाई सिरदर्द बना हुआ है।

हमारे प्रजातंत्र में आंतरिक समस्या के रूप में भी जातिवाद से उत्पन्न मण्डल-कमण्डल ने विकास में अवरोध ही उत्पन्न किया है। विकास का शेष भाग जनसंख्या वृद्धि लील गई है। परिणामस्वरूप गरीबी के दैत्य ने देश में हिंसा, अपराध एवं कालाबाजारी के ग्राफ को अनचाहे प्रोत्साहित किया। बाजारवाद ने महंगाई को बेलगाम बनाया तथा धन की भूमिका और भौतिकतावादी मानसिकता ने राष्ट्र में नैतिक पतन के मार्ग को, मूल्यों की अस्वीकृति के रूप में प्रश्रय दिया।

सत्ता शक्ति पर आधारित होती है। लोकतंत्र में क्षेत्रीयता के दुर्बल आधार पर गठित बहुदलीय व गठबंधन सरकारों से अवसरवादी प्रवृत्तियों का जो रूप विगत चार पांच दशक में सामने आया उसने सत्ता का दुरूपयोग, घोटाले, भ्रष्टाचार और सार्वजनिक धन हड़पने की होड़, निर्लज्जतापूर्वक सार्वजनिक माल पर हाथ साफ करने के जो अनैतिक दृश्य सामने आये उससे देश का सिर शर्म से झुक गया है। प्रतिक्रिया भी सामने है। सन् 2014 के लोकसभा चुनाव में जनता ने जो निर्णय दिया उसकी कभी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। किसी को माफ नहीं किया गया। नेतृत्व के लिये इससे कड़ी सजा क्या हो सकती है।

भारतीय राजनीति में एक नवीन चेतना का आविर्भाव हुआ है। सन् 2015 के दिल्ली विधानसभा के चुनावों के परिणामों ने राजनीतिक दलों के मुखौटे उतार दिये है। राष्ट्रीय दलों में सत्ता और सफलता के एकाधिकार का जो दंभ था वह चूर-चूर हो गया है। जनता को सरकार गठन के अपने लोकतंत्री अधिकार का न सिर्फ अहसास हो गया है, उसने जागरूक होकर, बड़ी संख्या में अपने मताधिकार का प्रयोग कर मनवांछित तथा वायदों, विश्वासों पर आधारित भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन के लिये रास्ता खोल दिया है।

भारतीय राजनीति की परम्परागत चुनौतियों को, लगता है कि जनता ने एक प्रकार से उत्तर दे दिया है। लोकतंत्र के अच्छे दिनों की प्रतिक्षा हैं। इसी संदर्भ में जो नई चुनौतियाँ उभरकर सामने आ रही है, उनकी लंबी सूची है। उन्हें केन्द्र राज्य व प्रशासन तीनों अब सहयोग व समन्वय द्वारा सुशासन के माध्यम से हल कर सकेगें। सुशासन सिर्फ सरकार की, सबका साथ, सबकी भलाई की नीति के क्रियान्वयन में निहित है। इसके लिये, सरकार के राजनीतिक नेतृत्व एवं नौकरशाही की जवाबदेयता, नीति निर्माण में निष्पक्षता, ईमानदारी तथा सेवा वितरण में सरकार की दक्षता अपेक्षित है। विद्यमान चुनौतियों को दूर करने के लिये वर्तमान जनादेश द्वारा जनता ने सरकारों की पूरी शक्ति व विश्वास दे दिया है। इससे केन्द्र व राज्य स्तर पर समन्वय से प्रभावी व कुशल प्रशासन के माध्यम से नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार के लिये बुनियादी और कठोर कदम उठाया जाना अब संभव है। आजादी के बाद से ही सत्ता व नौकरशाही में जो परस्पर हित साधन का अघोषित गठबंधन रहा है उसकी नींव अपने-अपने स्वार्थ साधन के लिये भ्रष्टाचार रहा है। भ्रष्टाचार पर कुठाराघात से स्वाभाविक रूप से देश की,

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

इसके आश्रय में पनपने वाली अनेक समस्याऐं स्वत: समाप्त हो जावेगी। नौकरशाही का राजनीति में झुकाव इसी कारण रहता है, जबकि उसकी तटस्थता सुशासन व पारदर्शिता के लिये अतिआवश्यक होती है। भारत में अनेक लोक सेवकों की संवैधानिक उच्च पदों पर नियुक्ति होती रही है। यह अनुचित है, क्योंकि इसी लालच में नौकरशाही ने अपने आपको राजनीतिक दलों के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये स्वयं को साधन बनने दिया है।

भारत संघात्मक राज्य है। सत्ता व पद प्राप्ति की लालसा से विभाजनात्मक प्रवृत्तियों में वृद्धि हो रही है जिसका आधार सांस्कृतिक भाषावाद, उपराष्ट्रीयता है, इनकी अभिव्यक्ति तेलंगाना, विदर्भ, बोडोलैण्ड जैसे आंदोलनों में अभिव्यक्त होती है। नये राज्यों से क्षेत्रीय भावना को प्रोत्साहन मिलता है। इससे राष्ट्रीय एकता प्रभावित होती है। सम्यक विकास पर ध्यान दिया जाकर इस प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया जाना आवश्यक है।

लोकतंत्र में आश्वासन तथा लोक लुभावन राजनीतिक घोषणाओं की प्रवृत्ति, मतदाताओं का समर्थन प्राप्त करने में प्रभावी सिद्ध हुई है। गठबंधन की सरकार के निर्लज्ज शासन में भ्रष्टाचार का खुला खेल हुआ उससे मुक्ति की छटपटाहट में जनता ने अभूतपूर्व निर्णय लिये है। दिल्ली की 70 सदस्यी सरकार के लिये सत्तारूढ़ दल ने 70 वायदे किये है। जिनकी पूर्ति पर पहले दिन से ही प्रश्न चिन्ह लग रहे है। मुफ्त वाई-फाई, मुफ्त पानी, आधे दाम बिजली आदि की घोषणाऐं आम आदमी के वोट बैंक को आकर्षित अवश्य करती है, पर विकास की राजनीति को कितना अधिक प्रभावित करेगी, इस पर भी ध्यान दिया जाना जरूरी है। शिक्षा, बेरोजगारी, स्वास्थ्य, उद्योग, वित्त आदि से संबंधित वायदे केवल समाज में जमीनी हित को ही नहीं दशति बल्कि जनमानस की पीड़ा को भी स्पर्श करते है। कभी-कभी अल्पसंख्यक वर्ग विशेष, दलितों के हित व परिस्थितियों को देखकर दबाववश भी ऐसी घोषणाऐं की जाती है, इनकी पूर्ति संवैधानिक कारणों से संभव नहीं होती है, परिणामस्वरूप अनावश्यक असंतोष व जनआक्रोश उत्पन्न होता है।

राजनीतिक दलों द्वारा विगत कुछ वर्षो से अपने कृत्यों से बचाव की भूमिका में संवैधानिक संस्थाओं यथा कैग, निर्वाचन आयोग, सी.बी.आई. तथा लोकपाल आदि की भी आलोचना करने में नहीं चूकते है। कभी-कभी अप्रत्यक्ष रूप में न्यायपालिका व मीडिया भी आलोचना के शिकार बनते है। यह प्रवृत्ति घातक है। लोकतंत्र में संयम आवश्यक व अनिवार्य है।

राजनीतिक दल जो केन्द्र, राज्य अथवा स्थानीय स्वशासन में पूर्ण बहुमत पा लेते है। अंहकारग्रस्त होकर दलहित में शासन संचालन की प्रक्रिया प्रारंभ कर देते है। सरकार जनता की होती है। दल की सरकार के रूप में नीतिगत निर्णय की दिशा में अग्रसर होने की आहट मात्र की प्रतिक्रिया भारतीय राजनीति में एक उदाहरण स्वरूप स्मरण की जावेगी। इसी संदर्भ में नेतृत्व के प्राय: नैतिकताहीन व संस्कारहीन बयान पृथक से देश में असहज व कानून व्यवस्था की स्थिति निर्मित करते है। आश्चर्यजनक तो यह है कि ऐसे बयानों से वक्ता मुकर भी जाते है, व खण्डन कर देते है।

भारतीय लोकतंत्र की परम्परागत दुर्बलताऐं रही हैं, वे लगभग सभी वोट की राजनीति के कारण स्वाभाविक रूप से प्रभावी रही है। प्रजातंत्र में हित समूह और दबाव समूहों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। राजनीति में शक्ति व धन बल के महत्व को भी स्वीकार करना होता है। परम्परा से चली आ रही व्यवहारिक वी.आई.पी.संस्कृति ने भी सत्ता के दुरूपयोग को बढ़ावा दिया है। अत: दागी, अपराधी, दबंग, बाहुबली, धनबलीयों का भारतीय शासन में प्रभावी हस्तक्षेप रहा है। जाति, सम्प्रदाय और क्षेत्रीयता की भूमिका से भी गठबंधन सरकार की विवशता तथा मंत्रीमण्डलों में आनुपातिक प्रतिनिधित्व को क्षमता और योग्यता के ऊपर सदैव वरियता मिलती रही है। यही कारण है कि संविधान की सर्वोपरिता की दुहाई देने वाले सभी दल आज भी आरक्षण की सीमा तथा राष्ट्रभाषा के प्रश्न एवं महिला प्रतिनिधित्व की समस्या का निदान नहीं कर पाये है। भ्रष्टाचार पर नियंत्रण पाने के लिये लोकपाल की नियुक्ति का प्रश्न भी यथावत है।

विधि सम्मत वित्त आयोग केन्द्र व राज्यों के संबंधों की धूरी है। योजना आयोग ने इसकी महत्ता पर कुठाराघात किया। मोदी सरकार ने योजना आयोग समाप्त कर नई शुरूआत कर दी है।

आतंकवाद की विश्वभर की सन् 2002 से सन् 2009 की घटनाओं में 11 प्रतिशत भारत में हुई, यह बड़ी चुनौती है। लोकतंत्र में कल्याणकारी राज्य के लक्ष्य को लेकर जन-धन का जिस तरह दुरूपयोग हो रहा है, यह चिंता का विषय है। अनाज, नमक, घासलेट, पानी व बिजली न्यूनतम मूल्य पर देकर जनता के श्रम से अर्जित धन से प्राप्त टेक्स का दुरूपयोग हो रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. फड़िया डॉ.बी.एल. : भारतीय प्रशासन : साहित्य भवन आगरा।
2. पाण्डेय डॉ.जयनारायण : भारत का संविधान : सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी।
3. जैन डॉ. राजेश : भारतीय राजनीति के नये आयाम : कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
4. खंडेला एम.सी. : भारतीय राजनीति का बदलता परिदृश्य : पांइटेर पब्लिकेशन्स, जयपुर।
5. खंडेला एम.सी. : भारतीय राजनीति : सिद्धांत और व्यवहार : पाइंटेर पब्लिकेशन्स, जयपुर।
6. दैनिक भास्कर दिनांक 11 एवं 12 जनवरी 2015.
7. दैनिक पत्रिका दिनांक 11 एवं 12 फरवरी 2015.

****

भारतीय राजनीति और गठबंधन सरकारे - एक अध्ययन

प्रो. अंजना सेठिया *

प्रस्तावना – यह एक सर्वविदित तथ्य है कि लोकतंत्र वृक्ष है और स्वतंत्रता उसकी छाया। निर्वाचन इस वृक्ष को सींचने वाले जल के समान है। लोकतंत्र में सरकार बनाने के लिये चुनाव होते है लेकिन कई बार जनता अपने मत से यह स्पष्ट कर देती है कि उसके पैमाने पर कोई भी दल खरा नहीं उतरा। असमंजस की स्थिति यहीं से शुरू हो जाती है। जन आकांक्षाओं के अनुरूप मिलीजुली सरकार बनाने की जगह जोड़-तोड़ की राजनीति शुरू हो जाती है और सौदेबाजी के आधार पर गठबंधन बनते है, यह गठबंधन चुनाव के बाद होते है। प्राय: गठबंधन चुनाव के पूर्व हो जाते है ताकि उक्त दलों के प्रत्याशियों में टकराव न हो, मतों का बंटवारा न हो तथा अधिकाधिक संख्या में उनके प्रत्याशी जीतकर विधानसभा या लोकसभा में पहुंचें और फिर मिलकर सरकार बनाऐं।

परंतु अब समाज की विचारधारा में बदलाव आ चुका है लेकिन यह बदलाव अचानक नहीं आया यह लम्बे समय तक आवाम के मन में चल रही उथल-पुथल होती है, जो भरोसेमंद सहारा मिलते ही उस ओर मुड़ जाती है। जिसने उसे भाप लिया और उसके मुताबिक खुद को बदल लिया वह कामयाब हो जाता है। पिछले कुछ वर्षो से भारतीय राजनीति में ऐसा ही कुछ नजर आ रहा है। अन्ना के आन्दोलन से नजर आ रहे जनता के बगावती तेवर लोकसभा चुनावों में दिखे और उसने सत्ता में बीजेपी को स्पष्ट बहुमत की सरकार बनाने का फैसला दिया। हाल ही में हरियाणा और महाराष्ट्र के चुनावों में भी उसके पक्ष में चौकाने वाले नतीजे सामने आए है। वक्त बदल रहा है तो राजनीति के समीकरण भी बदलते नजर आ रहे है। बिहार में जेडीयू का बीजेपी से 17 साल पुराना गठबंधन पिछले साल जून में टूट गया। उसके बाद महाराष्ट्र विधानसभा चुनावों से पहले एनसीपी ने व कांग्रेस से 15 साल पुराना रिश्ता खत्म कर दिया तो भाजपा और शिवसेना के बीच 25 साल पुराना गठबंधन आगे नहीं बढ़ पाया। हालांकि यह बदलाव भविष्य में देश की राजनीति में कितना परिवर्तन लाने वाला है यह कहना अभी मुश्किल है लेकिन इतना जरूर है कि चुनाव जीतने का तरीका बदल रहा है। राजनीतिक साझेदारियों से अलग पार्टिया नए सामाजिक समीकरण भी बनाने में जुटी है।

1990 के बाद से भारतीय मतदाताओं ने लगातार राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर खण्डित जनादेश दिया है। इस वजह से कई दल सत्ता पर दावा करने के लिये गठबंधन कर लेते है। भारत में राष्ट्रीय स्तर के 03 गठबंधन है –

1. **राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन –** मई 1998 में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की घोषणा हुई जो उस समय गैर कांग्रेसी सरकार के गठन के निर्माण में पहला कदम था। यह एक राजनीतिक गठबंधन है। इसका नेतृत्व भारतीय जनता पार्टी करती है। इसके गठन के समय इसके 13 सदस्य थे।

2. **संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन –** संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन डॉ. मनमोहनसिंह की अगुवाई में गठित एक गठबंधन है जो 2004 में केन्द्र में सरकार बनाने के लिये गठित किया गया था। यूपीए ने 2004 और फिर यूपीए ने 2009 में केन्द्र में सरकार बनाई।

3. **थर्ड फ्रंट (तीसरा मोर्चा) –** तीसरा मोर्चा जिसने 1996-1998 तक भारत पर शासन किया। अब खत्म हो चुका है।

इसके अतिरिक्त राज्य स्तर के निम्न राजनैतिक दलो का गठबंधन है –

- बंगला बचाओ मोर्चा – पश्चिम बंगाल के 2001 विधानसभा चुनावों में विपक्षी मोर्चा। उसका नेतृत्व अखिल भारतीय तृणमूल कांग्रेस ने किया था।
- लोकतांत्रिक फ्रंट – महाराष्ट्र में गवर्निंग गठबंधन
- हिम लोकतांत्रिक मोर्चा – हिमाचल प्रदेश में तीसरा मोर्चा अब खत्म हो चुका है।
- नेशनल फ्रंट – जनता दल के नेतृत्व में 1989-1991 में भारत पर शासन किया, अब खत्म हो चुका है।
- संयुक्त मोर्चा – तीसरा मोर्चा जिसने 1996-1998 तक भारत पर शासन किया अब खत्म हो चुका है।

भारत में केन्द्र में 1977 से 2009 तक लगभग गठबंधन सरकारो ने ही कार्य किया है जिनका कार्यकाल निम्न है –

क्रं.	प्रधानमन्त्री	दल	कार्यावधि
1	मोरारजी देसाई	जनता दल	24.03.77 से 28.07.79
2	चरणसिंह	जनता दल	29.07.79 से 20.08.79
3	वी.पी. सिंह	जनता दल	12.12.89 से 07.11.91
4	चन्द्रशेखर	जनता (सो.)	11.11.91 से 21.06.91
5	अटल बिहारी वाजपेयी	भापजा	16.05.96 से 28.05.96
6	एच.डी. देवगौड़ा	जनता दल (संयुक्त मोर्चा)	01.09.96 से 21.04.97
7	आई.के. गुजराल	जनता दल (संयुक्त मोर्चा)	21.04.97से 28.11.97 29.11.97से 18.03.98 (कार्यवाहक)
8	अटल बिहारी वाजपेयी	राजग	19.09.98 से 17.04.99
9	अटल बिहारी वाजपेयी	राजग	13.11.99 से 22.05.04
10	डॉ. मनमोहन सिंह	यू.पी.ए.	22.05.04 से 2009

इस प्रकार पिछले कई वर्षो से गठबंधन सरकारे भारत में कार्यरत रही है। परंतु इस समय भारत में राजनीति में बदलाव का चक्र चल रहा है केन्द्र में भाजपा के नेतृत्व में एक स्थायी सरकार बन चुकी है। एवं राज्य में भी राजनीति के समीकरण बदलते नजर आ रहे है। गठबंधन टूटने के निम्न कारण है –

1. **स्थायित्व –** जनता स्थायित्व चाहती है। जनता को धीरे-धीरे समझ आ रहा है कि एक बड़ी पार्टी स्वतंत्र रूप से सत्ता में होगी तो ज्यादा स्थायित्व

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय संस्कृत महाविद्यालय महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

दे पाएगी।

2. बड़े दलों के लिए गठबंधन मजबूरी – बड़े दलों के लिए गठबंधन हमेशा से मजबूरी रहा है। ऐसा माना जा रहा है कि बीजेपी गठबंधन की राजनीति को आगे बढ़ाना ही नहीं चाहती। कांग्रेस की मंशा भी ऐसी ही है, लेकिन इस वक्त कांग्रेस की जो हालत है उसमें गठबंधन मजबूरी है।

3. नयापन लाने की सोच – छोटे दल भी रिश्तों के बासीपन को खत्म कर जनता में नई उम्मीदें जगाने की सोच रहे है।

इस प्रकार पिछले कई वर्षो से हमने केन्द्र में गठबंधन की जो सरकारे देखी है। उससे ऐसा प्रतीत होता था कि गठबंधन की राजनीति एक आश्वयक बुराई बन गई है आवश्यक इसलिये कि इसका कोई विकल्प नहीं था और बुराई इसलिये कि इससे राजनीतिक अस्थिरता बनी रहती है। अर्थ व्यवस्था को चोट पहुंचती है। परंतु अब जनता का मानस बदला है एवं केन्द्र में भाजपा की स्थायी सरकार बन चुकी है वास्तव में श्रेष्ठ सरकार वही है जो ईमानदार कल्याणकारी एवं स्थायी हो। भाजपा और कांग्रेस दोनों ही गठबंधन की राजनीति खत्म कर द्विदलीय व्यवस्था की पक्षधर रही है। लेकिन भविष्य में यह संभव होगा या नहीं यह सरकार के कार्य एवं जनता के मानस पर टिका है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. चुनाव लोकसभा और राजनीति – राजीव रंजन
2. भारतीय प्रशासन – डॉ. अमरेश्वर अवस्थी एवं डॉ. आनंद प्रकाश अवस्थी
3. भारतीय सरकार एवं राजनीति – डॉ. आर.एन. त्रिवेदी, डॉ. एम.जी. राय
4. दैनिक भास्कर – डी.बी. स्टार – 03.11.2014
5. इंटरनेट से प्राप्त जानकारी के आधार
6. स्वयं के विचार

****

इक्कीसवीं शताब्दी और हिन्दी भाषा

डॉ. भावना यादव *

प्रस्तावना – भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम होती है जो देशकाल, परिस्थितियों और आवश्यकताओं से उपजती और पनपती है। हिन्दी न केवल हमारी मातृ भाषा है अपितु समयानुसार स्वतन्त्रता पूर्व और पश्चात् हमारे विकास का सशक्त माध्यम भी बनी है। इस यात्रा के दौरान हिन्दी ने लोगों के अनुसार अपना रंगरूप और स्वरूप बदला किन्तु आत्मा वही भारतीय रही। फलस्वरूप हिन्दी पंजाब में पंजाबी, मुम्बई में मुम्बईया, बुन्देलखण्डमें बुन्देली स्वरूप के साथ जनसामान्य के बीच बनी रही। हिन्दी समाज में बह रही सतत् धारा है जो उसमें मिलने वाली सभी भाषाओं को लेकर अपना स्वयं का मार्ग इस प्रकार बनाती चल रही है कि स्वयं का पालन–पोषण जीवंत तरीके से कर खुद को सशक्त और सक्षम बनाये हुये है।

'सन् 1820 के बाद 1900 ई. तक का समय हिन्दी के महत्वपूर्ण संघर्षों का रहा है जिसमें 19वीं सदी के अंतिम दशकों में हिन्दी के आंदोलनों को मुखरित करने में अनेक प्रतिभावान लोगों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। हिन्दी की लिपि और उसके शब्दों तथा अर्थों का उच्चारण एवं बोध इतना वैज्ञानिक अर्थात् सहज है कि हिन्दी की लोकप्रियता अपने आप बढ़ी।'(1) परन्तु आजादी के बाद के दशकों में हिन्दी भाषा क्रमश: कमजोर होती गई। परिणामस्वरूप शासन प्रशासन, न्यायालय, महानगरों में हिन्दी के प्रति विभेद रखने वाला, हिन्दी से अस्पर्श्यता रखने वाला ऐसा वर्ग पैदा हो गया है जो आज भारत वर्ष में इंडिया का प्रतिनिधि बन कर उभरा है। जिसने भारतीय संस्कृति और संस्कारों से गहरे से जुड़ी हिन्दी भाषा के स्थान पर पष्चिमी उपनिवैशिक आंग्ल भाषा को ज्ञान विज्ञान विकास एवं सभ्यता के एकांगी मानव के रूप में आत्मसात कर लिया है। राष्ट्रीय राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दार्शनिक साहित्यक परिप्रेक्ष्य में शिष्टता को छूने वाले सभी प्रमुख व्यक्तित्व राष्ट्रीय स्वाभीमान के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय सरोकारों से जुड़ने की हड़बड़ी भरे प्रयासो के चलते अंग्रेजी के आगे नतमस्तक होकर उसकी अधीनता को मानसिक रूप से स्वीकारने लगे। उनका अनुसरण करने वाला उच्च मध्यम वर्ग इसी दिशा में तेजी से अग्रसर है आज भी देश के सुदूर पूरब पश्चिम उत्तर–दक्षिण में त्रियाम दर्जे के कान्वेन्ट स्कूलों के जरिये अंग्रेजी और अंग्रेजीयत से भरी हुई गाजर घास को बलपूर्वक पैदा करने का प्रयास किया जा रहा है।

ज्ञान विज्ञान राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनारो में हिन्दी की भागीदारी तो दूर की बात है गेट पर खड़े दरबान के रूप में भी हिन्दी संघर्ष करते दिखती है। हिन्दी वस्तुत: सभी जगह है पर डरी सहमी अपने भविष्य के प्रति आशंकित है कई बार राष्ट्रभाषा हिन्दी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये हिन्दी दिवस और पखवाड़ों के द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में अपने अस्तित्व की रक्षा के प्रयासों को खोजती नजर आती है। वहीं वैश्विक स्तर पर 'विश्व में महाशक्ति के रूप में उभरते भारत की राजभाषा हिन्दी अभी तक संयुक्त राष्ट्र की अधिकारिक भाषा नहीं बन पाई है, जबकि वह संख्या बल के अनुसार विश्व की तीसरी भाषा है। दुखद यह है कि अभी तक वह हिन्दी प्रदेशों की उच्च शिक्षा तथा अनुसंधान संस्थानों की भाषा नहीं है।'(2)

हिन्दी लगभग सभी मोर्चों पर संघर्षरत है परन्तु इस सब से इतर अपने समावेशी एवं बदलते हुये परिवेश से समांजस्य बैठाने की अपनी अद्भूत आन्तरिक शक्ति के चलते वह वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अपनी प्रभावी दस्तक भी दे रही है। विश्व के लगभग सभी देशों में भारत से आर्थिक एवं राजनैतिक सम्बन्धों को बनाने के महत्व को समझते हुये हिन्दी से सभी ने न केवल हाथ मिलाया है वरन् उसे आगे बढ़ कर गले भी लगाया है। भारत की आश्यक वैश्विक अपरिहार्यता के चलते पांचो महाद्वीप एवं विश्व के प्रमुख देशों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी को जानने सीखने समझने हेतु अकादमी विभागों की स्थापना का दौर सा चल पड़ा है। 'पूरे देश की 41.6% आबादी हिन्दी ही बोलती है अत: हिन्दी को नजर अंदाज करना अब संभव नहीं है। शायद यही कारण है कि पिछले दिनों अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जार्ज बुश ने अपने नागरिकों को हिन्दी भाषा सीखने की सलाह दी है।'(3)

हिन्दी को राष्ट्रीय स्तर पर संरक्षण की दरकार है एवं ज्ञान विज्ञान के सभी आयामों में हिन्दी को समकालीन वैश्विक परिवेश के अनुरूप विकसित करने की आवश्यकता है। देश एवं समाज में हिन्दी के प्रति पनपे भय, उपेक्षा, आशंका के स्थान पर हिन्दी स्वाभिमान को राष्ट्रीय स्वाभिमान से जोड़ा जायें, और राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकारने के व्यवहारिक प्रयास किये जायें।

इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ में संचार क्रांति के तूफानी प्रवाह में हिन्दी के अस्तित्व पर चिन्ता जतायी जाने लगी थी। परन्तु हिन्दी ने अपना विकास इसी संचार क्रांति के कम्प्यूटर और इन्टरनेट को अपना रथ बनाकर कर किया। 'भारतीय संविधान में हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा घोषित किया गया है। साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी भाषा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वह एक उपभाषा, मातृभाषा, द्वितीय भाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित होकर सूचना तंत्र की भाषा भी बन गयी है।'(4) परिणाम स्वरूप हिन्दी के प्रति पिछले दशक में देश–विदेश में लोगों की मानसिकता बदली है। देश उत्तर अर्थात् हिन्दी भाषी और दक्षिण अर्थात् गैर हिन्दी भाषियों के रूप में जाना जाता था। परन्तु ग्लोबल होती हिन्दी ने प्राय: इस भेद को समाप्त कर दिया है। 'हिन्दी विरोधी माने जाने वाले दक्षिण भारत में भी अब हिन्दी को लेकर माहौल काफी बदल रहा है। लोग अब हिन्दी सीखने में रूचि दिखा रहे हैं, भले ही इसका कारण रोजगार से जुड़ा हो। आंकड़ों के मुताबिक 2010.2011 के दौरान दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा से हिन्दी भाषा का कोर्स करने और हिन्दी माध्यम के जरिए डिग्री लेने वाले कुल विद्यार्थियों की संख्या 18 लाख थी, जिनमें से 10 लाख छात्र तमिलनाडु के थे। इसी तरह केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के हिन्दी पत्राचार माध्यम से पढ़ने

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्ठता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

वाले 2010.11 में कुल 8959 छात्र थे जिनमें से 6 हजार से ज्यादा तमिलनाडु के थे।'[5]

इसी प्रकार आज विश्व में लगभग हर देश में हिन्दी के जानकार और बोलने वाले रह रहे हैं। 21वीं सदी में विद्धानों का मानना था कि विश्व में चीनी बोलने वालों की संख्या सर्वाधिक है परन्तु 21वीं सदी में विश्व में अंग्रेजी के बाद सर्वाधिक व्यवहारिक भाषा हिन्दी है। 'फिलहाल विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों और कई सैकड़ों छोटे-बड़े केन्द्रों में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर शोध स्तर तक हिन्दी के अध्ययन अध्यापन की व्यवस्था है। विदेशों से 25 से ज्यादा पत्र-पत्रिकाएं लगभग नियमित रूप से हिन्दी में प्रकाषित हो रही हैं। ..... 10 साल पहले तक अमेरिका में केवल 25 विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती थी, लेकिन अब 100 से भी अधिक विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है।'[6] चीन, अमेरिका, जापान, फ्रांस और बिट्रेन जैसे देशों में हिन्दी सीखने वालों का प्रतिशत क्रमश: बढ़ता जा रहा है। धीरे-धीरे हिन्दी वैश्विक स्वीकृति की तरफ अग्रसर है। हिन्दी के देश के अन्दर और बाहर विस्तार के अनेकों कारण है यथा -

- हिन्दी समृद्ध भाषा है।
- हिन्दी में शब्दों का अतुल भंडार है।
- हिन्दी व्याकरण सम्मत है।
- भारत की जनसंख्या का बढ़ा भाग हिन्दी बोलता और समझता है।
- हिन्दी सरल और उदार है जिसने अंग्रेजी, फारसी, अरबी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, चीनी, तुर्की तथा जापानी भाषा के अनेक शब्दों को अपनाया है।
- हिन्दी 'टेक्नोफ्रेंडली' भाषा है।
- युवा साहित्यकार और हिन्दी का अनुपात बढ़ रहा है क्योंकि युवाओं की शिक्षा और रोजगार की भाषा तो अंग्रेजी है परन्तु अभिव्यक्ति की भाषा हिन्दी है।
- रोजगार - आज हिन्दी सिनेमा, व्यापार, मनोरंजन, टी.व्ही. चैनल्स, विज्ञापन, कथा लेखक, गीतकार, अखबार, समाचार चैनल, अनुवादक आदि ऐसे क्षेत्र हैं जो हिन्दी से फल-फूल रहे हैं और इन क्षेत्रों में निरन्तर हिन्दी जानने वालों के लिये रोजगारों का सृजन हो रहा है।
- ब्लॉगिंग - ग्लोबल वर्ल्ड में हिन्दी में ब्लॉगिंग हिन्दी की समृद्धि का नया आयाम है।
- भारतीय संस्कृति की विभिन्न परम्पराओं यथा - ध्यान, योग, आयुर्वेद, संगीत, नृत्य ने विदेशियों को आकर्षित किया है। जिससे उन्हें हिन्दी को जानना आवश्यक हो गया।
- संचार क्रांति - ने वास्तविक अर्थों में हिन्दी को 'ग्लोबल' कर दिया। आज कम्प्यूटर, नेट, मोबाइल में उपलब्ध विभिन्न टूल्स और एप्लीकेशंस के माध्यम से अंग्रेजी और हिन्दी दोनों का समान्तर प्रयोग किया जा सकता है। जिससे जहाँ देश के गांवों में 'ई चौपालें' लग रही हैं तो सात समन्दर पार भी कम्प्यूटरों पर हिन्दी किसी न किसी रूप में कब्जा बनाये हुये है।
- इन्टरनेट - ने हिन्दी को नये आयाम दिये हैं। यह हिन्दी भाषियों को जोड़ने का सेतु बना है। आज एक लाख से भी ज्यादा ब्लॉग हिन्दी में उपलब्ध हैं। 15 से ज्यादा खोज इंजन हिन्दी में हैं अनेकों पत्र-पत्रिकाओं के संस्करण नेट पर उपलब्ध हैं। इतना ही नहीं आज सात समंदर पार श्री रामचरितमानस को इंटरनेट पर पढ़ा जा रहा है।
- व्यापार - कारपोरेट जगत को ज्ञात है कि यदि गांव-गांव तक पहुंचना है तो हिन्दी को अपनाना होगा। परिणामस्वरूप अपने ब्रांडों और उत्पादों को अखिल भारतीय बनाने के लिये मल्टीनेशनल कंपनियां हिन्दी प्रयोग पर बल दे रही हैं।

'सी डैक, नोएडा ने अंग्रेजी हिन्दी सूचना प्रौद्योगिकी शब्दावली, भारतीय भाषा कोश, शाब्दिक (प्राधिकृत शब्दावली) ऑनलाइन हिन्दी विश्व कोश (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित) अंग्रेजी-हिन्दी कोश आदि ई कोशों का निर्माण किया है..... इंटरनेट और दुनिया के बीच सिमटती भौगोलिक दूरियों के चलते अंग्रेजी के अलावा संसार की अन्य भाषाएं भी विश्व भर में अपनी जगह बना रही है। हर साल हिन्दी के 5.7 शब्दों का ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में शामिल होना इसका बड़ा उदाहरण है।'[7]

इस प्रकार इक्कीसवीं सदी में ग्लोबल होती हिन्दी में जीवन के हर पहलू से जुड़ी आवश्यकताओं, समस्याओं का समाधान 'हिन्दी में उपलब्ध है। फलस्वरूप विश्व फलक पर हिन्दी का विस्तार हो रहा है जिससे हिन्दी ग्लोबल भाषा होती जा रही है। यह सच है कि संचार क्रांति के आगमन पर विद्धानों को हिन्दी को लेकर चिंता हुई थी परन्तु अब हिन्दी के क्षेत्र और उपयोग के बढ़ते प्रसार से हिन्दी सशक्त अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में उभर रही है जिसकी ग्राह्यता अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ी है। जिससे स्वत: ही वे लोग भी हिन्दी की ओर आकर्षित हो रहे हैं जो इसे कमजोर समझ दूर होते जा रहे थे। 'आज जरूरत है कि हिन्दी के व्यापक उपभोक्ता समाज की संख्या का ध्यान रखते हुए हिन्दी के डाटाबेस विकसित किये जाये, हिन्दी में बेवसाइट पर विभिन्न विषयों के शब्दकोष और विश्वकोष उपलब्ध हों, वैज्ञानिक चैनलों के साथ-साथ आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चैनल भी हिन्दी में और भारतीयता को उभारने के दृष्टिकोण से स्थापित किये जाये। इस सारी तैयारी के साथ हिन्दी वैश्वीकरण और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की संयुक्त चुनौती का सामना कर सकती है।'[8] वर्तमान में आवश्यकता है कि अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भारतीय प्रतिनिधि, राजनयिक, नेता और नौकरशाह हिन्दी का इस्तेमाल सार्वजनिक और व्यवहारिक रूप से करें। ताकि ग्लोबल होती हिन्दी को सुदृढ़ता मिले और समाज निर्माण की प्रक्रिया में हिन्दी की अविरल धारा से देश विकास पथ पर अग्रसर हो। चूंकि शासन जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित करता है अत: आवश्यकता है कि शासन हिन्दी के प्रति दोहरेपन को समाप्त कर उसके संरक्षण व विकास के लिये प्रभावी पहल करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नवीन शोध संसार अक्टूबर-दिसम्बर 2013 पृ. 244
2. कृतिका अंतर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका अंक 1.2 जनवरी-दिसम्बर 2013 पृ. 252.253
3. मध्य भारती अंक 61ए 2009 पृ. 66
4. मध्य भारती अंक 61ए 2009 पृ. 62
5. नवदुनियां 11 सितम्बर 2011
6. नवदुनियां 9 सितम्बर 2012
7. स्मरणिका राष्ट्रीय संगोष्ठी-केशरबाई लाहोरी कॉलेज अमरावती 12.13 अक्टूबर 2008 पृ. 143.44
8. रिसर्च लिंक - अंतर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिका - 117 Vol-XII दिसम्बर 2013 पृ. 80

****

महादेव गोविन्द रानाडे के राजनीतिक विचार

डॉ. मीनाक्षी व्यास *

प्रस्तावना – महादेव गोविन्द रानाडे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की उदारवादी परम्परा के प्रतिनिधि थे। स्वतन्त्रता, सामाजिक उन्नति और व्यक्ति उदात चरित्र की स्थापना के महान समर्थक थे। जनता को राजनीतिक शिक्षण देने एवं भारत की स्वतन्त्रता हेतु राजनीतिक आन्दोलन का नेतृत्व उन्होंने विलक्षण तरीके से किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ राजनीतिक समस्याओं पर परामर्श हेतु सभी कांग्रेस के नेता उनसे विचार विमर्श करते थे।

भारतीय राजनीति में रानाडे उदारवादी चितंक थे। वे क्रांतिकारी हिंसात्मक एवं विद्रोहात्मक साधनों के खिलाफ थे। भारतीय जनता की समस्या के समाधान हेतु उन्होंने जनता को संवैधानिक मार्ग सुझाया जिसके अन्तर्गत आवेदन पर बल दिया। 1874 में रानाडे ने ब्रिटिश संसद एवं प्रमुख प्रशासकीय अधिकारी के पास एक याचिका भेजी जिसमें लिखा गया कि ब्रिटिश संसद में भारतीयों को प्रतिनिधित्व दिया जावे एवं जनता की समस्या तथा भारतीय प्रश्नों के निर्णय में भारतीयों से संबंधित प्रश्नों के निर्णय हेतु भारतीयों से सलाह अवश्य ली जावें। एक भारत में स्वशासी संस्थाओं की मांग भी की। इस याचिका पर हजारों व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराये गए जिससे हजारों व्यक्तियों को भारत के राजनीतिक शिक्षा प्राप्त हुई तथा इससे भारतीयों को राजनीतिक प्रश्नों पर विचार करने, राजनीतिक मामलों में रूची लेना, अपनी शिकायतों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करना एवं आवेदनों, याचिकाओं आदि के द्वारा, ब्रिटिश सरकार एवं उच्च अधिकारियों पर दबाव डाला जा सके। ऐतिहासिक आधार को स्वीकार करते थे। रानाडे उद्धस्त भारतीय राष्ट्रवाद के समर्थक थे। राष्ट्रवाद के भारत में स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व के विचारों से एकताबद्ध सदाचार से प्रेरित इन सारी व्यवस्थाओं में विवेक की कार्यान्विति होगी। रानाडे को भारत के राष्ट्रीय उत्थान एवं उज्जवल भविष्य के प्रति एवं शक्तिशाली भारत का सुदूर भविष्य के लिए स्वप्न देखा था। रानाडे एक ऐसे राजनीतिक नेता थे जिन्होनें घृणा को कभी अपने पास नहीं फटकने दिया। भारत में ब्रिटिश शासन की जिन नीतियों को गलत माना उनका उन्होंने विरोध किया, जैसे – भूमि अधिग्रहण एवं उत्तरदायी पदों से भारतीयों को अलग करना। औद्योगिक नीति, अत्यधिक केन्द्रित प्रशासनिक व्यवस्थाऐं तथा स्थानीय उपक्रम के लिए स्थान होना आवश्यक है। जो ब्रिटिश सरकार ने नहीं किया। रानाडे के अनुसार भारत राष्ट्र को कभी भी बलपूर्वक स्थाई रूप से दबाकर नहीं रखा जा सकेगा।

रानाडे ने स्वतन्त्रता का अर्थ नियन्त्रण या शासन का अभाव ना होना बल्कि कानून की व्यवस्था के अन्तर्गत शासन है। यह सिद्धान्त संविधानवाद का सिद्धान्त है अर्थात निश्चित मापदण्डों के अन्तर्गत स्वतन्त्रता का भरपूर उपभोग करना अनियंत्रित स्वतन्त्रता का उपभोग व्यक्ति, समूह, समाज एवं राष्ट्र सभी के लिए अनुपयोगी है। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का समर्थन इस आधार पर रानाडे ने किया जबकि न्यायपालिका निष्पक्ष होनी चाहिए। विधि के शासन और संसदीय शासन प्रणाली में प्रशासन के हस्तक्षेप को वे अनुचित मानते थे।

स्वतन्त्रता की लोकतांत्रिक धारणा में विश्वास के कारण ही वे विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों के पक्ष में थे। क्योंकि निर्वाचित सदस्यों के साथ लोकमत होता है।

महादेव प्रसाद रानाडे उदारवादी राजनीतिक विचारक थे। वे मानते थे कि संसदीय लोकतंत्र एवं विधि का शासन की व्यवस्था भारतीय जनमानस की पंसद बनते जा रहे है। आर्थिक क्षेत्र में भारत में कल कारखाने के विकास पर और सरकारी जागरूकता पर बल दिया रानाडे विदेशी पूंजी के आयात से भारतीय अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में मदद मिलेगी उनका भारतीयों से आव्हान था कि वे बचत करना सीखें और उसे उद्योग में लगाऐं क्यों कि देश की अर्थव्यवस्था के सुव्यवस्थित होने पर ही भारत की दरिद्रता दूर हो सकती है। उन्होंने भारत की निर्धनता के निम्न कारण माने थे –

1. नये उद्योगों में लगाने बाबत जनता में पूंजी का अभाव होना।
2. साख पद्धति का अवैज्ञानिक होना।
3. भारतीय उद्यमियों में औद्योगिक जोखिम उठाने का अभाव।
4. कृषि पर पूर्ण निर्भर होना।
5. भारत में अनेक क्षेत्रों में जनाधिक्य होना एवं मानव के श्रम के दोहन की व्यवस्था का अभाव होना।

6) सामाजिक ढ़ाचा एवं गतिशील अर्थव्यवस्था के बीच असमानता होना।

हमारे देश की जनता का पिछड़ापन ही हमें गरीब बनाए हुए है। अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान होने से वह मानसून पर निर्भर होती है। ब्रिटिश सरकार भारत का कच्चामाल जहाजों में भरकर ले जाती है, और पक्के माल हेतु भारत को उपलब्धी मानती है। छोटे उद्यमी 6 माह बेकार घर बैठ जाते है। इस आर्थिक समस्या के समाधान हेतु रानाडे ने सुझाव दिया कि संगठित रूप से ऋण की व्यवस्था हो जाएँ कृषकों को लाभ हेतु कृषि बैंक खोले जाऐ बैंक साहूकारों को कम सूद पर ऋण दे। औद्योगिकरण का कार्यभार सरकार को संभालना चाहिए क्यों कि सरकार साधन सम्पन्न संस्था द्वारा ही बड़े–बड़े उद्योगो की सम्भावना सम्भव है। सर जे. सी. कोयाजी अर्थशास्त्री ने उनके बारे में ठीक ही लिखा है। देश की सभी आर्थिक समस्याओं की ओर उनका ध्यान गया था और आर्थिक सिद्धान्त की एक समुचित पृष्ठभूमि के आलोक में उन्होंने उनकी एक व्यापक झांकी पेश की। समसामयिक भारतीयों के आर्थिक विचारों को एक सैद्धान्तिक आधार दिया था। और बाद में अर्थशास्त्रियों ने उन्हें 'भारतीय अर्थ के पिता' की उपाधी दी।

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (राजनीति विज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

रानाडे एक महान शिक्षाविद थे तथा वे फैकल्टी ऑफ आर्ट के डीन थे। उन्होंने भारतीय भाषाओं को विश्वविद्यालय में प्रवेश दिलवाया। रानाडे के विद्यार्थीकाल में विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में भारतीय भाषाओं को स्थान था किन्तु बाद में उन्हें पाठ्यक्रम से हटा दिया गया। रानाडे के अथक प्रयासों से भारतीय भाषाओं को पुन: पाठ्यक्रम में स्थान मिला तथा जब तक देश के विश्व विद्यालय में भारतीयों को तकनीकी शिक्षा प्राप्त नहीं होगी तब तक भारत वैज्ञानिक प्रगति में पश्चिम के बराबर नहीं हो सकेगा। उस समय श्री ए.जे.टाटा ने तकनीकी शिक्षा के प्रसार के लिए 30 लाख रू. का दान दिया जिसके उपयोग हेतु एक समिति का गठन किया गया जिसके महत्वपूर्ण सदस्य रानाडे थे इस समिति द्वारा बंगलोर में 'औद्योगिक अनुसंधान संस्था' की स्थापना की गई उन्होनें भारतीय पुर्नजागरण के लिए शिक्षा के प्रसार को एक अत्यन्त शक्तिशाली साधन माना।

रानाडे के विचार में सभी धर्मो के प्रति सहिष्णुता की भावना थी। परन्तु धर्म परिवर्तन के वे कट्टर विरोधी थे। वे समन्वयवादी थे। स्वच्छन्द धार्मिक जिज्ञासी की वे सराहना करने के साथ हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन को एक प्राचीन सभ्य राष्ट्र का अपमान मानते थे साथ ही सामाजिक सुधारों को वे थोपने से नहीं अपनाया जा सकता है। बल्कि सामाजिक सुधार समाज के लोग जब तक हृदय से नहीं अपनाऐगे तब तक वे समाज के लिए उपयोगी नहीं बन पायेगे। परम्परागत प्रथाओं को छोड़कर प्रगतिशील एवं सुधारवादी विचार ग्रहण हो पाऐगे।

सन्दर्भ ग्रंथ सूंची :-

1. महादेव गोविन्द रानाडे, डॉ. राजेश सकवार, पंचशील प्रकाशन जयपुर फिल्म कॉलोनी चौड़ा रास्ता जयपुर, 302003
2. महादेव गोविन्द रानाडे, पी.जे.जागीरदार, पृ.137
3. भारतीय राजनीतिक चिंतन, डॉ. आर.के.अवस्थी, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर

****

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी

डॉ. विनिता भालसे * अंजू बाला ठाकरे **

प्रस्तावना – मन कोमल है कमजोर नहीब शाक्ति का नाम ही नारी है
जग को जीवन देने वालीब मौन भी तुम पर हावी हैब

कहते हैं राष्ट्र के विकास में रथ के दो पहिये पुरुष एवं स्त्री हैं। यदि दोनो में से एक यदि ताकतवर एवं दूसरा यदि कमजोर हो तो रथ डगमगा जायेगा, सन्तुलन बिगड़ जायेगा इसलिये रथ के दोनों पहियो को ताकतवर बनाना उचित समझा गया, तथा महिलाओ की गरिमा, प्रतिष्ठा और सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए हमारे देश में स्वंतत्रता से पहले और बाद से विधान बने है, परंतु उमकी स्थिति में अपेक्षित सुधार अभी प्रतीक्षित है। संविधान निर्माताओं ने देश के सामाजिक ढांचे में महिलाओं को उचित, उपयुक्त एवं बराबरी का स्थान दिलाने के लिए भरसक प्रयास किया ,जिसे संविधान के विभिन्न प्रावधानो में मुर्तरुप दिया गया है।संविधान की उद्धेशिका समस्त नागरीकों को प्रतिष्ठा और अवसर की समता तथा व्यक्ति की गरिमा प्रत्याभूति प्रदान करती है। अनुच्छेद 14में समानता के अधिकार का प्रावधान है,इसमें महिलाओं के साथ विभेद नहीं किया गया है। जिसकी पुष्टि उच्चतम न्यायलय द्वारा **एयर इण्डिया बनाम नरगिस मिर्जा** के मामले कि गई है। अनुच्छेद 15 और 16 में धर्म , मूलवंश ,जाति,लिंग,जन्म स्थान ,आदि के स्थान पर विभेद से वर्जित है। अनुच्छेद 15 (3) में स्त्रियो और बालको के लिये कोई विशेष उपबंध निर्मित करने के लिए राज्य को अधिकयत किया गया है।अनुच्छेद 39 (क)और (घ)में राज्य को पुरुष और स्त्री सभी नागरिको को जीविका के लिये पर्याप्त साधन मुहैया कराने और दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन के निर्देश है। अनुच्धेद 42में काम की न्याय संगत और मान वोचित दशाओ को सुनिश्चित करने और प्रसूति सहायता का उपबंध करने के लिए राज्य को निदेश है। अनुच्छेद 51 क(5) में प्रत्येक भारतीय नागरिक का यह मुल कर्तव्य है, कि वह ऐसी प्रथाओ का त्याग करे जो स्त्रियो के सम्मान के विरूद्ध हैं।

संविधान लागू होने के पश्चात भी देश में पंचायती राज आरम्भ करने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये, जैसे सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952) तथा राष्टीय विस्तार सेवा कार्यक्रम, विकास की दिशा में सरकार द्वारा लागू किये गये कार्यक्रम थे, लेकिन इन अतः विकेन्द्रित शासन व विकास में लोगों की समुचित भागीदारी लाने के भारत सरकार ने बलपन्त राय मेंहता समिति (1957) तथा अशाोक मेहता समिति (1978) का गठन किया इन दोनो समितियो द्वारा देश में पंचायती राज संस्थानों की स्थापना एवं विकास के आधार पर प्रायः सभी राज्य सरकारों ने पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना की।

73 वां संविधान संशोधन द्धारा पंचायतो को अधिकारो के हस्तांतरण में एक संवेधानिक जिम्मेंदारी बन गई, ये संवेधानिक परिवर्तन देश के ग्रामीण क्षेत्रो में विकास के इतिहास में एक चमत्कारी कदम के रुप में साबित होगे पंचायती राज संशोधन अधिनियम की खास बाते इस प्रकार है।

1. ग्राम सभा एक ऐसी संस्था होगी जिसमें पंचायत क्षेत्र के सभी वयस्क व्यक्ति शामिल होगे।
2. पंचायत प्रणाली तीन स्तर वाली होगी ग्राम स्तर, मध्यवर्ती स्तर, तथा जिला स्तर। बीस लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यो को मध्यवर्ती स्तर की पंचायतें गठित करने था न करने के बाद में फैसला करने की छुट होगी।
3. सभी पंचायतों में अनुसूचित जातियो जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित होगे। कुल सीटों की एक तिहाई सीटो महिलाओ के लिए आरक्षित होगी
4. प्रत्येक राज्य के सभी स्तर की पंचायती संस्थाओ के अध्यक्ष के पद अनुसूचित जातियो और जन जातियों की जनसंख्या के अनुपात में इन वर्गो के लोगों के लिए आरक्षित होगे उसी प्रकार तीनो स्तरो पर अध्यक्षों के लिए तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित होगे।
5. राज्यों के विधानमंडल, पंचायत संस्थाओ के तीन स्तरो पर सदस्यों और अध्यक्ष पदो पर पिछड़े वर्गो के लोगों के लिए आरक्षण की व्यवस्था कर सकते है।

व्यवहारिक समस्याऐं – पंचायती राज व्यवस्था में जहां सरकार ने महिलाओ का आरक्षण कर महिला भागीदारी को बढाने का काम किया है वह निसंदेह प्रसंशनीय कदम है।किन्तु प्रश्न यह उठता है कि महिला भागीदारी वास्तव में होगी या उसका स्वरुप सिर्फ दिखावा होगा या भागीदारी सिर्फ कागजो तक ही सीमित होगी। क्योकी हमारा समाज मानसिक रुप से इतना विकसित नहीं हुआ था, कि वह महिलाओ को आगे बढता देख सके।

1. समाजिक रीति रिवाज, स्थानीय रहन सहन प्रथाएँ, परम्परायें, परिवारिक पृष्ठ भुमि परिवार के सदस्यो की अपेक्षाऐ एवं सहयोग आदि कई कारण है जो उन्हे अपने कर्तव्य निर्वाहन में बाधा डालते है।
2. महिलाओ में शिक्षा व आत्म विश्वास की कमी।
3. सामाजिकजागरुकता की कमी।
4. पंचायतो अधिकारो और उत्तरदायित्वो का ज्ञान न होना।
5. महिला प्रतिनिधियों के अधिकारों का वास्तविक प्रयोग पति,पिता या भाई द्वारा निभाया जाता है।

सुझाव –

1. सबसे पहले महिलाओं को शिक्षा पर अत्यधिक जोर देना होगा उन्हें शिक्षा का स्तर बढाने में उन्हें अधिक से अधिक संख्या में निश्चित स्तर पर शिक्षित करना होगा।

* अतिथि विद्वान (राजनीति विज्ञान) शासकीय महाविद्यालय, निवाली, जिला–बड़वानी (म.प्र.) भारत
** अतिथि विद्वान (क्रीड़ा) शासकीय महाविद्यालय, निवाली, जिला–बड़वानी (म.प्र.) भारत

2. महिलाओ में आत्मविश्वास जाग्रत करना होगा उनसे प्रत्यक्ष व्यकितगत संपर्क कर उनहे उनकी क्षमताओ योग्यता के बारे में अवगत करना होगा।

3. हमारे उन धर्मग्रंथो पर प्रतिबंध लगा देना चाहिए जो नारी की समानता की बात नही करते या नारी उत्पीडन की बात करते है।

4. सरकार द्वारा यह स्पष्ट कर दिया जाये कि महिलाऐं पंचायती राज संबधी निर्णय लेने में स्वतंत्र है उन पर किसी प्रकार प्रतिबंध नहीं है।

5. परिवार के लोगों को परिवार की महिला सदस्य प्रतिनिधि होने के नाते जो दायित्व है, कर्तव्य है, उनको पूर्ण करने में सहयोग करने में मानसिक रुप से तैयार करना होगा स्वयं की उस महिला जनप्रतिधि से जो असीमित अपेक्षाएँ है उनको सीमित करने की सलाह देना होगी।

पंचायती राज की भूमिका एवं महिलाओं के आरक्षण का महत्व व सार्थकता – अपनी तमाम खमियों के पश्चात् भी महिलाओं की पंचायती राज में भागीदारी निःसंदेह प्रशंसनीय है, सराहनीय है, इसके कियान्वयन होने पर पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीणो के लिये अनुपम सौगात है। वर्तमान समय में शिक्षित महिलाऐ सता में आ रही है।

अतःमहिलाओ में अपने अधिकारों एवं दायित्वो के प्रति जागरुकता बढ़ रही है, पति, पिता व भाई का सहयोग न लेकर स्वयं अपने अधिकारो व दायित्वो का निष्ठावान होकर निर्वाह कर रही है।

निष्कर्ष – ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आर्थिक व सामाजिक विकास हेतु पंचायती राज व्यवस्था लागू हुई। किन्तु इसका सबसे बड़ा लाभ यदि वास्तविकता से लागू किया जाये तो महिला शक्ति को होगा। जिससे न केवल महिलाओ को समाज में समान स्थान मिलेगी। वही बल्कि महिला जागयति की और सग्रज्ञ में महिला भागीदारी का सरकार का सपना पूरा होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कोठारी रजनी पालिटिक्स इन इण्डिया ओरिएंट लागमेंस,नई दिल्ली, 1990
2. ग्राम पंचायत अधिनियम संशोधन सन 1996 के अनुसार।
3. डॉ.निकुंज प्रो.जे.के. जैन पंचायती राज व्यवस्था एक दृष्टिकोण।

****

हिंसा और तनाव फिर भी पंचायत चुनाव ?

डॉ. प्रदीप सिंह राव *

प्रस्तावना – यह बड़ी विडंबना है कि हमारे देश में चुनावों की प्रारंभिक आचरण संहिता नहीं है। मतदाता और उम्मीदवारों, दोनों का पहले आदर्श, प्रशिक्षण ग्रामीणों को दे। उनका लोक कल्याण यदि हिंसा के बीजों से सत्यापित किया जाएगा तो स्नेह, सौहार्द्र, सामजस्य, नेक दिली, भाईचारे की फसलों की जगह हर खेत हर खलियानों में बारूद–बंदूकों की फसलें लहलहाने लगेंगी....। करोड़ों–अरबों रूपयों के भारी–भरकम खर्च से करवाए जाने वाले पंचायत चुनावों का उद्देश्य क्या सार्थक हो रहा हैं? भारत से सामाजिक स्तर पर बढ़ रही हिंसा 'असहिष्णुता' पर तो अमरीकी राष्ट्रपति ने भी कहा है कि महात्मा गांधी हो तो तो उन्हें भी झटका लगता ...!!

त्रिस्तरीय पंचायत चुनाव में म.प्र. के कई हिस्सों में हिंसा, तनाव, लूटपाट और अराजकता से कई मतदान केन्द्र प्रभावित हुए। कई क्षेत्रों में जमकर पथराव, धमकियां और ग्रामीणों के हिंसक कोध्र की खबरें मीडिया के पास नहीं पहुंची या 'मीडिया मैनेज' हो गया। लेकिन अंदर का सत्य यह है कि पंचायत चुनाव दिनोंदिन 'टेढ़ी खीर' बनता जा रहा है। यह आगे चलकर निर्वाचन आयोग या प्रशासन के लिए 'नाक मे दम' साबित होगा। लोकतंत्र के इस महायज्ञ में 'राजनीति' गांवों की चौपालों से घर–घर में और झोपड़ियों में पहुंचकर 'आग' लगा रही है। क्या इस 'कटु सत्य' पर ध्यान दिया जाएगा?

कर्मचारी–अधिकारी किस तनाव डयूटी करते हैं, उनकी आत्मा ही जानती है। कई दूर–दराज के सुनसान पहाड़ी इलाकों में महिलाओं की डयूटी क्या सोच कर लगा दी जाती है? ऐसे दुर्गम स्थानों में 'ग्रामीण कूटनीति' आक्रोश दबाव और हिंसा का सामना साहसी महिला कर्मचारियों ने किया और मुंह बंद कर लिया। पत्रकारों के लिए पंचायत चुनाव बड़ी चुनौती थी.... यदि गांव–गांव और हर बूथ पर उनकी प्रत्यक्ष नजर होती और वे 'सच का आईना' दिखाते तो 'शांतिपूर्ण मतदान' का नाटकीय नकाब निकल जाता। लेकिन न तो किसी में ऐसा साहस है और न इतनी मेहनत–मशक्कत की जोशीली पत्रकारिता है। 'डंडे का डर' बड़ों–बड़ों को डरा देता है। 'बहुत कुछ' घटित हो जाता है और 'सब कुछ ठीक है' परोस दिया जाता है! प्रशासन खुद अपनी आत्मा से पूछे कि 'दबंगई' कितनी भी की हो लेकिन गांवों में 'राजनीति' ग्रामीण एकता में सिर फुटव्वल करवा रही है। सामान्य क्षेत्रों में भी अब 'असामान्य' और भिंड–मुरैना या नक्सली क्षेत्रों जैसे हालात 'राजनीति' से उभर रहे हैं। निर्वाचन आयोग को गंभीर चिंतन करना चाहिए और पर्यवेक्षकों को गोपनीय सच्ची रिपोर्ट देना चाहिए कि 'पंचायत चुनाव' में आवश्यक सुधार लाए जाएं। पंच–सरपंच के चुनाव या तो बंद किए जाएं या फिर इनकी 'मतगणना' ब्लॉक पर भारी पुलिस फोर्स के बीच करवाई जाए।

मासूम से कर्मचारियों को ग्रामीण 'दादागिरी' 'अहसज' 'तनावपूर्ण' और 'भयभीत' कर देती है। इस 'तनाव' से निपटने के लिए शिक्षक एक दिन का 'प्रशासक' बन सकता है?

निर्वाचन आयोग यह भी कर सकता है कि भविष्य में ऐसा 'साफ्टवेयर' डेवलप करे जिससे पंच–सरपंच के 'वार्ड वाईज' मतदान 'ईवीएम' से हो सके।

पंचायत चुनाव का जो स्वरूप उभरना चाहिए था वैसा न उभरते हुए यह धीरे–धीरे हिंसा, मनमुटाव मनभेद और ग्रामीण समाज में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, जातिगत वैमनस्यता का कारण बनता जा रहा है। क्या इस ज्वलंत प्रश्न पर सभी राजनीतिक दल मिल बैठ कर विचार करेंगे।

जिस प्रकार विद्यार्थियों की छात्र–संघ राजनीति में हिंसा के कारण राष्ट्रीय चिंता है (म.प्र. में तो छात्र–संघ चुनाव ही बंद हैं) उसी तरह पंचायत निर्वाचन में भी आदर्श जनमत की गांधीवादी परंपरा डाली जाए और 'राजनीतिक पहचान' के चुनाव निरस्त किए जाएं।

यह बड़ी विडंबना है कि हमारे देश में चुनावों की प्रारंभिक आचरण संहिता नहीं है। मतदाता और उम्मीदवारों, दोनों का पहले आदर्श प्रशिक्षण ग्रामीणों को दें। उनका लोककल्याण यदि हिंसा के बीजों से उत्पादित किया जाएगा तो स्नेह, सौहार्द्र, सामंजस्य, नेकदिली, भाईचारे की फसलों की जगह हर खेत हर खलिहानों में बारूद–बंदूकों की फसलें लहलहाने लगेंगी....। करोड़ों–अरबों रूपयों के भारी–भरकम खर्च से करवाए जाने वाले पंचायत चुनावों का उद्देश्य क्या सार्थक हो रहा है?

भारत में सामाजिक स्तर पर बढ़ रही हिंसा 'असहिष्णुता' पर तो अमरीकी राष्ट्रपति ने भी कहा है कि महात्मा गांधी हो तो उन्हें भी झटका लगता....।

निष्कर्ष – निर्वाचन आयोग के लिए त्रिस्तरीय पंचायत चुनाव करवाना बड़ी चुनौती बनती जा रही है। पुलिस–प्रशासन सहित लाखों कर्मचारियों पर 'चुनाव' का मानसिक बोझ चिंतनीय है। बेहद लंबी प्रक्रिया (3 से 4 माह) तक इन चुनावों को गाँव में संपन्न करवाना अत्यंत क्लिष्ट हो गया है।

एक–एक पंच के और सरपंच के चुनाव में ग्रामीणों ने क्या–क्या गिरवी नहीं रख दिया। लाखों रूपए प्रचार में फूंक डाले। जो परास्त हो गए उनकी तो लुटिया ही डूब गई। वे फिर से कर्ज में आ गए। वैमनस्य मतभेद, पुश्तैनी दुश्मनी, अंत:कलह से ग्रामीण सौजन्य–सद्भाव बिखर गए।

पंचायतीराज की अवधारणा है कि ' पंचायती राज ग्रामों तक राजनीतिज्ञों या जनप्रतिनिधियों के बीच अनुकुलता स्थापित करने के लिए लोकतंत्र का विस्तार है । पंचायतीराज 'सामाजिक समरसता' और लोक व्यवहार के अनुशासन की बानगी है। राजनीति को 'लोकनीति' में बदलते के बड़े माध्यम के रूप में इस चुनाव का उपयोग होना चाहिए।

भारतीय वैदिक कालीन पंचायतीराज की इस प्राचीन परंपरा ने कई सदियों से लोकतांत्रिक सदाचरण की संस्कृति को पोषित किया। इस कलयुग में 'कुरित राजनीति' ने पंचायत चुनाव को हिंसा और तनाव के कुलुबित वातावरण में झोंक दिया है। इसमें सुधार होना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. डॉ. चोपड़ा : स्थानीय प्रशासन।
2. डॉ. जोशी, डॉ. रूपा: भारत में पंचायती राज।
3. डॉ. शर्मा ए. – भारत में लोकतंत्र और निर्वाचन।
4. शर्मा आर – ग्रामीण प्रशासन।
5. Journal of Indian national academy of administration
6. अरूण श्रीवास्तव : भारत में पंचायतीराज

* प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय महाविद्यालय, सैलाना (म.प्र.) भारत

पण्डित मदन मोहन मालवीय के राजनीतिक विचार

डॉ. मीनाक्षी व्यास *

प्रस्तावना – पण्डित मदन मोहन मालवीय जी को हिन्दु संस्कृति की श्रेष्ठता में विश्वास था। उनके विचारों के अनुसार सच्चे भारतीय राष्ट्रवाद की आवश्यकता का तात्पर्य है जनता के सभी वर्गो के कल्याण और हितों का संवर्धन किया जावे एवं सब सम्प्रदायों के लोगों को एक राष्ट्र के रूप में संयुक्त करने के लिए लोगों में देश भक्ति तथा भाईचारे, बन्धुत्व की भावनाओं का परिवर्धन किया जाए।

मालवीय जी स्वतन्त्रता तथा संविधान प्रणाली में विश्वास करते थे। जहॉ जनता के प्रतिनिधियों को प्रशासन में भाग लेने की व्यवस्था होती है तथा जनता की इच्छाओं, आकांशाओं, आवश्यकताओं और शिकायतों को उचित मार्ग से प्रस्तुत किया जाकर सुप्रशासन द्वारा उन्हें समझा और पूरा किया जा सकता है। अत: पण्डित जी की अंग्रेजी प्रशासन से अपेक्षा थी की वे इस देश के प्रशासन को बुद्धि न्याय, श्रेष्ठ सिद्धान्तों के अनुरूप बनाए। वे 1919 का रोलेक्ट विधेयक पारित करने के विरोधी थे। वे वैयक्तिक स्वतन्त्रता के समर्थक व पोषक थे। मालवीय जी ने स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन किया। 1906 के भाषण में मालवीय जी ने कहा मैं स्वदेशी को अपने देशवासियों के प्रति अपने धार्मिक कर्तव्य का अंग ही समझता हूँ। देश में फैली दरिद्रता को दूर करने या कम करने तथा देशवासियों को रोजगार और भोजन देने के लिए स्वदेशी को अंगीकार करना भारतीयों का धार्मिक कर्तव्य है।

मालवीय जी ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए एक व्यापक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। जिसमें वे कहते है देश के नैतिक, बौद्धिक, आर्थिक साधनों का परिवर्धन करने के लिए राजनीतिक सुधारों हेतु आन्दोलन के साथ लोगें में लोक कल्याण एवं लोक सेवा की भावना उत्पन्न करना भी नितांत आवश्यक है। देश के विकास के लिए शैक्षणिक व औद्योगिक कायाकल्प भी जरूरी है। मालवीय जी ने इस बात पर बल दिया कि यदि आप हर भाई को इस बात की अनुभूति करा दे कि उसे भी अपने साथ ही प्रजा जनों के समान ही व्यवहार पाने का हक है अर्थात आपने अपने भविष्य का निर्माण स्वयं कर लिया है। और जिनके हाथों में आज देश की शक्ति है वे आपकी उचित मांगों का विरोध करने में कभी सफल नहीं होगें।

मालवीय जी का विचार था हमें हमारा 'स्वराज का जन्म सिद्ध अधिकार' आत्म निर्णय के सिद्धान्त को लागू करके तुरन्त ही प्रदान किया जाए। तथा अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की न्यायोचित व्यवस्था को कायम रखने का यही एक मात्र उपाय है। भारत को अधिकार है वह बिना किसी बाहरी दबाव या हस्तक्षेप के अपने राजनीतिक जीवन को अपनी इच्छानुसार चलाए। ये भारत के राजनीतिक भाग्य का निर्णय करने के लिए राष्ट्रीय आत्म निर्णय के सिद्धान्त को तुरन्त कार्यान्वित किया जाए। मालवीय जी मौन्तेस्क्यू और जैफरसन के सदृश उग्र और क्रांतिकारियों विचारकों के विरोधी एवं संवैधानिक के तरीके जनता को राजनीतिक एवं राजनीतिक कार्यक्रमों में भाग लेना चाहिए। वे समाजवाद से सहमत नहीं थे। वे आर्थिक मामलो में जाति वर्ण व्यवस्था के स्थान पर कार्य के विशेषीकरण के सिद्धान्त पर बल देते थे। उन्हें देश की प्रगति और सृजनात्मक, विकासात्मक व्यवस्था में विश्वास था। वे हिन्दु संस्कृति, सभ्यता से जुड़ा हुआ राष्ट्रवाद के सिद्धान्त में विश्वास करते थे साथ ही धार्मिक अन्य सम्प्रदायों के प्रति भी उदार, धर्मनिरपेक्ष, न्यायोचित व्यवहार करने हेतु जनता को प्रेरित करते थे। मालवीय जी सफाई, शिक्षा, औद्योगिक विकास, सहकारी आन्दोलन, शारीरिक शिक्षा, प्राविधिक शिक्षा एवं पंच निर्णय हेतु संगठन बनाने पर बल देते थे। एवं धर्म को जीवनदायिनी शक्ति, धार्मिक नियमों, व्रतों, प्रार्थना आदि से मनुष्य की नैतिक प्रगति होती है। वे कर्तव्य परायण, समर्पण, आराध्य के प्रति भक्ति आदि भावनाओं को राष्ट्रीयता का साधन मानते थे। उन्होंने महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में धार्मिक शिक्षा देने का आव्हान किया था।

कर्म ही उनका जीवन था। अनेकों संस्थाओं के जनक एवं सफल संचालक के रूप में उनकी अपनी विधि व्यवस्था का सुचारु सम्पादन करते हुए उन्होंने कभी भी रोष अथवा कड़ी भाषा का प्रयोग नहीं किया। भारत सरकार ने 24 दिसम्बर 2.14 को उन्हें भारत रत्न से अलंकृत किया।

मालवीय जी बड़े धर्मनिष्ठ सनातनधर्मी थे। उनका सदैव विश्व बंधुत्व में विश्वास था। उनका हिंदुत्व जातियता की परिधि से बहुत ऊपर समता, सहृदयता और सर्वग्राही प्रकृति का था। वे धर्म को देश के लिए शांति, समृद्धि और विकास का साधन बनाना चाहते थे। वे धर्म की उन्नति में देश और समाज की उन्नति और धर्म के उद्धार में देश का उद्धार मानते थे। मालवीयजी देश की एकता में उन्नति और विकास का प्रतिबिंब देखते थे। उनका कहना था, 'भारतवर्ष केवल हिंदुओं का देश नहीं है। यह तो मुस्लिम, ईसाई और पारसियों का भी देश है। यह देश तभी समुन्नत और शक्तिशाली हो सकता है, जब भारतवर्ष की विभिन्न जातियाँ और यहां के विभिन्न संप्रदाय पारस्परिक सद्भावना और एकात्मकता के साथ रहे, जो भी लोग इस एकता को भंग करने का प्रयास करते हैं, वे केवल अपने देश के ही नहीं, वरन् अपनी जाति के भी शत्रु हैं।'

मालवीयजी ने जब हैदराबाद के निजाम के सामने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के लिए कुछ दान स्वरूप देने को कहा, तो निजाम ने मना कर दिया। एक शवयात्रा के पीछे फेंके जाने वाले पैसों को मालवीय जी इकट्ठा करने लगे। लोगों ने जब इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि निजाम और उनके लिए–अर्थात् दोनों के लिए लज्जा की बात होगी कि हैदराबाद से वे खाली हाथ वापस लौटें। यह सुनकर निजाम को कुछ देने के लिए विवश होना पड़ा। मालवीय जी ने कहा –

मर जाऊं मांगू न अपने तन के काज।
परमारथ के कारने मोहि न आवे लाज।।

सन्दर्भ ग्रंथ सूंची :-

1. आधुनिक भारत के राजनीतिक विचारक – प्रकाश नारायण नाटाणी – पोइन्टर पब्लिशर्स, व्यास बिल्डिंग, एस.एम.एस. हाइवे जयपुर राजस्थान।
2. मदन मोहन मालवीय व्यक्तित्व एवं कृतित्व – मदनलाल पंचार – पंचशील प्रकाशन जयपुर फिल्म कॉलोनी चौड़ा रास्ता जयपुर 302003
3. मदन मोहन मालवीय –एम. आई. राजस्वी –मनोज पब्लिकेशन।

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (राजनीति विज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

पारिवारिक समायोजन में योग की भूमिका

ऋचा एस. मेहता *

प्रस्तावना – भारत में प्रचलित ध्यान व योग की विश्वभर में पहचान हैं। विश्व के कई देशों के ध्यान प्रेमी ध्यान व साधना के लिये आज भी भारत में स्थाई–अस्थाई शरण लिए हुए है। शास्त्रोक्त ध्यान पर वर्षों से आज तक समाज व समाज में अणवेशियों की नजर बनी हुई है। ध्यान का प्राचीन स्वरूप विद्यमान हैं परन्तु परिवेश में विधियों में तौर तरीकों में व्यापक बदलाव दिखाई पड़ता है। देश–विदेश में ध्यान व योग पर व्यापक शोध कार्य हुए है और निरन्तर हो रहे है। योग विधियों का सामाजिक जीवन व ध्यान विधियों का समाज पर प्रभाव पड़ता है।

व्यक्तिगत स्वास्थ्य जागरूकता बढ़ने से समाज में योग के प्रति आम व्यक्ति की चेतना निरन्तर बढ़ती जा रही है जैसे स्वामी रामेदव जी (हरिद्धार) निर्मलादेवी (दिल्ली) गुरूमाई चित्ताविलासानंद (गणेशपुरी) में अपने मुख्यालयों के अलावा इनके देशभर में साधना ध्यान केन्द्रित प्रसारित व क्रियाशील हो रहे है। इसके साथ यदि हम देखे तो पाते है कि योग, ध्यान आपस में एक सिक्के के दो पहलू है, स्वास्थ्य के लिए आज वर्तमान जिन्दगी में दोनों की आवश्यकता है। योग के प्रति सतत् बढ़ती क्रियाशीलता महानगरों से अब अंचलों तक स्थापित हो चुकी है। ग्रामीण अंचलों में योग पर वैज्ञानिक अध्ययनों का अभाव है, ज्यादा आवश्यकता ग्रामीण अंचलों में भी व्यक्ति को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करना है। आवश्यक हैं क्योंकि हमारी प्रथम सीढ़ी ग्रामीण आंचल ही है। यदि हम स्वास्थ्य के लिए योग का प्रारंभ ग्रामीण आंचल से करेगें तो नगर अपने आप स्वस्थ्य हो जाएगा। योग में आपको किसी दवाई की आवश्यकता नहीं है, बल्कि योग के द्धारा शरीर की आंतरिक मशीन की सफाई करनी है, यदि हम प्राचीन समय से साहित्य को देखे तो पाते है कि योग और ध्यान द्धारा ही सभी बीमारियों का उपचार किया जाता था।

'योग वशिष्ठ' अद्धेत वेदांत अति महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ में सुख और दु:ख जन्म और मृत्यु जीवन और जगत जड़ और चेतन लोक–परलोक बंधन और मोक्ष ब्रह्म और जीव, आत्मा और परमात्मा, आत्म ज्ञान और ज्ञान और अज्ञान, सत् और असत् मन और इन्द्रिय धारणा और ध्यान पर अपेक्षाकृत गंभीर चिंतन और सूक्ष्म निरीक्षण है।

अध्ययन विधि – प्रस्तुत शोध कार्य के लिए भारत माता मंदिर के परिसर में योग व ध्यान से जुड़ी 50 महिलाओं का अध्ययन कर उनके पारिवारिक समायोजन और योग की भूमिका का विश्लेषण किया। साक्षात्कार के द्धारा प्राथमिक सामग्री का संकलन किया गया।

विश्लेषण – शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के द्धारों को खोलती है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति में चेतना आती है। शिक्षा व्यक्ति की व्यक्तिगत सामाजिक क्रियाशीलता की भी अभिवृद्धि करती है। व्यक्ति के साथ यदि परिवार भी शिक्षित हो तो ऐसे परिवार का सामाजिक प्रभाव अन्य परिवारों से पृथक दिख जाता है।

सूचनादाताओं के परिवार के सदस्यों की शिक्षा दर्शाने वाली तालिका

क्र.	परिवार के सदस्यों की सामान्य शिक्षा प्राप्त	संख्या	प्रतिशत
1.	अशिक्षित परिवार	15	30
2.	उच्च शिक्षित परिवार	35	70
	योग	**50**	**100**

प्राय: देखा जाता है कि समाज अवधारणा व्यक्ति में सामुदायिक भावना उत्पन्न करती हैं। व्यक्ति समाज से जुड़कर समाज में सहयोग से अपने कार्यों में सहायता पाता है। अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को जिन्हें वे पूरी कर पाता है। कोई भी उपलब्धि शांति के बिना पूर्ण अर्थो में अनुभूत नहीं की जा सकती।

सूचनादाताओं द्धारा आत्मिक शांति पाने के लिये अपनाए उपाय दर्शाने वाली तालिका

क्र.	आत्मिक शांति पाने के लिए अपनाए गए उपाय	संख्या	प्रतिशत
1.	टेलीविजन से	03	06
2.	पर्यटन से	15	30
3.	योग का सहारा	32	64
	योग	**50**	**100**

ध्यान के प्रति चेतना संबंधी प्रश्नों में जो जानकारी प्राप्त करना चाही। व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से आवश्यक थी। कारण समाज दृष्टिकोण में ध्यान व योग के प्रति आये बदलाव को जानना और उसका आंकलन करना था।

सूचनादाताओं द्धारा आंतरिक बाह्य सुदृढता के लिए अपनाने उपाय दर्शाने वाली तालिका

क्र.	आंतरिक बाह्य सुदृढता के लिए अपनाए गए उपाय	संख्या	प्रतिशत
1.	नियमित व्यायाम से	15	30
2.	दवाईयों से	02	04
3.	नियमित ध्यान से	33	66
	योग	**50**	**100**

योग द्धारा मेरी दृष्टि में ध्यान एकमात्र योग है न तो कर्म कोई योग है, न भक्ति कोई योग है और ना ही ज्ञान कोई योग है। ध्यान योग है और आपकी

* सहायक प्राध्यापक (समाज शास्त्र) शासकीय संस्कृत महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र) भारत

प्रकृति कुछ भी हो ध्यान व योग के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। इसलिए पहला सुख निरोगी काया दूसरा सुख माया। निरोगी काया अपने आप होगी तो पैसा बहुत कमा सकते है यदि पैसा बहुत है और शरीर रोगी है तो पैसा गवाना ही पड़ेगा। इससे धन भी कम होगा इसीलिए यह कहा गया है कि स्वास्थ्य जीवन की सबसे पहली सीढ़ी है।

सूचनादाता द्धारा योग के कारण दर्शाने वाली तालिका

क्र.	आत्मिक शांति पाने के लिए अपनाए गए उपाय	संख्या	प्रतिशत
1.	ईलाज हेतु	09	18
2.	स्वस्थ्य बने रहने हेतु	32	64
3.	आध्यात्मिक विकास हेतु	09	18
	योग	**50**	**100**

आज संचार साधनों व माध्यमों के कई विकल्प समाज में आज प्रचलित है। ध्यान की जानकारी हेतु भी कई विकल्प अनुमानित के सम्मुख होते है। कुछ माध्यमों में शिक्षा अनिवार्य है जैसे – पढ़ना, कम्प्यूटर सर्च करना इत्यादि।

सूचनादाताओं द्धारा आत्मिक शांति पाने के लिये अपनाए उपाय दर्शाने वाली तालिका

क्र.	योग विधियों की जानकारी हेतु माध्यम	संख्या	प्रतिशत
1.	पुस्तकों के माध्यम से	10	32
2.	योग केन्द्र के माध्यम से	32	52
3.	टी.वी. कम्प्यूटर से	08	16
	योग	**50**	**100**

निष्कर्ष –

- स्वास्थ्य पाने के लिये उत्तरदाता ध्यान और योग का सहारा लेते है।
- उत्तरदाता बढ़ी संख्या में यह कहते है कि शिक्षित होने से हम इसका अधिक से अधिक लाभ ले सकते है।
- अशिक्षित मतदाताओं का कहना है कि हम योग के साहित्य का पूर्ण लाभ नहीं उठा पाते।
- वर्तमान में स्वास्थ्य की सबसे ज्यादा आवश्यकता है उसको योग के द्धारा ही पा सकते है।
- अधिकांश मतदाता मानते है कि समाज में ध्यान की प्रासंगिकता बढ़ रही है।
- उत्तरदाता का कहना है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी शिक्षा के अंदर योग का पाठ्यक्रम आवश्यक कर देना चाहिए।
- योग के सुखासन, योग निद्रा से हाई बल्ड प्रेशर और डायबिटिज को नियंत्रित किया जा सकता है।
- योग में ऐसे कई आसन है जिनके द्धारा शारीरिक बीमारियों को नियंत्रित किया जा सकता है।
- बढ़ी संख्या में योग अनुयायी नियमित योग करने के पक्ष में है।
- समाज में ध्यान व योग के प्रति चेतना व प्रांसगिकता तो है पर पिछले 8–9 वर्षो में योग के प्रति अत्यधिक रूझान बढ़ा है।

ध्यान और योग किसी धर्म विशेष का नहीं सम्पूर्ण मानव का हितेषी है। भारतीय समाज में परम्परा परिवारों के सामने कई परिस्थिति जन्य समस्याएँ सामने खड़ी है जिनसे सामाजिक संरचना के सामने पारिवारिक विघटन का प्रश्न मुँह खोले हुए खड़ा है।

ध्यान एवं योग में बड़े परिवारों में अपने दायित्वों के बढ़ने के बावजूद भी परिवार के सदस्यों के व्यक्तिगत स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य के प्रति व्यक्ति को जागरूक बना रखा है। अध्ययन में पाया गया कि योग और ध्यान से जुड़े परिवारों में बेहतर स्वास्थ्य बनाये रखने हेतु क्रियाशीलता और जागरूकता स्पष्ट दिखाई देती है। मनुष्य के जीवन विकासक्रम में कई परिवर्तन आये हैं। नकारात्मक परिवर्तनों ने जीवन को अकर्मण्य तथा आलसी बना दिया है जबकि सकारात्मक परिणामों ने जीवन शैली को ऊँचा उठाया है परन्तु साधनों की प्रचुरता ने संकटों में वृद्धि की। इस समय समाज के जिस वर्ग ने सामाजिक परिस्थितियों का सामना अपने व्यवहार नियमन करके किया वह वर्ग अंतर और बाह्य दोनों लाभान्वित हुआ। ध्यान व्यक्ति के सोच को कुछ लोगों ने असामान्य दर्शाया किन्तु योग और ध्यान के द्धारा परिवर्तित व्यक्ति समिष्ट के एकांकार होकर अपनी सर्वव्यापकता को अनुभूत करने लगा और इस आलौकिक अवस्था में योगी व्यक्ति बूंद और सागर के अंतर को समाप्त कर अपने जीवन स्वयं को दिशा देने लायक बना।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. व्यक्तिगत सर्वे के आधार पर।

****

नि:शक्त व्यक्तियों का संवैधानिक एवं विधिक रूप से सशक्तिकरण

डॉ. ज्योति मेहता *

प्रस्तावना – स्वस्थ बच्चे का जन्म अनेक बातों पर निर्भर करता है। वैश्विक स्तर पर बढ़ती जनसंख्या के कारण अनेक समस्याऐं उत्पन्न हो गई है। जिसमें कुपोषण, प्रदूषित वातावरण, विषम प्रवृत्तियाँ प्रमुख है। नि:शक्त व्यक्तियों में शारीरिक रूप से विकलांग, हाथ-पैर की अपंगता, अंधापन एंव मानसिक रूप से कमजोर व्यक्ति भी शामिल है। नि:शक्त से तात्पर्य है वह शारीरिक अक्षमता जो किसी शारीरिक अथवा मानसिक कारण से उत्पन्न हुई हो, और व्यक्ति के स्वछन्द क्रियाकलापों में बाधा डालती हो।

विकलांगता के प्रकार –

(1) जन्मजात विकलांगता – ऐसे बच्चो में जन्म के समय से ही शारीरिक विकृतियाँ पाई जाती है, जैसे हाथ पैर टेडे होना, पतले व कमजोर होना, शारीरिक अंगो का पूर्ण विकास न होना।

जन्म के समय की विकृतियों के निम्न कारण हो सकते है:-

1. गर्भावस्था के पहले 03 महीने में माता को विषाणु संक्रमण होना।
2. माता-पिता के बीच रक्त अयोग्यता का होना।
3. प्रसवकाल का लम्बा या कठिन होना।
4. गर्भावस्था के समय पर लगने वाले आवश्यक टीकाकरण का न होना।
5. संतुलित आहार का अभाव।
6. अनेक बार महिला द्वारा चिकित्सक सलाह पर ली जाने वाली दवाओं के बाद भी गर्भपात नहीं होता तो ये दँवाए पेट में पल रहे बच्चे के लिए हानिकारक होती है और बच्चे के शरीर के अंगो के विकास को प्रभावित करती है।

1. जन्मजात विकलांगता
2. अस्थिबाधित विकलांगता
3. दृष्टिबाधित विकलांगता
4. वाक एंव श्रवण बाधित विकलांगता
5. मानसिक विकलांगता

इस प्रकार के बच्चो के जन्म लेने के पीछे अनेक माता-पिता का उत्तरदायित्व होता है और किसी महिला द्वारा अधिक बच्चो के जन्म देने पर गर्भावस्था में पोषण की कमी एवं गर्भ समापन के लिए चिकित्सक द्वारा दी जाने वाली दवाओ से गर्भपात नहीं होता है तो ऐसी दवाए पेट में पल रहे बच्चे के अंगो के विकास को प्रभावित करती है जिससे अल्प वृद्धि नहीं बच्चे के जन्म लेने की संभावना बढ जाती है। अनेक बार उच्च शिक्षित या कामकाजी महिलाएँ अपने बच्चे को स्तन पान से वंचित रखती है। ऐसी स्थिति में बच्चे का शारीरिक व मानसिक विकास प्रभावित होता है और उनकी रोग प्रतिरोधक शक्ति कम होने के कारण बच्चे कई रोग से पीड़ित रहते है तथा बार-बार बीमार पड़ने से मानसिक रूप से कमजोर हो जाते है।

नि:शक्तता का एक अन्य कारण बीमारी या दुर्घटना भी है। प्राय: यह देखा गया है कि नि:शक्त व्यक्ति के प्रति समाज का दृष्टिकोण अच्छा नहीं रहता है व उसे हीन दृष्टि से देखते है व उसकी विकलांगता को उसके पूर्व जन्म में किये गये कृत्यो का फल मानते है, मानव तो ईश्वर द्वारा रची एक सुंदर रचना है, तो श्ला कोई रचनाकार अपनी रचना को विकृत क्यों करेगा, विकलांगता तो व्यक्ति का प्रकृति एंव पर्यावरण के साथ सामंजस्य का न होने का एंव मानवीय भूल व विभिन्न कारणो से होने वाली दुर्घटनाओ का परिणाम है। विकलांगता एक ऐसी विडम्बना है जो विकलांग व्यक्ति को सहनी पड़ती है तथा उनके साथ विशेषकर काम के अधिकार से, शिक्षा केअधिकार से स्वास्थ के अधिकार से, रोजगार के अवसर आदि के मामलो में भेदभाव रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयास: नि:शक्तता मनुष्य में शारीरिक रूप से कमी लाती है तथा मानसिक आघात पहुँचाती है पर नि:शक्तता के आधार पर किसी व्यक्ति को उसके अधिकारो से वंचित नहीं किया जा सकता क्योंकि वे भी समाज के अभिन्न अंग है। अत: नि:शक्तजनो को शारीरिक एंव मानसिक रूप से सशक्त किया जाए। इसके लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी मानव अधिकारो की सार्वभौमिक उद्घोषणा में भी उनके अधिकारो की घोषणा की जिसके बाद अनेक देशो ने भी नि:शक्त व्यक्तियो के अधिकारो के लिए कानून बनाकर उनका विधिक सशक्तीकरण किया।

अपने संकल्प 3405(xxx) जो उसने 1975 में पारित किया था। उसके माध्यम से महासभा संयुक्तराष्ट्र संघविकास प्रोग्राम(UNDP) यह निर्देश देती है कि वह विकासशील देशो को मदद देते समय यह सुनिश्चित करें कि यह सहायता समाज के जो दुर्बल वर्ग है उन तक भी पहुँचे।

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने वर्ष 1981 को नि:शक्त व्यक्तियो के वर्ष के रूप में मनाने का निर्णय लिया। इसका महत्वपूर्ण परिणाम नि:शक्त व्यक्ति वर्ष और विश्व कार्य योजना दोनों में सम्मिलित रूप से मिलकर नि:शक्त व्यक्तियो के अधिकारो के क्षेत्र में प्रगति के लिए सशक्त प्रेरणा का काम किया। 1983 से 1992 का समय नि:शक्त व्यक्तियो को संयुक्त दशक के रूप में मनाया गया। महासभा ने पक्षकार-राज्यो से निवेदन किया था कि वे इस अवधि को नि:शक्त व्यक्यिो के लिए विश्व कार्य योजना कार्यान्वयन के लिए उपयोग करे। प्रत्येक 3 दिसम्बर को विश्व नि:शक्तता दिवस के रूप में मनाया जाता है।

भारतीय संविधान में नि:शक्तो का संरक्षण: संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक न्याय प्रदान करने की संकल्पना की गई है तथा व्यक्ति की गरिमा की बात कही गई है । संविधान के अध्याय तीन में मूल अधिकारो का उल्लेख किया गया है, जो सभी व्यक्तियो को जिसमें नि:शक्त व असहाय लोग भी शामिल है को प्राप्त है। संविधान के अध्याय 4 में राज्य के नीति-

* प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

निर्देशक तत्वो का उल्लेख है जिनमें कल्याणकारी राज्य के आदर्श समाहित किए गए है। संविधान के द्वारा नि:शक्त व्यक्यिो को निम्न मूल अधिकार प्रदान किए गए है।

1. समानता का अधिकार (अनुच्छेद-14)
2. भेदभाव से संरक्षण (अनुच्छेद-15)
3. अवसर की समानता (अनुच्छेद-16)
4. प्राण एंव दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद-21)
5. नि:शुल्क एंव अनिवार्य शिक्षा का अधिकार

1. अनुच्छेद 39(घ) को 42 वें सविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया। अनुच्छेद 39(क) राज्ये को निर्देश देता है कि वह सुनिश्चित करे कि विधिक व्यवस्था इस प्रकार काम करें कि सभी को अवसर के आधार पर सुलभ हो और वह विशिष्टतया आर्थिक या अन्य निर्योग्यता(नि:शक्तता) के कारण कोई नागरिक न्याय पाने से वंचित न रह जाए तथा उपर्युक्त विधान द्वारा नि:शुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करें।

2. अनुच्छेद 41 राज्य को यह निर्देश देता है कि वह अपनी ... और विकास की सीमाओ के भीतर प्रत्येक व्यक्ति के लिए रोजगार पाने, शिक्षा पाने तथा बेकारी, वृद्धावस्था, बीमारी और अंगहानित तथा अनर्ह अभाव दशाओ में सार्वजानिक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त करने का कार्य साधक उपबंध करेगा।

3. अनुच्छेद 42 राज्य से अपेक्षा करता है कि वह कर्मकारो को काम, निर्वाह, मजदूरी, शिष्ट जीवन स्तर और उसका संपूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली प्रशासनिक तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा और गावों में कुटीर उद्योग को बढ़ाने का प्रयास करेगा।

नि:शक्तता एंव भारतीय न्याय पालिका - उच्चतम न्यायालय ने समय-समय पर नि:शक्त व्यक्यिो के अधिकारो को लागू करने के लिए केन्द्र एंव राज्य सरकारो को दिशा निर्देश जारी किए है।

1. प्रशासनिक सेवाओ में भागीदारी - नेशनल फेडरेशन ऑफ ब्लाइंड बनाम संघ लोक सेवा आयोग(1993) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों को भारतीय प्रशासनिक सेवा की नौकरियों में प्रतिद्वंदिता का हक है तथा सरकार का यह दायित्व है कि इसके लिए उन्हे **ब्रेल लिपिक** या लेखक की सहायता उपलब्ध करें।

2. आहार पाने का अधिकार - पी.यू.सी.एल. बनाम भारत संघ (2000{5}S.S.C.30) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि राज्य के सभी वृध्दो, दुर्बल, विकलांग, निराश्रम महिला, निराश्रम बालको, गर्भवती महिलाओ को उन्हें अनुच्छेद 21 के अधीन राज्य द्वारा खाद्य सामग्री मुफ्त पाने का अधिकार है जिससे भूख व कुपोषण से होने वाली मृत्यु से बचाया जा सके।

3. कार्य के दौरान चोट पर क्षतिपुर्ति - बम्बई उच्च न्यायालय ने एक कर्मकार, जो उद्योग में कार्य के दौरान एक हाथ की दो उंगलियाँ कुचल जाने के कारण अंपग हो गया था, को नियोजक से शारीरिक क्षति के लिए क्षतिपुर्ति दिलाई गई।

4. विधिक उपचार पाने का अधिकार - उच्चतम न्यायालय ने एक जनहित में यह अवधारणा प्रस्तुत की कि, जहाँ किसी संवैधानिक या विधिक अधिकार के अतिक्रमण के कारण किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियो के किसी निश्चित वर्ग को विधिक अधिकार से वंचित किया जाता है अथवा किसी संविधानिक या विधिक प्रावधान के उल्लंघन में ऐसे व्यक्ति तथा वर्ग पर कोई भार डाला गया है ऐसा व्यक्ति या व्यक्तियों का वर्ग गरीबी, विवशता, असहायता, निर्योग्यता अथवा सामाजिक या आर्थिक असुविधा के कारण उपचार के **निमित** न्यायालय में जाने में असमर्थ है तो जनता का कोई भी व्यक्ति अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय एंव अनुच्छेद 32 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय में आवेदन करके ऐसे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के लिए उपचार प्राप्त कर सकता है।

5. विक्षिप्त व्यक्तियों की अवैध कारावास से उन्मुक्ति - वीणा सेठी बनाम बिहार राज्य (AIR 1983 S.S.C.335) के लोकहित वाद में विधिक सहायता समिति ने एक पत्र द्वारा न्यायालय का ध्यान इस और दिलाया कि कुछ कैदी जेल में 19 वर्ष से 37 वर्ष की लम्बी अवधि तक रोक कर रखे गये थे क्यों कि वे विचारण के समय स्वस्थचित नहीं थे, किन्तु न्यायालय ने स्वास्थचित्त हो जाने पर भी अधिकारीयो द्वारा उन्हें मुक्त करने की कोई कार्यावाही नहीं की थी। न्यायालय ने इस पत्र को याचिका के रूप में स्वीकार करते हुए उक्त कैदियो को तुरंत रिहा किए जाने का आदेश दिए।

6. नि:शक्तजनों का विधिक संरक्षण - भारत सरकार द्वारा नि:शक्त व्यक्तियों को समाज में समान अवसर और उनके अधिकारो को संरक्षण और शासन में भागीदारी प्रदान करने के लिए नि:शक्त व्यक्ति समान अवसर, अधिकारो का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी अधिनियम, 1995 बनाया। इसमें केन्द्र एंव राज्य सरकारो को यह अनुमति प्रदान की गई है वे अपनी क्षमता व संसाधनो के अनुसार नि:शक्तो के उनके हित में सुविधाए प्रदान करें सुविधाओ का सृजन कर उन्हें मदद प्रदान करे। जिससे वे देश एंव समाज की मुख्य धारा से जुडकर सम्मान पूर्ण जीवनयापन करें।

केन्द्र व राज्य सरकार विकलांग व्यक्तियों के लिए पदो की पहचान कर आरक्षण प्रदान करना व सुरक्षा प्रदान करना जिन पर वे बिना बाधा के कार्य कर सकते है -

क. ऐसे पदो की पहचान करना जो विकलांगो के लिए आरक्षित किये जा सकते है।
ख. प्रत्येक स्थापना में 3: आरक्षण की व्यवस्था रखना।
ग. कोई कर्मचारी विकलांग हो गया है की सेवाए समाप्त नहीं की जा सकती है।
घ. विकलांगता के कारण पदोन्नति से वंचित नहीं किया जा सकता है।
इ. उच्चतम आयु सीमा में शिथिलता प्रदान करना।

नि:शक्त व्यक्ति अधिनियम 1995 केन्द्र व राज्य सरकार नि:शक्त व्यक्तियों के हित में अन्य विषयो में परिवर्तन की व्यवस्थाएँ प्रदान करता है जैसे-

क. मकान, करोबार, विशेष विद्यालयों की स्थापना हेतु रियायती दरो पर भूमि आवंटित करने हेतु योजना बनाना।
ख. रेल के डिब्बो, बसो, जलयानो, वायुयानो को एंव उनमें शौचालयो को इस प्रकार बनाना जिससे व विकलांग व्यक्ति जो व्हील चेयर का उपयोग करते है सहजता से पहूँच सके।
ग. दृष्टि बाधिको हेतु रेल्वे प्लेटफार्म को उत्कीर्ण करना।
घ. चलनबाधिता से प्रभावित के लिए व्हीलचेयर हेतु रास्ता बनाना।

नि:शक्त व्यक्ति अधिनियम 1995 के तहत विकलागों को न्याय दिलवाने के उद्देश्य से मुख्य आयुक्त व आयुक्त की व्यवस्था की है-

क. नि:शक्त व्यक्ति के आवेदन या स्वप्रेरणा से नि:शक्त व्यक्ति को अधिकारो से वंचित किए जाने के कारणो की जाँच करना।
ख. नि:शक्तो के हित में कार्य करने के लिये आबंटित निधियो की मानिटरिंग करना।

न्यायालयिन शक्तियो का होना– मुख्य आयुक्त एंव आयुक्तो को नि:शक्त व्यक्ति अधिनियम 1995 के तहत अनके कार्य के निर्वहन के प्रयोजन के लिए, निम्न विषयो में वही शक्तियाँ प्रदान की गई है जो सिविल प्रक्रिया संहिता 198 के अधीन वाद विवाद का विचारण करते समय किसी कोर्ट में निहित है –

क. साक्षियो का समन करना और कराना।
ख. किसी दस्तावेज के प्रकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा रखना।
ग. किसी न्यायालय या कार्यालय के किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की अपेक्षा करना।
घ. शपथ पत्रो पर साक्ष्य ग्रहण करना।
ड़. मुख्य आयुक्त और आयुक्त के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही भारतीय दण्ड संहिता की धारा 193 और धारा 228 के अर्थ में न्यायिक कार्यवाही होगी और मुख्य आयुक्त और आयुक्त को समक्ष प्राधिकार की दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 195 और अध्याय 26 के प्रयोजनो के लिए सिविल न्यायालय समक्ष जाएगा।

नि:शक्त व्यक्ति अधिनियम 1995 के तहत नि:शक्तो को नि:शक्त व्यक्ति अधिनियम 1995 के तहत नि:शक्तो को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है।

निष्कर्ष – नि:शक्तता पीडित व्यक्ति के जीवन की ऐसी विवशता है जिसमें उसका कोई दोष नहीं है यह तो उसके जीवन की प्राकृतिक बिडम्बना है जिसे उसे जीवन भर अपने साथ ढोना पडता है, किंतु नि:शक्तता का अपने जीवन की बाधा नहीं समझे अपना मनोबल समझे।

न्याायमूर्ति के.जी. बालकृष्णन ने स्वीकार किया की कानून की सही पालना नहीं हो पा रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. समाज कल्याण, क्रेन्द्रिय समाज कल्याण बोर्ड।
2. 2010 भारत का संविधान डॉ जे.एन. पाण्डेय।
3. नि:शक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995

****

वर्तमान समाज और नैतिक मूल्य

डॉ. कमलसिंह मालवीय *

प्रस्तावना – सम्पूर्ण जीवों में मनुष्य जीवन को अन्य प्राणियों और वनस्पतियों से भिन्न माना जाता है। यह भी अवधारणा है कि मनुष्य जीव जगत की सर्वोच्च विकसित प्रजाति है। मनुष्य में समाजीकरण की प्रवृति अधिकतम पायी जाती है, इसी कारण उसे एक सामाजिक प्राणी माना जाता है। मनुष्य ने अपनी सामाजिकता को बनाएं रखने के लिए अलग-अलग नियम, प्रथाएं एवं परम्पराएं बनाकर अपने आप को सामाजिक प्राणी बनाने में सक्षम हो पाया है।

मानव भिन्न -भिन्न परिवेष में रहते हुए विविध भाषा, संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाजों को अपनाता है। इन सभी को सीखने तथा समाज में संचालित करने के लिए मानव को समाजीकरण का ही सहारा लेना पड़ता है। जिससे उसके बनाए नीति- नियम एवं सामाजिकता कायम रहे। समाज अपने मूल्यों को कभी खोने नहीं दे, समाज में व्यक्तियों के द्वारा अपने आस-पास के परिवेष तथा सामाजिक पर्यावरण को बनाएं रखने और समाज में शांति-सोहार्द बनाए रखने के लिए उसने नैतिक मूल्यों का विकास किया और इन नैतिक मूल्यों को समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य किया। जिससे वह अपने समाज को एक स्वच्छ तथा शांतिप्रिय समाज बना सके। हमारे नैतिक मूल्य हमें एक सभ्य समाज की ओर अग्रसर करने की शिक्षा प्रदान करते है।

हम हमारे नैतिक मूल्यों की व्याख्या त्रि-स्तरीय रूप में कर सकते है। व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर मूल्यों को निर्धारित करना और उनके निर्वहन के लिए समग्र प्रयास करना, स्वस्थ समाज की मूलभूत आवश्यकता है। जीवन मूल्यों को परिभाषित करते हुए उनका विस्तार से अध्ययन करना किसी भी चिंतनशील समाज के लिए प्राथमिक कार्य होना चाहिए। जैसे-जैसे इतिहास आगे बढ़ता है, सामाजिक परिवर्तन आते है, वैसे-वैसे मनुष्य की जीवनशैली बहुत अधिक प्रभावित होती है। लोगों की सोच, सामर्थ्य और दक्षताएं बदलती रहती है। आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियां भी परिवर्तन की इस दौड़ में शामिल हो जाती है।

नैतिक मूल्य- जब भी मूल्यों की बात होती है,कई शब्द अलग-अलग संदर्भ में उपयोग में लाए जाते है,जैसे- जीवन मूल्य, नैतिक मूल्य और मानवीय मूल्य। संभवत: इन सभी शब्दों के अर्थ और अभिप्राय एक ही है।

भारतीय संस्कृति, के अनुसार जीवन में मूल्य ही सत्य होते है। जीवन की शुद्ध क्रियाएं धर्म कहलाती है। धर्म में शांति, प्रेम और अहिंसा समाहित रहते है। ये पाँच तत्व-शांति,प्रेम और अहिंसा मानव मूल्य माने जाते है। यह भी माना जाता है कि इन मूल्यों का निर्धारण धर्म करता है। विभिन्न विद्धानों एवं चिंतकों के द्वारा नैतिक मूल्यों को अलग-अलग प्रकार से परिभाषित भी किया गया है-

अरबन के अनुसार-' मूल्य उसे कहते है जिनसे मनुष्य की इच्छाओं की तृप्ति होती है।'

राधाकमल मुकर्जी-' मूल्य समाज द्वारा अनुमोदित उन इच्छाओं और लक्ष्यों के रूप में परिभाषित किये जा सकते है, जिन्हें अनुबंधन, अधिगम या समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा आत्मसात किया जाता है और जो व्यक्तिगत मानकों तथा आकांक्षाओं के रूप में परिवर्तित हो जाते है।'

भगवत गीता,जिसे हम मानवीय संबंधों, दृष्टिकोण,दर्शन,ज्ञान और उपदेश का सर्वोत्कृष्ट और सर्वकालिक ग्रंथ मानते है, उसमें 26 मानवीय मूल्यों की विवेचना की गई है।

हमारे दूसरे सर्वमान्य धार्मिक ग्रंथ वाल्मीकि रामायण में मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण व्यक्तित्व को परिभाषित किया गया है। यह माना गया है कि ऐसा व्यक्तित्व निम्न गुणों से आभूषित होगा। व्यक्ति जिसमें सद्गुण हो,सामर्थ्य हो,जो धर्म में आस्था रखता हो,जिसमें कृतज्ञता का भाव हो, जिसका व्यवहार उभय हो, जिसमें सभी के प्रति करूणा हो, जो विद्धान, योग्य और प्रसन्नचित हो, स्वयं को पूर्णरूप से जानता हो, जिसने क्रोध पर काबू पा लिया इत्यादि।

इन ग्रंथों में मानवीय उत्कृष्टता के मानक भी वर्णित किए गए है। समुद्र के समान व्यापक हिमालय के समान दृढ, विष्णु के समान शूर-वीर, चन्द्र के समान, सौम्य एवं आनंददायक, पृथ्वी के समान धैर्यवान, कुबेर के समान दानी और धर्म के समान सत्यवादी व्यक्ति को उत्कृष्ट व्यक्ति माना गया है।

भारतीय जीवन मूल्यों की विशेषता-आदर्श और यथार्थ, बाह्य और आंतरिक, धर्म और कर्म, भोग और त्याग,समाज और देश बुद्धि और हृदय, लोक और परलोक, कर्तव्य और अधिकार, अर्थ और काम, मानव और प्रकृति में संतुलन और सही समन्वय जीवन में औचित्य का निर्धारण करता है। प्रकृति में तत्व,रज और तम का उचित अनुपात ही प्रकृति की नियमों से परिचालित करता है। इस अनुपात में अनावश्यक परिवर्तन आने पर प्रकृति विनाश की और जा सकती है।अत: स्पष्ट है कि मूल्य हमारे समग्र व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक है। मूल्य ही व्यक्ति को सदाचारी अथवा कदाचारी बनाते है। मूल्यों की सही पहचान और उनका अनुसरण हमें सामाजिक स्तर पर मान्यता प्रदान करता है।

नैतिक मूल्यों का विकास- नैतिक मूल्यों के बारे में सामान्य अवणारणा है कि औपचारिक रूप से सिखाया या पढ़ाया नहीं जा सकता है। मूल्य हमें सही जीवन की अनुभूति प्रदान करते है। इन्हें केवल महसूस किया जा सकता है। शाष्वत होते हुए भी इनका कोई स्वरूप नहीं है। यहीं कारण हैकि नैतिक मूल्यों की शिक्षा एक कठिन चुनौती है। किसी व्यक्ति के जीवन को संवारने में तीन संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है- परिवार, शिक्षण संस्थाएं

* अतिथि विद्वान (समाजशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, थांदला, जिला - झाबुआ (म.प्र.) भारत

और समाज। यह त्रिकोण बच्चों के समाजीकरण के साथ उनमें मूल्य स्थापित करने का कार्य भी करता है।

परिवार बच्चे की प्रथम पाठशाला होती है और माँ उसकी प्रथम गुरू। परिवार में रहकर व्यक्ति अपने परिवार तथा धर्म के मूल्यों एवं प्रथाओं को सिखता है। परिवार में रहकर ही व्यक्ति का पूर्ण समाजीकरण होता है। परिवार द्वारा दिए गए संस्कार हमारे जीवन भर साथ रहते है और परिवार के संस्कारों की छाप हमारे व्यक्तित्व पर स्पष्ट दिखाई देती है। प्रारंभ में मूल्यों की पहचान परिवार और माता-पिता के माध्यम से ही बच्चे तक पहुंचती है। परिवार के बाद मनुष्य के समाजीकरण की दूसरी कड़ी के रूप में शैक्षणिक संस्थाएं विशेष महत्व रखती है। यह मनुष्य के जीवन का दूसरा पढ़ाव होता है।,जिसमें पारिवारिक अनौपचारिक शिक्षा की ओर कदम रखता है। यहाँ वह हर प्रकार के मूल्यों को सिखता है। हर वातावरण से परिचित होता है। वह अपने गुरू और सहपाठियों के सम्पर्क में आता है। हर प्रकार के क्रियाकलाप इस संस्थागत शिक्षा के अर्न्तगत करता है। यही पर उसकी सामाजिकता तथा पारिवारिक संस्कारों की छाप हमको देखने को मिलती है। यह अपने बड़ों एवं गुरूजनों से सौहार्दपूर्ण व्यवहार करता है, तो यहीं अपने प्रतिद्वंदी के साथ प्रतियोगात्मक व्यवहार सीखता है। कहा जाता है कि एक अच्छा शिक्षक हमारा जीवन बना देता है और एक खराब सहपाठी जीवन की दिशा बदल देता है।

उपसंहार- नैतिक मूल्य मनुष्य के सुखी,संयमित समाजोपयोगी जीवन के लिए सशक्त आधार प्रदान करते है। नैतिक मूल्यों में कमी सामाजिक विघटन की ओर संकेत करती है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी नैतिक मूल्यों की परिभाषएं बदलती रहती है,लेकिन कुछ मूल्य ऐसे है जो शाश्वत है, प्रत्येक काल और समय में उनका अस्तित्व अनिवार्य है। ऐसे मूल्यों की रक्षा करना, उनके संवर्धन के प्रयास करना और उनकी कमी को पुरा करने के लिए उन्हें पुन: प्रतिष्ठित करना, प्रत्येक परिवार ,समाज और राष्ट्र का कर्तव्य है। आने वाला युग युवा पीढ़ी का युग होगा। हमारे देष में 70 प्रतिशत अंश युवा पीढ़ी का है। युवा पीढ़ी ही देश का भविष्य निर्धारित करेंगी। यदि इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए तैयार है तभी हम देश के भविष्य को सुरक्षित मान सकते है। यदि युवाओं में देश भक्ति का जज्बा न हो ,समाज के प्रति दायित्वबोध न हो और उनका अपना व्यक्तिगत आचरण व्यवहार संयमित न हो तो वे किस प्रकार अपना और राष्ट्र का हित कर पाएंगे? यह गंभीरता का विषय है कि आज हम युवा को शिक्षित,सद्गुणी और सदाचारी नहीं बना पाए, तो शायद हम हमारे नैतिक मूल्यों से कही कोसो दूर चले जाएंगे और हमें इतिहास भी माफ नहीं करेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. तिवारी शुभा,(2014) नैतिक मूल्य और भाषा प्रथम संस्करण, म.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी,भोपाल।
2. तिलक लोकमान्य बाल गंगाधर,(अनुवादक-माधवराव सप्रे) (2006) गीता रहस्य भाग-2 श्रीमद् भगवत् गीता,प्रथम संस्करण, अर्चना पब्लिकेशन दिल्ली।
3. मैनी धर्मपाल एवं शर्मा सत्येन्द्र (2009), मानव मूल्य व्याख्या कोष (आधूनिक मूल्य भाग-2)प्रथम संस्करण किताब घर दिल्ली।
4. तीर्थ आचार्य वेदांत (2008) यजुर्वेद ,द्वितीय संस्करण मनोज पब्लिकेशन दिल्ली।

****

वृद्धावस्था सुरक्षा कानून और समाज

प्रो. प्रिशिला अन्द्रेय्स *

प्रस्तावना – जीवन के अनेक सोपान हैं – बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था। बाल्यावस्था अर्जन का जीवन है, युवावस्था उपभोग का जीवन और वृद्धावस्था तपस्या का जीवन है। मानव उत्पत्ति के साथ ही अनेक समस्याओं को अपने साथ लेकर आया। कालान्तर में मनुष्य ने अपनी रक्षा के उपायों की खोज की। साथ ही सामाजिक और पारिवारिक जीवन का भी विकास हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन आयु में वृद्धि हुई तथा 60 वर्ष की आयु को वृद्धावस्था की परिधि में लाया गया।

वृद्धावस्था मानव जीवन का अंतिम पड़ाव है। यह वह पड़ाव है जिसमें शरीर शिथिल हो जाता है तथा शारीरिक अंगों के कार्यों की कुशलता और क्षमता कम हो जाती है। व्यक्ति समाज से अलग-थलग होने लगता है। इतिहासकार जमीर का विचार है कि प्राचीनकाल में जर्मन समाज में 60 वर्ष से अधिक आयु में वृद्धों का मार दिया जाता था, अनेक देशों और समाजों में वृद्ध व्यक्तियों को परिवार और समाज पर भार समझा जाता था और इस प्रकार उनकी उपेक्षा की जाती थी।

समाज का दृष्टिकोण – बुढ़ापा, जीवनक्रम के प्रभाव में एक नया मोड़ है। नई परिस्थितियों के साथ तालमेल कर जीवन बिताने में ही सुख है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है, समाज में भी सहज परिवर्तन होते रहते हैं। भारतीय समाज में लम्बे समय से बुजुर्गों का सम्मानित स्थान रहा है। परिवार में उनके अनुभवों एवं मार्गदर्शन की अहम् भूमिका रही है। आज भौतिकवादी संस्कृति के बढ़ते वर्चस्व के कारण इन बुजुर्गों को अप्रासंगिक समझा जाने लगा है। भारतीय सामाजिक प्रणाली को उनकी परम्पराओं, सामाजिक मूल्यों और संस्कृति के लिये जाना जाता है। उसी में से एक संयुक्त परिवार प्रणाली है, जहाँ परिवार का प्रत्येक सदस्य बुजुर्गों को उचित सम्मान व संरक्षण दिया जाता था।

समय के प्रभाव के साथ सामाजिक नैतिक मूल्यों में परिवर्तन आया। भौतिकवादी संस्कृति व औद्योगीकरण के कारण लोगों को रोजगार, शिक्षा व व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए गाँवों से शहर की ओर पलायन करने को मजबूर होना पड़ा। परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार प्रणाली का भी विघटन होने लगा और एकल परिवार अस्तित्व में आने लगे। आज एक तरफ जहां जगह का अभाव व अपनी व्यस्त जिंदगी की वजह से युवा वर्ग वृद्ध माता-पिता को साथ रखने में कठिनाई महसूस करते हैं, वहीं दूसरी ओर बुजुर्गों को नई पीढ़ी के साथ सामंजस्य बैठाने में एक पीढ़ी का फासला आड़े आता है। युवा पीढ़ी वृद्धों को अपने स्वतंत्र जीवन के बंधक के रूप में देखते हैं। वृद्धजनों को वर्तमान परिवेश की जीवनशैली पसंद नहीं है, इन्हीं कारणों से दोनों पीढ़ियों में टकराव की स्थिति बन रही है। बड़े-बुजुर्ग परिवार में उपेक्षा के शिकार हो रहे हैं।

समाज में ऐसा भी देखने को मिलता है कि वृद्धजनों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है, खाने-पीने से लेकर ईलाज के लिए दवा, मनोरंजन के साधन आदि लेकिन इन सब साधनों के बावजूद उनके मन में असंतोष है, घुटन है, अपनापन का अभाव है। उन्हें चाहिए अपनी संतान का साथ, जीने का परिवेश, उन्हें ऐसा व्यक्ति चाहिए जो उनकी बात सुने और अमल करे। यूरोप के देशों में स्टूडियो अपार्टमेंट में वृद्ध अपनी बाकी ज़िंदगी काटते हैं। इनमें सारी सुविधाऐं मौजूद होती है, उनका विचार है कि इस प्रकार के लोगों के लिए होस्टल जैसी व्यवस्थाऐं होनी चाहिए ताकि वे आपस में विचार-विमर्श, विचारों का आदान-प्रदान कर सके। भारतीय संस्कृति में ऋण से उऋण की प्रणाली है, जहाँ माता-पिता के कर्ज को चुकाना पड़ता है लेकिन आज समाज में वृद्ध माता-पिता बोझ समझे जाते हैं। इतिहासकारों ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि समाज में वृद्धों को भार माना जाता है और उन्हें खाना, कपड़ा भी नहीं दिया जाता, साथ ही घर से निकाल दिया जाता है। अपने बुजुर्गों को भीख मांगकर गुजारा करने और मरने के लिए छोड़ दिया जाता है। यू.एन.पी.एफ. के एक आंकलन के मुताबिक देश के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में कुल मिलाकर 20 फीसदी बुजुर्ग अकेले या अपने जीवनसाथी के सहारे जीवन काटने को विवश हैं। पारिवारिक विघटन के कारण भी वृद्धों को अत्यन्त ही दयनीयता की स्थिति का सामना करना पड़ रहा है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बुजुर्गों में समाज को शिखर पर पहुँचाने की असीम भौतिक क्षमता व सम्भावनाऐं आज भी विद्यमान है। पूरे विश्व में क्रांति या परिवर्तन लाने का श्रेय युवको को ही है, लेकिन यह भी सच है कि यह क्रांति और परिवर्तन बुजुर्गों के मार्गदर्शन से ही संभव हो पाया है।

वृद्धावस्था सुरक्षा – वृद्धजनों को अपनी वृद्धावस्था के दिनों को आराम व शांति से व्यतीत करने का अवसर प्रदान करने के लिए प्रत्येक समाज द्वारा उन्हें सुरक्षा व सुविधाऐं किसी न किसी रूप में उपलब्ध कराए जाते हैं। परम्परागत हिन्दू समाज में संयुक्त परिवार इसी प्रकार की सुरक्षा प्रदान करने की एक व्यवस्था है। कई देशों में वृद्धजनों के लिए कल्याणकारी कार्यक्रम चल रहे हैं। 26 जुलाई से 06 अगस्त 1982 तक विएना (आस्ट्रेलिया) में हुए अंतर्राष्ट्रीय वृद्धावस्था कार्यक्रम में, जिसमें भारत सहित 124 राष्ट्रों ने भाग लिया, सार्वभौम घोषणा पत्र निर्धारित किया गया, जो वृद्धावस्था पर पूर्ण व व्यापक रूप से लागू होता है। यह भी निर्धारित किया गया है कि वृद्धों को यथासंभव अपने परिवारों एवं समुदायों में आनंदपूर्वक जीवन यापन करने दिया जाए, ताकि वे पूर्ण स्वस्थ, सुरक्षित एवं संतुष्ट जीवन बिता सके।

भारत में वृद्धों के लिए वृद्धाश्रम केन्द्र, देखभाल गृह आदि स्थापित किये गए हैं। केन्द्रीय व राज्य सरकारें स्वयंसेवी संगठन को आर्थिक मदद देकर वृद्ध कल्याण कार्यक्रम क्रियान्वयन कर रही है। सरकार निराश्रित वृद्धजनों को पेंशन भी देती है। नियमित सेक्टर में वृद्धावस्था एक समुचित पेंशन के आधार पर आराम से जीवन गुजारने का वक्त होता है, यहां पेंशन

* सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

उस शख्स की सेवानिवृत्ति के समय मिल रहे वेतन का अमूमन आधा होती है, परन्तु यह ज्यादातर वृद्धों के लिए महज एक स्वप्न है, क्योंकि अनियमित सेक्टर में कुछ ही सामाजिक सुरक्षा योजनाऐं होती हैं। रेल मंत्रालय वृद्धजनों को वरिष्ठ नागरिक के तौर पर सम्मानजनक संज्ञा देकर यात्रा भाड़ें में छूट देते हैं। आयकर विभाग द्वारा बुजुर्गों को आयकर में छूट का प्रावधान दिया गया है।

निष्कर्ष – प्रतिवर्ष 1 अक्टूबर को वृद्ध दिवस मनाया जाता है। वृद्ध दिवस मनाना सिर्फ तभी सार्थक है, जब हम वृद्धजनों को उचित सम्मान दें, उन्हें किसी भी प्रकार की कठिनाई का अनुभव न हो। बुजुर्ग सम्भावनाओं के समुद्र होते हैं, उनके अनुभव, ज्ञान एवं सृजनात्मक शक्ति की अपार संभावनाओं को नकारा नहीं जा सकता।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नातेदारी परिवार एवं विवाह – डॉ. डी.एस. बघेल
2. सामाजिक विघटन और सुधार – डॉ. सरला दुबे।
3. आधुनिक समाजशास्त्रीय निबन्ध – डॉ. एन.एन. सिंह

****

व्यक्तित्व विकास में संस्कारों का महत्व

डॉ. राजश्री शाह *

प्रस्तावना – 'संस्कारों का उदय सुदूर अतीत में हुआ था और कालक्रम से अनेक परिवर्तनो के साथ आज भी जीवित है।'

वैश्वीकरण के इस दौर में व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में लिए भारतीय संस्कृति के संस्कार उपादेय बन सकते है। संसार का कोई भी धर्म या संस्कृति ऐसी नही है जिसमें धार्मिक, सामाजिक एकता स्थापित करने के लिए कुछ संस्कारों का उल्लेख नही हो।

भारतीय संस्कृति में संस्कारों का संबंध नैतिक मूल्यों से है नैतिक मूल्य व्यक्तित्व विकास में सहायक है। व्यक्तित्व का निर्माण शारीरिक–मानसिक एवं सामाजिक योग्यता से होता है। आज के बदलते परिवेश में भारतीय समाज के संस्कारो में परिवर्तन आ रहा है इसी परिवर्तन के कारण समाज में व्यक्तित्व विघटन की दर बढ़ी है। आज का युवा हमें शारीरिक–मानसिक रूप से त्रस्त दिखाई देता है। माता – पिता के पास समय नहीं है कि वे संस्कारो का पालन कर बच्चे का विकास करे। छोटे बच्चों का मस्तिष्क तेजी से विकसित हो होता है, उस समय संस्कार प्रेरणा, चुनौति और सही गतिविधियाँ उसके दिमागी विकास की ऐसी नींव रखती है जिसके लाभ जीवन भर उसके व्यक्तित्व में झलकते है।

संस्कार जीवन की वह विधि है जो प्रत्येक व्यक्ति को एक विशेष परिस्थति में अपने कर्त्तव्यों का बोध कराती है इसी दृष्टिकोण से भारतीय समाज में संस्कारों को सांसारिक तथा आध्यात्मिक जीवन के बीच समन्वय स्थापित करने वाले साधन अथवा माध्यम के रूप में विकसित किया। संस्कार व्यक्ति के जीवन को परिष्कृत शुद्ध करने का एक माध्यम है। यह संस्कार जहाँ एक और कुछ विशेष परिस्थतियों अथवा अवसरों पर व्यक्ति को उसके सामाजिक कर्त्तव्यों का बोध कराती है वहाँ इनके द्वारा उन आलौकिक शक्तियों को प्रसन्न करने का प्रयत्न करती है।

विभिन्न समाजों में संस्कारों की प्रकृति में पायी जाने वाली भिन्नता का संबंध उस समाज के मूल्यों में होता है। जिस समाज में जिन आदर्शो को महत्वपूर्ण माना जाता है उसे धार्मिक रूप प्रदान कर मूल्यों के रूप में विकसित कर दिया जाता है और यही मूल्य विधि–विधानों से सम्पन्न होता है तो उसे संस्कारो के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक संस्कार अपने–अपने समय में उपयोगी होते है लेकिन धीरे–धीरे सामाजिक मूल्यों और व्यक्ति के विचारों में परिवर्तन होने के कारण वह अनुपयोगी होने लगते है। यदि इन संस्करों को बदलते हुऐ समाज के साथ परिष्कृत कर उसे पुन: अपना लिया जाऐ तो न केवल व्यक्ति का विकास बल्कि समाज का भी विकास हो सकता हैं। हिन्दु संस्कृति में 16 संस्कारों का उल्लेख है। कहीं–कहीं पर 40 संस्कारों का भी उल्लेख है। हिन्दु जीवन यात्रा प्रमुख संस्कारों में भिन्नता है। यह सभी संस्कार व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के लिए उपयोगी है। स्वामी दयानंद सरस्वती की पुस्तक संस्कार विधि में 16 संस्कारों का उल्लेख है। सामान्यत: संस्कारों को तीन भागो में बॉटा गया है। (1) जन्म के पूर्व (2) जन्म के पश्चात् (3) मत्यु पर्यन्त इन वर्गीकरण के आधार पर प्रमुख संस्कारों को समझाया जा सकता है।

जन्म के पूर्व संस्कार – व्यक्तित्व परिशुद्धि होने के कारण ऐसे संस्कारों का विधान जन्म से पूर्व बच्चे की मंगल कामना तथा जन्म को धार्मिक रूप प्रदान करते हुए माता को उसके कर्त्तव्य से अवगत कराना है। आज के फैशन के दौर में माता यदि पूर्णतया संस्कारों का पालन करती है तो उत्तम पुत्र को जन्म दे सकती है। पाराशर स्मृति में लिखा गया है कि गर्भाधान संस्कार के बिना जन्म लेने वाला बच्चा अशुद्ध होता है पवित्र गर्भ पवित्र बच्चे को ही जन्म देता है।

पुंसवन संस्कार भावी शिशु के जीवन में मंगल कामना का प्रतीक है तो सीमन्तोन्नयन संस्कार माँ के स्वास्थ्य की रक्षा एवं किसी भी प्रकार की दुर्घटना से बचाना है। यह संस्कार उसे याद दिलाते है कि वह माँ बनने वाली है अत: स्वयं के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए अच्छे स्वस्थ कार्य करे एवं स्वस्थ शिशु का जन्म दे। स्वस्थ शिशु ही परिवार एवं समाज का निर्माण करता है। जन्म के पूर्व के संस्कार व्यक्ति के विकास में योगदान देते है।

जन्म के पश्चात संस्कार– बाल्यावस्था में बच्चे का शारीरिक मानसिक विकास उसके सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करता है इसलिए जन्म के पश्चात वाले संस्कार जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्रासन, चूडाकरण, कर्णवेध आदि संस्कारों का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। यह सभी संस्कार बालक के दीर्घायु सौंदर्य और कल्याण की कामना के लिए किये जाते है। वर्तमान समय में अलंकरण का प्रचलन स्त्रियों तक ही सीमित रहने के कारण पुत्र के कानों को छेदने का प्रचलन तेजी से समाप्त हुआ है लेकिन आज पुन: लड़को में कान छेदने की प्रथा प्रचलन में आई है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी कर्ण छेदन एक्यूप्रेशर का कार्य करती है जिसमें कर्ण एवं कर्ण से जुड़ी अन्य बीमारियों से छुटकारा पाया जा सकता है।

विद्यारम्भ संस्कार– विद्यारम्भ संस्कार ॐ शब्द से प्रारंभ होता है इस संस्कार से बालक की मानसिक सफलता की कामना की जाती है। ॐ शब्द आध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक है अत: बालक ॐ शब्द लिखकर जीवन में आध्यात्मिकता का विकास कर जीवन को परिष्कृत करे। इसी प्रकार उपनयन संस्कार, जिनका वैदिक काल से विशेष महत्त्व रहा है इसे जनेऊ संस्कार भी कहा जाता है इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य छात्र का विद्या अध्ययन के लिए आचार्य के पास ले जाना है। गुरू द्वारा बालक को ब्रह्मचर्य के नियमों और कर्त्तव्यों का उपदेश देकर उसे गायत्री मंत्र दिया जाता है। यह एक ऐसा संस्कार है जो किशोरावस्था से संबंधित है इसका पालन करने से जीवन अनुशासित होता है। किशोरावस्था तनाव से परिपूर्ण होती है और उपनयन संस्कार द्वारा ही

* प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

किशोरों को शांतिपूर्ण तरीके से जीवन व्यापन करने की एवं बह्मचर्य व्रत की दीक्षा दी जाती है। यहीं पर माता–पिता व गुरू के प्रति निष्ठा की भावना पैदा की जाती है आज के वर्तमान परिवेश में तो इस संस्कार की अनिवार्यता दिखाई देती है। आज इस संस्कार में अनेक परिवर्तन होता दिखाई देता है पर फिर भी यह संस्कार आज भी बना हुआ है।

वेदारम्भ, गोदान, संस्कार धीरे–धीरे समाप्त हो गये है। लेकिन सर्मावर्त्तन संस्कार जिसका शाब्दिक अर्थ घर की और प्रस्थान अर्थात विवाह संस्कार का प्रवेश द्वारा आज भी परिवर्तन के साथ विद्यमान है।

विवाह संस्कार – हिन्दु जीवन से संबंधित महत्त्वपूर्ण संस्कार जो पति–पत्नी को जन्म जन्मान्तर तक के धार्मिक बंधनो में बांधता है। हिन्दुओं में विवाह को अनिवार्य एवं धार्मिक संस्कार माना है इसलिए भारत में अन्य राष्ट्रों की तुलना में विवाह संस्कार का आज भी पालन किया जाता है। हिन्दु जीवन में विवाह संस्कारों को पूर्ण करने के लिए अनेक नियमों एवं निषेद्यों का पालन किया जाता है। इस संस्कार में प्राचीन मान्यताओं में परिवर्तन आने के बाद भी विवाह संस्कार की प्रकृति में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है इस संस्कार का संक्षिप्तीकरण अवश्य हुआ है क्योंकि आज का युग व्यस्तम युग है और समय का अभाव है, लेकिन फिर भी अनुष्ठानों में ही इसे सम्पन्न करवाया जाता है। यह संस्कार धार्मिक रीति से होने के कारण कोई भी दम्पत्ति इसे तोड़ना नहीं चाहते और इस प्रकार सुखमय दाम्पत्य जीवन एवं परिवार का विकास होता है।

टूटे परिवार न सिर्फ पति–पत्नी का विघटन करते है बल्कि बच्चों के भविष्य को भी प्रभावित करते है इससे सम्पूर्ण समाज का विकास रूकता है। अन्तिम संस्कार अन्त्येष्टि अर्थात मृत्यु संस्कार यहाँ व्यक्ति के सांसारिक जीवन की समाप्ति। इसी कारण से व्यक्ति जीवन भर अच्छे कार्य करता रहता है क्योंकि अन्य संस्कार तो इह लोक का सुधार करता है परन्तु यह संस्कार परलोक का भी सुधार करता है। इस प्रकार अन्त्येष्ठि हिन्दु जीवन यात्रा की समाप्ति का सूचक है।

यह सभी संस्कार व्यक्ति का समाजीकरण करने एवं व्यक्तित्व विकास के प्रमुख आधार रहे है। इनकी सामाजिक अनिवार्यता के कारण ही प्राचीन समाज में सामाजिक समस्याएँ बहुत कम तनाव एवं चिंताओ से हल हो जाती थी यदि आज भी इन संस्कारों का प्रयोग पुत्र एवं पुत्रियों के लिए संक्षिप्त रूप में ही किया जावे तो युवाओं के लिए उपयोगी एवं व्यक्तित्व विकास में सहायक बन सकते है। संस्कार शिक्षा, समाजिकरण, नैतिक एवं सांस्कृतिक विकास के सहायक है अत: इन्हे अनुपयोगी संस्था के रूप में न देखकर उपयोगी रूप में देखा जाना चाहिए। क्योंकि संस्कार बिना की सुविधाएँ नैतिक पतन का कारण है।

संदर्भ ग्रंथ सूंची :–

1. कनिष्का – नैतिक मूल्य और भाषा।
2. मधुरिमा – 7 जून 2015
3. वैदिक संस्कृति एवं समानता – डॉ. मुंशीराम शर्मा।
4. सनातन संस्कार विधि – आचार्य गंगा प्रसाद शास्त्री।
5. भारतीय समाज और संस्कृति–आर.एन.मुकर्जी।

****

समाज सुधारक के रूप में डॉ. अम्बेडकर

जागृति आर्य *

समाज सुधारक के रूप में डॉ. अम्बेडकर – अपनी विलक्षण क्षमताओं के आधार पर एक विशिष्ट स्थान बना चुके डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जीवन अनेक प्रकार की विविधिताओं से परिपूर्ण है। उनकी सर्वाधिक ख्याति एक संविधान निर्माता तथा समाज के उपेक्षित और वंचित वर्ग के अधिकारों की रक्षा हेतु संघर्षरत योद्धा के रूप में ही अधिक है। उनके जीवन के ये दोनों ही आयाम महत्वपूर्ण हैं किन्तु, आश्चर्य की बात यह है कि उनके जीवन और कार्य के अनेक महत्वपूर्ण आयाम और भी हैं, जिनके बारे में अध्ययन, चिन्तन तथा विश्लेषण आवश्यकतानुरूप नहीं हो पाया है।

विलक्षण क्षमता और प्रतिभा – एक बात हम सभी को सदैव ध्यान में रखनी होगी कि अति सामान्य परिवार में जन्मे डॉ. भीमराव अम्बेडकर, सभी प्रकार के अभाव, उपेक्षा, अपमान एवं तिरस्कार सहते हुए अपनी विलक्षण क्षमताओं और प्रतिभा के बल पर आज एक महत्वपूर्ण स्थान पर विराजमान हैं। उनकी प्रतिभा को देश ने स्वीकार किया था। इसी के फलस्वरूप, वे संविधान निर्मात्री सभा के सदस्य बने। उनके मन में यह लक्ष्य था कि देश में अस्पृश्य बन्धुओं को उनके संवैधानिक अधिकार दिलाने का प्रयास करूंगा। उनको आश्चर्य तो तब हुआ जब उन्हें संविधान प्रारूप समिति का सदस्य बनाया गया, और जब उन्हें इस प्रारूप समिति का अध्यक्ष बनाया गया तब तो उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। उनको स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं थी कि एक ऐसी सभा (संविधान सभा), जिसमें अधिकांश सदस्य तथाकथित उच्च जातियों के थे, मिलकर उन जैसे एक अस्पृश्य व्यक्ति को प्रारूप समिति का अध्यक्ष भी बना सकते हैं।हम यहां विचार करेगें कि डॉ. अम्बेडकर का समाज सुधारक के रूप में मौलिक स्वरूप कैसा है? हम जानते हैं कि विगत दो हजार वर्षों की व्यापक राजनीतिक एवं सामाजिक उथल–पुथल ने कुछ विचित्र परिस्थितियां खड़ी की और समाज में अनेक प्रकार के विभेद उत्पन्न हो गये थे। इस दृष्टि से व्यापक समाज सुधारों की आवश्यकता थी।

इस आवश्यकता के अनुरूप ही डॉ. अम्बेडकर एक समाज सुधारक थे तथा युगानुकूल सामाजिक व्यवस्थाओं की पुनर्स्थापना के वे पुरोधा थे। सदियों से वंचित, उपेक्षित अपमानित एवं तिरस्कृत जातियों को उन्होंने आशा और विश्वास के साथ एक मजबूत संबल प्रदान किया, जो असहाय और असंगठित थे उन्हें एक मजबूत आधार और मंच दिया, भय और प्रताड़ना के कारण जिनकी वाणी मूक हो गई थी उन्हें सशक्त वाणी दी। साथ ही, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध एकजुट होकर संघर्ष करने की क्षमता भी उन्हें प्रदान की।यह बात हमारे स्मरण में सदैव रहनी चाहिए कि वे जिस व्यवस्था के विरुद्ध लड़ रहे थे वह सदियों की रूढ़ परम्पराओं के कारण दृढ़ हो गई थी और कहीं–कहीं तो उसने तथाकथित शास्त्रों और धर्म की विकृत धारणाओं से सहारा लेने की कोशिश भी की थी। इस कारण, इन कुरीतियों, रूढियों तथा मिथ्या मान्यताओं की जड़ें गहरी थी तथा ये दीवारें बहुत मजबूत थी। इनसे संघर्ष लेना और उनको ढहाना आसान न था।डॉ. अम्बेडकर ऐसे दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति थे जिन्होंने अपने बाल्यकाल से लेकर संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष पद तक इन भेदभावों को स्वयं झेला। अपमान और तिरस्कार की पीड़ा ने अनेक बार उनके हृदय के अन्तरतम को झकझोर कर रख दिया था। अपने करोड़ों बन्धुओं के दुख को देखकर वे दृढ़ होते चले गये। अपना यह जीवन इन्हीं पीड़ित मानवजनों के दुखों को दूर करने में ही लगा दूंगा यह संकल्प दिन प्रतिदिन और अधिक मजबूत होता चला गया।भौतिक सुखों की चाह, उच्च पद प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा, व्यक्तिगत प्रतिष्ठा, परिवार आदि का मोह भी उन्हें इस मार्ग से कभी विचलित न कर सका। इसी कारण जब आवश्यकता पड़ी तब वे केन्द्रीय मंत्री का प्रतिष्ठित पद छोड़कर नेहरू जी के मंत्रिमंडल से बाहर आ गये। हैदराबाद के निजाम तथा वैटिकन सिटी के पोप द्वारा अकूत सम्पत्ति का निवेदन भी उन्हें उनके मार्ग से भ्रमित न कर सका और वे निरन्तर अपने सुनिश्चित मार्ग पर चलते रहे जिसके द्वारा करोड़ों अस्पृश्य बन्धुओं को सम्मानित जीवन प्राप्त करवा सके।

आन्दोलनकारी समाज सुधारक – डॉ. अम्बेडकर जी के जीवन में एक महत्वपूर्ण बात हमको दिखलाई देती है वह यह है कि वे पुरानी सभी मान्यताओं, आदर्शों और व्यवस्थाओं को ध्वस्त करना नहीं चाहते तथा किसी जाति या वर्ण के वे शत्रु नहीं हैं, जो अच्छा है वह संभालकर रखना और जो अनावश्यक है उसे हटाना ही उन्हें अभीष्ट है। इस दृष्टि से वे एक आन्दोलनकारी हैं।डॉ. अम्बेडकर यह जानते थे कि भारतीय दर्शन के मौलिक तत्व बहुत उदात्त हैं। किन्तु, विकृतियों, रूढियों, ढोंग, पाखण्ड, कर्मकाण्डों एवं परंपराओं का अनावश्यक अतिरेक, जिसने उस समस्त दर्शन जो सभी मनुष्यों को समान मानता है तथा करुणा, प्रेम, ममता, बन्धुत्व, दया, क्षमा, श्रद्धा आदि सद्गुणों का सन्देश देता है एवं उसका संरक्षण भी करता है, को ढंक लिया है, वही हमारे परिवर्तन का मूलाधार बना रहे।सुधारवादी आन्दोलन को चलाते समय हर क्षण यह बात स्मरण रखनी होगी कि यदि किसी भी कारण से आपसी प्रेम, ममता और बन्धुत्व का भाव समाप्त हो गया तो परिवर्तन का यह संघर्ष एक क्रूर वैमनस्य में बदलकर अधिकतम अधिकारों को पाने की इच्छा रखने वाले गृहयुद्ध में बदल जायेगा। वे कहते थे कि हम यह बात ध्यान में रखें कि हमारे देश में सभी सद्गुणों का दाता, धर्म है।

इस धर्म को अपने विशुद्ध रूप में पुनर्स्थापित करना है। ढोंग, पाखण्ड, भेदभाव, कर्मकाण्ड आदि के परे धर्म में अन्तर्निहित महान सद्गुणों को संरक्षित करते हुए हमें आगे बढ़ना है। कुछ लोग कहते हैं कि धर्म की मानव जीवन में कोई आवश्यकता नहीं है। डॉ. अम्बेडकर लोगो के इस मत से सहमत नहीं थे। उन्होंने कहा– कुछ लोग सोचते हैं कि धर्म समाज के लिए अनिवार्य नहीं है, मैं इस दृष्टिकोण को नहीं मानता। मैं धर्म की नींव को समाज के जीवन तथा व्यवहार के लिए अनिवार्य मानता हूं।मार्क्सवादी लोग धर्म को अफीम कहकर उसका तिरस्कार करते हैं। धर्म के प्रति यह विचार मार्क्सवादी दृष्टिकोण की आधारशिला है। डॉ. अम्बेडकर मार्क्सवादियों के इस मत से सहमत नहीं थे। वे इस बात से पूरी तरह आश्वस्त थे कि धर्म मनुष्य को न केवल एक अच्छा चरित्र विकसित करने में सहायता करता है अपितू वह समाज के संरचनात्मक पक्षों को भी निर्धारित करता है। चरित्र एवं शिक्षा को वे धर्म का ही अंग मानते थे।वे कहते थे धर्म के प्रति नवयुवकों को उदासीन देखकर मुझे दुख होता है। डॉ. साहब का मानना था कि धर्म कोई पंथ या कर्मकाण्ड नहीं है। धर्म के नाम पर हो रहे निरर्थक ढोंग, पाखण्ड तथा व्यर्थाडम्बरों को वे धर्म नहीं मानते। धर्म से उनका तात्पर्य है– व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं को आदर्श रूप से संचालित करने वाला नैतिक दर्शन, जो सभी के लिए श्रेयस्कर है वही धर्म है।

सन्दर्भ ग्रथं सूची –

1. समाज शास्त्रीय विचारों का आधार (प्रो. अग्रवाल)।
2. इन्टरनेट , समाचार पत्रिकाएँ।

* अतिथि विद्वान (समाजशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.) भारत

Morphometric Analysis of the Chhoti Kali Sindh River Basin of Ujjain District (M.P.) India

Dr. Akhtar Bano *

Introduction - Morphometry is an important means in geomorphic analysis of an area. Morphometry is defined as the measurement and mathematical analysis of the configuration of the earth's surface and of the shape and dimension of its land-forms (Clark, 1966).

Morphometric methods have been applied for the analysis of area, height relationship, and determination of erosion, surface, slopes, relative relief and terrain characteristics as a whole.

The morphometric analysis of different basins has been done by various scientists using conventional methods (Narendra & Rao, 2000).

The use of earth observation, data and G-95 techniques in morphometric analysis have emerged as powerful tools in recent years.In the present study earth observation data has been used to compute basin morphometric characteristics by taking linear, areal and relief parameters of the Chhoti Kali Sindh river basin. Such analysis aids in understanding the hydrological, geological and topographical characteristics of the basin. Indicating that the basin is mostly controlled by structure. The basin has medium drainage density of l.09 per km. and is elongated in shape. The length of overland flow value of the basin is 1.12 indicating medium relief. The study has strengthened the understanding of the hydrological, geological and geo-morphological characteristics of the Chhoti Kali Sindh drainage system.

Methodology - Various morphometrs namely- Stream Order (N_u), Bifurcation Ratio (R_b), Mean Bifurcation Ratio (R_{bm}), Drainage Density (D), Overland Flow (L_g) have been computed (Table 1).

Table 1 (See in last page)

Results and Discussions - The various morphometric parameters of the Chhoti Kali Sindh river basin have been computed and summarized as follows:

3.1 Linear Aspects - Drainage network of the Chhoti Kali Sindh river basin is showed in Fig.1.

Fig.1

Stream Order -Drainage network of the Chhoti Kali Sindh river basin is presented in Fig.1. Stream link and the nodes characterize linear aspects of the basin. The linear aspects include the Stream Order (U), Bifurcation Ratio (R_b), where determined and results have been shown in Table 2.

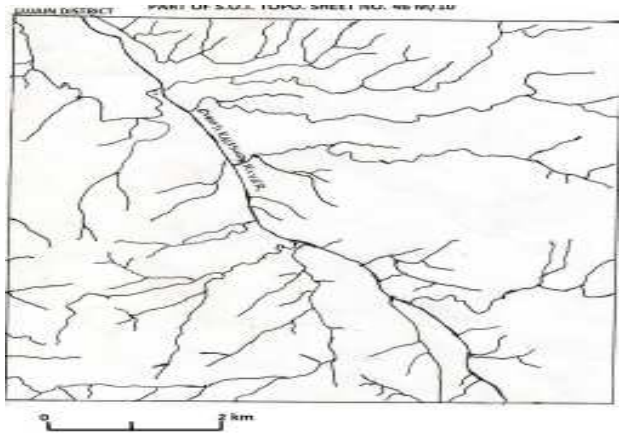

Table 2 - Computation of Chhoti Kali Sindh river basin Area of Basin

	A	B	C
No. of First Order Stream	35	23	24
No.of Second Order Stream	13	5	7
No.of Third Order Stream	7	2	2
Total No. of Stream	55	30	33
Length of First Order Stream	30.35	12.85	16.7
Length of Second Order Stream	10.65	6.65	8.3
Length of Third Order Stream	7.25	2.25	3.65
Total Length	48.25	1.75	28.65
Length of Basin (Km.)	3.5	5.8	5.9
Width of Basin (in Km)	8.5	4.5	6.25
Area of Basin	29.75	24.65	38.87
Highest Elevation of Basin	447	460	460
Lowest Elevation of Basin	431	440	422
Area Of Plenimiter	21.6	17.4	21.15

Source: Topographical sheet no. 45 $\frac{M}{10}$

Stream Order (U) - Ranking of stream has been carried out based on the method given by Strahter (1964). The smallest tributaries are designated as order 1 where the two first order channels join, a channel segment of 2nd order is formed and so third. The trunk stream through which all discharge and sediments pass is therefore the stream segment of the highest order. It has been found that the study area is third order drainage basin. Altogether 118 numbers of streams are identified out of which 82 are first order, 25 are of second

*Asst. Professor (Geography) R.G. Govt. P.G. College, Mandsaur (M.P.) INDIA

order, and 11 are of third order streams. The pattern of river is dendric drainage pattern. It means the texture of river basin is homogeneous.

Stream Length (L_u) - Stream length is measured by the law proposed by the Harton (1945). Stream length is one of the significant features of the basin as it reveals surface run off characteristics. Streams of relatively smaller lengths indicate that the area is with high slopes. Longer lengths are indicate of flatter gradient. Usually the total length of stream segments is highest in first order streams and it decreases as the stream order in the present case. This shows that the basin is subjected to erosion and also that some areas of the basin are characterized by variation in lithology and topography (Singh and Singh, 1997); (Vittala et al., 2004 and Chopra et al., 2005)

Bifurcation Ratio (R_b) - According to the Schumm (1956) the term bifurcation ratio may be defined as the ratio of the number of the stream segments of given order to the number of segments of the next higher order. The R_b values of study area (Table 2) indicate that there is a uniform decrease in R_b values from the first order streams to the third order streams.

Drainage Density (D) - Drainage density is defined as the ratio of total length of streams of all orders with in the basin to the basin per unit area, which is expressed in terms of km/sq.km. It indicates the closeness of spacing of channels, thus providing a quantitative measure of the average length of stream channels for the whole basin (Horton1932). The drainage density in the basin is 1.09 per km^2 ie medium drainage density indicating that the basin has permeable rocks.

Table 3 (see in bottom of page)

Stream Frequency (F_s) - The total number of stream segments of all orders per unit area is known as stream frequency (Horton 1932). The str eam frequency (F_s) value of the Chhoti Kali Sindh river basin is 1.32. The value of stream frequency of the basin exhibits positive correlation with drainage density of the area this indicates that with increase in stream there is an increase in drainage density.

Form Factor (R_f) - Form factor may be defined as the ratio of the area of the basin of the square of the basin length (Horton 1932). It is the quantitative expression of drainage basin outline form. Smaller the value of form factor more elongated will be the basin. Form factor (R_f) value of study area is 1.40. This indicates that the basin is elongated in shape.

Circulatory Ratio (R_c) - Miller (1953) defined a dimensionless circulatory ratio (R_c) as the ratio of basin area to the area of circle having the same perimeter as the basin. He described that the circulatory ratios ranges from 0.4 to 0.5 which indicates strongly elongated and permeable homogeneous geologic materials. The study area the R_c value is 1.5 indicating that the basin is elongated in shape having low discharge of run off and highly permeability of sub soil conditions.

Elongation Ratio (R_e) - Elongation ratio is the ratio between the diameter of the circle of the same area as the drainage basin and maximum length of the basin. The elongation ratio value of the Chhoti Kali Sindh basin is 0.03 which indicates that the major part of basin is of low relief.

Length of Overland Flow (L_g) - The length of over land flow approximately equals to the half of reciprocal of drainage density (Horton 1985). It is the length of water over the ground before it gets concentrated into definite stream channels. The length of overland flow of the study area is 1.12, indicating old topography.

Relief aspects - Relief aspects of drainage basin relate to the three dimensional features of the basin involving area, volume and altitude of vertical dimensions of landforms wherein different morphometric methods are used to analyze terrain characteristics. In this study thus relief aspects includes the analysis of averages slopes.

Conclusion - The morphometric analysis has been carried out through measurement of linear, areal and relief aspects of the basin. It has been found that the study area is three order drainage basin. Dendrictic drainage pattern is in the plateau parts of the drainage basin indicating the homogeneity in texture and lack of structural control.

From the study it can be concluded that areas drained by drainage orders of 1st, 2nd and 3rd have bifurcation ratio between 1.51 to 2.31.

References :-

1. देव, सुनील (2011), भू आकृति विज्ञान, विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
2. सिंह, रविन्द्र (2012), भू आकृति विज्ञान का स्वरूप, प्रयाग, पुस्तक भवन, इलाहाबाद ।

Table 3 - Areal Aspects of the Chhoti Kali Sindh River Basin

Area (sq.km.)	81.27	Drainage density	1.09	Form factor	1.40
Perimeter (km)	60.65	Stream frequency	1.32	Circulatory ratio	1.5
Elongation Ratio	0.03	Length of over land flow	1.12		

Table 1 : Formula Adopted for Computation of Morphometric Analysis

S.No	MorphometricParameters	Formulae	Reference
1.	Stream order (u)	Hierarchical rank	Strahler (1964)
2.	Stream length (L_u)	Length of the stream	Horton (1945)
3.	Bifurcation ratio (R_b)	$R_b = N_u / N_u + 1$ Where, R_b = Bifurcation ratio N_u = Total no. of stream segments of the order 'u' N_u +1 = Number of segments of the next higher order	Schumn (1956)
4.	Stream frequency (F_s)	$F_s = N_u / A$ Where, F_s = Stream frequency Nu = Total no. of streams of all orders A = Area of the basin (Km^2)	Horton (1932)
5.	Drainage texture (R_t)	$R_t = N_u / p$ Where, R_t = Drainage texture N_u = Total no. of streams of all orders P = Perimeter (km)	Horton (1945)
6.	Form factor (R_f)	$R_f = A / Lb^2$ Where, R_f = Form factor A = Area of the basin (Km^2) Lb^2 = Square of basin length	Horton (1932)
7.	Circularity ratio (R_c)	$R_c = 4*pi*/p2$ Where, R_c = Circularity ratio Pi = 'Pi' value i.e., 3.14 A = Area of the basin (km) P^2 = Square of the perimeter (km)	Miller (1953)
8.	Elongation ratio (R_e)	$R_e = {}^{2"}(A/P_t) / L_b$ Where, R_e = Elongation ratio A = Area of the basin (km^2) P_t = 'P_t' value i.e., 3.14 L_b = Basin length	Schumn (1956)
9.	Length of overland flow (L_g)	$L_g = 1 / D*2$ Where, L_g = Length of overland flow D = Drainage density	Horton (1945)

****

The Perception of Dr BR Ambedkar Regarding the Problems of Small Agricultural Land Holdings

Dr. Prabhakar Mishra *

Abstract - The agricultural land of a nation plays an important role to generate economic power and employment to the population. The decreasing size and the fragmentation have an effect on the productivity of agricultural land holdings. In present paper, an effort has been made to discuss the perception of Dr BR Ambedkar pertaining to the problems and the solutions to make the agricultural land holdings economically more productive and sustenance to face the forthcoming challenges.

Introduction - Of all the natural resources land has an indispensable responsibility to capitalize other natural as well as human resources. Agricultural land is another important aspect of land resource which directly affects the betterment of the human society. The agricultural development is an important component of growing economy. The problems of agricultural land holdings have been remained the subject of great attention to the thinkers and policy makers to attain the valuable attributes of the resource.

Dr. BR Ambedkar is the towering personality among the best scholars and the pioneer thinkers of his time. Basically, he is known as an architect of Indian Constitution and the advocate of downtrodden class of society. But he is also an eminent economist who has the spirit and a vision to the economic reforms. As an economist and a political thinker he guides about the growth with social justice through the publication of his articles and speeches. He accepts that undoubtedly India is an agricultural country and has a number of problems regarding the management and the legislature of agricultural issues like the causes of small land holdings, low productivity, superfluous labour inputs and the distribution of agricultural land, ownership and the development of agricultural practices as an industry.

Importance of Agriculture - As India has 60.2 percent agricultural land of its total land cover. Therefore, Agriculture is the main Sector which produces the remarkable contribution to the GDP. The contribution of agriculture is declining but it is still an important sector to the livelihood seekers. It is also the largest employment providing sector which is the 58.2 percent of total work force of India. Increasing growth of population creates the demand for food and agriculture is also expected to face the demand. Agriculture plays an important role as a pushing factor to the capital formation to achieve the goals of economic development. Agriculture sector can push its surplus workforce to the industrial sector which can prove an effective growth engine to increase the productivity. Agro based industries i.e. Sugar, Jute, Cotton textile etc. depend on the agricultural productions for their raw material. In India, more than two third of the population lives in rural areas and provides the market for industrial products as a catalyser to industrial development which reflects in agricultural exports to earn foreign capital.

The problems of agricultural economy affect all the developmental sectors. The decrease in the share of agricultural and allied sectors in GDP from 51.9 per cent in 1950-51 to 13.7 per cent in 2012-13 of the country highlights the massive shift from agrarian economy to industry and service sectors and faces the problem of profitability of agricultural land. The agriculture sector has the chronic problem of land reforms. Dr. BR Ambedkar has felt the problems of Indian agriculture i.e. size of land holdings, economic profitability, land tenure system, law of inheritance etc. As an eminent economist, he analysed the causes behind the agrarian problems and suggested suitable solutions to make the agriculture a profitable economic activity.

Small Land holdings in India - Agricultural land holdings are changing their trends as far as size and area of land holding concern. Number of small and marginal land holdings are showing remarkable increase from 61.7 per cent in 1960-61 to 80.0 per cent in 2010-11. The increasing trend of marginal and small land holdings is the sign of economically unprofitable farming and harmful to the economic development. According to Dr. BR Ambedkar " ……..diminutive size of holdings is said to be greatly harmful to Indian agriculture." And " the evil of small holdings no doubt, are many. But it would have been no slight mitigation of them if the small holdings were compact holdings. Unfortunately they are not." He further discussed the problem and point out the reason of arrested productivity of agricultural practices in our county. As he intimated " ..small and

* Assistant Professor (Geography) Govt. College, Mehidpur, Distt. Ujjain (M.P.) INDIA

scattered holdings have given a real cause for anxiety regarding our great national industry. “After each distribution of land holding it converts into a small piece of uneconomic land and remains not feasible to the farmer which has a great and direct effect on the life style of farmers and national growth.

Consolidation of Land holdings - As it is noticed that small and scattered agricultural land holdings cant’ be profitable, Dr. Ambedkar advocated for the solution and presents a process of consolidation of scattered land holdings to get a profitable size of farms. He argues “ if it is said that Indian agriculture suffers from small and scattered holdings we must not only consolidate, but also enlarge them. It must be borne in mind that consolidation may oviate the evils of small holdings unless the consolidated holding is economic, i.e. an enlarged holding.” But the only consolidation of land holdings is not the complete solution because the consolidation raises the issue of unification of small and scattered holdings and provision for maintenance of the size of consolidated land holdings to restrict further fragmentation. He pointed out the social system as a cause of fragmentation of agricultural land and admitted “the problem of perpetuating such a consolidated holding will next demand the care of the legislator. It is accepted without question by many that the law of inheritance that prevails among the Hindus and the Mohomedans is responsible for the sub-division of land.”

Size of land holdings -In agricultural practices, productivity is much affected by the size of land holdings. After enforcing all required inputs we can’t be sure about the economical viability of land holding because the process of production depends on the combination of producing factors like land, labor and capital. Combination of these factors determines the economic efficiency of land holding. Change in volume or input variation of a particular factor may affect the response of other contributing factors to the productivity of land holdings. As Dr. Ambedkar reveals “ to a farmer a holding is too small or too large for the other factors of production at his disposal necessary for carrying on the cultivation of his holdings as an economic enterprise. Mere size of land is empty of all economic connotation. Consequently, it can not possibly be the language of economic science to say that a large holding is economic while a small holding is uneconomic it is the right or wrong proportion of other factors of production to a unit of land that renders the latter economic or uneconomic.”

An ideal size of a land holding is the topic of discussion. However, fragmented small size of land holding and repeatedly sub division of land destroy the economic profitability of land holdings. The trend of change in area under small and marginal size of land holdings are 19.2 per cent in 1960-61 and 44.48 per cent in 2010-11 which presents a rapid increase towards minimization of size of land holdings. Decreasing size of land holdings requires attention to avoid the problems associated with the issue.

Suggestions - As an agricultural reformer and advocate of social justice Dr. BR Ambedkar suggested some significant views and conclusions for the agricultural development . these are as under –

1. The agriculture should be the state industry.
2. The agriculture should be cultivated in a collective manner in accordance with the direction issued by the government.
3. The state shall acquire and form the standard size of land holdings and provide to the farmers.
4. Transfer of surplus idle agricultural labuor to industry sector for better use of work force.
5. Consolidation of fragmented and small land holdings to generate the economic productivity.
6. And promotion of agricultural sector as a reciprocal support to the industrial sector.

Conclusion - As agriculture is the main contributor to the economic development and greatest livelihood provider of the country, it requires reforms regarding the management , perpetuation of size of holdings, consolidation of fragmented land and legislature of inheritance etc. Dr. Ambedkar recognized and pointed out the various agricultural problems through his articles and provide noteworthy solutions for the economic development of the country.

References :-

1. Dr. BR Ambedkar,Small Holdings in India and their Remedies, Writings and Speeches, vol.1, 1918
2. Report of Agriculture census 2011, Govt. of India
3. VD Nagar, Dr. Ambedkar : Social and Economic Thoughts, MP Hindi Granth Academy, Bhopal

****

मलिन बस्तियों का दशकीय विकास , समस्या एवं समाधान

डॉ. नीरज कुमार सोनी *

शोध सारांश – उपरोक्त अध्ययन व निष्कर्ष के आधार पर हम यह कह सकते है, कि मलिन बस्तियों के निर्माण व विकास का मूल कारण ग्रामीण जनसंख्या स्थानांतरण व जनसंख्या वृध्दि है, परिणामस्वरूप बड़ा परिवार, बेरोजगारी, अपराध तथा कुपोषण को बढ़ावा मिल रहा हैं। जनसंख्या की तुलना में रहने हेतु भूमि का अभाव से जनसंख्या घनत्व बढ़ रहा है।

इन बस्तियों में जनसख्या घनत्व बढ़ने से खुली जगह खत्म हो रही है जिससे मूलभूत सुविधाएँ जैसे – शौचालय, सड़क, बिजली, जल–निकास तथा पानी की व्यवस्था करना कठिन कार्य साबित हो रहा है। 57.2 प्रतिशत जनसंख्या क्रियाशील होने के बाद भी दरिद्रता का जीवन जी रही है। जिसका कारण नशा, धूम्रपान, बुरी लते तथा अनियोजित व्यय है।

वर्तमान युग में भौतिकवादिता एवं पाश्चात्य संस्कृति ने मनुष्य की आवश्यकताओं में अनावश्यक वृद्धि की है, केवल भौतिकतावादी ही नहीं बल्कि एक अंधी भागम–भाग एवं अंतहीन प्रतिस्पर्धा का युग भी चलन में आया है, जैसे–जैसे नयी खोजे एवं आविष्कार हुए है, व्यक्ति उन्हें पाने के लिए कुछ भी कर गुजरने को तत्पर रहता है। अत: कह सकते है कि **'आज जीवन से गरीबी की गरिमा, सादगी का सौंदर्य, संघर्ष का हर्ष, समता का स्वाद, आस्था का आनन्द, सब कुछ समाप्त सा हो गया है, इसी वजह से वर्ग संघर्ष, अत्याचार, अनाचार को बढ़ावा मिला और इसी वजह से बेकारी, बेरोजगारी व मलिन बस्तियों की समस्याएँ इस पीढ़ी को विरासत में मिल रही है।'**

शब्द कुंजी – पाश्चात्य संस्कृति, व्यक्तित्व ह्रास, अंधविश्वास एवं रूढ़ीवादिता, उचित मूल्य की दुकानें, मजदूर वर्ग, नगरीय स्थानांतरण

प्रस्तावना – आजादी के बाद देश में तीव्र गति से आर्थिक विकास करने के लिये छोटे पैमाने के विपरीत बडे पैमाने पर उत्पादन को प्राथमिकता दी गई, अत: उस समय कृषि, अर्थव्यवस्था का औद्योगिक विकास की ओर अग्रसर होना स्वाभाविक था, क्योंकि यह तत्कालिन समय की मांग थी, फलस्वरूप भारत में औद्योगिक क्रांति का उदय हुआ। आजादी के बाद की यह क्रांति इन्दौर ही नहीं वरन् सम्पूर्ण देश में एक ऐसा समाज बनाने की शुरूआत थी, जिसमें सभी को अपनी शारीरिक एवं मानसिक मेहनत का पूरा लाभ मिले, परंतु वास्तव में ऐसा नहीं हो पाया। हम जिस मजदूर वर्ग को सीढ़ी बनाकर आगे बड़े उसे ही हम बाद में भूल गए, अपने बारे में सोचने के अलावा किसी और के बारे में हमने नहीं सोचा और परिणाम स्वरूप मलिन बस्तियाँ या झौपड़ पट्टीयों जैसी सामाजिक संरचनाएँ सामने आयी।

इन्दौर शहर का ज्यों–ज्यों विकास होता गया, औधोगिक, व्यावसायिक इकाईयों में वृद्धि होती गई और उसी दर से व्यक्ति समुहों का आकर्षण इन्दौर की ओर बढ़ता गया। कपड़ा मिल, कारखानें, दवा उद्योग, वाहन उद्योग ऐसे कारक थे, जिन्होंने जन सैलाब को अपनी ओर आकर्षित किया। उद्योगों को भारी मात्रा में मजदूर या श्रम साधन तो उपलब्ध हो गया परंतु यह मजदूर वर्ग, श्रम संसाधन शहर के नियोजन एवं भौगोलिक परिश्य में एक श्राप बनकर सामने आया, जिसे हम आज मलिन क्षेत्र या गंदी बस्तियों के नाम से जानते है।

मलिन बस्तियों का अध्ययन – ये बस्तियों मनुष्य के विनाश की चरम सीमा का प्रतिनिधित्व करती है तथा यहां जीवित रहते हुए भी लोग मृत प्राय: होते है। यहाँ सामाजिक दुर्गुणों के परिणाम स्वरूप नैतिकता का पतन होता है। पर्याप्त जगह के अभाव में यहॉ के बच्चे सड़को, गलियो, चौराहो पर समय व्यतीत कर अपराधिक, अनैतिक व असामाजिक बातों को सीख कर समाज में नयी–नयी समस्याओं को जन्म देते है।

दूसरे शब्दों में मलिन बस्ती या गंदी बस्ती वह क्षेत्र है, जिसमें गंदगी से युक्त कच्चे घर, कीड़े–मकड़े व बीमारियों के पनपने की अनुकूल परिस्थितियॉ, सड़के कच्ची व कीचड़युक्त, मच्छर, मक्खियों का बसेरा, रोशनी विहीन गलियॉ व कचरे से पटे हुए पड़ोस, जहां शहर भर की गंदगी एकत्र होती है। यहां रात में जाना किसी भयावह स्थान पर जाने से कम नहीं है। ये बस्तियाँ अवैध व अनियमित होती है, जिन्हे प्रशासनिक मान्यताएँ नहीं है। यहां आर्थिक, सामाजिक रूप से पिछडेपन के कारण अपराध भी पनपते है। इन क्षेत्रों के विकास का मूल कारण जनसंख्या वृद्धि, अशिक्षा, बेरोजगारी तथा प्रशासनिक व्यवस्थापन का धीमा क्रियान्वयन है।

परिभाषाएँ –

1. 'अपनी ऑखों से देखने पर भी आप यह यकीन नहीं कर सकते है कि विश्व में कुछ ऐसे स्थान भी है, जिन्हें देखने के बाद पीना–खाना भी अच्छा नहीं लगता, उल्टियां आती है, मन में घृणा होती है, ऐसा नापाक जीवन जिसको बयॉ न किया जा सके, ऐसे क्षेत्र मलिन क्षेत्र होते है।' **स्व. मोहनदास करमचंद गांधी (महात्मा गांधी)**

2. 'गंदी बस्ती गिरावट की वह अंतिमावस्था है, जहां रहवास इतना अनुपयुक्त हो कि निवासियों के स्वास्थ्य, नैतिक मूल्य और कार्य क्षमता का ह्रास हो जाये।' **डिकिन्सन महोदय**

'गंदी बस्ती उस स्थान को कहा जा सकता है जो कि जीवन के उपयुक्त दृष्टिकोण से भिन्न तथा स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से या साफ सफाई की दृष्टि से अनुपयुक्त हो।' **भारत सेवक समाज ।**

अध्ययन क्षेत्र – इन्दौर पश्चिमी म.प्र. का प्राचीन व मालवा पठार का प्रमुख नगर है, यह समुद्र तल से लगभग 553 मी. की उँचाई पर 2202 से 23005' उत्तरी अक्षांश तथा 75025 से पूर्वी देशांतर पर अवस्थित है। समशीतोष्ण जलवायु के साथ यह नगर सरस्वती व खान नदी तंत्र के प्रभाव क्षेत्र में आता

* प्राध्यापक (भूगोल) श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

है। अत: इस नगर को मलिन बस्तियों की **दशकीय** वृद्धि के अध्ययन हेतु चुना गया है–

अध्ययन विधि – प्रस्तुत अध्ययन व्यवहारात्मक द्वितीयक तथ्यो पर आधारित है । अध्ययन में द्वितीयक आंकड़ों का एकत्रण शोध पत्रिकाओं, इंटरनेट, मास्टर प्लान (2001,2011, 2021) व समाचार पत्र–पत्रिकाओ से किया गया।

उद्देश्य – प्रस्तुत अध्ययन का मूल उद्देश्य मलिन क्षेत्रों में वृद्धि व मूल समस्याओं पर प्रकाश डालना है।

मलिन बस्तियों का विकास एवं स्थान – मलिन बस्तियाँ निम्न आयुवर्ग एवं अवैधानिक बसाहट है, जिनका विकास ऐसे स्थानों पर होता है, जहां –

1. इन बस्तियों को मुख्यतर या ज्यादातर मुख्य नगर की परिधि में विकास देखा जाता है।
2. औधोगिक क्षेत्र जिनके आस–पास खाली पड़े स्थानो पर गंदी बस्तियाँ पनप जाती है।
3. नदी–नाले जिनके किनारे पर अवैधानिक रूप से इनका विकास होता है।
4. मलिन क्षेत्र अव्रजन के तीव्र स्थानांतरण के कारण आकार लेते है।
5. रेल्वे लाईन, मुख्य सड़क किनारे जहां से शहर के क्रियाशील स्थलो पर आना सरल हो विकसित होती है।

तालिका क्र. 1.1

विभिन्न शहरों में मलिन बस्तियों का प्रतिशत

क्र.	नगर	मलिन बस्तियों की जनसंख्या
1	मुम्बई	54.1%
2	दिल्ली	18.7%
3	चेन्नई	18.9%
4	अहमदावाद	42.5%
5	लखनऊ	53.9%
6	कोलकत्ता	32.5%
7	इन्दौर	30.3%

स्त्रोत– जनसंख्या पुस्तिका 2011

प्रकार – मलिन बस्तियों के अध्ययन के पश्चात् इन मलिन बस्तियों के दो प्रकार देखे जा सकते हैं –

1. ऐसी बस्तियाँ जिनका जन्म एवं विकास ही गंदी बस्तियों के रूप में होता है, जो बड़े शहरो के सीमांत क्षेत्रो में होती है। इनमें निवास करने वाले व्यक्ति शहर में जाकर कारखानों–उद्योगो एवं अन्य संस्थानो में जाकर मजदूरी करते है तथा शाम तक अपने इन निष्कृष्ट निवासो में लौट आते है।
2. दूसरी प्रकार की मलिन बस्तियां वे बस्तियाँ है, जिनका विकास एवं स्थापन शनै:–शनै: हुआ है। ये बस्तियां शहर के मध्य उद्योगो, कारखानो के जन्म के साथ अस्तित्व में आती है। यहां के लोग रोजगार के अवसर के लिए ऐसे क्षेत्र में जाकर बस जाते है, जहां पर पूर्व में मध्यवर्ग रहता था एवं वह पलायन कर गया व उनका स्थान इस मजदूर वर्ग ने ले लिया, उस स्थान का स्तर धीरे–धीरे निम्न एवं जर्जर हो गया, वही स्थान मलिन बस्तियों में बदल गया।

भारत के विभिन्न शहरों/नगरों में इन्हें भिन्न–भिन्न नामों से जाना जाता है। जैसे – मुम्बई में चाल, चैन्नई में चेरी, कलकत्ता में बॉडी, दिल्ली में मलिन, कानपुर में कटरा या अहाता, मध्यभारत से गंदी बस्ती आदि। कुछ अध्ययनों के अनुसार नगरों की जनसंख्या का लगभग 26% हिस्सा मलिन बस्तियों या गंदी बस्तियों के रूप में होता है।

इन्दौर में मलिन बस्तियों का विकास – इन्दौर का औधोगिक विकास 1900 ई. के प्रारंभ में हुआ। 1900 के प्रारंभ में 2–3 ही मलिन बस्तियाँ थी। 1960 के दशक में 41 मलिन बस्तियाँ हो गई। 1960 से 1991 के मध्य मलिन बस्तियों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इस समय में मलिन बस्तियों की संख्या 183 हो गई। जहां 2001 में 637 तथा वर्तमान (201) में लगभग 722 छोटी–बड़ी मलिन बस्तियाँ है। जिसमें 174376 मकान तथा लगभग 797574 जनसंख्या हो गई। नगर में 65% मलिन बस्तियाँ खान व सरस्वती नदी के किनारे निवास करती है।

सम्पूर्ण जनसंख्या वृद्धि पर नजर डाले तो यह ज्ञात होता है कि वर्ष 1891 से 1900 का समय जनसंख्या वृद्धि का समय रहा, जबकि 1981–1991 के मध्य जनसंख्या वृद्धि सर्वाधिक रही। इन्दौर नगर वर्तमान में जनसंख्या की दृष्टि से मध्यप्रदेश का सबसे बड़ा नगर है, दूसरे स्थान पर भोपाल आता है। इन्दौर नगर का राजवाड़ा क्षेत्र के निकटवर्ती क्षेत्र में जनसंख्या का सघन रूप दिखाई देता है इसका मुख्य कारण यहां उपलब्ध बाजार, कार्यालय, मनोरंजन के साधन इत्यादि है।

जनसंख्या घनत्व व वृद्धि – किसी स्थान के वातावरण एवं मनुष्य का वास्तविक संबंध उस स्थान के जनसंख्या घनत्व से ज्ञात किया जा सकता हैं। जनसंख्या घनत्व में परिवर्तन समयानुसार होता रहा है। इसका कारण जनसंख्या में होने वाली वृद्धि रहा है। जहॉ वर्ष 1801 में 3 से 4 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. में निवासरत थे, वही 1881 यह घनत्व 22 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. हो गया।

जनसंख्या घनत्व की दर तो सामान्य थी, परंतु 1899–1900 में भयंकर अकाल एवं महामारी के प्रभाव से यह घनत्व यकायक कम हो गया एवं 1911 के बाद यह गति 1971 तक सामान्य परंतु 1981 से औधोगिक विकास के साथ जनसंख्या घनत्व में वृद्धि होती गई। 1981 में जनसंख्या घनत्व 213/2 वर्ग कि.मी. तथा 1991 में 280/2 वर्ग कि.मी. था। इस बीच इन्दौर के क्षेत्रफल में वृद्धि हुई तो है, परंतु जनसंख्या की वृद्धि की तुलना में यह आंशिक ही है, वर्तमान (2011) में इन्दौर का जनसंख्या घनत्व 841 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. हैं।

तालिका क्र. 1.2 (देखे अगले पृष्ठ पर)

ग्राफ क्र. 1.1 जनसंख्या में दशकीय वृद्धि (प्रतिशत में)

1951 में नगर की जनसंख्या 310859 थी, जो 1991में बढ़कर 10.9 लाख तथा वर्ष 2001 में 15.9 लाख हो गई। इस बढ़ती हुई जनसंख्या

के साथ-साथ नगर की मलिन बस्तियों की संख्या में भी वृद्धि हुई। 1951 में नगर में कुल 26 मलिन बस्तियाँ थी, जिसमें 67,619 व्यक्ति निवास करते थे। 1991 में बस्तियोँ की जनसंख्या बढ़कर 1091674 हो गई। विभिन्न अशासकीय संस्थाओं द्वारा किये गए सर्वेक्षण के अनुसार (2013) में नगर में 722 गंदी बस्ती क्षेत्र तथा जनसंख्या 1960631 (मलिन बस्तियो की जनसंख्या 594553)हो गई।

1991 की तुलना में वर्ष 2001 में 15.7 प्रतिशत जनसंख्या में कमी आई हैं। इसी प्रकार से कुल जनसंख्या में गंदी बस्तियों की संख्या का प्रतिशत भी वर्ष 1951 से 1981 में कम होता हुआ दिखाई देता है, जो वर्ष 1981 से 1991 के दौरान पुन: बढ़कर क्रमश: 0.3 प्रतिशत तथा 11.6 प्रतिशत वृद्धि को प्रदर्शित करता है। इस वृद्धि का मूल कारण नगर की कुल जनसंख्या में ग्रामीण नगरीय स्थानांतरण भी है। वर्ष 2001 में पुन: जनसंख्या में 15.65 प्रतिशत की कमी दिखाई देती है, जो गंदी बस्तियों के उन्मूलन के साथ-साथ आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र से हो रहे स्थानांतरण में हो रही कमी का परिणाम है। 2011 में कुल जनसंख्या में जहां 18.5%की दशकीय वृद्धि दिखाई देती है, वहीं मलिन बस्तियों में 12.9% की वृद्धि दिखाई देती हैं।

2011 में मलिन बस्तियों में हुई यह वृद्धि शहर की सीमा में हुई वृद्धि के कारण है, जिसमें क्षेत्रीय सीमा में 47 मलिन बस्तियों को विलय इन्दौर नगर सीमा में हुआ है। जिसमें लगभग 101500 जनसंख्या का विलय शहर की जनसंख्या में हुआ है। देखें तालिका क्र. 1.2

ग्राफ क्र. 1.2

गंदी बस्तियों की कुल जनसंख्या प्रतिशत में

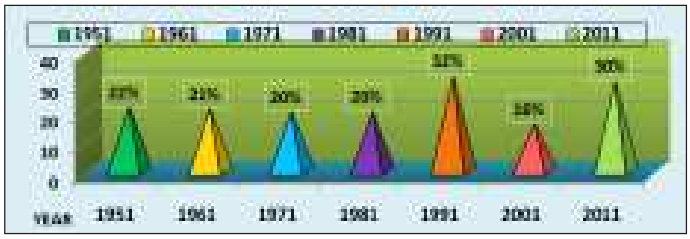

मलिन बस्तियों की समस्याएँ -जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप जनसंख्या घनत्व में वृद्धि हुई है, जिस कारण शहरों में मलिन क्षेत्रों का विकास हुआ, साथ ही इनकी समस्याओं व समस्या के कारणों में भी वृद्धि हुई है-

1. इनकी मुख्य समस्या पर्याप्त रहवास की कमी है, जिससे इनका परिवार निवास की समस्या से जूझता रहता है।
2. इन स्थानों को सरकारी मान्यता प्राप्त नहीं होती है।
3. रोड़ तथा बिजली की समस्या।
4. शौचालयों की समस्या।
5. नालियों की समस्या।
6. शिक्षा एवं स्वास्थ्य केन्द्रों की समस्या।
7. ड्रेनेज सरकारी प्रयासो को अक्षरत: लागू करने की समस्या।
8. पीने के पानी एवं उपयुक्त वातावरण का अभाव।
9. व्यक्तित्व ह्रास एवं अपराध की समस्या।
10. परिवार नियोजन के अभाव में यहॉ बच्चों की संख्या अधिक होती है।
11. व्यवसाय व रोजगार की समस्या।

दीर्घकालिक व सुद्रण समाधान के लिए सुझाव - प्रत्येक विकासशील राष्ट्र अनेकानेक समस्याओं से ग्रसित है, मलिन एवं गंदी बस्तियों की समस्या भी उनमें से एक है, जो कि विकास की गति को अवरूद्ध करती है।अत: मलिनवासियों की स्थिति में सुधार करने हेतु समस्याओं का समाधान होना आवश्यक है-

- अशिक्षा, अज्ञानता, अंधविश्वास एवं रूढ़ीवादिता को दूर किया जाये।
- आय स्तर को बढाया एवं ऋण उपलब्ध करवाया जाये।
- अपराध एवं मादक पदार्थो के सेवन पर नियन्त्रण।
- परिवार नियोजन एवं स्वास्थ्य के प्रति चेतना पैदा की जाये।
- वातावरण में सुधार एवं महिला एवं युवा संगठनों का निर्माण।
- ग्रामीण विकास एवं कार्य कुशलता को बढ़ाया जाये।
- उचित मूल्य की दुकानें खोली जाये।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Agrawal siddarth & Tanuja shivani –2003, "Vulnerability Apparent siblings : Assessing Multy Dimantion of urban poverty for better program targeting" published by Indian padiatrics- vol-3,
2. मनीष श्रीवास्तव (2001) जनसंख्या प्रदूषण एवं निवारण पृ. क्र. 19 व 20, नमन प्रकाशन नई दिल्ली।
3. शोध पत्र - वीरेन्द्र कुमार, 1990, इन्दौर नगर की मलिन बस्तियां व अव्यवस्थित बस्तियां - उपयोग समस्या व समाधान, पृष्ठ 38-81,
4. मास्टर प्लान-2001,11,21, अन्य - दैनिक समाचार पत्र, शोध पत्र, इन्टरनेट बेबसाइड - www.google.co.in/ecology

तालिका क्र. 1.2 - जनसंख्या वृद्धि इन्दौर विकास योजना -2011

वर्ष	नगर की कुल जनसंख्या	दशक वृद्धि % में	गंदी बस्तियों की जनसंख्या	दशक वृद्धि % में	गंदी बस्तियों की जनसंख्या%
1951	310859	62.6	67619	+23	21.7
1961	394941	27	83174	+23	21
1971	560936	42	112352	+35	20
1981	829327	47.8	168246	+49.1	20.3
1991	1091674	31.6	346625	+106	31.9
2001	1594401	46.3	259577	-25	16
2011	1960631	18.5	594553	+129	30.3

स्त्रोत-इन्दौर विकास योजना प्रारूप 2011

****

पर्यावरण एक चिंतनीय समस्या की - समीक्षात्मक विवेचना

डॉ. अलका नामदेव *

शोध सारांश - प्रस्तुत शोधपत्र में पर्यावरण से संबंधित समस्याओं को समेकित किया गया है और उन समस्याओं के उत्पन्न होने वाले कारणों और पढ़ने वाले प्रभावों की समीक्षा की गई है। प्रकृति द्धारा प्रदान की गई अमूल्य धरोहर को मानव विकास के माध्यम से नष्ट करता जा रहा है। जिसका प्रभाव वर्तमान में तो हो ही रहा है परन्तु भविष्य में खतरा बनकर मानव, जीवों, वनस्पतियों व अन्य को किस प्रकार प्रभावित करेगा, जिसका अनुमान लगाना मुश्किल है। आज प्राकृतिक प्रकोप, बीमारियाँ, व अन्य विनाशकारी प्रभाव जो देखने को प्राप्त हो रहे है उसका सम्बंध प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण से है। पर्यावरण समस्या रोकने व सुधार करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर कानून, समाजसेवियों, आन्दोलनो व प्रचार-प्रसार, संगोष्ठियों व अन्य माध्यमों द्धारा प्रयास किये जा रहें हैं। उसके बावजूद भी पर्यावरण एक चिंतनीय विषय है।

शब्द कुंजी- टिकाऊ विकास, अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय कानून गैसे, रसायन, वनों का दोहन, आन्दोलन।

प्रस्तावना - पर्यावरण शब्द फ्रेंच भाषा के *Environer* शब्द से बना है जिसका अभिप्राय समस्त परिवृति से होता है इसके अन्तर्गत सभी स्थितियाँ, परिस्थितियाँ, दशाएँ तथा प्रभाव है जो जैविकीय समूह पर प्रभाव डाल रहें है पर्यावरण मानव के जीवन और उसकी क्रियाओं पर प्रभाव डालता है जो निरन्तर प्रभावित हो रही है। वर्तमान में पर्यावरण क्षय की अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है जिसमें बढ़ती हुई जनसंख्या, नगरीकरण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, रेडियोएक्टिवता, रासायनिक प्रभाव, वनों की कटाई, औद्योगिकरण, शिक्षा का अभाव, मानव की बढ़ती आकांक्षाओं के साथ विज्ञान और तकनीक आदि उत्तरदायी हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण को ध्यान में रखकर चिंता जताई जाती है। सामाजिक रूप में टिकाऊ विकास की अवधारण को बल दिया गया है जिसके अन्तर्गत प्राकृतिक संसाधनों को वर्तमान पीढ़ी द्धारा इस प्रकार से उपयोग किया जाए, कि प्राकृतिक संसाधनों का न्यूनतम क्षरण हो। यदि ऐसा नहीं किया जायेगा, तो भावी पीढ़ियाँ प्राकृतिक संसाधनों से वंचित हो जायेगी। हालांकि विकास अल्पकालिक आर्थिक लाभों के बजाय दीर्घकालिक निर्वहनीय संवृद्धि के लिये इस तरह से होना चाहिए कि भावी पीढ़ियों के लिये जीवन की गुणवत्ता बनी रहें, परन्तु हमने आर्थिक विकास की जिन नीतियों को अपना रखा है और प्राकृतिक संसाधनों का अतिशय दोहन कर रहे हैं उससे आगे आने वाली पीढियों का भविष्य अंधकारमय हो सकता है।

पर्यावरण असन्तुलन के लिये किसी एक निश्चित तंत्र को प्रभावी नहीं माना जा सकता है। इसमें भौतिक एवं जैविक परिस्थितियों का योग है जिसमें मुख्यघटक के रूप में स्थलमंडल, जलमंडल और वायुमण्डल निरन्तर दुष्प्रभावित हो रहे हैं, क्योंकि विकास और प्रौद्योगिकी का युग है और मानवीय गतिविधियों और क्रिया-कलापों से पर्यावरण को क्षति पहुँचती है। जिससे वैश्विक स्तर पर पर्यावरण संरक्षण को एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। पर्यावरण के महत्व को लेकर पर्यावरण विद्धानों ने विभिन्न प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया है। टांसले के अनुसार 'प्रभावशाली दशाओं का वह सम्पूर्ण योग, जिसमें जीव रहते है पर्यावरण है।' डेविस के अनुसार - 'मनुष्य के सम्बंध में पर्यावरण से अर्थ मूलभूत पर मनुष्यों के चारों ओर फैले उन सभी भौतिक रूपों से है, जिनसे वह निरंतर प्रभावित होता रहता है।' हर्सकाविट्स के अनुसार 'पर्यावरण समस्त परिस्थितियों और उसका जीवधारियों पर पड़ने वाला प्रभाव है जो जैव जगत के विकास चक्र का नियामक है।' ई.जे.रॉस का कहना है कि ' पर्यावरण वह बाहरी शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है। जबकि पी.जिसबर्ट का मानना है कि 'पर्यावरण किसी वस्तु को निकट से घेरे हुए है और उस पर सीधा प्रभाव डालता है।'

पर्यावरण को असन्तुलित करने अथवा क्षति पहुँचाने में सर्वाधिक योगदान वायु प्रदूषण का है वायु प्रदूषकों में प्राथमिक कारक के रूप में स्त्रोतों से निकलकर सीधे पर्यावरण को क्षति पहुंचाते है। जबकि द्धितीय कारक के अन्तर्गत दो या अधिक प्रारंभिक प्रदूषकों की पारस्परिक क्रिया से प्रकाश रासायनिक अभिक्रिया के परिणाम होते (अम्ल वर्षा So_2, O_3) है। वायुमण्डल में उन गैसों की मात्रा तेजी से बढ़ रही है जो उष्मा शोषी है मुख्य रूप से कार्बनडाइऑक्साइड (CO_2), मीथैन (CH_4), नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O), क्लोरोप्लोरोकर्बन (CFC), परप्लोरोकार्बन (PFC), हाइड्रोप्लोरोकार्बन (HFC), सल्पर हेल्सा प्लोराइड (SF_2), आदि का वायुमण्डल में अधिक उष्माशोषी होता जा रहा है इन गैसों का पृथ्वी पर बढ़ते प्रभाव के कारण वायुमण्डल हरित ग्रह का रूप धारण करता जा रहा है। वर्तमान मे (CO_2) की सान्द्रता 340 PPM है जा निरन्तर बढ़ रही है वर्ष 2030 तक इसकी मात्रा 640 PPM व तक पहुंचने की संभावना है जिससे पृथ्वी के औसत तापमान में $4.5C^0$ तक वृद्धि हो सकती है जिससे वैश्विक तापमान में वृद्धि के साथ पहाड़ो, ग्लेशियरों, अंटार्कटिका व ध्रुवों की बर्फ पिघलेगी और समुद्री जल स्तर में वृद्धि होगी।[1] वायु प्रदूषकों में कार्बन मोनोऑक्साइड (CO)50 प्रतिशत प्रतिनिधित्व करने वाली गैस है जो श्वसन के माध्यम से हीमोग्लोबिन में ऑक्सीजन वहनीयता समाप्त करती है। क्लोरोफ्लोरोकार्बन ओजोन क्षरण के साथ-साथ कैंसर, मोतियाबिन्दु जैसी

* अतिथि विद्वान (भूगोल) शासकीय श्रीमंत माधवराव सिंधिया स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.) भारत

बीमारियाँ उत्पन्न करती हैं। कैडमियम मानव में रक्त चाप बीमारी उत्पन्न करती हैं मुम्बई स्थिति उपभोक्ता गाइडेन्स सोसायटी ऑफ इण्डिया की रिपोर्ट के अनुसार सिंदूर और कुमकुम में पारे का सल्फाइड होता है जो गुर्दे, भ्रम, पागलपन, दृष्टि संबंधी रोग उत्पन्न करता है। वायु प्रदुषकों से वनस्पतियों में चिकनाहट कम होना, पीली पड़ना और पौधों का सूखजाना इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं। अम्लवर्षा में सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) और नाइट्रोजन डाइऑक्साड (NO_2) प्रमुख है जो रिफायनरीज, खनिज तेलों और कोयला जलने से निकलती है और फसलों, और जीव-जन्तुओं को दुष्प्रभावित करती है पर्यावरण को वायुप्रदूषण द्वारा दुष्प्रभावित करने में मोटर गाडियाँ और उद्योगों की प्रमुख भूमिका है।

पर्यावरण को क्षति पहुचाने में जल प्रदूषण की भूमिका भी कम नहीं है औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले कचरे व अपशिष्ट के रूप में क्लोराइड, सल्फरडाइ, नाइट्राइट्स, नाइट्रेट्स, अमोनिकल, नाइट्रोजन, सीसा, पारा, जस्ता, ताबां इत्यादि प्रमुख है। पारे के प्रभाव से मिनीमाता रोग उत्पन्न हो जाता है एवं समुद्री जीव नष्ट हो जाते हैं। सूती, ऊनी, चमडे, शराब, कागज निर्माण उद्योगों से पर्यावरण को निरन्तर क्षति पहुँच रही है जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पड़ रहा है। वर्तमान में कई टैंकरों तेल का रिसाव आयात-निर्यात के दौरान समुद्रों में हो रहा है एवं जहाजों का दुर्घटना ग्रस्त होने से प्रत्यक्ष रूप से जल प्रदूषित करते हैं जिससे हजारों समुद्री जीव-जन्तु नष्ट हो जाते है। 1978 में अमरीकी सुपर टेंकर नष्ट होने से 2000 वर्ग किमी. में कच्चे तेल का फैलाव हो गया। जिससे श्रिम्प तथा आयस्टर मछलियां नष्ट हो गई। मानव की बढ़ती आवश्यकता के साथ घरेलू अपर्माजिक, सीवेज व्यवस्था, कचरा निस्तारण व्यवस्था का प्रबंध न होने के कारण रासायनिक क्रियाओं द्वारा पर्यावरण को क्षति पहुँचती है।[2] वर्तमान समय में खाध्य पदार्थो की बढ़ती आवश्यकता के साथ-साथ फसलों तथा बागवानी जैसे कार्यो में विषैले रसायनों जैसे बी.एच.सी. (बैक्जीन हैक्सा क्लोराइड), डी.डी.टी., अमोनिया, यूरिया 2,4-D (2-4, डाइ-क्लोरोफेनाक्सी एसिटिक एसिड) 2,4,5-T (2,4,5- डाइक्लोरोफिनोक्सी एसिटिक एसिड) आदि का उपयोग किया जा रहा है। जिनका दुहरा हानिकारक प्रभाव पडता है प्रथम तो वर्षा के समय जल प्रदूषण द्वारा पर्यावरण को क्षति पहुंचती है। द्वितीय रसायन प्रभावित खाध्य पदार्थो के सेवन करने से अनेक प्रकार की बीमारीयों से ग्रस्त होना।[3]

पर्यावरण क्षरण में कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं है, बल्कि बढ़ती जनसंख्या और उनकी बढ़ती आवश्कताऐं पर्यावरण को पूरी तरह नष्ट करने में लगी हुई है। अमेरिका, रूस, जापान, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, नार्वे, स्वीडन ऐसे देश है जिन्होंने विश्व की जनसंख्या अनुपात में अपने देश की जनसंख्या प्रतिशत में वृद्धि नहीं होने दी है। परन्तु अफ्रीका, यूरोप और एशिया के देशों में भारत, पाकिस्तान चीन सहित अन्य देशों में निरन्तर जनसंख्या वृद्धि का प्रतिशत बढ़ा है। प्राकृतिक सौन्दर्यता व सुरक्षा का आज दोहन किया जा रहा है कृषि, नगरीकरण, औद्योगिकरण झूमिंग खेती के लिये वनों की अंधाधुंध कटाई की जा रही है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव पर्यावरण पर पड़ रहा है जिससे सूखा, बाढ़, भू-स्खलन इत्यादि प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देते है 11 मार्च 2011 को पश्चिमी प्रशान्त महासागर में दैत्याकार सुनामी से जापान फुकुशिमा-डयेची परमाणु रियक्टरों में विस्फोट होने से 10,000 से अधिक लोगों की मृत्यु हो गई, 40,000 व्यक्ति रेडिएशन विशाकन हो गये, हजारों की संख्या में मछलियाँ मारी गई साथ ही जीव-जन्तु नष्ट हो गये। पर्यावरण असन्तुलन के कारण 16-18 जून 2013 को भारत के उत्तराखण्ड में विनाशकारी भू-स्खलन हुआ है। जिसमें 6,000 से अधिक पर्यटक और श्रद्धालुओं की मृत्यु हो गई सैकड़ों लाशों का मंजर देखा गया। इस आपदा के लिए पर्यावरणविदों ने पिछले कई वर्षो से हो रहे वनों की कटाई अथवा दोहन को उत्तरदायी माना था।[4] वैश्विक पर्यावरण पर दुष्प्रभाव डालने में परमाणु विस्फोटों अथवा परीक्षणों का भी योगदान विभिन्न देशों के परमाणु परीक्षणो से तापमान वृद्धि, वनस्पतियों का विनाश और मानव बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। अमेरिका के राबर्ट ओपेनहाइमर ने तो परमाणु हथियार को शैतान का हथियार की संशा दी है। ग्लोबल वार्मिंग वर्तमान में एक बडी समस्या है जिससे ग्लेशियर पिघल रहे हैं जिसे वैज्ञानिकों ने मालदीप और बांग्लादेश के लिए सबसे बड़ा बताया है। मालदीप के राष्ट्रपति मोहम्मद नाशीद ने कहा कि 'हम डूब रहे है।'

पर्यावरण को सुरक्षित और संरक्षित करने के लिए आर्न्तराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। मानव पर्यावरण सम्मेलन 1974 (सी.एच.ई.) पर्यावरण पर केन्द्रित यह सबसे पहला अन्तरर्राष्ट्रीय सम्मेलन था जो 1972 में स्वीडन के स्टोकहोम में यू.एन. के तत्वाधान में आयोजित किया गया था इस सम्मेलन में 119 देशों ने भाग लिया जिन्होंने पहली बार 'एक ही पृथ्वी' के सिद्धान्त को स्वीकार किया था पर्यावरण सुरक्षा पर स्टोकहोम घोषणा पत्र को 'विश्व पर्यावरण का मैग्नाकार्टा' कहा जाता है इस सम्मेलन में वर्तमान और भविष्य में पर्यावरण सुधारने व स्वच्छ रखने का संकल्प किया गया। प्राकृतिक परिस्थितिकी तंत्र को वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षण पर जोर दिया गया। हेलसिंकी सम्मेलन 1974 समुद्री पर्यावरण की रक्षा पर प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय समझौता था जिसमें प्रदूषण के सभी स्त्रोतों पर विचार करने की बात की गयी। तेल व अन्य जलीय प्रदूषणकारी पदार्थो को नियंत्रित करने व आपसी सहयोग पर बल दिया गया। मांट्रियल प्रोटोकोल 1987 में 47 देशों ने भाग लिया। मांट्रियल प्रोटोकोल विश्व में ओजोन क्षरण की समस्या के समाधान की दिशा में प्रथम प्रयास था जिसमें 33 देशों ने हस्ताक्षर किये सी.एफ.सी. के उत्सर्जन पर नियन्त्रित करने का संकल्प लिया गया। पृथ्वी सम्मेलन 1997 - ब्राजील के रियोडि जेनेरियो में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन का आयोजन संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन (UNCED) द्वारा किया गया। रियो शहर में आयोजित होने के कारण इसे 'रियो सम्मेलन' भी कहा जाता है इसमें वैश्विक तापमान वृद्धि, प्रदूषण समस्या, जैव विविधता, आदि को मुख्य मुद्दा बनाया गया। कहा गया कि हमारे देश की राजनैतिक सीमाएँ भले ही अलग हों, परन्तु पृथ्वी के बचाने के लिए सभी देशों द्वारा एकीकृत प्रयास करना चाहिए। एक पृथ्वी है। जापान के क्योटो प्रोटोकोल 1997 में कार्बनडाइ ऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, हाइड्रोक्लोरो कार्बन, परक्लोरो कार्बन तथा सल्फर सहित 6 गैसों की कटौती पर अमेरिका सहित 159 देशों ने हस्ताक्षर किये। दक्षिण अफ्रिका के जोहांसवर्ग सम्मेलन 2002 में 104 देशों के शसनाध्यक्षों के अतिरिक्त 9,101 सरकारी प्रतिनिधियों एवं 8,227 गैर सरकारी प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें एजेंडा-21 पर विचार-विमर्श किय गया जिसमें टिकाऊ विकास मुख्य विषय रहा। इसके पश्चात् पर्यावरण की चिंता को लेकर मांट्रियल सम्मेलन 2005, बाली सम्मेलन 2007, डेनमार्क में कोपेन हेगेन सममेलन 2009 में सम्पन्न हुऐं। कोपेन हेगेन सम्मेलन में विकासशील देशों पर कार्बन उत्सर्जन सम्बन्धी बाध्यता निर्धारित किए जाने का प्रयास विकसित राष्ट्रों द्वारा किया गया। इसमें तापमान को दो डिग्री तक सीमित करने का लक्ष्य रखा गया। अमेरिका व बेसिक (ब्राजील, साउथ अफ्रीका, इण्डिया, चाइना) के बीच अन्तिम बातचीत हुई। समझौते को सर्वसम्मत नहीं

कहा जा सकता है।[5] इसके बाद कानकुन सम्मेलन 2010, डरबन जलवायु परिवर्तन सम्मेलन 2011 तथा रियो+20 सम्मेलन 2012 में सम्पन्न हुए।

राष्ट्रीय स्तर पर भारत में पर्यावरण संरक्षण हेतु अनेक कानून बनाये गये तथा समय-समय पर आन्दोलन चलाये गये, जिससे पर्यावरण संरक्षण हेतु जन चेतना का प्रचार-प्रसार और विकास हुआ। भारत में राष्ट्रीय स्तर पर जल प्रदूषण एवं नियंत्रण एक्ट 1974, वायु प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण एक्ट 1981, पर्यावरण संरक्षण एक्ट 1986, दोक दायित्व बीमा एक्ट 1991 राष्ट्रीय पर्यावरण ट्रिब्यूनल एक्ट 1992, तथा राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलैट ऑथोरिटी एक्ट 1997 प्रभावशील है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय पर्यावरणीय चेतना अभियान (NEAC) , पर्यावरण वाहनी, आदि कार्यरत है पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार हेतु पृथ्वी दिवस (22 अप्रैल), विश्व पर्यावरण दिवस 5 जून, औजोन दिवस 16 सितम्बर, विश्व जल दिवस 22 मार्च को प्रत्येक वर्ष विद्यालय एवं महाविद्यालयों में आयोजित किये जाते हैं जिसके माध्यम से पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाले कारकों से जनसाधारण को अवगत कराया जाता है।[6] भारत में राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण की सुरक्षा हेतु आन्दोलनों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है जैसे 1972 में उत्तराखण्ड में चिपको आन्दोलन जिसमें सुन्दरलाल बहुगुणा, सला बेन, मीरा बेन का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसी प्रकार से 1983 में कर्नाटक में अप्पिको आंढोलन चलाया गया जिसमें युवक मंडली ने भूमिका निर्वाह की। 1980 बिहार में जंगल बचाओं आन्दोलन, 1987 में नर्मदा बचाओ आन्दोलन। इन आन्दोलनों द्वारा वृक्षों की कटाई को रोका गया था।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कानूनी तौर पर अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण को सुरक्षित करने एवं हरियाली बढाने हेतु प्रयास किये जा रहे हैं, परन्तु वर्तमान में शिक्षा के प्रचार-प्रसार द्वारा वैश्विक स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति को जागरूक होना होगा और पर्यावरण के महत्व को समझते हुए वृक्षारोपण, प्रदूषण नियंत्रण, प्राकृतिक संसाधनों के हनन को रोकने के साथ साथ अन्य अशिक्षित व्यक्तियों को भी पर्यावरण के प्रति जागरूक करना होगा।

कूडा करकट, गन्दा पानी।
रोगों की करते अगवानी।।
अगर चाहिए लम्बी आयु।
सेवन करें स्वच्छ जल वायु।।
मत लो तुम वृक्षों की जान।
धरती होगी रेगिस्तन।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. परीक्षा मंथन, पर्यावरण विशेषांक, 2013-14, भाग 6-7, पृ 40-41
2. डॉ.एम.सी. सिंहल, भारत की विदेश नीति, पृ 457-60
3. डॉ. एम. सी. सिंहल, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंध, पृ 363
4. डॉ. सविन्द्र सिंह, आपदा प्रबंधन, पृ. 120-21
5. डॉ. बी.एल. फडिया, अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, 582-87
6. डॉ. एम.के.गोयल, पर्यावरण शिक्षा, पृ. 295-302, 315-328

****

Environmental Pollution & its control (Air, Noise, Status of Administrative Control)

Dr. Malika Khan *

Introduction - From our knowledge of Geology, we know that the solid Earth and its interior is known as **lithosphere**, and the gaseous layers surrounding the Earth upto a distance of about 500 km, composes the **atmosphere**. The entire collection of water over the Earth as well as inside the Earth is called the **hydrosphere**.

The four major elements, i.e. (i) land, (ii) water, (iii) air, and (iv) living organisms (plants and animals), together; constitutes what is known as **environment** or **ecosystem**.

Pollution & Pollutants - Human activities directly or indirectly affect the environment adversely. A stone crusher adds a lot of suspended particulate matter and noise into the atmosphere. Automobiles emit from their tail pipes oxides of nitrogen, sulphur dioxide, carbon dioxide, carbon monoxide and a complex mixture of unburnt hydrocarbons and black soot which pollute the atmosphere. Domestic sewage and run off from agricultural fields, laden with pesticides and fertilizers, pollute water bodies. Effluents from tanneries contain many harmful chemicals and emit foul smell. These are only a few examples which show how human activities pollute the environment. Pollution may be defined as addition of undesirable material into the environment as a result of human activities. The agents which cause environmental pollution are called pollutants. A pollutant may be defined as a physical, chemical or biological substance unintentionally released into the environment which is directly or indirectly harmful to humans and other living organisms.

Types of Pollution - Pollution may be of the following types:

• Air pollution • Noise pollution • Water pollution
• Soil pollution • Thermal pollution •Radiation pollution

Air Pollution - Air pollution is a result of industrial and certain domestic activity. An ever increasing use of fossil fuels in power plants, industries, transportation, mining, construction of buildings, stone quarries had led to air pollution. Air pollution may be defined as the presence of any solid, liquid or gaseous substance including noise and radioactive radiation in the atmosphere in such concentration that may be directly and indirectly injurious to humans or other living organisms, plants, property or interferes with the normal environmental processes. Air pollutants are of two types (1) suspended particulate matter, and (2) gaseous pollutants like carbon dioxide (CO_2), NOx etc.

Particulate pollutants - Particulate matters suspended in air are dust and soot released from the industrial chimneys. Their size ranges from 0.001 to 500 µm in diameter. Particles less than 10µm float and move freely with the air current. Particles which are more than 10µm in diameter settle down. Particles less than 0.02 µm form persisent aerosols. Major source of **SPM (suspended particulate matter)** are vehicles, power plants, construction activities, oil refinery, railway yard, market place, industries, etc.

Table: ***Annual average concentration of pollutants in ambient air in residential and industrial areas (year 2000) mg/m3 in 24 hours***

SPM permissible- residential 140 – 200 mg/m3, industrial 360 – 500 mg/m3

City	Residential area	Industrial area
Agra	349	388
Bhopal	185	160
Delhi	368	372
Kanpur	348	444
Kolkata	218	405
Nagpur	140	157

Prevention and control of air pollution -

(i) Indoor air pollution - Poor ventilation due to faulty design of buildings leads to pollution of the confined space. Paints, carpets, furniture, etc. in rooms may give out volatile organic compounds (VOCs). Use of disinfectants, fumigants, etc. may release hazardous gases. In hospitals, pathogens present in waste remain in the air in the form of spores. This can result in hospital acquired infections and is an occupational health hazard. In congested areas, slums and rural areas burning of firewood and biomass results in lot of smoke. Children and ladies exposed to smoke may suffer from acute respiratory problems which include running nose, cough, sore throat, lung infection, asthama, difficulty in breathing, noisy respiration and wheezing.

(ii) Prevention and control of indoor air pollution - Use of wood and dung cakes should be replaced by cleaner fuels such as biogas, kerosene or electricity. But supply of electricity is limited. Similarly kerosene is also limited. Improved stoves for looking like smokeless chullahs have high thermal efficiency and reduced emission of pollutants including smoke. The house designs should incorporate a well ventilated kitchen. Use of biogas and CNG (Compressed

* Head (History) Govt. Girls College, Ratlam (M.P.) INDIA

Natural Gas) need to be encouraged. Charcoal is a comparatively cleaner fuel. Indoor pollution due to decay of exposed kitchen waste can be reduced by covering the waste properly. Segregation of waste, pretreatment at source, sterilization of rooms will help in checking indoor air pollution.

(iii) Control of vehicular pollution - The emission standards for automobiles have been set which if followed will reduce the pollution. Standards have been set for the durability of catalytic converters which reduce vehicular emission.

- In cities like Delhi, motor vehicles need to obtain Pollution Under Control (PUC) certificate at regular intervals. This ensures that levels of pollutants emitted from vehicle exhaust are not beyond the prescribed legal limits.
- The price of diesel is much cheaper than petrol which promotes use of diesel. To reduce emission of sulphurdioxide, sulphur content in diesel has been reduced to 0.05%.
- Earlier lead in the form of tetraethyl lead was added in the petrol to raise octane level for smooth running of engines. Addition of lead in petrol has been banned to prevent emission of lead particles with the vehicular emission.

Alternate fuels like CNG is being encouraged for use in public transport vehicles.

Noise Pollution - Noise is one of the most pervasive pollutant. A musical clock may be nice to listen during the day, but may be an irritant during sleep at night. Noise by definition is “sound without value” or “any noise that is unwanted by the recipient”. Noise in industries such as stone cutting and crushing, steel forgings , loudspeakers, shouting by hawkers selling their wares, movement of heavy transport vehicles, railways and airports leads to irritation and an increased blood pressure, loss of temper, decrease in work efficiency, loss of hearing which may be first temporary but can become permanent in the noise stress continues. It is therefore of utmost importance that excessive noise is controlled. Noise level is measured in terms of decibels (dB). W.H.O. (World Health Organization) has prescribed optimum noise level as 45 dB by day and 35 dB by night. Anything above 80 dB is hazardous.

Sources of Noise Pollution - Noise pollution is a growing problem. All human activities contribute to noise pollution to varying extent. Sources of noise pollution are many and may be located indoors or outdoors.

Indoor sources include noise produced by radio, television, generators, electric fans, air coolers, air conditioners, different home appliances, and family conflict. Noise pollution is more in cities due to a higher concentration of population and industries and activities such as transportation. Noise like other pollutants is a by product of industrialization, urbanization and modern civilization.

Outdoor sources of noise pollution include indiscriminate use of loudspeakers, industrial activities, automobiles, rail traffic, aeroplanes and activities such as those at market place, religious, social, and cultural functions, sports and political rallies. In rural areas farm machines, pump sets are main sources of noise pollution. During festivals, marriage and many other occasions, use of fire crackers contribute to noise pollution.

Prevention & control of noise pollution - Following steps can be taken to control or minimize noise pollution-

- Road traffic noise can be reduced by better designing and proper maintenance of vehicles.
- Noise abatement measures include creating noise mounds, noise attenuation walls and well maintained roads and smooth surfacing of roads.
- Retrofitting of locomotives, continuously welded rail track, use of electric locomotives or deployment of quieter rolling stock will reduce noises emanating from trains.
- Air traffic noise can be reduced by appropriate insulation and introduction of noise regulations for takeoff and landing of aircrafts at the airport.
- Industrial noises can be reduced by sound proofing equipment like generators and areas producing lot of noise.
- A green belt of trees is an efficient noise absorber.

Status of Administrative Control on Environment in India - In our country, no attention was paid for controlling the environmental effects of developmental projects, almost till the year 1968 or so. It was in the 4th five year plan period (1968-1973), when for the first time, environmental aspects were introduced for harmonious development.

The 5th five year plan (1973-77) continued to stress upon the environmental considerations. During this plan period, a central law was enacted, under the name of “**Water (Prevention and control of Pollution) Act, 1974**”. This law was meant for checking and preventing water pollution, which has become quite prominent at the time of enactment of this law, at several places in the country.

Another important Act, called the **Water (Prevention and Control of Pollution) Cess Act , 1977,** was also passed by the parliament. This law has proved quite effective in reducing the quantities of industrial wastes, as the act promotes recycling and reuse of the waste waters.

Protection of environment was further stressed in the 6th five year plan (1980-85), which contained a separate chapter on ‘Environment & Development ’. Air pollution was also recognised, and a central legislation, called **Air (Prevention and Control of Pollution) Act, 1981,** was enacted.

A third act, called **The Environment (Protection) Act, 1986** was subsequently promulgated by the parliament after the occurrence of the Bhopal Gas tragedy. Under section 10 & 11 of this act, Government officers, empowered by the central Government may now enter the premises of the industries and collect samples, and/or carry out any reasonable action deemed fit for environmental protection.

Moreover, in order to check the emitted smokes from badly maintained automobiles, containing too much of lead, carbon monoxide and particulate matter, a fourth legislation, called **Motor Vehicles Act, 1988,** has been passed by the parliament.

भारतीय संगीत के विकास में अमीर खुसरो की भूमिका

डॉ. पूर्णिमा शर्मा *

शोध सारांश – प्रस्तुत शोधपत्र मध्यकालीन भारत के महान कवि और लेखक अमीर खुसरो के संगीत के क्षेत्र में अवदान पर प्रकाश डालता है। उन्होंने शास्त्रीय संगीत और लोक धुनों को मिलाकर जिस महान भारतीय संगीत परंपरा को जन्म दिया वह उनकी अनुपम संगीत प्रतिभा की परिचायक है।

शब्द कुंजी – संगीत, सूफ़ी, राग, ख्याल, तराना, वाद्ययंत्र, ताल ।

प्रस्तावना – सूफ़ी संप्रदाय की एक प्रमुख विशेषता यह है कि, इसमें संगीत को बहुत महत्व प्रदान किया गया है। इस मत के अनुयायी संगीत को परमात्मा तक पहुँचने का माध्यम मानते हैं। सूफ़ी (समा)[1] का आत्मा की शुद्धि के लिए परमावश्यक समझते हैं। मध्यकाल में भारत में सूफ़ी संत संगीत के द्वारा गैर मुस्लिमों के हृदय में स्थान बनाने में सफल हो रहे थे।

डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव के शब्दों में – 'उत्तर भारतीय शास्त्रीय तथा लोक धुनों को मिलाकर जिस विलक्षण हिंदुस्तानी संगीत परंपरा को जन्म दिया वह आज मात्र कला जगत की ही नहीं वरन् जीवन के अन्य स्तरों पर वर्ण गौत्र में उलझे हुए जनों को समष्टि में घुल मिल जाने का निमंत्रण देती है।'

अमीर खुसरो की संगीत में विशेष रूचि थी। अमीर खुसरो के संगीत प्रेम के अनेक कारण थे। मुख्य कारण उनका सूफ़ी अनुयायी होना था। शेख निज़ामुद्दीन औलिया भी आध्यात्मिक शांति हेतु संगीत को महत्वपूर्ण मानते थे। अत: स्वाभाविक ही था कि उनके शिष्य खुसरों का भी संगीत की ओर झुकाव हों।

1. वह संगीत जिसे सूफ़ी ईश्वर की याद में मस्त में रहने के लिए सुना करते हैं। खुसरो जिन सुल्तानों और शहजादों के राज्याश्रय में रहे थे, उनके संगीत प्रेम ने भी खुसरो को संगीत के क्षेत्र में कुछ करने हेतु प्रेरित किया। एस.ए.ए. रिज़वी ने लिखा है –

'उसके समकालीन बादशाहों और अमीरों को भी संगीत तथा नृत्य से बड़ा प्रेम था। कैकुबाद तथा जलालुद्दीन ख़ल्जी के दरबार के संगीत तथा नृत्य का वर्णन जियाउद्दीन बरनी ने बड़े गर्व से किया है अत: अमीर खुसरो ने जो दक्षता संगीत में प्राप्त कर ली थी, उस पर कोई आश्चर्य न होना चाहिए।'[1]

खुसरो की माँ भारतीय और पिता तुर्क थे। अत: मातृपक्ष से भारतीय संस्कार एवं पितृपक्ष से विदेश मुस्लिम संस्कार उन्हें मिले थे। इन दोनों ही तरह के संस्कारों का समावेश उनमें था। भारतीय तथा ईरानी दोनों ही संगीत उन्हें प्रभावित करते थे। भारतीय संगीत का माधुर्य खुसरों को विशेष रूप से आकर्षित करता था। वे हिन्दुस्तानी और विदेशी दोनों संगीत का समन्वय करके भारतीय संगीत में नवीनता लाना चाहते थे। यद्यपि खुसरो के प्रमाणिक संगीत ग्रंथ तो उपलब्ध नहीं हैं परंतु अपनी अन्य साहित्यिक कृतियों में जो संगीत विषयक जानकारी खुसरो ने दी है उससे खुसरो की सांगीतिक प्रतिभा परिलक्षित होती है।

अमीर खुसरो के संगीतज्ञान की प्रशंसा करते हुए जियाउद्दीन बर्नी ने तारीखे फ़ीरोजशाही में लिखा है – 'वह संगीत तथा संगीत की रचना में बड़ा दक्ष था। अनेक कलाओं में, जिनमें मधुर तथा उत्तम स्वभाव की आवश्यकता होती है, भगवान ने उसे दक्ष बनाया था।'[2]

उनका भारतीय संगीत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है जिसे निम्नलिखित बिंदुओं में व्यक्त कर सकते हैं –

1. रागों का वर्गीकरण – खुसरो को अनेक रागों का आविष्कारक माना जाता है। राग दर्पण में अमीर खुसरो को यमन या एमन, उशक, मुआफिक, गनम, मुजीर, सजकरी, फरगना, सरपरदा और अन्य अनेक रागों का आविष्कर्त्ता बताया गया है। इनमें भारतीय और फारसी दोनों शैलियों का सौंदर्य था।

1. आदि तुर्ककालीन भारत – एस.ए.ए. रिज़वी पृ. 283
2. बर्नी– तारीख़े फ़ीरोजशाही पृ. 359

खुसरो ने रागों का वर्गीकरण करके एक महान् उपलब्धि हासिल की, जिसे तत्कालीन समय में लगभग सभी के द्वारा स्वीकार किया गया।

रागों के वर्गीकरण के लिए खुसरो ने ईरानी मुकाम पद्धति को आधार के रूप में लिया। अमीर खुसरो द्वारा प्रतिपादित मुकाम पद्धति के प्रभाव से दो स्वरों के पंचश्रुतिक अंतराल भी प्रयुक्त हो गये। इससे एक लाभ यह भी हुआ कि भारतीय संगीत पर लागू होने वाले कठोर प्रतिबंध हट गए। मुकाम पद्धति के द्वारा अनेक रागों का जन्म हुआ। इसमें प्रथम राग भैरव था जो दक्षिण में 'मालव गौड़ और उत्तर में 'भैरवघाट' के नाम से प्रचलित हुआ। इस परिवर्तन के बारे में आचार्य वृहस्पति ने लिखा –

'यह परिवर्तन ऐसा था कि जिसने भारतीय चिंतन की धारा बदल दी और वर्तमान में भैरव, पूरबी, तोड़ी और मरबा जैसे ठाठों का अस्तित्व भारत में संभव हुआ। जिनकी कल्पना भी मूर्च्छना पद्धति में नहीं की जा सकती थी।'[1]

अमीर खुसरो द्वारा किया गया यह वर्गीकरण इतना प्रामाणिक था कि तत्कालीन प्रसिद्ध भारतीय संगीतज्ञ गोपालनायक[2] ने भी इसे स्वीकार किया था।

अमीर खुसरो के इस प्रयास से ईरानी तथा भारतीय रागों के मिश्रण का मार्ग प्रशस्त हो गया और सांस्कृतिक समन्वय की बुनियाद तैयार हुई। डॉ. वाहिद मिर्जा के मतानुसार –

'यह चीज़ लगभग विश्वनीय है कि अमीर खुसरो ने भारतीय राग में बहुत कुछ सुधार किये थे और इसमें ऐसी क्रांति को जन्म दिया था कि वह नये मार्ग और नयी विधा के जन्मदाता समझे जाते थे।'[2]

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

यह पद्धति कितनी महत्वपूर्ण थी, यह इस तथ्य से भी प्रमाणित होता है कि आज सात सौ वर्षों बाद भी ठाठ या मेल पद्धति के रूप में अमीर ख़ुसरो का राग वर्गीकरण का अस्तित्व विद्यमान है।

1. खुसरो तानसेन तथा अन्य कलाकार-सुलोचना, वृहस्पति पृ. 99
2. मध्यकालीन संगीतज्ञों में गोपालनायक (ई. 1205-1315) का स्थान महत्वपूर्ण है। वे अपने संगीत के बल पर हिरणों को मुग्ध कर देते थे।
3. दी लाइफ एण्ड वर्क्स ऑफ अमीर ख़ुसरो- डॉ. वाहिद मिर्जा पृ. 238

2. ख्याल का आविष्कार – अमीर खुसरो ने ख्याल नामक गायन की एक नई शैली का भी आविष्कार किया। 'ख्याल' शब्द अरबी भाषा का है इसका अर्थ है कल्पना, विचार या तर्क। उस समय तक प्रचलित शैली ध्रुपद थी, जिसमें संगीत रचना का कुछ अंश एक विशेष गति से पहले गाया जाता है और तदंतर गति दुगुनी और फिर चौगुनी और इसी तरह अधिक कर दी जाती है। खुसरो के ख्याल में अलाप, जो राग के ध्वनि संकेत के अनुसार गाया जाता है, स्वयं गीत और फिर ताने, जो स्वर के त्वरित उतार चढ़ाव के साथ दोहरायी जाती है, रहती है। ख्याल आज भी बहुत लोकप्रिय है जबकि ध्रुपद लगभग अत्यवहार्य हो गया है।

3. कौल व तराना का आविष्कार – गोपाल नायक जैसे महान संगीतकार के संपर्क में आने के बाद अमीर खुसरो भारतीय संगीत के महान प्रशंसक बन गए। गोपाल नायक की प्रेरणा और मार्गदर्शन से ही वह 'तराना का आविष्कार करने में सफल हुए। यह महान भारतीय संगीतकार चतुर्दण्डी संप्रदाय का प्रवर्तक का जिसका प्रथम दण्ड आलाप में प्रयुक्त शुष्काक्षरों ने खुसरो को तराने का आविष्कार करने की प्रेरणा दी।

अबुज फ़जल ने लिखा है कि खुसरो ने 'समित और तातार' की सहायता से 'कौल' और 'तराना' का अविष्कार किया।

खुसरो का यह अविष्कार आज भी लोकप्रिय है। तराना का कण्ठ संगीत में वहीं स्थान हैं जो झाला का वाद्य संगीत में है। कैप्टन विलियर्ड लिखते है :-

'.....बादशाह ने अमीर खुसरो को अपने सिंहासन के नीचे छुपकर रहने का आदेश दिया जहाँ से वह अदृश्य रूप में रहकर उस संगीतज्ञ को सुन सके। खुसरो ने उसकी शैली को याद रखने का प्रयत्न किया और एक दिन गोपाल को आश्चर्यचकित करते हुए उस शैली की नकल से उसने कव्वाली और तराना गाया। इस प्रकार शठतापूर्वक उसे प्राप्य सम्मान के एक अंश से वंचित कर दिया।'[1]

4. वाद्य यंत्रों का अविष्कार – सितार शब्द पर्शियन 'सेह-तार' से बना है जिसका अर्थ तीन तंत्री वाली वीणा है। विद्धानों में इस बात को लेकर मतभेद है कि अमीर खुसरो ही सितार तबला व ढोलक का अविष्कारक था या नहीं ? यह एक विवादग्रस्त विषय बन गया है। ऐसा

1. केप्टन विलियर्ड-ट्रीटाइज़ ऑफ द म्युज़िक ऑफ हिन्दुस्तान पृ. 160

कहा जाता है कि अमीर खुसरो ने प्राचीन भारतीय वीणा और ईरानी तंबुरे के मेल से 'सितार' का अविष्कार किया। यह भी कहा जाता है कि भारतीय पुराना वाद्य पखावज था जो अपनी लंबाई के कारण सुविधाजनक नहीं था, अत: खुसरो ने पखावज के दो भाग किये और उसे तबला नाम दिया। पखावज का छोटा रूप कर ढोलक के अविष्कार का श्रेय भी कुछ विद्धान अमीर खुसरो को ही देते है। इस संबंध में उमेश जोशी लिखते है -

'खिल्जी' काल की सबसे अभूतपूर्व घटना सितार वाद्य का जन्म होना है। अमीर खुसरो ने भारतीय वाद्य में एक जबरदस्त क्रांति कर डाली। खुसरो को दक्षिण की वीणा पसंद नहीं आई जिसमें चार तार होते थे। उन्होंने उसमें तीन तार किए और तारों का क्रम उलट दिया और चल परदे लगा दिए। इसके अतिरिक्त द्रुतिलय में बजाना सहज करने के लिए इसकी गर्ते स्थिर कर दी और इन्हें तालबद्ध कर दिया। इस तार लगे पंच का उसने सहवार (सितार) फ़ारसी नाम रखा जो आम सितार बनाया है। इसलिए अमीर खुसरो ने सितार को जन्म दिया।'[1]

रसीद मलिक, वाहिद मिर्जा, आचार्य वृहस्पति आदि विद्धानों के मतों का खंडन के. के. खुल्लर ने किया है। उन्होंने खुसरो को सितार, ढ़ोलक, तबले का अविष्कारक माना है।[2]

5. ताल – जिन विद्धानों ने अमीर खुसरो को ढोलक और तबला का अन्वेशक माना है, उन्हीं का यह मत भी है कि इन वाद्य यंत्रों का बजाने के तरीके भी खुसरो द्धारा ही बनाए गए हैं। उन्होंने भारतीय और ईरानी दोनों संगीत पद्धतियों का सुंदर समन्वय करके इन तरीकों को प्रचलित किया। इनके द्धारा अविष्कृत ताल सत्रह कहे जाते हैं।

ढ़ोलक में किड़ किड़ान, गित झा जैसे बोलों के अविष्कार का श्रेय भी मुहम्मद करम इमाम ने अमीर खुसरो को ही दिया है।

खुसरो भारतीय संगीत से अत्यधिक प्रभावित थे। यद्यपि वह पूर्ण रूपेण भारतीय संगीत शास्त्र से परिचित नहीं थे फिर भी उनका हिंदुस्तानी संगीत के प्रति विशेष लगाव था इस संबंध में उनका यह कथन उल्लेखनीय है -

1. भारतीय संगीत का इतिहास- उमेश जोशी पृ. 187
2. अमीर खुसरो और हमारा मुश्तरका कल्चर - के.के. खुल्लर पृ. 79-80

'भारत के संगीत में वह जादू है जो सुनने वाले को मुग्ध कर देता है। संसार में इतनी अच्छी और श्रेष्ठ संगीत कला कहीं नहीं है। यहाँ पर विदेशी संगीतज्ञ आए और बीसों साल रहने पर भी उन्हें धैर्य नहीं हुआ कि एकाध राग को सीधे ढंग से गा सके।[1]

इसी प्रकार वे आगे कहते हैं -'यहाँ का संगीत न केवल इंसानों बल्कि जानवरों पर भी जादू का सा असर करते हैं। नायक का गीत तीर की भाँति हिरण के दिल में घाव कर देता है और वह मस्त होकर नायक के पास आकर खड़ा हो जाता है। नायक यदि उसे हाँकना चाहे तो भी वह अपनी जगह पर खड़ा रहता है। कभी-कभी तो उसी हालत में तड़पकर अपनी जान भी दे देता है।'

वह ये भी कहते थे कि मुस्लिम संगीतज्ञ भारतीय संगीत की विशिष्टताओं को समझे अत: वे इसके लिए इनकी परस्पर प्रतियोगिताओं का आयोजन करते थे। उन्होंने 'एजाज-ए-खुसकी' में कहा है कि -

'वे ऐसा इसलिए करते हैं कि - 'खुरासानी सिलहरी कबूतर (गायक) यह जान सके कि भारतीय चिड़िया (मधुर गायक) कैसा गाती है।'

निष्कर्ष – भारतीय संगीत के लिए अमीर खुसरो का योगदान अविस्मरणीय है। उनके द्धारा किए गए भारतीय-ईरानी संगीत के समन्वय से भविष्य में संगीत के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए। भारतीय गायिकाओं को फ़ारसी का ज्ञान कराया गया था। तथाकथित दास-वंश के अंत होने तक दिल्ली अवध के गायकों का केन्द्र हो गयी थी। ऐसे कलाकारों का वर्ग तैयार हो गया था जो भविष्य में अमीर खुसरो संगीत पद्धति को अपनाकर खुसरो की रचनाओं का प्रचार कर सके। सांगीतिक समन्वय हेतु किया गया उनका कार्य उन्हें उच्च कोटी के संगीत मर्मज्ञों की श्रेणी में शामिल कर देता है। डॉ. के. एस. लाल लिखते है -

'अमीर खुसरो अपने काल का संभवत: महानतम् संगीतज्ञ था वह एक महान गायक एक महान रचयिता और अनेक रागों तथा वाद्य यंत्रों का अन्वेशक था।'[2]

1. अमीर खुसरो और हमारा मुश्तरका कल्चर – के.के. खुल्लर पृ. 79–80
2. डॉ. के.एस. लाल– खलजी वंश का इतिहास, पृ. 335

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. सेन अरूण कुमार (1973) भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, प्रकाशन मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
2. रावत चंद्रभान, अमीर खुसरो का संगीतपरक काव्य।
3. खुल्लर के. के. (1983) अमीर खुसरो और हमारा मुश्तरका कल्चर प्रकाशन सीमांत प्रकाशन, नई दिल्ली –2
4. हबीब मुहम्मद (1935) दिल्ली के हजरत अमीर खुसरो मध्यकालीन भारत, संपादन – इरफान हबीब प्रकाशन कलकत्ता।
5. मिर्जा वाहिद मोहम्मद (1974) द लाइफ एण्ड वर्क्स ऑफ अमीर खुसरो, प्रकाशन इदरा–इ–अदबियात–इ–देल्ही 2009 कसीमजान स्ट्रीट देल्ही–6
6. शुक्ल आचार्य रामचन्द्र (संवत 2035) हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन – नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
7. मलिक रसीद, संगीत और अमीर खुसरो।
8. परांजपे शरच्चंद्र श्रीधर (1972) संगीत बोध, प्रकाशन मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
9. सुलोचना, बृहस्पति तथा अन्य खुसरो तानसेन तथा अन्य कलाकार।
10. उमेश जोशी (1969) भारतीय संगीत का इतिहास।
11. हुसैन युसूफ, मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति (एक झलक) प्रकाशन– भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़ ।

****

छत्रसाल एवं संत प्राणनाथ

डॉ. प्रेरणा ठाकुर *

शोध सारांश – भारत के इतिहास में महाराणा प्रताप, छत्रपति महाराजा शिवाजी तथा महाराजा छत्रसाल के नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे गये हैं। महाराणा छत्रसाल की कर्मभूमि बुंदेलखंड थी।बुंदेलखण्ड के इस वीर प्रतापी शासक का जन्म 4 मई सन् 1649 को महाराज चम्पतराय की वीरांगना धर्मपत्नि लालकुँवर से उस समय हुआ जबकि वे मुगल सेनापति बहादुर खाँ से युद्ध कर रहे थे। अत: वीर दंपति ने अपने पुत्र का नाम 'शत्रुसाल' रखा। कम आयु में ही अस्त्र–शास्त्रों के संचालन में निपुर्ण इस वीर ने 21 वर्ष की आयु में सन् 1671 में मुगल बादशाह औरंगजेब को चुनौती दे डाली।

छत्रपति शिवाजी को योद्धा बनाने में जो श्रेय स्वामी रामदास जी को दिया जाता है वही श्रेय छत्रसाल के संबंध में स्वामी प्राणनाथ जी को दिया जाता है। डॉ यदुनाथ सरकार जैसे चोटी के इतिहासकारों ने भी छत्रसाल के संबंध में यह लिखा है कि – 'आज के संदर्भो में तो हमें महाराजा छत्रसाल को भारतीय एकता का प्रतीक मानकर उनके चरित्र से राष्ट्रीय शिक्षा ग्रहण करना होगी। उनकी सेना में सभी जातियों तथा धर्मो के लोग एक सूत्र में बंधकर जन–आंदोलन के रूप में यु.द्ध लड़ते थे। जिस प्रकार सम्राट अशोक ने बौद्ध के प्रचार हेतु विदेशों में अपने धर्मदूत भेजे थे, ठीक वैसे ही महाराजा छत्रसाल ने विश्व मानव धर्म संस्कृति के प्रणेता श्री प्राणनाथ जी के विश्व शांति संदेश को प्रचार प्रसार के लिये सारे देश में भेजा था।

राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी स्वयं संत प्राणनाथ जी व उनके द्वारा स्थापित प्रणामी संप्रदाय से अत्यधिक प्रभावित थे। एक बार गाँधी जी से किसी अंग्रेज पत्रकार ने पूछा था कि आपको 'ईश्वर अल्ला तेरे नाम' की भावना का ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ, तब उन्होने कहा था कि उनके घर के पास ही प्रणामी धर्म का एक मंदिर है जहाँ भेदभाव के बगैर सभी धर्मो का आदर सम्मान होता है।

महामति श्री प्राणनाथ जी ने अपना संपूर्ण जीवन हिन्दू–मुसलमान एकता के प्रयासों में लगाया था इसीलिये उनकी स्मृति में बनाया गया मंदिर आज भी भारत को एकता के सूत्र में बाँधने का संदेश देता है। मंदिर की दीवारों पर एक और तो कुरान की आयतें हैं और दूसरी ओर वेद तथा उपनिषदों के श्लोंक खुदे हुए हैं।कैसा विचित्र विरोधाभास है कि औरंगजेब जैसे कट्टर शासक के राज्य को ध्वस्त कर देने वाले वीर छत्रसाल ने अपनी फौज में नेक नीयत अच्छे मुसलमानों को महत्वपूर्ण स्थान दे रखे थे और उन्होंने भी बिना किसी धार्मिक रूकावट व कट्टरता के अपने राजा छत्रसाल का सदैव साथ दिया।आजके भारतीय जनतंत्रात्मक संदर्भ में महाराजा छत्रसाल का इतिहास, बहादुरी तथा धर्म परायणता हमे आश्वस्त करती है कि मतलब परस्त नेता कुछ भी करते रहे वे भारतीय एकता, समग्रता तथा भाईचारे को नष्ट नहीं कर पावेंगे।

प्रस्तावना – महाराजा छत्रसाल लगभग 1671 से 1731 तक बुंदेलखण्ड क्षेत्र के शासक थे। छत्रसाल के पूर्वज यद्यपि मुगल बादशाह जहाँगीर के सहयोगी रहे थे तथापि छत्रसाल के पिता चम्पतराय तथा स्वयं राजा छत्रसाल मुगल बादशाह औरंगजेब के विरूद्ध युद्धरत रहे तथा पन्ना, सिरोंज, धामोनी, चंदनपुर, पथरिया, बिजोरी, मउ, नुसरतगढ़, नसीरगढ़ और राजगढ़ आदि क्षेत्रों पर अधिकार किया।

औरंगजेब के पश्चात उत्तरकालीन मुगल शासकों बहादूरशाह तथा फर्रूखसियर के काल में छत्रसाल के मुगलों से संबंध मित्रतापूर्ण रहे किन्तु मोहम्मदशाह का काल आते–आते यह संबंध बिगड़ने लगे, क्योंकि मोहम्मदशाह ने मोहम्मद खां बंगश को बुंदेलखण्ड क्षेत्र का सुबेदार बनाकर उसे छत्रसाल से युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। ऐसी परिस्थिति में छत्रसाल ने मराठों से मित्रता कर अपने राज्य की सुरक्षा की व अपनी स्वतंत्रता को बनाये रखा। प्रस्तुत शोध पत्र में हम राजा छत्रसाल के आध्यात्मिक गुरू संत प्राणनाथ एवं प्रणामी संप्रदाय के संबंध में अध्ययन करेंगे।

प्रणामी सम्प्रदाय के संस्थापक तथा छत्रसाल के आध्यात्मिक गुरू स्वामी प्राणनाथ का जन्म 6 सितम्बर 1618 को काठियावाड़ के जामनगर में हुआ था, उनका जन्म का नाम मेहराज था तथा उनके पिता केशव ठाकुर जामनगर दरबार में राज्यमंत्री थे, माताजी का नाम धानबाई था। पिता के देहावसान के पश्चात् मेहराज जी भी अपने पिता के स्थान पर जामनगर के राज्यमंत्री पद पर नियुक्त हुए किन्तु सांसारिक माया मोह तथा बंधन उन्हें अधिक समय तक बांधकर नहीं रख सके।

मेहराज के गुरू देवचंद्रजी का निधन 5 दिसम्बर 1655 को हो गया उन्होंने अपने शिष्य महाराज से अपने संप्रदाय के प्रचार हेतु वचन ले लिया था। अत: उन्होंने दरबार के मंत्री का पद त्याग कर धर्म प्रचार का व्रत ले लिया। मेहराज जी को उनकी पत्नी 'प्राणनाथ' के सम्बोधन से ही पुकारती थी अत: अब वे स्वामी प्राणनाथ कहलाने लगे।[1]

स्वामी प्राणनाथ ने अपने समय के प्रकांड विद्धानों से शास्त्रार्थ किये जिनमें सभी संप्रदायों के प्रचारक थे। संत कबीर, गुरूनानक के अनुयायियों तथा अनेको इस्लाम धर्म के मुल्ला–मौलवियों से उन्होंने कई धार्मिक चर्चाएं की तथा काठियावाड़, कच्छ, सिंध, ईरानी, राजपूताना, उत्तर तथा मध्य भारत के सभी क्षेत्रों का प्रवास किया और बड़ी सफलता के साथ अपने अनुयायियों को प्रणामी पंथ में दीक्षित किया। उनके शिष्यों में महाराज जसवंतसिंह राठौर तथा महाराणा राजसिंह भी थे जिन्हें उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए तैयार किया। स्वामी प्राणनाथ ने दिल्ली जाकर औरंगजेब से भी मुलाकात की। वे उदयपुर भी गये और महाराणा राजसिंह को औरंगजेब से लड़ने के लिए भी प्रेरित किया।

* प्राध्यापक (इतिहास) श्री अटल बिहारी वाजपेयी शा. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

छत्रसाल की प्रशंसा सुनकर स्वामी प्राणनाथ 1683 में बुंदेलखंड चले गये वहाँ मउगांव में उनकी मुलाकात छत्रसाल से हुई। छत्रसाल द्वारा अपने पुत्र जगतराय को लिखे पत्र से पता चलता है कि छत्रसाल व स्वामी प्राणनाथ की मुलाकात मउ के जंगलों में हुई थी तथा इसके बाद वे मृत्युपर्यन्त अर्थात् 29 जून 1694 तक पन्ना में ही रहे।[2]

जो संबंध स्वामी रामदास तथा छत्रपति शिवाजी में माना जाता है वहीं संबंध स्वामी प्राणनाथ तथा छत्रसाल का था। छत्रसाल पर स्वामी प्राणनाथ का प्रभाव धार्मिक तथा आध्यात्मिक के साथ ही राजनैतिक भी था। उन्होंने औरंगजेब के हिन्दू विरोध का डटकर विरोध किया। उन्होंने औरंगजेब तथा इस्लाम के खिलाफ हिन्दू वीरों को संगठित किया – उनकी भाषण शैली तथा कविता कहने की विद्या ने हिन्दू शूरवीरों को एकजूट करने में कमाल का कार्य किया। उस समय के आपसी द्वंद्वों और झगड़ों से टूटे हुए बुंदेले वीर स्वामी प्राणनाथ की वजह से छत्रसाल के एक छत्र के नीचे आकर मुगलकों से लोहा लेने लगे जैसे –

राजा ने मली रे राजे राय तेनों। धर्म जाता रे कोई थोड़ो।
जागो रे जोधा रे उठ बड़े रहो। नींद निगोड़ी रे छोड़ो।
टूटते हेरे वर्ग छत्रियों से, धर्म जात हिंदुआन।
सतन छोड़ो रे सतवादियो, जोर बढ्यो तुरकान।।
त्रैलोकी मेरे उत्तम खंड भारत की, तामे उत्तम हिंदूर धरम
ताके छत्रपतियों के सिर, आये रही इत सरम।
असुर लगाये रे हिंदुओं पर जजिया, बाकी मिले नहीं पानपान
जो गरीब न दे सके जजिया, ताय मार करें मुसलमान।
बात सुनी रे बुंदेल छत्रसाल ने, आगे आय खड़ारे तरवार
सेवाने लई रे सारी खिर खेंच के, सोईये किया सेन्यापति सरदार।।[3]

स्वामी प्राणनाथ जी के द्विितापूर्ण भाषणों तथा उपदेशों की वजह से अच्छे–अच्छे शक्ति सम्पन्न राजे महाराजे तथा वीर योद्धा छत्रसाल की फौज में शरीक हो गये।

पन्ना की हीरों की खदानों के स्त्रोत भी स्वामी प्राणनाथ ने ही छत्रसाल को बतलाये थे, जिनकी वजह से इतना धन छत्रसाल एकत्रित कर सका कि उसने मुगल सेनाओं के छक्के छुड़ा दिये। इस प्रकार से छत्रसाल को शक्ति सम्पन्न बनाने में स्वामी प्राणनाथ जी की सूझबूझ तथा बुद्धि कौशल ही जिम्मेदार है।

प्रणामी सम्प्रदाय – देवचंद्रजी ने गीता तथा श्रीमद् भागवत का गहन अध्ययन करने के पश्चात् ही प्रणामी पथ के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। वेद और पुराणों के ज्ञान को 'कुलझम' के नाम से सम्बोधित किया है तथा इसे वे 'तारतम्य सागर' भी कहते हैं जिसका अर्थ होता है सीमा हीन सागर अपरम्पार सागर। इन विचारों को स्फुट पद्यो के समान गुजराती, सिंधी तथा हिन्दी में लिखा गया है, बीच–बीच में अरबी, पर्शियन शब्द भी आये हैं। तत्संबंधी चौदह ग्रंथ भी उपलब्ध हैं – (1) रास (2) प्रकाश (3) खात्री (4) कलास (5) सानानंध (6) कीर्तन (7) खुलासा (8) खिलवत (9) पारकर्मा (10) सागर (11) श्रृंगार (12) सिंधी (13) मारफत सागर (14) कयामतनामा [4]

प्रणामी पंथ ने मूर्तिपूजा का घोर विरोध किया है फिर भी वे अपने मंदिरों में बाँसुरी, मुकुट (राधा व कृष्ण के) तथा कुलझाम के ग्रंथ की पूजा करते हैं। पन्ना के प्रणामी मंदिर की दीवालों तथा छतों पर कृष्णलीला के सुरम्य चित्रों को बनाया गया है। सभी हिन्दू मंदिरों के समान पूरी सजावट की जाती है तथा चरणामृत एवं प्रसाद भी बांटा जाता है।

प्रणामी संप्रदाय ऐकेश्वरवाद तथा बहुदेववाद का मिश्रण है उनके मुताबिक विश्व के तीन भाग हैं – (1) क्षर – अर्थात् नाश्वान जिसके अंतर्गत वह सभी कुछ आ जाता है जिसका क्षय होता है, नाश होता है। इसके आगे (2) अक्षर ब्रह्म – यह तीन देवताओं ब्रह्मा – निर्माणकर्ता, विष्णु – पालनकर्ता, महेश – अर्थात् संहारक को मिलकर बनता है। प्रणामी संप्रदाय में परम ब्रह्म परमात्मा को अक्षरातीत माना गया है जो कि इन त्रिगुण स्वामियों से ऊपर माना जाता है। वह परम ब्रह्म परमात्मा एक ऐसा स्त्रोत है जिससे सभी प्राणियों तथा प्रकृत्ति का जन्म हुआ है, उसी परमात्मा ने सारी सृष्टि का निर्माण किया है, वह माया तथा मोह, भ्रम अथवा विभ्रम से परे है वह तो जल कमल वत है, कमल तो जल से बिल्कुल अलग तथा भिन्न है।

'कुलझाम' में कर्म सिद्धांत को मान्यता दी गई है तथा मूर्तिपूजा का खंडन किया गया है – उनके अनुसार तो पूजा का सर्वश्रेष्ठ माध्यम केवल ध्यान ही है।[5]

प्रणामी सम्प्रदाय की दस आज्ञाएं इस प्रकार है –

1. धार्मिक नियमों का पालन किए बिना आत्मिक, मानसिक तथा शारीरिक उन्नति स्थायी नहीं रह सकती। स्थायी उन्नति के बिना देश तथा समाज कभी सुखी नहीं रह सकता। इसलिए धार्मिक नियमों का अवश्य पालन करें।
2. मांसभक्षण, मदिरापान, परस्त्रीगमन, परधन तथा परनिंदा और असत्य भाषण इन षट दोषों से अवश्य बचें।
3. मनुष्य मात्र में बंधुभाव उत्पन्न करते हुए जीवात्मा को सत्पथ पर ले जाना चाहिए जिसमें लोक परलोक सुगम बनें।
4. सत्कर्म और सद्भावना के बिना संसार में सुख और शांति का आनंद प्राप्त नहीं होता, यह अवश्य ध्यान रखे।
5. समाज शोषण और असद्भावना को सबसे बड़ा पाप समझे।
6. अन्य के साथ उपकार तथा न्यायवृत्ति रखना, सबसे बड़ा पुण्य कर्म समझे।
7. अपने लिए कष्ट सहन कर लेना ही तप और दूसरे के प्रति नरम होना ही सबसे बड़ा त्याग है।
8. झूठे आडम्बर में पड़कर साम्प्रदायिक और सैद्धांतिक तथ्यों को छुपाना महान पाप समझे।
9. धार्मिक ज्ञान के प्रचार में किसी से व्यर्थ वाद–विवाद नहीं करना चाहिए। दुराग्रही को समझाने की चेष्टा भी व्यर्थ ही है।
10. धर्म प्रचार का उत्तरदायित्व गृहस्थ और संत दोनों पर है। इसके लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।[6]

स्वामी प्राणनाथ पर कबीर तथा नानक का बहुत अधिक प्रभाव था। उन्होंने मुसलमानों तथा हिन्दुओं के अंधविश्वासों का जोरदार खंडन किया है। उन्होंने कहा है –

जो कतेब सो वेद बताई, या में अंतर नहीं न भाई
एक धनी साहब सब केरी, दूजी मानि चित जब केरी
हिन्दू, तुरक, दीन दी रायि, तिन मिल कै द्वै पंथ चलाये
खेंखा खेंच जगत में होई, एक अरब मिल कहत न कोई
अब मैं वेद कतेब मिला हूं, तिनके अरथ एक ठहराऊ
मेति वरोध जगत जसलेऊ, एक राह परगट कर देऊँ

उन्होंने आगे कहा है –

जो कुछ कहाकते बने, सोई कहया वेद
दोउ बंदे एक साहब के, पर लड़त बिना पाये भेद,

बोली सबी जुदा परी, नाम जुदा घरे सबन
चलन जुदा कर दिया ताथे समझन परी किन
ताथें हुई बड़ी अरक्षन, सो मुरझाऊँ दोए।
नाम निशान जाहिर करूं, ज्यों समझे सब कोएं
नाम सारो जुदा करे, लई सबों जुदी रसम
सब में उमत और दुनियां, सोई खुदा सोई ब्रह्म [7]

स्वामी प्राणनाथ ने किसी भी प्रकार की कट्टरता तथा ब्राह्मणवाद का खुलकर विरोध किया। हर प्रकार के ब्राह्य आडम्बर का उन्होंने खंडन किया है। जबकि विभीषण भगवान राम की शरण में आया था उसने कहा था कि अगर आपकी स्वामी भक्ति में मेरी कोई त्रुटि पाई जाये तो मुझे कलियुग में ब्राह्मण का जन्म मिले। एक स्थान पर प्राणनाथ ने कहा है कि मुझे बतलाओं कि अछूत कौन है ? वह शूद्र जिसकी आत्मा ज्ञान से प्रकाशित तथा व्यवहार मानव तुल्य है अथवा वह ब्राह्मण जो सांसारिक माया मोह से ग्रसित और निष्ठुर हृदय है।

उनके कुछ अनुयायी मुसलमान भी थे, लगभग सभी धर्म को मानने वालों ने उनसे दीक्षा ली थी। प्रणामी संप्रदाय किसी भी संप्रदाय के विरोध में नहीं बना था वरन् इसके बनाने के पीछे उस युग की अर्थात् छत्रसाल एवं प्राणनाथ के युग की आवश्यकता थी।[8]

महाप्रभु प्राणनाथजी ने मुगलों के हिन्दुओं पर बढ़ते हुए अत्याचार को देखकर वह एक ऐसे वीर शिरोमणि की तलाश में थे जो उनके मार्ग पर चलकर मुगल शासक क्रूर अत्याचारी और औरंगजेब की कुटिलनीति का दमन कर हिन्दू, हिन्दुत्व व देश की रक्षा करने में समर्थ हो तथा जन कल्याण कर धर्म की रक्षा कर सके। यह सभी गुण स्वामी प्राणनाथ को छत्रसाल में दिखाई दिये। महाप्रभु प्राणनाथ ने अपना वरद् हस्त छत्रसाल के सिर पर रखा और आशीर्वाद दिया तथा शक्ति सम्पन्न तलवार प्रदान की साथ ही यह वरदान दिया कि आज घोड़े पर सवार होकर जिस क्षेत्र में चक्कर लगा लोगे वही वसुधा हीरा उगलेगी (पन्ना की हीरे की खानें प्राणनाथ द्वारा बताई गई हैं।) इस प्रकार छत्रसाल का धन बढ़ा और आर्थिक रूप से शक्ति सम्पन्न हो गये, सैन्य बल बढ़ाने के लिए महाप्रभु प्राणनाथ स्वयं ही छत्रसाल को साथ लेकर जनता में नये साहस के संचार हेतु निकल पड़े, जिससे लोगों ने उत्साहपूर्वक छत्रसाल की सेना में प्रवेश किया और सेना का विस्तार हुआ।

छत्रप्रकाश में लालकवि ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है –

छत्रसाल को ज्ञान सुनायो, परम तत्व प्रगट दरसायो,
त्यों प्रभु प्राणनाथ फरमायो, हुकुमधनी को आगम गायो।
करो राज छत्रसाल मही को, रण में सदा होय जय टीको,
तब कुल नृपति होंहि अनियारे, लैहें समर अरिन तो भारे।
यह विधि सो वरदान दे कुल अखंड बल राखि
राजतिलक छत्रसाल सिर दियो साखिदर साखि।।
महाराज अधिपति भये, महाराज छत्रसाल,
राजन में राजा भये, असुरन फेरे काल।।[9]

इस प्रकार महाप्रभु प्राणनाथ धार्मिक, आर्थिक राजनैतिक प्रत्येक क्षेत्र में छत्रसाल के सहायक हुए। औरंगजेब विरोधी छत्रसाल के प्रयत्नों को उन्होंने जन आंदोलन का रूप दिया। छत्रसाल को गुरू, मित्र और प्रधान सहायक के रूप में प्रोत्साहन दिया। महाप्रभु प्राणनाथ ने हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए बहुत प्रयत्न किये पूरे मध्यकाल में भी प्राणनाथ स्वामी का ही एकमात्र ऐसा उदाहरण है जहाँ एक ओर श्रीमद् भागवत का व दूसरी ओर कुरान का पाठ एक ही प्रार्थना सभा में होता था।

मध्य युगीन भारत के शासकों की धार्मिक संकीर्णता के कारण तत्कालीन भारतीय समाज जो हतोत्साहित एवं उदासीन हो गया था, जिसमें हिन्दू मुसलमान के बीच वैमनस्य की दीवार खड़ी थी ऐसे विषाक्त समाज को महामति प्राणनाथ ने अपनी समन्वयवादी प्रवृत्ति से शुद्ध व प्रेमपूर्ण बनाने का प्रयास किया तथा उनके उदारतापूर्ण विचारों को तत्कालीन समाज ने भी महत्वपूर्ण समझते हुए उनके विचारों को ग्रहण किया।[10]

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. प्रणामी संप्रदाय की पत्रिका 'दूसरा प्रणाम', पृष्ठ 16
2. लालदास – 'बीतक' प्रकरण 7–17, पृष्ठ 570
3. 'जागनी' – प्राणनाथ मिशन की पत्रिका महामति प्राणनाथ का योगदान – डॉ. नरेश पंड्य, पृष्ठ 49
4. 'दूसरा प्रणाम' – पृष्ठ 14
5. हिन्दूकुल गौरव छत्रसाल – परशुराम गोस्वामी, पृष्ठ 86
6. प्राणनाथ संप्रदाय एवं साहित्य – डॉ नरेश पड्या, पृष्ठ 202
7. मुक्तिपीठ – प्रणामी संप्रदाय की पत्रिका, पृष्ठ 4
8. 'जागनी', पृष्ठ 54
9. छत्रप्रकाश – लालकवि, पृष्ठ 130
10. 'बीतक' – लालदास, पृष्ठ 575

****

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी सेठ वरदीचंद जैन का झाबुआ जिलें में जनजागरण में योगदान (झाबुआ रियासत के विशेष संदर्भ में 1930 ई. से 1960 ई.तक)

डॉ. प्रकाश चन्द्र अलंसे *

प्रस्तावना – झाबुआ जिले में आजादी के पूर्व से ही जन जागरण का कार्य चल रहा था ओर आजादी के बाद भी चलता रहा इस जन जागरण के कार्य में कई सेनानियों ने अपनी आहूती दी, जिनमें एक सेठ वरदीचंद जैन भी थे झाबुआ रियासत की 90 प्रतिशत जनता जनजाति समाज की थी ओर वे अपनी वनवासी संस्कृति से बधे हुये थे और ऐसे समाज में जनजागरण की बात करना बड़ा कठिन कार्य था सेनानियों ने सर्वप्रथम अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढिवादी परम्पराये, मद्यपान, साहूकारों एवं सूदखोरों द्वारा शोषण, दापा प्रथा,बेगार प्रथा,कन्ट्रोल के अन्न की काला बाजारी, आदि समस्याओं का सामना कर इनका समाधान किया। सेनानियों ने सर्वप्रथम 'देशी लोक राज्य परिषद' का गठन किया, इस परिषद को झाबुआ में स्थापित करने का श्रेय कन्हैयालाल वैध, श्री जैन साहब, मगनीराम जैन को जाता है। आजादी के बाद भी यहॉ 3 प्रतिशत से कम साक्षरता थी यहॉ की जनता की मानसिकता थी 'न कानून न कायदा बस जी हजूरी में फायदा' ओर शासक वर्ग को अंग्रेजो का संरक्षण प्राप्त था। ऐसी विकट परिस्थिति में सेनानियों ने 'देशी लोक राज्य परिषद' की स्थापना करना एक अदभूत घटना थी। इन सेनानियों ने अपना आंदोलन क्षेत्र केवल झाबुआ क्षेत्र ही नहीं रखा बल्कि पूरे मध्य भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

झाबुआ रियासत की स्थापना – झाबुआ म.प्र के दक्षिण पश्चिम छोर पर विन्ध्यांचल पर्वत श्रेणियों के बीच स्थित है यह पूर्ण रूप से वनवासी इलाका था। 16 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लबाना जाति के झब्बू नायक का प्रभुत्व था झाबुआ राजवंश का सम्बंध जोधपुर राज घराने से था झाबुआ रियासत का प्रारंभिक इतिहास जोधपुर राज्य के संस्थापक जोधाजी के पांचवे पुत्र वीर सिंह (1489 से 1495 ई.) से प्रारंभ होता है। केशवदास द्वारा राजकुमार सलीम(जहॉगीर) के विजय अभियानो में सेवाए दी फलस्वरूप सलीम द्वारा मालवा के कुछ गॉव जागीर के रूप में प्रदान किये जब मुगलों की सेना गुजरात अभियानो के समय झाबुआ होकर निकलती थी तब लबाना जाति के लोग लूट पाट किया करते थे तब जहॉगीर ने 1605 ई. में केशवदास को विशाल सेना लेकर लबानो को दण्ड देने के लिये भेजा केशवदास ने लबानो के प्रमुख सरदार झब्बू नायक को हाथी पावा पहाडी के पीछे मार गिराया ओर झाबुआ पर अधिकार कर लिया 1607 ई. में जहॉगीर ने केशवदास को राजा स्वीकार कर लिया।

वर्तमान झाबुआ जिले का गठन– 24 रियासतों का विलय कर मध्य भारत का निर्माण किया गया उनमें झाबुआ जिले की 5 रियासतें भी थी झाबुआ, आलिराजपुर, जोबट, कठीवाडा, मथवाड जब 1956 में मध्य प्रदेश का गठन किया गया तब इन्ही 5 रियासतों को साथ मिलाकर झाबुआ जिले का निर्माण किया गया।

सेठ वरदीचंद जैन का जीवन परिचय – सेठ श्री वरदीचंद जैन का जन्म झाबुआ रियासत के रानापुर कस्बे में श्री मगनीराम जैन के यहाँ 7 अक्टूबर 1904 को हुआ था। प्राथमिक शिक्षा रानापुर में ही सम्पन्न हुई। सेठ श्री वरदीचंद जैन का झाबुआ रियासत में बहुत बड़ा योगदान है। उन्होंने पहली बार जुल्म के खिलाफ आवाज उठाई और शहीद चन्द्रशेखर आजाद के पदचिन्हों पर चलकर झाबुआ रियासत में क्रांति का बिगुल बजा दिया।क्योंकि किसी भी देश में क्रांति का आधार वहाँ की जनता होती है और जनता में जब जागरूकता पैदा हो जायेगी तब ही वह क्रांति करेगी। अर्थात उन्होंने जनजागरण कर क्षेत्र में पहली बार क्रांति पैदा कर दी। क्रांति की शुरुआत एक चिंगारी के रूप में 1931 – 32 में 'झाबुआ व्यापारी मण्डल' की स्थापना कर की। सेठ वरदीचंद जैन एक व्यापारी के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। वे दोहद तथा झाबुआ (रानापुर) स्थानों पर रहकर व्यापार करते थे, उस समय दोहद (पंचमहल) में ब्रिटिश हुकूमत थी जो बाम्बे प्रेसीडेंसी के अधीन थे, जहां आए दिन ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ संघर्ष हुआ करता था। इन्हीं आन्दोलनों से इन्हें प्रेरणा मिली और झाबुआ राज्य के राजा श्री उदयसिंह के खिलाफ संघर्ष करने की ठान ली। एक व्यक्ति संघर्ष कब तक करेगा, यह सोचकर उन्होंने एक व्यापारी मण्डल की स्थापना के लिए विचार किया ताकि इसके बैनर तले अन्य व्यापारी भी साथ हो जायेंगे। तो राजा के विरोध में माहौल बनाने में आसानी होगी।

झाबुआ की जनता में दोहद में होने वाली गतिविधि का असर पड़ने लग गया था। जिसमें विदेशी माल का बहिष्कार करने के लिए लोगों के मध्य जागरुकता फैलने लग गयी थी, जिसकी पुष्टि दरबार गजट से होती है। उसके अनुसार 'चूंकि कांग्रेस से ताल्लुक रखने वाले तमाम काम कानून व अहकामात के खिलाफ है। इसलिए ऐसे तमाम काम मसलन ब्रिटिश माल का बहिष्कार, प्रीवेंटिग, राजकीय जमाअत खिलाफ कानून बरगलाना–ये दरबार झाबुआ की हद में इस हुक्म के जारी होने की तारीख से छ: माह तक कतई बंद किये जाते हैं, अगर कोई शख्स इस हुक्म को तोड़ेगा या इस हुक्म को तोड़ने की अयानत करेगा तो पुलिस उसका बिना वारन्ट एकदम गिरफ्तार करेगी और उसके गुनहेगार साबित होने पर उसको 2 साल तक की सख्त कैद और 1000 रुपये जुर्माने की सजा दी जा सकेगी।'

व्यापारी मण्डल की स्थापना सन् (1931 – 32 ई.) राजा श्री उदयसिंह के काले कारनामों को अब जनता भी जान चुकी थी। ऐसे समय में सेठ वरदीचंद जैन ने 'व्यापारी मण्डल' की स्थापना प्रतिष्ठित व्यापारियों से मिलकर की। उसके प्रमाण हमें झाबुआ दरबार गजट से मिलते हैं। व्यापारी मण्डल की स्थापना का मुख्य उद्देश्य व्यापारियों पर लगाया गया टैक्स था। इस टैक्स की वसूली के पीछे राजा एशो आराम, व्यभिचार, अत्यधिक विलासिता के खर्चों आदि की पूर्ति करता था।

राजा द्वारा लगाये गये करारोपण पर विचारार्थ एक बैठक जैन नसिया धर्मशाला में (बड़े तालाब के किनारे) रखी गयी। इस बैठक में श्री पन्नालाल भण्डारी का भी विशेष सहयोग रहा। बैठक की अध्यक्षता श्री सेठ वरदीचंद जैन ने की। बैठक चल ही रही थी कि रियासत की पुलिस ने इन पर धावा बोल दिया। तब नागरिकों में अफरा – तफरी मच गयी, कई व्यापारी तालाब में कूदकर तैरकर दूसरे किनारे पर पहुंच गये और अपने पहचान वलो असामियों

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शासकीय कन्या महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.) भारत

(कृषकों) के गांव पहुंच कर वहां छिप गये। तब पुलिस प्रशासन ने इन गांवों पर धावा बोलकर इनको गिरफ्तार कर झाबुआ लाये और जेल में बंद कर दिये गये। कुछ व्यापारी बैठक जगह में ही बैठे रहे जिन्हें नजर बंद कर लिया। व्यापारियों में प्रमुख रूप से सेठ वरदीचंद जैन (रानापुर), श्री पन्नालाल भण्डारी, सेठ गोगालालजी शाह, सेठ लालचंद जी शाह, सेठ लालचंदजी शाह, पन्नालाल मोदी, चुन्नीलाल मोडिया पिटोल, श्री गट्टूलालजी पारा, मुंशी सोभागमल मेंहता झाबुआ, श्री रहीम बक्ष पिंजारा झाबुआ आदि थे। इन्हें जेल भेज दिया गया। तब शहर में राजतंत्र के खिलाफ लहर फैल गयी।

श्री हुकमीचन्द्र पोरवाल जो कि वकील थे इस अत्याचार के विरुद्ध शिकायत करने तत्कालीन पोलिटिकल एजेण्ट लेफ्टिनेन्ट कर्नल ए.एस.मीक को सम्बोधित करते हुए एक ज्ञापन तैयार किया जिसमें राजा श्री उदयसिंह के काले कारनामों का पूरा चिट्ठा तैयार कर बड़ी मुश्किलों के साथ बामनिया रेलवे स्टेशन गये वहां से रतलाम रेल द्वारा गये। फिर इन्दौर, मानपुर गये व पुन: इन्दौर जाकर Agent to the Governor General से मिले। उन्होंने उनकी बात को बड़ी गंभीरतापूर्वक सुनी तथा उन्हें हिदायत दी कि राजा के विरुद्ध किसी प्रकार का आन्दोलन नहीं करें तथा मीक ने तत्काल झाबुआ दरबार के दीवान श्री केशवलाल त्रिवेदी को तार द्वारा सूचना दी कि तत्काल व्यापारियों को रिहा करें। तब व्यापारियों को रिहा किया गया।

इस प्रकार पहली बार राजशाही ने इन सेनानियों के हाथों मात खाई। दरबार ने व्यापारी मण्डल पर प्रतिबंध लगा दिया। इसकी पुष्टि झाबुआ दरबार गजटसे इस प्रकार होती है – 'रियासत हाजा में थोड़े अर्से से चन्द मुखातिफ शक्शों ने व्यापारी मण्डल के नाम से एक कमेंटी मुकर्रर करके यह उद्देश्य कायम कर लिया है कि इन्तजाम रियासत के खिलाफ लोगों को बरगला करके तरह – तहर की हरकते पैदा करने की कोशिश करना व अशान्ति फैलाना, वगैरह – जिससे सिवाय खराबी के और कोई नतीजा नहीं निकल सकता। इसलिए ऐसी नाजायज कमेंटी का कायम रहना मुनासिब मालूम नहीं होता लिहाजा तारीख इजरा हुक्म हाजा से 'व्यापारी मण्डल' नाम की कमेंटी को गैर कानूनी करार दी जाती है और आइन्दा कोई ऐसी कमेंटी कायम करेगा या उसमें शरीक होगा या भाग लेगा तो उसके खिलाफ हुक्म अदुली में कायदे से केस चलाया जावेगा।' सेठ वरदीचंद जैन ने इसके अतिरिक्त एक और संस्था के गठन में महती भूमिका निभाई।

झाबुआ देशी राज्य लोक परिषद की स्थापना (1931 – 32 ई.) –

श्री कन्हैयालाल वैद्य जी एवं श्री वरदीचंद जैन ने मिलकर दोहद के कार्यकर्ताओं के मार्गदर्शन में झाबुआ देशी राज्य लोक परिषद की स्थापना की। इस परिषद ने अपनी स्थापना से लेकर देश के आजाद होने के बाद भी झाबुआ में उत्तरदायी शासन के लिए कड़ा संघर्ष किया। इस संस्था के माध्यम से ही झाबुआ की जनता ने अपने दु:ख दर्दों की कहानी ऊपर तक पहुंचायी। मामा बालेश्वर दयाल जी के झाबुआ में आगमन के साथ ही इनके आन्दोलन में गति आ गयी। क्योंकि ये ऐसे लोग थे जो हर तबके को मात्र मानव समझकर उनकी सेवा, दु:ख दर्दों को दूर करने में लगे रहते थे। 1932 के अन्तिम महीनों में मामा बालेश्वर दयाल झाबुआ, खाचरोद से आये थे। इस आदिवासी अंचल के लिए बहुत बड़ी सौभाग्य की बात सिद्ध हुयी जो आज हम चारों तरफ विकास देख रहे हैं उसमें उनका योगदान काफी अधिक है।

श्री वरदीचंद जैन ने श्री बालेश्वर दयाल व श्री कन्हैयालाल वैद्य के नेतृत्व में सामंतशाही के विरोध में काम करना प्रारम्भ कर दिया। 'सन् 1936 में इन पर राजद्रोह का मुकदमा लगाकर जेल में डाल दिया गया, जिसमें उन्हें धारा 124 ए के अन्तर्गत जेल में रखा गया था।' जेल में उनके साथ बहुत दुर्व्यवहार किया गया जेल में उन्होंने 27 दिन का अनशन किया (जिसमें कैदियों को सुविधा नहीं दी जा रही थी इसके विरोध में)। इसी दौरान जेल में इनके पास कई अमानवीय घटना को पुलिस वालों ने अंजाम दिया। उन्होंने स्वयं बताया कि डेढ़ क्विंटल अनाज श्री उदेरामजी को एवं मुझे पीसना पड़ता था साथ में घोड़ों के लिए चेदी पिसवाई जाती थी, जेलर का कहना था कि 'तुम्हारी कब्र यहीं बनवाऊँगा। तब मैंने जवाब दिया कि कोई हर्ज नहीं क्योंकि कम से कम कब्र पर कुत्ते पेशाब तो नहीं करेंगे। 27 दिन के अनशन से उनका वजन 165 पौण्ड से घटकर 108 पौंड रह गया था। जेल अधिकारियों ने अनशन के दिनों में जबरदस्ती मुंह में नली डालकर दूध पिलाने की कोशिश की तब भी मैंने मुह नहीं खोला। तब पुलिस जवानों को दबरदस्ती मुह खुलवाने की कोशिश की तो मेरे तीन दांत उखाड़ दिये और मेरी आंखों की रोशनी चली गयी।'

'सितम्बर 1935 को दोहद में झाबुआ राज्य की प्रजा परिषद का प्रथम अधिवेशन (झाबुआ राज्य की सरहद के बाहर) सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन की अध्यक्षता सेठ कालूरामजी पोरवाल ने की। स्वागताध्यक्ष सेठ वरदीचंद जैन उपस्थित थे। इस अधिवेशन में कुल 18 प्रस्ताव पास किये गये। ये प्रस्ताव झाबुआ स्टेट की जनता की तकलीफों से संबंधित था जो इस बात का परिचायक है कि अब झाबुआ के सेनानियों में जागरुकता आ गयी थी। वे प्रजा परिषद के मंच के माध्यम से जनता की तकलीफों व दु:ख दर्दों को मंच के माध्यम से राजा व पूरे देश के सामने रखने लग गये थे।' झाबुआ राज्य प्रजा परिषद का 'द्वितीय अधिवेशन भैरवगढ़ में 6 मई 1936 को सम्पन्न हुआ जिसकी अध्यक्षता सेठ वरदीचंद जैन ने की।'

निष्कर्ष – इस प्रकार श्री वर्दीचंद जैन ने झाबुआ जिले के स्वतंत्रता संग्राम में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। जब उन्होंने व्यापारी मण्डल व झाबुआ राज्य लोक परिषद की नींव रखी तब से ही राजशाही के जुल्मों का शिकार हो गये तथा इनकी समस्त सम्पत्ति व व्यापार चौपट हो गया और जेल में रहकर डेढ़ क्विंटल का अनाज पीसना पड़ा। साथ ही अपने दांतों को पुलिस के हाथों गंवाये जिससे उनकी आंखों की रोशनी चली गयी। ये सब यातनायें जनता की लड़ाइयों को लड़ने के बदले श्री वरदीचंद जैन को मिली।

वर्तमान समय में श्री वरदीचंद जैन हमारे बीच में नहीं हैं लेकिन उनके द्वारा गरीब आदिवासियों के लिए जो सपना देखा था आज के समय में पूरा होता देख उनकी झाँकी दृष्टिगोचर हो रही है। श्री वरदीचंद जैन का निधन 13 फरवरी 1984 को हो गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. कर्नल टाड – राजस्थान (कलकत्ता पुन: प्रकाशन) संस्करण – 11 पेज 21
2. मेंमोयर्स ऑफ सेन्ट्रल इंडिया –जान मालकम लंदन प्रकाशन 1924 पेज नं. 47
3. झाबुआ स्टेट गजेटियर एक्स्ट्रा आडनरी नं. 8 र्सकुलर नं. 1370–1 व 1371–1 फरवरी 1932
4. सन् 1936 का झाबुआ जेल से प्राप्त रिकार्ड के अनुसार
5. नई दुनिया समाचार पत्र 9 नवम्बर 1972
6. झाबुआ राज्य प्रजा परिषद का प्रथम दोहद अधिवेशन की कार्यवाही सेठ कालूराम पोरवाल की अध्यक्षता में सम्पन्न सितम्बर 1935
7. झाबुआ राज्य प्रजा परिषद का द्वितीय भैरवगढ़ अधिवेशन की कार्यवाही सेठ श्री वरदीचंद जैन की अध्यक्षता में सम्पन्न मई 1936
8. झाबुआ राज्य प्रजा परिषद का तृतीय दोहद अधिवेशन की कार्यवाही मई 1939
9. झाबुआ राज्य प्रजा परिषद का चर्तुथ एवं पंचम अधिवेशन की कार्यवाही 29 जून 1941 एवं 21 दिसम्बर 1947

****

महात्मा गांधी का नैतिक दर्शन (व्यावहारिक पक्ष)

डॉ. पुष्पा कपूर *

शोध सारांश –महात्मा गाँधी ने मनुष्य को एक नैतिक प्राणी माना है। उनका अहिंसा का सिद्धांत संसार के अस्तित्व को बनाए रखने में अग्रणी भूमिका अदा करता है। उनकी मानवतावादी विचारधारा विश्व धरातल पर आज स्थापित हो रही है। व्यक्ति की आत्मशुद्धि और आत्मोन्नति मानवीय मूल्यों को आत्मसात करने से ही सम्भव है।

प्रस्तावना – महात्मा गाँधी ने नैतिक नियमों को जीवन में अंगीकार कर संसार के सामने एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है। नैतिकता तो मनुष्य की चेतना में अंतर्निहित है। समाज, देश, विश्व इन सभी की चाहे जो समस्या हो, उसके मूल में नैतिकता समाहित होती है। महात्मा गाँधी के अनुसार, 'धार्मिक सहिष्णुता, अहिंसा के सिद्धांत का प्रतिफल है।'[1]

नैतिक शोध की आवश्यकता – वर्तमान समय में जहाँ विश्व के सभी देश आर्थिक विकास में नित नये आयाम छू रहे हैं, वहीं दूसरी ओर अपराध के ग्राफ मानवता को शर्मसार कर रहे हैं। असुरक्षा का भाव हिंसक प्राणियों के कारण नहीं अपितु तथाकथित सभ्य समाज में रहकर, मनुष्य भोग रहा है। पशुतुल्य आचरण कदापि क्षमा योग्य नहीं है। आज मानव की अंतरात्मा को जगाने की आवश्यकता है, जो नैतिक दिशा में आगे बढ़ने से ही सम्भव है।

नैतिक ज्ञान का विस्तार शोध का लक्ष्य – 'मनुष्य एक नैतिक प्राणी है' यह कहकर महात्मा गाँधी मानव में निहित अनन्त सम्भावनाओं का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करते हैं। इससे मनुष्य का विवेक जागृत होता है। उन्होंने पंच महाव्रत – सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह भारतीय दर्शन से ग्रहण किये। उन्होंने माना कि अहिंसा मानव बल है। पशु बल से यह कई गुना अधिक है, इससे मानव के हृदय को जीता जा सकता है।

'अहिंसा को साधन और सत्य को साध्य मानना चाहिए।'[2] मनुष्य को समाज में अपने मौलिक अधिकारों को प्राप्त करना हो तब भी उसे अहिंसा का मार्ग अपनाना चाहिये। इसमें आत्मरक्षा के साथ-साथ समाज की भी रक्षा निहित है। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में साधनों की पवित्रता का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। महात्मा गाँधी इसे व्यावहारिक उदाहरण से स्पष्ट करते हैं कि जैसा बीज होगा वैसा फल प्राप्त होगा। बबूल को बोने से आम को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार अनुचित साधनों को अपनाकर ऊँचे लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। नैतिक ज्ञान मनुष्य के कर्तव्यों का निर्धारण करने में अहम भूमिका निभाता है। नैतिक ज्ञान के द्वारा मनुष्य स्वयं अपने कार्यों और विचारों की समीक्षा कर सकता है। मानवमात्र के प्रति उसके हृदय में सौहार्द्रपूर्ण मैत्रीभाव का जन्म होता है।

विकास के दौर में आगे बढ़ते हुए भी वह पवित्र आचरण रखकर आत्मविकास कर सकता है। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नीति का समावेश हैं। नीति जनकल्याणकारी बनकर आदर्श को प्राप्त करती है। महात्मा गाँधी का नैतिक चिंतन मानव जीवन की समस्याओं का समाधान करने में सहायक हैं। महात्मा गाँधी के नैतिक चिंतन का आधार भगवद्गीता भी है। वे गीता को माँ के समान मानते हैं। गीता के श्लोकों में उन्हें अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त हो जाता था। नैतिक चिंतन मनुष्य को अंधविश्वास से मुक्त कराता है। भिन्न-भिन्न देश-काल के व्यक्तियों के व्यवहार में नीति के आधार पर एक आदर्श एकरूपता बनाई जा सकती है।

नीति का सम्बन्ध समाज से है, यह समाज में ही सार्थक होती है। अत: उन्होंने सर्वोदय समाज की अवधारणा प्रस्तुत की। समाज के सभी व्यक्तियों का विकास इसका मूल प्राण है। सर्वधर्म समन्वय का आधार भी नैतिकता है। किसी भी धर्म को छोटा कहना या समझना भी हिंसा है। अत: समस्त धर्मों के प्रति आदर का भाव धारण करना चाहिए।

'गाँधीजी के शब्दों में नीति को धर्मनीति अथवा नीतिधर्म कहा गया है। धर्म में नैतिकता निहित है। कोई धर्म नीति-विहीन नहीं है। इसी प्रकार सच्ची नैतिकता, सच्चा धर्म है।'[3]

नैतिकता को आचरण में अपनाकर मनुष्य आत्म विकास तो करता ही है, साथ ही वह अन्य लोगों के लिए उदाहरण बन जाता है, जो एक प्रकार से देखा जाए तो व्यावहारिक शिक्षा है। मन में संतोष होने पर लालच का भाव जागृत नहीं होता।

गाँधीजी गीता के उपदेश को नैतिक कर्तव्य के लिए आवश्यक मानते हैं – 'मनुष्य अपने को कर्ता न मानकर ईश्वर की इच्छा को सर्वोपरि मानते हुए अहंकार-विहीन होकर निमित्त रूप में कार्य करे।'[4] इस प्रकार आचरण में विचारों की छाप व्यावहारिक रूप में दिखाई देती है। विचारों में अहंकार का समावेश न हो, तभी अहिंसक आचरण सम्भव है। विनम्रता का गुण आने पर कर्म पूजा बन जाता है। धीरे-धीरे वह कर्म लोक कल्याण का रूप ले लेता है, जिससे सम्पूर्ण समाज लाभान्वित होता है।

निष्कर्ष – महात्मा गाँधी के नैतिक चिंतन की उपादेयता समाज में सदैव प्रासंगिक बनी रहेगी। उन्होंने मानव के स्वभाव की विलक्षणता को जाँचा-परखा है। आज भौतिक विकास का दौर है, जहाँ मानवीय जीवन की गरिमा को बनाए रखने हेतु महात्मा गाँधी का नैतिक दर्शन अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य स्वयं जैसा भी कार्य-व्यवहार करे, परन्तु वह दूसरों से अच्छे आचरण की अपेक्षा करता है, यह तभी सम्भव है जब सभी मनुष्य नैतिकता को जीवन में आत्मसात करे, आत्म अवलोकन करे, अपने कार्यों और विचारों के परिणाम के बारे में चिंतन-मनन करे।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. धर्म दर्शन की रूपरेखा – हरेन्द्रप्रसाद सिन्हा, पृष्ठ संख्या 320
2. नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण – डॉ. संगमलाल पाण्डेय
3. नीतिशास्त्र के प्रमुख सिद्धांत – डॉ. हृदयनारायण मिश्र, पृष्ठ संख्या 328
4. नीतिशास्त्र के प्रमुख सिद्धांत – डॉ. हृदयनारायण मिश्र, पृष्ठ संख्या 331
5. गाँधी का दर्शन – डॉ. संगमलाल पाण्डेय
6. गाँधी दर्शन – डॉ. प्रभातकुमार भट्टाचार्य
7. नीतिशास्त्र के प्रमुख सिद्धांत – डॉ. डी.आर. जाटव
8. समकालीन भारतीय दर्शन – बसन्त कुमार लाल
9. नीतिशास्त्र की समकालीन प्रवृत्तियाँ – डॉ. सुरेन्द्र वर्मा
10. नीतिशास्त्र – जे. एन. सिन्हा

* सहायक प्राध्यापक (दर्शनशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

महाराष्ट्र की कीर्तन परम्परा

डॉ. स्नेहा पंडित *

प्रस्तावना – भारतवर्ष में भक्ति मार्ग में संगीत कला का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। संतों ने ईश्वर आराधना के लिये संगीत को सीधा मार्ग बताया है। भक्ति भावना से किया गया भजन भगवान को अधिक पसंद है। संतों द्वारा कीर्तन का उपयोग जन जागृति, धर्म जागृति, भक्ति मार्ग तथा समाज को उपदेश देने हेतु किया गया, ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण है। समाज को एकत्रित करने के लिये कीर्तन एक अच्छा साधन है, इसमें शिक्षित, अशिक्षित, अमीर, गरीब, छोटे, बड़े, बालक सभी वर्ग के लोग समाविष्ट होते हैं। इसमें सभी आयु वर्ग (वृद्ध, बालक, स्त्री, पुरूष आदि) के लोग होते हैं। वैष्णव सम्प्रदाय का प्रमुख ग्रंथ भगवतगीता है। इस ग्रंथ में श्रीकृष्ण ने सगुण भक्ति एवं निर्गुण भक्ति दोनों को ही प्रधान रूप से बताया है और कहा है कि सगुण भक्ति सर्वसाधारण के लिये तथा निर्गुण भक्ति ज्ञानियों के लिये है।

आराधक अपने इष्ट की सेवा विभिन्न साधनों से करता है। उन्हीं भावों एवं साधनों को भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है अर्थात् निम्न सभी भाव भक्ति की श्रेणी में आते हैं – श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वंदन, पादसेवा, दास्यभाव, सख्यभाव, वंदन, आत्मनिवेदन इस प्रकार वैष्णव सम्प्रदाय में भक्ति के नौ भाव माने जाते हैं। जो नवधा भक्ति के नाम से प्रचलित है। वैष्णव सम्प्रदाय के संगीत को दो भागों में बाँटा जा सकता है – 1) शास्त्रीय संगीत, 2) जनसामान्य संगीत।

वल्लभ सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय, हरिदास सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय आदि में शास्त्रीय संगीत का विशेष स्थान रहा है। गौडीय सम्प्रदाय नाम संकीर्तन की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें हरे राम हरे कृष्ण नाम को विशेष धुन से बाँधकर सर्वसाधारण में प्रसारित किया गया। रामानंदी सम्प्रदाय का संगीत भी जनता के लिये ही है। कीर्तन सामूहिक रूप से किया गया नाम स्मरण है, जिसमें ईश्वर के विभिन्न नामों को संगीत के माध्यम से गाया जाता है। जैसे हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, श्रीराम जय राम जय जय राम, गोविन्द जय जय गोपाल जय जय, विट्ठल रखुमाई विठोबा रखुमाई, विट्ठल विट्ठल, दिगम्बरा दिगम्बरा श्रीपाद वल्लभ दिगम्बरा आदि। सगुण भक्ति में नाम स्मरण के द्वारा सर्वसाधारण जनता भी ईश्वर की भक्ति कर सकती है।

साधारणत: कीर्तनकार अपने प्रवचनों का आरंभ कीर्तन में नाम स्मरण से करता है एवं कथा के बीच-बीच में कीर्तन (नाम स्मरण) गाकर सर्वसाधारण से भी कराता है। इसी प्रकार के कीर्तन से जनमानस ईश्वर भक्ति कीर्तन के अतिरिक्त अन्य समय में भी करता रहता है। इससे श्रोताओं के दोनों उद्देश्य पूर्ण हो जाते हैं। ईश्वर आराधना भी हो जाती है और उसके माध्यम से वह यह महसूस करता है कि उसने ईश्वर को भली-भांति याद कर लिया है। अत: कीर्तन सगुण भक्ति है एवं सभी वर्ग के व्यक्तियों को सुलभ है। इसके लिये वेद, पुराण, शास्त्र आदि की जानकारी आवश्यक नहीं है। इसी संदर्भ में देव ऋषि नारद को कीर्तन का जनक माना जाता है। कीर्तन की परम्परा देवर्षि नारद द्वारा ही शुरू की है, ऐसा उल्लेख है। नारद स्वयं अच्छे कीर्तनकार रहे हैं। वे गायन तथा कीर्तन दोनों ही कलाओं में पारंगत हैं। इसका उल्लेख अनेक ग्रंथों में मिलता है। निम्न श्लोक से देवर्षि नारद के कीर्तनकार होने की पुष्टि होती है –

गायन नारायण कथां सदा पापभयापहम्।
नारदो, नाश्यन्नेति, नृणामज्ञानजं भयम्।
देवदत्ताामियां वीणा स्वर ब्रह्म विभूषितम्
मूर्च्छायित्वा हरिकथा गायमाश्रराम्यहम्।।

कीर्तन के लिये जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वह सभी गुण देवर्षि नारद में थे। इनके द्वारा जो कीर्तन परम्परा शुरू हुई उसे नारदीय कीर्तन परम्परा कहा जाने लगा। साधारणत: सम्पूर्ण भारत में कीर्तन की परम्परा प्रचलित है। इसके अतिरिक्त कुछ राज्यों में कीर्तन की परम्परा एक निर्धारित रूप में चली आ रही है, इनमें महाराष्ट्र के कीर्तन, वृंदावन, नाथद्वारा, बंगाल के कीर्तन आदि विशेष उल्लेखनीय है। जहाँ तक महाराष्ट्र के कीर्तन का प्रश्न है, इस भूमि में एक से बढ़कर एक उच्चकोटि के संत हुए हैं, जिन्होंने कीर्तन की परम्परा की प्रथा सदियों पहले से आरंभ की थी जो आज भी चली आ रही है। महाराष्ट्र में कीर्तन के तीन सम्प्रदाय हैं –

1. नारदीय कीर्तन
2. वारकरी कीर्तन
3. रामदासी कीर्तन

नारदीय कीर्तन – नारदीय कीर्तन के प्रवर्तक देवर्षि नारद कहे जाते हैं। इस कीर्तन परम्परा में कीर्तन की शुरूआत मंगलाचरण से होती है। इस कीर्तन के दो भाग होते हैं 1) पूर्वरंग 2) उत्तर्रंग। ये दोनों अंग लगभग सभी कीर्तनकारों ने अपनाए हैं। इसके पूर्व रंग में कीर्तनकार संत नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, समर्थ रामदास आदि द्वारा बताए गए अभंग या पद लेकर या संस्कृत श्लोक लेकर कीर्तन की प्रस्तावना करते हैं। इस परम्परा में अनेक अच्छे साहित्य का अधिक से अधिक उपयोग करते हैं। इस कीर्तन परम्परा में लगभग सभी संतों द्वारा बताए गए अभंग एवं पदों का उपयोग किया जाता है। अत: इस परम्परा में कीर्तन करने के लिये विषयों का क्षेत्र बहुत बड़ा है। इसका क्षेत्र विस्तृत होने के कारण सभी पदों को विभिन्न रागों में गाया जाता है।

कीर्तनकार स्वयं गायक भी होते हैं। इस कारण वह संगीत के शास्त्रीय पक्ष को भली-भाँति प्रस्तुत करते हैं। इसमें अनेक कीर्तनकार ठुमरी, ख्याल, ध्रुपद, धमार इत्यादि संगीत के गीत प्रकारों का गायन अपने कीर्तन में करते हैं। कीर्तन के दूसरे भाग अर्थात् उत्तर्रंग में किसी व्यक्ति के चरित्र या किसी सिद्धांत को समझाते हुए पूर्वरंग में लिये अभंग या पद को जोड़कर विषय को

* सहायक प्राध्यापक (संगीत) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

प्रबल बनाते हैं। नारदीय सम्प्रदाय की विशेषता यह है कि हरिकथा को कीर्तनकार खड़े होकर कहते हैं, इसमें मृदंग, झांझ, चिपड़ी, हारमोनियम, तबला इत्यादि वाद्यों के द्वारा संगत की जाती है।

वारकरी कीर्तन – वारकरी सम्प्रदाय परम्परा लगभग 800 वर्ष पुरानी है। आरंभ में संत ज्ञानेश्वर के समस्त शिष्य आषाढ़ी एकादशी से कार्तिकी एकादशी तक आकंदी नामक स्थान से पंढरपुर तक की यात्रा गायन–वादन के साथ नाम स्मरण करते थे। इस क्रिया को मराठी में वाच्या (एक निश्चित समय पर की गई तीर्थ यात्रा) कहते हैं। इसी कारण इस वर्ग को वारकरी कहा गया। वारकरी कीर्तन के प्रवर्तक संत ज्ञानेश्वर हैं एवं इस कीर्तन परम्परा के श्रेष्ठ कीर्तनकार संत नामदेव हुए हैं। इस सम्प्रदाय के लोगों को संत नामदेव के कीर्तन में पांडुरंग (विट्ठल, कृष्ण) स्वयं नृत्य करते हुए दिखते थे। इस कीर्तन सम्प्रदाय में कीर्तन का विशिष्ट नियम था, जिसके अंतर्गत विशिष्ट संतों के साहित्य का ही उपयोग होता था। संत ज्ञानदेव भी संत निकोबा राय द्वारा रचित पद ही कीर्तन में गाते थे। विशेष तथ्य यह है कि वारकरी सम्प्रदाय में विट्ठल के अलावा अन्य किसी भी भगवान का नाम स्मरण नहीं किया जाता। वारकरी सम्प्रदाय में ज्ञानेश्वरी, एकनाथ भागवत्, तुकाराम एवं नामदेव आदि की कथाओं का साहित्य ही कीर्तन का आधार है।

इस सम्प्रदाय में कीर्तन की शुरूआत संत ज्ञानेश्वर द्वारा रचित मंगलाचरण को गाकर की जाती है तथा इसके पश्चात ही प्रस्तावना के लिए कोई अभंग लेकर पूर्व रंग की शुरूआत होती है। इस सम्प्रदाय में मंझीरा बजाने वालों की संख्या अधिक होती है। ये संख्या पच्चीस से लेकर हजार तक भी हो सकती है। बीच–बीच में 'विठोबा रखुमाई' का सामूहिक कीर्तन होता है। इस सम्प्रदाय की भाषा मराठी होती है, जो बहुत सरल होती है एवं सभी को समझ में आती है। इस सम्प्रदाय में कीर्तन को शास्त्रीय पक्ष से देखने का काम श्री विष्णु बुवा जोग ने किया। इस सम्प्रदाय में वीणा तथा पखावज जैसे पारम्परिक वाद्यों को अधिक महत्व दिया है। कालान्तर में इस सम्प्रदाय के भी दो भाग हो गए।

1. आकंदीकर वारकरी सम्प्रदाय
2. देहुकर वारकरी सम्प्रदाय

आकंदीकर सम्प्रदाय में नमन के लिये विशेष पद का उपयोग होता है। इसमें श्री ज्ञानेश्वर महाराज का अभंग 'रूप पाहता लोचनी' का उपयोग होता है। इसके विपरीत देहुकर सम्प्रदाय में 'सुन्दर ते ध्यान' श्री तुकाराम महाराज के अभंग का उपयोग नमन के लिए होता है। यह भेद दोनों सम्प्रदाय को अलग करता है। इसमें वारकरी कीर्तनकार नमन के लिये उपरोक्त पद के अलावा कोई परिवर्तन नहीं करते।

रामदासी कीर्तन – महाराष्ट्र के कीर्तन में रामदासी कीर्तन परम्परा विशेष महत्वपूर्ण है। इसके प्रवर्तक समर्थ श्री स्वामी रामदास थे। रामदास स्वामी ने नारदीय कीर्तन परम्परा का अत्यन्त सूक्ष्म अध्ययन करके कीर्तन परम्परा का ठोस आधार स्थापित किया। इसके साथ ही उन्होंने कीर्तन के लिए आवश्यक विविध गुणों का निर्देश भी बताया है।

'हरिदासी हरि कीर्तनी। राग ज्ञानी ताल ज्ञानी।
वीणे मृदंगाच्या ध्वनि। टाळपोक
संगीत गायन। आलाप मोडी। धातमाता अनेक घारी।
रसाळमुद्रा। जाडकथा। दस्तक टाळी
नृत्य कला मजग प्रबंध सरळी। शब्द मनोहर
सावधपणमज बहु पाठांतर।'

समर्थ श्री स्वामी रामदास ने इस पद में संगीत के शास्त्रोक्त पक्ष के पारिभाषिक लगभग सभी शब्दों को बताते हुए इसमें आलाप तथा गमक का उपयोग दर्शाया है। इनके अनुसार आलाप (रागालाप, रागाल्पति इत्यादि) ताल रहित अर्थात् ताल छोड़कर तथा गमक के सभी प्रकार ताल सहित अर्थात् ताल में बंधे हुए बताए गए हैं। पं. शारंगदेव के अपने ग्रंथ में आलाप को पहले गाने को बताया है। प्रबंध के चार अवयव उद्ग्राह, मेलापक, आभोगी व संचारी हुए। धातु तथा मातु अर्थात् शब्द रचना (कविता बनाना), स्वर रचना (स्वरों या राग में बांधना) अर्थात् कीर्तनकार को वाग्गेयकार भी बताया है। हाथ से ताली देना एवं लय को बांधने का भी उल्लेख किया है।

इसके साथ ही रागों के समय के प्रति विशेष सावधानी बरतने को कहा है। इसके लिये उन्होंने भरपूर पाठांतर करने का उल्लेख भी किया है। इसके अलावा कीर्तनकार के कौन–कौन से गुण आवश्यक होते हैं, इसका उल्लेख श्रेष्ठ कीर्तनकार श्री भागवत बुवा (काशी क्षेत्र) ने अपने ग्रंथ कीर्तनाचार्यक्रम में दिया है –

धैर्य स्वरोंलयस्तालों गानं वक्तृत्वमेव च।
शास्त्रं पुराणमेतानि षष्टांगान्यूदितानिवै।।

अर्थात् धैर्य, उत्त म आवाज, लय–ताल सहित गायन, बोलने की कला (वक्तृत्व), धर्मशास्त्र का ज्ञान, दर्शनशास्त्र, व्याकरण, भक्तिशास्त्र, काव्य तथा छंद शास्त्र इत्यादि शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए। साथ ही रामायण, महाभारत, भागवत पुराण व अन्य पुराणों पर मनन करना आवश्यक है। विभिन्न पुराणों में आए दृष्टांत भी अपने कीर्तन के माध्यम से बताने का प्रयत्न करना चाहिए। इस सम्प्रदाय में समर्थ रामदासजी की प्रार्थना कीर्तन शुरू करने के लिये गायी जाती है। इसके पश्चात समर्थ रामदास द्वारा बताये गए अभंग की ही प्रस्तावना की जाती है। इसके पश्चात रामदास लिखित पुस्तक दासबोध की ही कुछ पंक्तियों को लेकर उसका वर्णन किया जाता है। यह पंक्तियाँ या पद आलाप तथा तानों के साथ गाये जाते हैं। इसके पश्चात उत्तार भाग में संत चरित्र, पौराणिक कथाओं को बताते हुए पूर्व रंग व उत्तर्रंग को जोड़ने का प्रयास किया जाता है।

इन तीनों कीर्तन परम्पराओं का उद्देश्य समाज जागृति, देश भक्ति व देव भक्ति आदि करना है। साथ ही संगीत का प्रसार–प्रचार जनसाधारण के लिये करना है। कीर्तन परम्परा के तीन भेद बताए गए हैं –

1. **नाम संकीर्तन –** भगवान के नाम का वर्णन करते हुए कीर्तन करना नाम संकीर्तन कहा जाता है। इसमें भजन होते हैं।
2. **गुण संकीर्तन –** इस कीर्तन में भगवान के गुणों का वर्णन होता है, इसके अंतर्गत गायन होता है।
3. **लीला संकीर्तन –** इस कीर्तन में भगवन की लीलाओं का वर्णन किया जाता है। इसके अंतर्गत कथा होती है।

समर्थ रामदास स्वामी ने समाज में भक्ति, नीति, धर्म–भावना व राष्ट्र–भावना आदि की शिक्षा देने हेतु मुख्य 'हरिकथा निरूपण' बताया है। कीर्तन की इन तीनों परम्पराओं में कीर्तन शुरू करने का तरीका एक ही है।

1. सर्वप्रथम कीर्तन में गणेश स्तवन कहा जाता है – 'वक्रतुण्ड महाकाय ..'
2. इसके पश्चात सरस्वती स्तवन – 'या कुन्देन्दु तुषारहार .....', 'सर्व मंगल मांगल्ये.....'
3. इसके पश्चात गुरूवंदना – 'गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु .....', 'ब्रह्मानंदम् परम् सुखदम् .....'

4. तत्पश्चात तीनों कीर्तन परम्पराओं के अपने-अपने नमन के पद हैं, उन्हें गाया जाता है।

नारदीय परम्परा में एकनाथ भागवत् आदि किसी संत का पद गाया जाता है। वारकरी सम्प्रदाय में सिर्फ कृष्ण, विष्णु के पद ही नमन के लिये लिया जाता है। रामदासी सम्प्रदाय में केवल रामदासजी के बताए पद ही लेकर नमन किया जाता है।

इस प्रकार महाराष्ट्र के कीर्तन में विशेष तथ्य उभर कर आता है कि समर्थ रामदास के कीर्तन करने के लिए विशेष नियमों का प्रावधान बताया है। कीर्तनकारों के गुण बताए हैं, साथ ही संगीत रत्नाकर में वर्णित शास्त्रोक्त नियमों के अंतर्गत कीर्तन करने का उल्लेख किया है तथा रागों को निर्धारित समय पर गाने के लिए विशेष रूप से सावधान रहने को कहा गया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि सुबह का कीर्तन, सुबह के रागों में किया जाए एवं संध्या कीर्तन या रात्रि कीर्तन सायंकालीन या रात्रिकालीन रागों में किया जाए। चूंकि कीर्तन सामूहिक होता है इसलिये समर्थश्री रामदास ने पदों को रागों में गाने का उल्लेख सिर्फ सावधानी बरतने के लिए बताया है, इसके साथ-साथ जो अभंग गाये जाते हैं, उनमें दादरा, कहरवा, अहाड़ा इत्यादि तालों की संगत की जाती है। इस प्रकार पूर्वरंग की समाप्ति होती है। इसके पश्चात उत्तर्रंग प्रारंभ होता है, जिनमें तीनों ही सम्प्रदायों में विविध कथाओं को लेकर आख्यान के रूप में कथा बताई जाती है तथा बीच-बीच में नाम संकीर्तन किया जाता है और अंत में भगवान की आरती कर कीर्तन का समापन होता है। कई बार कीर्तन की कथाऐं ऐसी भी होती है कि दो-तीन दिन तक कीर्तन एक ही कथा पर आधारित होता है। इस प्रकार महाराष्ट्र की कीर्तन परम्परा पूर्व से आज तक निरंतर निर्बाध गति से चली आ रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. चतुरंग - पं. एस.एल.बी. भट्ट।
2. पत्रिका - सनातन धर्म सेवा संघ (कीर्तन पाठ्यक्रम)।
3. समर्थ रामदांसांचे संगीत चिंतन - लेखक डॉ. कमलाकर परलीकर।
4. भारतीय संगीत का इतिहास - पं. शरदचंद परांजपे।
5. संगीत रत्नाकर - पं. शारंगदेव।

****

भारतीय संगीत में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

डॉ. नीरज राव*

प्रस्तावना – मनोविज्ञान के वर्तमान स्वरूप को देखा जाए तो यह स्परूप मनोविज्ञान शब्द के शाब्दिक अर्थ से स्पष्ट नहीं होता है। मनोविज्ञान शब्द की उत्पत्ति (Psychologs = psyche + logos) का अर्थ आत्मा से है। Psyche का अर्थ आत्मा से है। Psyche का एक दूसरा अर्थ भी है – एक कुंवारी कन्या, जिसके पंख तितली के समान हो। Logos का अर्थ है ज्ञान अथवा सम्प्रेषण करना। यदि Psychology शब्द का शाब्दिक अर्थ लिया जाये तो इसके अर्थ में आत्मा का ज्ञान ही मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान का अर्थ है आत्मा का अध्ययन। ग्रीक दार्शनिकों द्वारा आत्मा का अध्ययन प्रारंभ किया गया। यह आत्मा का अध्ययन सोलहवीं शताब्दी तक प्रचार में रहा। कुछ विद्वानों ने आत्मा के स्थान पर मन (Mind) शब्द को अधिक उपयुक्त बताया। यदि आत्मा के स्थान पर 'मन' शब्द का उपयोग करें तो कहा जा सकता है, मन का अध्ययन। मन का ज्ञान ही मनोविज्ञान है। परन्तु यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि मन के अनेक अर्थ है – आत्मा, चेतना, मानसिक प्रतिक्रियायें, इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों के अनेक मत एक न हो सके।

मनोवैज्ञानिक जेम्स विलियम ने अपनी पुस्तक 'मनोविज्ञान के सिद्धांत' में लिखा है कि चेतना की दशाओं के वर्णन और व्याख्या के रूप में मनोविज्ञान की परिभाषा सर्वोत्तम दी जा सकती है। वुडवर्थ के अनुसार, 'व्यक्ति के पर्यावरण के सम्बन्ध में व्यक्ति की क्रियाओं का विज्ञान ही मनोविज्ञान है। स्किनर के अनुसार, 'जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के प्रति प्राणी की प्रतिक्रियाओं या व्यवहार का अध्ययन ही मनोविज्ञान है।'

उपरोक्त परिभाषाओं के सम्बन्ध में उपरोक्त वर्णन को देखने से स्पष्ट होता है कि आधुनिक समय में मनोवैज्ञानिक किसी न किसी रूप में इस बात को स्वीकार करते हैं कि मनोविज्ञान व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है। मनोविज्ञान से सभी ज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओं (Cognitive Processes), जिनमें संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, कल्पना, संवेग, अधिगम आदि मनोविज्ञान में केवल व्यक्ति की केवल बाह्य क्रियाओं और व्यवहारों का अध्ययन ही नहीं किया जाता है, वरन् प्राणी की क्रियाओं और व्यवहारों आदि का अध्ययन मन और शरीर से प्राणी को समझते हुए किया जाता है। सभी अध्ययन प्राणी के विशेष वातावरण के संदर्भ में किये जाते हैं। वातावरण बहुधा दो प्रकार के होते हैं –

1. भौतिक वातावरण (Physical Environment)
2. सामाजिक वातावरण (Social Environment)

मनोविज्ञान में व्यक्ति की क्रियाओं, व्यवहारों और अनुभवों का अध्ययन दोनों प्रकार के वातावरण के संदर्भ में किया जाता है। प्रश्न यह उठता है कि मनोविज्ञान कला (Art) है यह कहना उपयुक्त है मनोविज्ञान विज्ञान है। यह विधायक (Positive) और नियामक (Normative) दोनों प्रकार का विज्ञान है। मनोविज्ञान का अर्थ समझ लेने के बाद यह आवश्यक है कि सामान्य मनोविज्ञान के अर्थ को भी समझ लिया जाए। मनोविज्ञान में किसी व्यक्ति विशेष या वर्ग का अध्ययन नहीं होता। सामान्य मनोविज्ञान का सम्बन्ध मानसिक जीवन के सामान्य सिद्धांतों से है।

मनोविज्ञान की प्रकृति (Nature of Psychology) - मनोविज्ञान विज्ञान तभी मान सकते हैं जब उस विषय की विषय सामग्री में विज्ञान के आवश्यक तत्व उपस्थित हो, ऐसा तभी संभव है, जब मनोविज्ञान में विज्ञान के उपस्थित कुछ आवश्यक तत्व निम्न प्रकार से हो – वैज्ञानिक पद्धति, वस्तुनिष्ठता, भविष्यवाणी की योग्यता, सार्वभौमिकता। इन सभी विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान विज्ञान है। संसार में मानवता और संस्कृति के आविर्भाव के साथ ही संगीत का उद्भव और विकास हुआ। इसमें भावपक्ष बाहुल्य रहता है, संगीत में विविध भावों की उच्चता, विचारों की गहनता तथा जीवन की गहन अनुभूति और उसका विश्लेषण विद्यमान रहता है। संगीत के द्वारा मन एवं शरीर की समस्त चिंताओं और पीड़ाओं से मुक्ति मिलती है। वस्तुत: संगीत, शक्ति व तेजपूर्ण केन्द्र है जो रोगग्रस्त मन में अपूर्व शांति व शीतलता का संचार करती है।

संगीत और इतिहास के संदर्भ मानव की उत्पत्ति और सभ्यता के विकास के साथ–साथ पुरातात्विक स्वरूपों में अभिलेख विविध कला, मिट्टी के बर्तन, भित्तिचित्रों, सिक्कों, मूर्तियों, मंदिर, खिलौनों, संगीत का इतिहास विभिन्न कलात्मक नमूनों से विरेचित किये जा सकते हैं। संगीतशास्त्र के अध्ययन की मूल विषयवस्तु सांगीतिक उपादानों का अध्ययन और नानाविधि उपलब्ध ग्रंथों से प्राप्त संगीत साक्ष्यों को अलंकृत करना है। मानव की उत्पत्ति के साथ ही संगीत का प्रादुर्भाव हुआ। प्राचीन भारतीय संस्कृति में सामवेद के शिक्षा ग्रंथ नारदीय शिक्षा ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय है। स्मृति ग्रंथों में भी संगीत का विविध संदर्भ में उल्लेख उपलब्ध है।

जैन साहित्यों, बौद्ध जातक कथाओं, विविध बौद्ध ग्रंथों में भी संगीत का स्पष्ट उल्लेख है। गायन, वादन, नृत्य का भी एक साथ उल्लेख है, यथा ललित विस्तार नामक ग्रंथ में भी शिक्षा, प्रतिशाख्य, पुराण, स्मृति, महाकाव्य आदि में संगीत का इतिहास सर्वथा लिखित रूप में प्राप्त होता है। हमारे भारतीय हिन्दू धर्म में सोलह संस्कारों में सामाजिक प्रतिपालन में संगीत अंगांगी रूप से युक्त है। संगीत को सार्वभौमिक भाषा या अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम माना जाता है। मनुष्य विधाता की मौलिक रचना है उसी प्रकार कला भी मानव की मौलिक रचना है। प्रकृति के साथ तालमेल करता हुआ मानव निरंतर विकास की दिशा में अग्रसर हो रहा है। प्रकृति का सौंदर्य मानव मन अपने परिवेश में अभिव्यक्त को नाट्य, चित्र वस्तु, काव्य और संगीत के माध्यम से स्पष्ट करता है। काव्य और संगीत के द्वारा ही वह अपने मनोभावों

* सहायक प्राध्यापक (संगीत) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

को व्यक्त करता आ रहा है। उसने प्रकृति से ही सभी क्रियाकलापों को ग्रहण किया और अपनी काल्पनिक कल्पनाओं को मनोरंजन के लिये प्रयोग करने लगा। मन मस्तिष्क पर संगीत के द्वारा अपनी अंतर एवं बाह्यमुखी क्षमताओं का आकलन करने लगा, संगीत के माध्यम से भारतीय दर्शन के चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के साधन में संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका है। नाद, श्रुति, स्वर आदि सांगीतिक उपादानों का विविध दार्शनिक, वैचारिक सिद्धांतों के माध्यम से देवी-देवताओं से संयुक्त करना। हिन्दू सनातन धर्मग्रंथों में देवी-देवताओं का संगीत के साथ कल्पना शिव का डमरूधारण, कृष्ण को बांसुरी, सरस्वती को वीणा, विष्णु के साथ शंख, माता पार्वती को लास्य नामक नृत्य और शिव को तांडव नृत्य का अधिष्ठाता माना जाता है। इससे ही 'ता' और 'ल' अर्थात् ताण्डव के 'ता' और लास्य के 'ल' शब्द से ताल का निर्माण हुआ है।

मनुष्य की देह और मन, दो धाराओं में परितुष्ट होती है। अपनी कल्पनाओं के परिशिष्ट विचारों को उकेरना ही संगीत का परम उद्देश्य है। संगीत का सम्बन्ध मनोविज्ञान से है। एक सहृदय श्रोता को अपनी कला से परितुष्ट करने की क्षमता रखता है। इस स्तर पर कल्पना, स्मृति, सीखना यह संगीतशास्त्र की आधारशिला है। मनोचिकित्सा मानसिक चिकित्सा का प्रायोगिक पक्ष रासायनिक विघटन या विकिरण में निहित है। हृदय की अभिव्यक्ति में सिर्फ आनंद की ही स्थापना हो वहीं संगीत है जो मन को आनंद देने वाली है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूंची :-

1. प्रयोगात्मक मनोविज्ञान - एम.ए. हाकिम, डॉ. बिपिनचंद्र अस्थाना
2. भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान - डॉ. वसुधा
3. भारतीय संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण - डॉ. स्वतंत्र शर्मा
4. भरत का संगीत सिद्धांत - आचार्य बृहस्पति
5. संगीत निबंध - लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस
6. प्राणी और तंत्रिका तंत्र - मोतीलाल बनारसीदास
7. संगीत रत्नाकर - शारंगदेव
8. नाट्यशास्त्र - भरतमुनि
9. कामसूत्र - वात्सायन

****

भारतीय संगीत में वाद्यों की सुदीर्घ परम्परा एवं उनका भविष्य

डॉ. बी. वर्षा *

प्रस्तावना – संगीत अर्थात् गायन, वादन तथा नृत्य, इन तीनों कलाओं का संगम, संगीत कहलाता है। ये तीनों ही अंग संगीत के मुख्य स्तम्भ हैं, जिसमें प्रत्येक का अपना-अपना विशिष्ट महत्व है। संगीत मुख्य रूप से कितने प्रकार का हो सकता है, यह निम्न तालिका से स्पष्ट होता है –

(तालिका अगले पृष्ठ पर देखे)

तालिका से स्पष्ट होता है कि संगीत विभिन्न रूपों में प्रचलित है जिसमें गायन कला कंठ का जादू तो वादन कला अंगुलियों का चमत्कार तथा नर्तन कला भाव-भंगिमाओं की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है। ये तीनों ही विधायें अपने-अपने प्रयोगों से दर्शकों को मंत्रमुग्ध करती है। इन तीनों कलाओं का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह तत्व उभरकर आता है कि तीनों ही कलाओं का मूल आधार स्वर तथा लय है। गान कला में स्वर तथा लय के साथ काव्य पक्ष प्रधान होने से वह मानव मन को ज्यादा प्रभावित करती है। नृत्य कला में लय पक्ष के साथ नाट्य का समावेश होने से वह भाव, अभिनय के माध्यम से दर्शकों को आकर्षित करती है, किन्तु वाद्य कला पूर्णरूपेण एक स्वतंत्र कला है, इसमें स्वर तथा लय का सामंजस्य प्रभावपूर्ण रूप से देखा जा सकता है, जिस कारण यह कला अधिक सूक्ष्म तथा बिना किसी बनावट के सामान्य जन को आकर्षित करती है। वाद्य कला अन्य किसी कला का आश्रय न लेकर श्रोताओं को आनंदित करती है।

भारतीय संगीत के इतिहास का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि समय तथा जन रूचि के अनुसार संगीत कला में परिवर्तन दिखाई देते हैं। उत्थान और पतन यह सूत्र किसी भी कला के क्षेत्रों में चरितार्थ होता है। पुरानी परम्पराओं में नवीन तत्वों का समावेश होकर एक नया रूप लोगों के सामने आता है। प्राचीनकाल से ही गायन तथा नृत्य आदि में संगत हेतु वाद्यों के माध्यम को महत्वपूर्ण माना गया। वाद्य, गायन तथा नृत्य के बीच की कड़ी होते हैं। संगीत की परिभाषा – गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते, उसके बिना पूरी नहीं होती। संगीत चाहे, किसी भी प्रकार का हो, वादन की संगत के बिना उसमें आनंद नहीं आता। शास्त्रीय, उप शास्त्रीय, भक्ति संगीत, सुगम संगीत, लोक संगीत, लोक नृत्य, कीर्तन, आरती, कव्वाली किसी भी प्रकार के संगीत में वाद्य संगत आवश्यक है। जिस प्रकार बिना नमक के भोजन रूचिकर नहीं हो सकता, उसी प्रकार बिना वाद्य संगत के किसी भी प्रकार के संगीत का रस पान नहीं किया जा सकता।

वाद्यों की प्राचीन परम्परा – भारतीय वाद्यों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वाद्यों की निर्मिती के सम्बन्ध में विद्धानों में मतभेद दिखाई देते हैं, किन्तु ऐसा माना जाता है कि सृष्टि की निर्मिती से ही वाद्यों की निर्मिती हुई है और तदुपरांत इसका धीरे-धीरे विकास होता गया। प्राचीन मंदिरों, सभागृहों, गुफाओं, स्मारकों, दीवारों, शिखरों पर विभिन्न वाद्यों एवं वादकों की आकृतियाँ दिखाई देती है जो इसकी प्राचीन परम्परा की ओर इंगित करती है। बहुत-सी देव मूर्तियों के हाथों में भी वाद्य दिखाई देते हैं, जो देवता और वाद्य का प्राचीन सम्बन्ध स्पष्ट करते हैं। माँ सरस्वती के हाथों में वीणा, श्रीकृष्ण की बांसुरी, शिवजी का डमरू, नारद का इकतारा आदि कई अनगिनत मूर्तियाँ भारतीय संगीत की कला को संहालें हुए है। वैदिककाल के पश्चात रामायण तथा महाभारत काल में वाद्यों एवं वादन शैली का काफी विकास हुआ।

वाद्य और उसका वर्गीकरण – भरत का नाट्यशास्त्र ग्रंथ, भारतीय संगीत में महाग्रंथ माना जाता है, जो अन्य ग्रंथकारों के लिये आदर्श एवं अध्ययनपूर्ण ग्रंथ है। इसके 28 से 33 तक के अध्यायों में भारतीय संगीत के विभिन्न तत्वों का विवेचन किया गया है। विविध आकार वाले, विविध आवाज के, विविध वादन शैली के वाद्यों का वर्गीकरण भी बताया गया है। नाट्यशास्त्र तथा अन्य समवर्ती ग्रंथों में वाद्यों के चार प्रकार के वर्गीकरण का उल्लेख मिलता है। यथा –

'वाद्य तंत्री ततं वाद्य सुषिरं मतम्,
चर्मावनद्ध वदन अवनद्ध तु वाधते,
घनो मूर्ति: साऽभिधाताद्धधते यंत्र तद्धतम्'

(तालिका अगले पृष्ठ पर देखे)

1. तंतु वाद्य (तत/वितत) – भारतीय वाद्य परम्परा में जिन वाद्यों में तार लगे हुए होते हैं और तारों को छेड़कर या आघात करके स्वरों की उत्पत्ति की जाती है, उन्हें तत वाद्य की श्रेणी में रखा जाता है। इसी प्रकार जब तार लगे वाद्यों में तार पर छड़ी, कमान या अन्य किसी तार के घर्षण से स्वरों की उत्पत्ति की जाती है, उन्हें वितत वाद्य की श्रेणी में रखा जाता है। विभिन्न प्रकार की वीणायें, तानपुरा, सरोद, सितार इत्यादि तत वाद्य तथा सारंगी, इसराज, रावण हत्था, रबाब, दिलरूबा आदि वितत वाद्य की श्रेणी में आते हैं।

2. अवनद्ध वाद्य – चमड़े से बनाये गए वाद्य चर्मवाद्य या अवनद्ध वाद्य कहलाते हैं। इसमें दोनों हाथों के पंजों अथवा अंगुलियों से बजाये जाने वाले वाद्य जिसमें पखावज, मृदंग, तबला, ढोलक, नाल, मांदल आदि वाद्य आते हैं। शंकु से बजाये जाने वाले वाद्यों में नगाड़ा, धौसां, दमामा आदि वाद्य आते हैं। ढोल, पटह, डमरू आदि इसी वर्ग के वाद्य हैं।

3. सुषिर वाद्य – हवा द्धारा अथवा फूंकने की क्रिया द्धारा नाद उत्पत्ति करने वाले वाद्य सुषिर वाद्य कहलाते है, जिसमें हारमोनियम, बांसुरी, वेणु, शहनाई, क्लेरोनेट, बीन, शंख आदि वाद्य आते हैं। ये वाद्य मुँह से फूंककर य अन्य किसी साधन से वायु प्रवाह करके बजाये जाते हैं।

4. घन वाद्य – परस्पर टकराकर बजाये जाने वाले, हथौड़ी से प्रहार कर बजाये जाने वाले वाद्य घन वाद्य कहलाते हैं। झांझ, घंटा, जल तरंग, बड़ी झांझ, विजय घंट आदि वाद्य इस श्रेणी में आते हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर हम वाद्यों को अलग-अलग श्रेणी में बाँट सकते हैं, किन्तु परिवर्तन एवं प्राचीन वाद्यों की बनावट के कारण कई नवीन

* सहायक प्राध्यापक (संगीत) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

वाद्यों की संख्या बढ़ती गई, फिल्मों में आर्केस्ट्रा में, वाद्य वृंदों में विदेशी वाद्यों का प्रभाव बढ़ने लगा। सारंगी, संतूर, सिंथेसाइजर, सुर बहार, नाग स्वरम्, घटम्, काष्ठ तरंग, ढोल, नगाड़ा, नाल आदि कई प्रकार के वाद्यों का उपयोग विभिन्न गीत प्रकारों में होने लगा।

वाद्य तथा वादन शैली का विस्तार तथा चर्चा अनेक ग्रंथकारों ने की है। सभी ने वाद्यों का निर्माण, उसका विकास, उसका पतन, वर्गीकरण आदि पर चर्चा की लेकिन सभी ने भगवान शिव को ही वाद्य निर्माण का जनक माना है। इस प्रकार देवों से तथा लोकसंगीत द्वारा चली आ रही इस विशाल परम्परा में समय-समय पर परिवर्तन होता गया, उत्कर्ष भी हुआ, अवनति भी हुई। कुछ वाद्य नाम मात्र के लिये रहे तो कुछ लुप्त हो गए और कुछ वाद्यों ने नया रूप ले लिया।

भारतीय इतिहास के अनुसार वैदिक युग से लेकर रामायण, महाभारत काल, प्राचीन तथा मध्यकाल में भारत में विभिन्न संस्कृतियों का आवागमन चलता रहा। पृथ्वी के अलग-अलग खण्डों से विभिन्न सभ्यतायें भारतवर्ष में आती रही। इसी आवागमन के कारण हमारी संस्कृति को भी नई विचारधारा प्राप्त हुई और इसी नवीनता के कारण भारतीय कलाओं का विकास हुआ, जिसके फलस्वरूप भारतीय वाद्य परम्परा को भी विकसित स्वरूप प्राप्त करने का अवसर मिला। आज ये नवीन तथा प्राचीन वाद्य हमारी सांस्कृतिक धरोहर है, इन्हें सहेजना तथा संवारकर रखने का उत्तारदायित्व हम सभी का है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. संगीत विशारद - बसंत - संगीत कार्यालय, हाथरस
2. भारतीय संगीत वाद्य - प्रो. लालमणि मिश्र - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
3. म.प्र. का लोक संगीत - शरीफ मोहम्मद - म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
4. संगीतिक निबंधमाला - डॉ. सीमा जौहरी - पीयूष प्रकाशन, दिल्ली
5. भारतीय संगीत का इतिहास - उमेश जोशी - संगीत कार्यालय, हाथरस
6. भारतीय संगीताचे सामान्य ज्ञान - किरण फाटक - संस्कार प्रकाशन, मुम्बई
7. संगीत कला विहार (दिसंबर 2008) - अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडल, मिरज
8. संगीत कला विहार (अक्टूबर 2010) - अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडल, मिरज

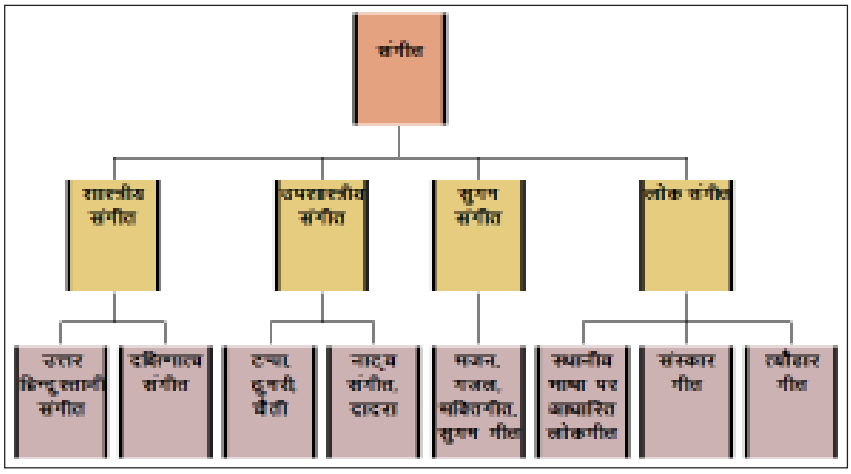

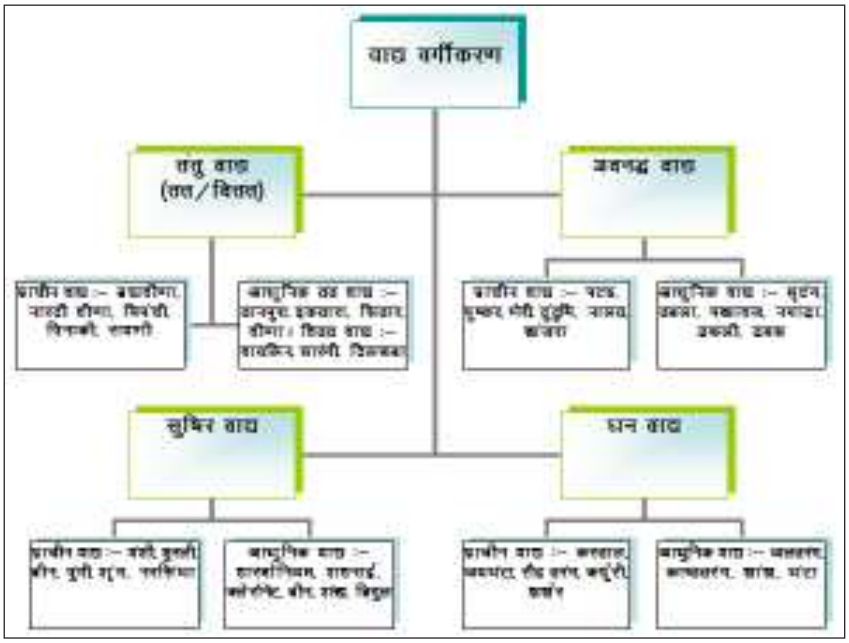

विभिन्न ललित कलाओं में संगीत –कला सर्वोच्च कला

डॉ. नीरज राव *

प्रस्तावना – कला शब्द से आशय संस्कृत में वांड्गमय पाँच ललित कलाओं को स्थान प्राप्त है। इन पाँच कलाओं में संगीत का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। संगीत वह ललित कला है, जिसमें संगीतज्ञ अपने मनोगत भावों एवं कल्पनाओं को स्वर, लय, ताल की सहायता से व्यक्त करता है।

कलाओं की संख्या, वात्स्यायन द्धारा चौसठ मान्य है। 'शुकनीति' में भी इसका उल्लेख है पुरूष कला के रूप में छियासी कलायें तथा चौसठ कामकलायें मान्य है। वात्स्यायन ने मानव जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष है। कामसूत्र के प्रणेता वात्स्यायन ने शरीर की स्थिति हेतु से काम आहार के समान धर्म और अर्थ का फलभूत माना है। उन्होंने चौसठ कलाओं का परिगणन किया, जिसमें प्रथम तीन है – गीतम्, वाद्यम्, नृत्यम्।

इस प्रकार वात्स्यायन के मत में चौसठ कलाओं में संगीत का स्थान सर्वोपरि है। कला मानव की चिरसंगिनी है, जबसे मानव पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ तबसे ही कला का उद्भव हुआ। कला को समाज का दर्पण माना गया है।

रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार, 'विश्वात्मा सदैव रंगों व रेखाओं में बोलती है।' कला की कभी मृत्यु नहीं होती है। इस प्रकार से कला की गति अबाध्य है। कला को मानव की चिरसंगिनी कहना उचित होगा। वास्तव में कला क्या है, टैगोर के अनुसार, 'मानव हृदय के भावों की अभिव्यक्ति कला है।' कला के सम्बन्ध में रस्किन का कथन है, 'प्रत्येक महान कला ईश्वरीय कृति के प्रति मानवीय आल्हाद की अभिव्यक्ति है।' टालस्टाय के अनुसार, 'कला सृजन की प्रेरणा को केवल सौंदर्य बोध की बंदिनी ही माना है।' उस सृष्टि में कला की प्रेरणा भावना सम्प्रेषण की इच्छा में निहित है। शब्द विचारों के वाहक होते हैं, कला, भावना की वाटिका।

ललित कला क्या है। यह समझने के लिये लालित्य क्या है, यह समझना आवश्यक हो जाता है। लालित्य की व्याख्या करना बहुत मुश्किल है। लालित्य को हम अनुभव कर सकते हैं। माधुर्य सौंदर्य सहजता, सरलता, प्रसाद, ओजप्रवाह आदि बातें लालित्य में समाहित हैं, ये सभी बातें जिस कला में होंगी वह ललित कला कहलायेगी। ललित कलायें कई विद्धानों ने निम्न बताई है – संगीत कला, काव्यकला, चित्रकला, वास्तुकला, शिल्पकला। संगीत कला का मूल आधार नाद है। नाद परमब्रह्म है, परमतत्व का अंग माना गया है।

नाद ब्रह्म है महान, पायो ना पायो पार
गाये, गाये थके सब, देव मुनि गंधार

गायन, वादन नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते अर्थात् गायन, वादन, नृत्य तीनों का समावेश संगीत है। कंठ संगीत को परमतत्व के निकट माना गया है। शायद इसी गुण के कारण संगीत सर्वश्रेष्ठ ललितकला कहा गया है। प्लेटो ने काव्यकला को सर्वश्रेष्ठ कला का स्थान माना है। संगीत अपने आप में एक स्वतंत्र, सौंदर्यपूर्ण, भौतिक जगत से परे है। सभी कलायें एक समान है, कला कोई भी हो, लोगों को आत्मानंद, उल्लास प्रदान करने वाली होती है।

कला कोई भी हो मूर्त साधनों का अंश जितना कम होगा वह कला ज्यादा श्रेष्ठ होगी। वास्तु, मूर्ति, चित्र, शिल्प इन कलाओं में भौतिक साधनों की आवश्यकता होती है। वास्तु व मूर्ति में चूना, पत्थर इन भौतिक साधनों का प्रयोग होता है। चित्रकला में और कम तूलिका, कलर, कैनवास, काव्यकला में भी मूर्त पदार्थ का अंश अत्यंत कम है। संगीतकार के पास केवल सात स्वर है यथा सा,रे,ग,म,प,ध,नि, जो अमूर्त है।

कवि, मूर्तिकार, चित्रकार, वास्तुकार के पास प्रकृति का विशाल द्धार खुला है, परंतु संगीत कला अपने ही पैरों पर खड़ी होकर अपने आप को प्रस्थापित करती है। भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम स्वर एवं लय है, जिनका सांसारिक वस्तु से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है। सभी कलाओं में काव्यकला ज्यादा प्रभावशाली है, काव्यकला में भाषा के द्धारा भावाभिव्यक्ति होती है। यदि व्यक्ति भाषा से अनभिज्ञ हो तो काव्य के माध्यम से साहित्यकार अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता है, जबकि संगीत के माध्यम से स्वर, लय, सूक्ष्म होते हुए भी अति प्रचंडमान हैं। आत्मिक और आध्यात्मिक आनंद की प्राप्ति संगीत द्धारा ही हो सकती है। संगीत के अतिरिक्त अन्य कलाओं का विचार हमें आध्यात्मिक आनंद प्राप्त नहीं करा सकते। अन्य कलाओं में तुलना करने पर हमें यह पता चलता है कि अन्य कलाओं की अपेक्षा श्रोताओं पर प्रभाव डालने के लिये संगीत को अधिक संघर्ष करना पड़ता है, जबकि कवि काव्य एवं शब्दों से, चित्रकार कैनवास पर तूलिका व रंगों से, मूर्तिकार मूर्ति के भावों से, अपने भाव जनमानस तक पहुंचा सकता है। सारी कलायें भावों को अभिव्यक्त करने का उद्देश्य रखती है, जिस प्रकार एक परिवार में एक पिता, अपने अन्य सदस्यों में भिन्नता देखता है उसी प्रकार अन्य कलायें भी संगीत से कहीं न कहीं सम्बन्ध रखती है।

संगीत एवं अन्य कलाओं का सम्बन्ध – ललित कलाओं में संगीत का क्या स्थान है। यह जानने के लिये आवश्यक है, हम निम्नलिखित बातों पर विचार करें –

1. अन्य कलाओं की विशेषतायें।
2. संगीत की अपेक्षा उनकी उच्चता या हीनता।
3. संगीत से अन्य कलाओं की निकटता या दूरी।
4. ललित कला नाम के अनुरूप उनमें लालित्य कहा गया है।

स्थापत्य कला एवं संगीत – स्थापत्य कला केवल भौतिक रूप की समृद्धि को ही दर्शाती है, वह पार्थिव सौंदर्य को व्यक्त करती है। भौतिक समृद्धि के साथ–साथ स्थापत्य कला लोकोत्तर जगत का भी प्रतिनिधित्व करती है। संगीत आत्मिक सौंदर्य का प्रतिनिधित्व करती है।

* सहायक प्राध्यापक (संगीत) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

मूर्तिकला एवं संगीत – मूर्तिकला में मूर्त शिल्प रूप में तकनीकि और वस्तु साधन का प्रयोग होता है। साधन की दृष्टि से मूर्तिकला स्थापत्यकला से श्रेष्ठ है, जिसमें कलाकार छैनी, हथोड़ी से काटकर आकृति प्रदान करता है। कलाकार केवल अपनी कला ही नहीं वरन् भावों को भी मूर्ति में सम्प्रेषित करता है।

चित्रकला एवं संगीत – चित्रकला में मानवों की कुंठाओं, संघर्षों व संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का सर्वोपरि साधन माना गया है। चित्रकला में ब्रश, कलर, कैनवास का प्रयोग होता है। चित्रकला एवं संगीत में समानतायें इतनी भर है कि चित्रकला में भाव कैनवास, कागज पर उकेरते हैं, जबकि संगीत में भावों एवं कल्पनाओं को स्वर–संयोजन, शब्द संयोजन के माध्यम से संजोया जाता है। हृदयस्पर्शी, आनंददायी एवं आत्मदायी प्रेरणा दोनों प्रदान करते हैं।

काव्य एवं संगीत – यद्यपि संगीत और काव्य का स्थान एक ही है। उत्पत्ति और अभिव्यक्ति के माध्यमों का स्थान एक है। 'नाद' का प्रतीकात्मक रूप शब्द है। 'शब्द' और 'स्वर' दोनों की उत्पत्ति नाद के द्वारा मानी गई है। काव्य में सौंदर्यबोध, भाव कल्पना आदि का संयोजन होता है। संगीत में सौंदर्यबोध, स्वर, लय, ताल संयोजन, गीत रचना, भाव आदि की अभिव्यक्ति होती है। नाद के दो प्रकार हैं – आहत एवं अनाहत। इस प्रकार संगीत एवं काव्य एक ही प्रकार के दो परिष्कृत स्वरूप हैं। दोनों परस्पर एक दूसरे के पूरक है।

सभी ललित कलाओं में संगीत का स्थान सर्वोपरि है। मधुर स्वरलहरियाँ सुनकर पाषणहृदय व्यक्ति भी सुकुमार कोमल हो जाता है। संगीत कला में एक ही कमी है कि वह यह है कि कलाकार के साथ ही उसकी कला का अंत हो जाता है, जबकि अन्य कलाओं में स्मृति ताजा करती है। वैसे यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि रिकार्डिंग सुविधा के अनुसार कलाकार की कला वर्षों तक वर्तमान समय में सुरक्षित व संरक्षित रह सकती है।

ललित कलाओं में संगीत को जो उच्चतम स्थान प्राप्त है। वह किसी और कला को नहीं है। आधार की सूक्ष्मता, आनंद की विपुलता, सार्वभौमिकता के कारण संगीत सभी कलाओं से श्रेष्ठ है। कोई भी प्रगतिशील राष्ट्र व व्यक्ति संगीत की उपेक्षा नहीं कर सकता है। भावना एक रमणीय वनीता है तो काव्य उसका बहुमूल्य वस्त्र है, संगीत उसका अलंकार है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. भारतीय संगीतशास्त्र – देवांगन तुलसीराम।
2. भारतीय संगीत का इतिहास – श्रीधर परांजपे।
3. संगीत एवं शोध प्रविधि – मनोरमा शर्मा।
4. भारतीय संगीत का इतिहास – भगवतीशरण शर्मा।
5. भारतीय संगीत में शोध प्रविधि – अलका नागपाल।
6. भारतीय संगीत का इतिहास – उमेश जोशी।
7. निबंध संगीत – लक्ष्मीनारायण गर्ग।

****

सांस्कृतिक ह्रास और रामदरश मिश्र का काव्य

प्रदीप कुमार तम्बोली * डॉ. हुसैनी बोहरा * *

शोध सारांश – कवि रामदरश मिश्र गँवई–चेतना के कवि है। उनकी काव्य यात्रा का प्रारंभ गोर्रा और रास्ती नदियों के कछारांचल से होता हुआ दिल्ली जैसे महानगर तक जा पहुँचा है। उनकी आत्मा उनके गाँव डुसरी में बसी है। उनके काव्य में गँवई–संस्कृति रची बसी हुई है। वे अपनी संस्कृति के वर्णन को बताते–बताते आधुनिक संस्कृति से उनकी तुलना कर पाठक को ठोस प्रमाण देकर संतुष्ट कर देते हैं। समय, जो कभी रुकता नहीं, उसने संस्कृति को भी बदलने का प्रयास किया। मूल्यों और विचारों में भी परिवर्तन आया और कवि की रचनाधर्मिता भी इससे प्रभावित हुई। इस सांस्कृतिक परिवर्तन और विघटन ने मिश्र जी को आहत किया। इस परिवर्तन ने कई मर्यादाएँ तोड़ी, नैतिक मानदंड सुस्त किये और अपनी मूल प्रतिष्ठा को धूमिल किया। कवि की दृष्टि ने समय–समय पर इन सबकी पहचान की, मूल्यांकन किया, सिंहावलोकन किया और अपनी छटपटाहट को शब्द–शब्द, कविता–बद्ध करके नवीन रूप देने का प्रयास किया। स्वयं मिश्र जी का मानना है –**'कविता हो,कोई भी लेखन हो, वह हमारी गहरी और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है।'**[1] इस संदर्भ में उनका लेखन–कर्म गंभीर रहा है।

प्रस्तावना – हमारी नई संस्कृति अनुकरण की संस्कृति है, लेकिन जीवन की गुणवत्ता आलू की चिप्स, वेफर्स आदि खाने से नहीं सुधरी है, न ही बहुविज्ञापित पेय पदार्थों के पान करने से और न ही पिज्जा और बर्गर खाने से। मिश्र जी का मानना है कि मनुष्य को उसकी पहचान कराना परमावश्यक है, उसे अपने कर्तव्यों का बोध कराना होगा। उसे इस सांस्कृतिक ह्रास के बारे में खुलकर बताया जाये और इंसानियत को सहजने का प्रयास किया जाए। हम कई बार इन बातों को अनदेखा कर आगे निकल जाते हैं पर कवि की मूल–चेतना इन विसंगतियों पर खुटकी लगाकर देखती है और उसमें आस्था और विश्वास का मिश्रण कर नई ताजगी का संचार करती है। इस संबंध में मिश्र जी मत है –**'अनेक छोटे–छोटे दीये जल रहे है अंधकार में, उनकी खोज कीजिए, अगर आपके पास दृष्टि है तो।'**[2]

आज विश्वग्राम का नारा देने वाले लोग गाँवों में बाजारवाद खड़ा कर रहे हैं और नगरों में भी। ये हमारी सदियों पुरानी परंपरा और विरासत को क्षति पहुँचा रहे हैं। यह सांस्कृतिक अवमूल्यन चिंता का विषय है। गाँव हमारी पहचान है, संस्कृति है, जो सदियों पुरानी है और हमें पीढ़ियों से प्राप्त है। हम यदि अनुकरण भी करे तो उसमें हमें हमारी अस्मिता बचानी होगी। कार्तिकेसर को दिये साक्षात्कार के संदर्भ में वे बताते हैं–**'इस प्रकार की आँधी में हमारी विरासत बचेगी कि नहीं, हमारी क्षेत्रीय पहचान, हमारी अस्मिता बचेगी की नहीं, कहना कठिन है। हमारे बदलते सामाजिक पारिवारिक रिश्ते बदलाव के किस बिन्दु तक जाएँगे, इसकी कल्पना करके ही चिंतित होता हूँ।'**[3]

मिश्र जी इस संदर्भ में चिंतित तो है लेकिन उनके विचारों में वही आस्था और सकारात्मकता है कि धीरे–धीरे हर परिस्थिति को सह लेगें । वे इस संबंध में कहते है–**'मैं आशावादी हूँ, इसलिए उम्मीद करता हूँ कि हमारी अपनी समृद्ध परंपरा इन भयानक झोंके को झेल जाएगी और संभव है लोग उन सामाजिक प्रभावों से ऊबकर अपनी जड़ों को सींचना शुरु कर दें, क्योंकि अपनी जड़ों, अपनी पहचान की चिन्ता भी उतनी ही तीव्रता से प्रकट हो रही है जितनी तीव्रता से ग्लोबल प्रभाव अपना फन फैला रहे हैं।'**[4]

सांस्कृतिक पतन के विषय में 'पक गई है धूप' काव्य–संग्रह में उनके विचार इस प्रकार प्रकट होते हैं –

'टूटे त्योहारों के बंदनवार
टाँगे खड़ा है एक पूरा सांस्कृतिक नगर
उसके माथे पर रोली है
कलाई में राखी के धागे
पीठ पर सर्वास्तिक की सिंदूरी छाप
हाँ, खड़ा है एक सांस्कृतिक नगर
और भीतर की रंगीन गुफाओं में
ज़ाज की धुन पर
लड़खड़ा रहा है
एक नंगा प्यासा जंगल
जिसके पौधे पेरिस और न्यूयार्क से मँगाये गए थे।'[5]

इस कविता के संदर्भ में डॉ. सविता मिश्र जी के विचार उल्लेखनीय हैं–

'इस कविता में मिश्र जी ट्विस्ट की धुन पर भरतनाट्म को थिरकते हुए, सतीत्व को पेटीकोट–सा सरकाते हुए तथा रेषमी साड़ी की स्कर्ट बनाते हुए दिखाते हैं।पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण के प्रति कवि की यह वितृष्णा क्षणिक नहीं है। मिश्र जी का मूल्यवादी व्यक्तित्व इस परिदृश्य से टकराता है, आहत होता है और फिर उसकी चिंता काव्यात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से फूट पड़ती है। मिश्र जी ने स्वयं को एक खास जमीन में उगा हुआ पेड़ माना है जो हर बार अपने में लौट आता है। कहने का अभिप्राय है कि कितनी भी प्रतिकूल स्थितियाँ क्यों न आयें, अपनी संस्कृति के प्रति उनकी आस्था कभी नहीं डिगती है।'[6]

* शोधार्थी, पेसेफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
** शोध निर्देशक, पेसेफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

वैष्वीकरण के युग में संस्कृति और उसके मूल्यों दया, प्रेम, ममता, करुणा, अहिंसा, त्याग आदि का विघटन हुआ है। ये मूल्य हमारी संस्कृति के पहचान है, जो लुप्त-से होते जा रहे हैं। इसी कारण कवि 'विरासत (1)' और 'विरासत (2)' कविता में इसके बीज को लेकर घूम रहे हैं, दीपक को लेकर घूम रहे हैं। कवि माँ को सम्बोधित करते हुए कह उठता है-

'मैंने उसका एक बीज बचाकर रख लिया है माँ
और उसे लिये-लिये घूम रहा हूँ कि
किसी के भीतर थोड़ी मिट्टी दिखाई पड़े
तो रोपूँ इसे।'[7]
'अब तो मेरे पास
एक छोटा-सा दिया रह गया है
जिसे बचाये-बचाये घूम रहा हूँ।'[8]

आम के पत्तों की पहचान से दूर आधुनिक पीढ़ी कवि को आहत करती है। वह चौंक जाता है कि ये आधुनिक जगत पूजा, पाठ, धर्म आदि के बारे में भी इस देवता-वृक्ष की पहचान नहीं कर सका तो भविष्य में हमारी संस्कृति का क्या होगा? कविता देखिए-

' मैं सोचने लगा-
अब हमारी सांस्कृतिक वस्तुएँ
वस्तुएँ न रहकर
जड़ धार्मिक प्रतिक बन गयी है
जो हमारे पूजा पाठ में तो है
किन्तु हमारी पहचान से गायब हो रही है।'[9]

एक वसंत और कविता में मौसम-ऋतुओं आदि से अनभिज्ञता का चित्रण हुआ है। वसंत आता है, खिलखिलाता है और चुपचाप चला जाता है। पर ये लोग कितने अनभिज्ञ है?

'वसंत तो इस महानगर से भी आता है
अदृश्य रूप से,
आते-आते कभी-कभी दिखाई पड़ जाता है
किसी उद्यान में
अकेले ही हँसता-खिलखिलाता हुआ
कोई उसकी हँसी में हँसी नहीं मिलाता।'[10]

'कभी-कभी इन दिनों' कविता में दुनिया की भाग दौड़, आपा-धापी, भागमभाग का वर्णन है पर कवि आज भी डुसरी गाँव में जी रहा है। ये यंत्रों की दुनिया कैसी है?

'हाँ, आज कम्प्यूटर, सूचनातंत्र और मिडिया के नये राजमार्ग पर
नये ज्ञान के आधुनिक रथ दौड़ रहे हैं'
विश्वग्राम के इस युग में भी
अपने डुसरी गाँव को याद कर रहा हूँ।'[11]

सूचना तंत्रों के फैलाव पर कवि मोबाइल-संस्कृति और चिट्ठियों के दर्द को अभिव्यक्त है-

'चिट्ठियाँ कागज का टुकड़ा न रहकर
आदमी का व्यक्तित्व बन जाती हैं,
चिट्ठियाँ एक बार बोलकर चुप नहीं हो जातीं
वे रह रह कर बतियाती है।'[12]

'आग की हँसी' काव्य संग्रह की कविता 'विश्वग्राम' में गाँवों का बाजारीकरण हुआ है। आज गाँवों की संस्कृति को तार-तार किया जा रहा है और एक रंगीन दुनिया को थोपा जा रहा है-

'धीरे-धीरे भेद खुलता गया कि
विश्वग्राम का मोहक महल
ग्राम संवेदना पर नहीं, बाजारवाद पर खड़ा है।'[13]

'उस ज्योति को खोजता हूँ' कविता में दीवाली त्योहार पर ग्रामीण व शहरी संस्कृति के अन्तर को स्पष्ट किया गया है। शहरी संस्कृति रोशनी की जगमगाहट, कानफोडू पटाखों की क्रूर ध्वनियों और धुएँ के गंध से ही मनायी जाती है जबकि गाँव में दीप से दीप जलाकर, प्रणाम-आशीर्वाद की मंगल ध्वनि में-

'लेकिन शहरों में इन दिव्य ज्योति की अनुभुति कहाँ होती है?
यहाँ तो लक्ष्मी के स्वागत में
रंग-बिरंगे बल्बों की लड़ियाँ जगमगाती है'
और पूरा गाँव
प्रणाम-आशीर्वाद की मंगल ध्वनि से, गुँजित हो उठता है।[14]

निष्कर्ष - सारांश रूप में कहे तो मिश्र जी के काव्य में सामाजिकता के भाव है, वे इन्हीं से सरोकार रखते हैं और जहाँ उन्हें विसंगतियाँ दिखाई देती है, वे उन पर लिखते हैं, खूब लिखते है। उनका लिखना अनुभवों को बाँटना है, भावी पीढ़ियों के मन में सजगता पैदा करना है। वे शासन की अव्यवस्था, अमानवीयता, सांस्कृतिक विघटन, मूल्यों के पतन पर चिंतित है और कविता में इसी रूप को आकार देते है, साकार करते है। वे हमेशा सकारात्मकता के साथ उपस्थित हुए है और उनकी आषावादिता सदा बनी रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. 'अंतरंग', सं. स्मिता मिश्र पृ. 59
2. 'अंतरंग', सं. स्मिता मिश्र पृ. 61
3. 'अंतरंग', सं. स्मिता मिश्र पृ. 139
4. 'अंतरंग', सं. स्मिता मिश्र पृ. 139
5. रामदरश मिश्र, 'रचनावली' भाग 1, पृ. 365
6. 'समकालीन काव्य परिदृष्य और रामदरश मिश्र का काव्य', सं. सविता मिश्र, पृ. 153
7. रामदरश मिश्र, रचनावली भाग 2 पृ. 35
8. रामदरश मिश्र, रचनावली भाग 2 पृ. 352
9. 'आम के पत्ते' रामदरश मिश्र, पृ. 79
10. 'कभी-कभी इन दिनों' रामदरश मिश्र, पृ. 23
11. 'कभी-कभी इन दिनों' रामदरश मिश्र, पृ. 98
12. 'आग की हँसी', रामदरश मिश्र पृ.10
13. 'आग की हँसी', रामदरश मिश्र पृ. 19
14. 'आग की हँसी', रामदरश मिश्र पृ. 68

****

अद्दहमाण का संदेश रासक-एक नज़र

डॉ. रशीदा खान *

प्रस्तावना – धार्मिक दृष्टिकोण से रहित एहलौकिक भावना युक्त खण्ड काव्य के रूप में संदेश रासक अपनी पूर्ण महत्ता लिये हुए है। लोक की इस विवेच्य कृति में लोक जगत की परंपराओं, रूढ़ियों एवं शैलियों की जो गहन गूढ़ तथा रंगबिरंगी चित्रशाला सजाई है उससे यह लोक साहित्य के मर्मज्ञों के लिये अनुपेक्षणीय बन गई। काव्य की दृष्टि से 'संदेश रासक' का अपभ्रंश सहित में विशेष स्थान है।

इस काव्य में कथा का तत्व अत्यल्प है। इसमें कवि ने लोक जीवन से उद्भूत स्वच्छंद और अकृत्रिम कथा के आधार पर अपने काव्य की रचना की है।

संदेश रासक विरह का खण्ड काव्य है जो कि एक कल्पित लोकजीवन कथा पर आधृत है। इस काव्य की विशेषता यह है कि छंद एक ओर तो मुक्तक के गुणों से युक्त है और दूसरी ओर वो कथा सूत्र में भी ग्रथित है। इस तरह 'मानव ने जो यह कहा कि पहले मुक्तक की सिद्धि होती है, वह संदेशरासक के लिये पूर्णत: लागू है। अत: गीतात्मक कलेवर में यह एक सुन्दर खण्ड काव्य है।'

संदेश रासक को कवि ने तीन प्रक्रमों में विभाजित किया है तथा यह 223 छंदों से युक्त है। अपभ्रंश के अद्यावधि उपलब्ध काव्यों में यही एक काव्य है जो एक मुसलमान कवि द्वारा लिखा हुआ है। मुस्लिम होते हुए भी कवि अद्दहमाण भारतीय संस्कृति और सभ्यता के पूर्ण ज्ञाता थे।

संदेश रासक अद्दहमाण की एकमात्र अमर कृति है। इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का पता सर्वप्रथम अनेक दुर्लभ ग्रंथों के उद्धारकर्ता और अपभ्रंश भाषा के प्रसिद्ध पंडित श्री मुनिजिनविजय को सन् 1912 में लगा। जिस समय वे पाटन में स्थित हस्तलिखित ग्रंथों की खोज कर रहे थे। उसी समय उन्हें इस ग्रन्थ की एक प्रति प्राप्त हुई। मुनि जी की कुशल दृष्टि ने इस पुस्तक का महत्व तुरंत भांप लिया।

सन 1918 ई. में पूना स्थित 'भाण्डारकर' रिसर्च इंस्टीट्यूट के अंतर्गत राजकीय हस्तलेख संग्रह के जैन विभाग की जांच करते समय उन्हें संदेश रासक की दूसरी प्रति मिली, सौभाग्यवश इस प्रति में मूलपाठ की संस्कृत छाया भी 'अवचूरिक' नाम से दी हुई थी।

सन 1938 के आसपास मुनि जी दोनों प्रतियों के आधार पर संदेश रासक का संपादन करने के लिये सन्नद्ध हो चुके थे और हिन्दी गुजराती में निकलने वाली 'भारतीय विधा नामक पत्रिका में इसका संपादित रूप क्रमश: प्रकाशित करने वाले थे। इसी समय उन्हें मारवाड़ स्थित लोहावत के आचार्य श्री जिनहिर सागर जी के भण्डार से 'संदेश रासक' की तीसरी प्रति प्राप्त हुई। इसमें मूलपाठ के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति की लिखी टिपपण रूप में संस्कृत टीका भी दी हुई थी। इस प्रकार तीनों हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर मुनि जी ने इसका सम्पादन प्रारंभ किया और अपभ्रंष भाषा के एक अन्य विद्धान श्री हरिवल्लभ भायाणी की विशद विवेचना सहित 'संदेश रासक' सिंधी जैन ग्रंथमाला के अंतर्गत सन् 1945 में प्रकाशित हुआ। सन्देश रासक के कुछ प्रमुख अंशों को पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपनी हिन्दी व्यकारण में संकलित किया है।

इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण संस्करण द्विवेदी जीव विश्वनाथ त्रिपाठी का तथा एक और महत्वपूर्ण संस्करण डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा विश्वनाथ त्रिपाठी के सम्पादकत्व में हिन्दी ग्रन्थकार मुम्बई में प्रकाशित हुआ। कई दृष्टिकोणों से इस संस्करण का अत्यधिक महत्व है।

इधर सन्देश रासक के पाठ और अर्थ संशोधन संबंधी कुछ सुझाव डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने दिये हैं जो उनकी नवीन पुस्तक 'रासो-साहित्य-विमर्श' में संकलित है। निश्चित रूप से पाठ और अर्थ संशोधन संबंधी इन मौलिक सुझावों से भी संदेश रासक के अंधकारमय पक्षोंके उद्घाटन तथा इसके पुनर्परीक्षण में विशेष सहायता मिलती है।

संदेश रासक का कवि – अन्य कवियों की भांति काव्य में अपना नाम देने की परंपरा का पालन कवि अद्दहमाण ने भी किया है। किन्तु यत्र-तत्र छंदों में नहीं बल्कि काव्यारंभ में ही और वह भी विश्वसनीय परिचय के साथ।

संदेश रासक की प्रारंभिक पंक्तियां कवि के बारे में जानकारी दे रही हैं –

'पच्चाएसि पहूओ पुत्वपसिद्धो य मिच्छदेसोरिथ।
तह विसए संभूओ आरद्दो मीरसेणस्स' ॥

कवि ने रचना में अपना नाम 'अद्दहमाण' बताया है जिसका सांस्कृतिक रूप 'अब्दुल रहमान समझा जाता है। यह परिचय दिशा में स्थित पूर्व काल से प्रसिद्ध म्लेच्छ देश में उत्पन्न तथा पिता 'मीरसेन आरद्द' के पुत्र थे तथा प्राकृत काव्य और गीत/काव्य विध्या में निपुण थे।

म्लेच्छ देश के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है, कहीं-कहीं मुल्तान को ही म्लेच्छ देश कहा गया है। यथा –

करतोयांस समारभ्य हिंगुलाजान्तकं शिवे।
मुलतान देशो देवोशि। महा म्लेच्छपरायण: ॥

पंडित राहुल सांकृत्यायन कवि की जन्मभूमि 'मुल्तान' ही मानते हैं। मुनिजिनविजय जी के अनुसार अब्दुल रहमान उत्तर पश्चिम सीमा के ही निवासी थे। संभवत: उत्तर पश्चिम सीमा के भूखण्ड को कभी 'म्लेच्छ देश' कहने की परंपरा रही होगी, क्योंकि मुसलमानों का आगमन भी उसी क्षेत्र में हुआ। कवि का आशय संभवत: उसी क्षेत्र से है, क्योंकि काव्य में वर्णित सभी नगर उसी क्षेत्र में पड़ते हैं।

कवि अद्दहमाण काव्य के आरंभ और अन्त में मुस्लिम धर्म का पालन करते दिखाई पड़ते हैं। स्पष्ट है कि कवि मुस्लिम धर्मानुयायी थे। वे जायसी

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

की भांति प्रारंभ में 'आदिकरतार' को नमस्कार करते हैं तथा अन्त में अनागत अन्त (कयामत का दिन) की जय बोलते हैं। कवि में भारतीय साहित्य और संस्कृति के संस्कार पूरी मात्रा में विद्यमान थे।

अद्दहमाण के रचनाकाल के संबंध में विद्धानों में मतभेद है। संदेश रासक का उल्लेख अब तक अन्यत्र प्राप्त नहीं हुआ है। इसके रचनाकाल के संबंध में विभिन्न विद्धानों ने इसे ग्यारहवीं सदी से लेकर चौदहवीं सदी तक की रचना माना है।

कवि अद्दहमाण मुस्लिम होते हुए भी संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश के अच्छे ज्ञाता थे। अपने काव्य में कवि ने सर्वप्रथम कवि धर्म का पालन किया है। यदि बड़े कवि रचना करते हैं तो क्या अन्य छोटे कवि कविता करना ही छोड़ दें? क्या पवित्र गंगा बहती है तो अन्य नदियां बहना छोड़ दें ? क्या रात्रि में चन्द्रमा उदित होता है तो घरों में प्रकाशित होने वाले दिये जलाना ही छोड़ दें ?

उक्त कथन कवि का कवित्व में अटूट विश्वास ही कहा जा सकता है। इस प्रकार का दृढ़ विश्वास कवि को महान कवि सिद्ध करता है। संदेश रासक की मधुर, सरल, प्रवाह युक्त तथा मंजी हुई भाषा इस तथ्य को स्पष्ट सिद्ध करती है।

कवि से प्रभावित होकर डॉ. शम्भूनाथ पाण्डेय कहते हैं, 'किसी कवि की प्रथम और एकमात्र रचना इतनी सरस और प्रौढ़ कम ही देखने को मिलती है। यह बड़े अफसोस की बात है कि इतने सुंदर कवि की हमें इतनी कम कविता प्राप्त है।'

संदेश रासक का कथानक – संदेश रासक एक संदेश काव्य है। इसमें अन्य खण्ड काव्यों के समान कथानक संधियों में विभक्त नहीं है, अपितु कथा तीन भागों में विभक्त है जिन्हेकं प्रक्रम का नाम दिया गया है। संस्कृत में 'मेघदूत' के पूर्व 'मेघ और 'उत्तरमेघ के समान प्रत्येक प्रक्रम कथा प्रवाह की गति का सूचक है। प्रथम प्रक्रम प्रस्तावना रूप में है, द्वितीय प्रक्रम से वास्तविक कथा प्रारंभ होती है और तृतीय प्रक्रम में षट्ऋतु वर्णन है।

संदेश रासक काव्य रूप की विशेषताओं से संयुक्त 223 छंदों का एक छोटा सा विरह काव्य है। संदेश रासक की विशेषता उसके कथानक में नहीं उसकी अभिव्यक्ति और कथन शैली में है। अद्दहमाण ने अपने काव्य में जिस मार्मिकता, संयम और सहृदयता का परिचय दिया है वह उनकी कवित्व शक्ति, पांडित्य, परंपरा, ज्ञान और लोकवादिता की पूर्ण प्रतिष्ठा पाठक के हृदय में कर देती है।

प्रथम प्रक्रम में अद्दहमाण सर्वप्रथम भारतीय काव्य परंपरा के अनुसार ईशवंदना एवं आत्म परिचय देते हैं तथा वंशनाम का उल्लेख करते हैं। कवि कर्म के लिये वे अपने अधिकार की घोषणा भी करते हैं। वे कहते हैं – 'तरू शिखरों पर बैठकर कोयलें मधुर आवाज करती हैं तो क्या घर की मुंडेरों पर बैठकर कौए न करकराएँ।' इससे स्पष्ट होता है कि उनका काव्य सामान्य जन का काव्य है।

द्वितीय प्रकृम से कवि कथा का आरंभ करता है। विजय नगर की कोई सुन्दरी पति के प्रवासी हो जाने से विरह कातर होकर पथनिहार रही है तभी तीव्र गति से जाते हुए पथिक को देखकर विरहिणी अपनी वेदना को रोक नहीं पाती और सोचती है कि प्रिय के पास से संदेशा नहीं आया तो क्या ? वही प्रिय के पास संदेश भेज दे। विरहिणी की विरह वेदना ऐसी लगती है मानो उसने संदेश के माध्यम से पथिक के सामने अपना हृदय ही उंडेल दिया हो।

तृतीय प्रक्रम में कवि ने विरहिणी की विरह वेदना को परऋतु के माध्यम से चित्रित किया है।

विरहिणी का पति ग्रीष्म ऋतु में प्रवासी हुआ था। प्रिय की प्रतीक्षा में उसने वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर एवं बसंत सभी ऋतुएँ बिता दी किन्तु प्रिय नहीं आया। ये सभी ऋतुएं विरहिणी के लिये दुखदायिनी सिद्ध हुई।

'काव्य के इस छोटे से कथानक में अलौकिक घटनाओं का अभाव है। ग्राम्य जीवन का चित्र काव्य में दिखाई देता है, काव्यगत वर्णनों से प्रतीत होता है कि कवि का हृदय लौकिक भावनाओं से प्रभावित था।'

निष्कर्ष यह कि संदेश रासक मात्र एहलौकिक भावनाओं से गर्भित खण्ड काव्य ही नहीं है अपितु वह ऐसा लोकधर्मी खण्ड काव्य है जिसका मूल विषय विप्रलंभ श्रृंगार होने से वह विरह काव्य है, प्रेम काव्य है, संदेश के मर्म से संविलत संदेश काव्य है। अपभ्रंश के समस्त साहित्य में संदेश रासक ही सम्प्रदाय निरपेक्ष काव्य है। जो अपभ्रंश के एकमात्र मुसलमान रचनाकार अद्दहमाण की लोकानुरागिता एवं भारतीयता को व्यक्त करता है और यही हेतु है कि 'संदेश रासक काव्य रसिकों एवं काव्य मर्मज्ञों का समान रूप से कण्ठहार बना हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. हिन्दी के मध्यकालीन खण्ड काव्य – डॉ. सियाराम तिवारी – पृ. 65
2. आदिकालीन साहित्य – डॉ. शम्भूनाथ पाण्डेय – पृ. 104
3. आदिकालीन साहित्य – डॉ. शम्भूनाथ पाण्डेय – पृ. 106
4. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास – श्री राजनाथ शर्मा – पृ. 49
5. आदिकालीन साहित्य – डॉ. शम्भूनाथ पाण्डेय – पृ. 109
6. अपभ्रंश साहित्य – डॉ. हरिवंश कोछड़ – पृ. 251

****

भीली लोक संस्कृति - विविध उपादान

डॉ. मीरा जामोद *

प्रस्तावना – भील नाम द्रविड़ भाषा परिवार के अन्तर्गत कन्नड़ के 'बील' से लिया गया है। जिसका अर्थ है - धनुष। यह सच है कि आदिम विश्वासों में जीने वाली इस सरल स्वभाव की जाति के लोग अपने धनुष कोशल के धनी है इसलिए इनका नामकरण भी इनके गुण के आधार पर हुआ।

लोक संस्कृति व्यक्ति के उठने-बैठने, चलने-फिरने, खेलकूद एवं समाज के साथ निर्वाह किये गये नाना प्रकार के व्यवहारों का एकीकृत नाम है। भीली संस्कृति भी समृद्ध है जो अपनी अलग पहचान रखती है। भीली लोक संस्कृति के निम्नलिखित उपादानों के अध्ययन से हमें इसे समझने में सरलता होगी।

वेशभूषा एवं रहन-सहन -भीलों का रहन-सहन बहुत ही सादा है। शारीरिक दृष्टि से देखा जाय तो भील देखने में सुगठित, सुन्दर व ताम्रवर्णी होते हैं, परन्तु जंगलों में रहने के कारण इनका रंग काला होता है। निर्धन भील एक लंगोटी में ही अपने वस्त्रों की पूर्ति कर लेता है। सम्पन्न भील सिर पर लाल, हरे या सफेद रंग के साफे एवं रंग बिरगी कमीज व धोती पहनते हैं। स्त्रियाँ चोली, घाघरा, लुगड़ा या ओढ़नी पहनती है। पहनने के दैनिक वस्त्रों के अतिरिक्त इनके घर में अनाज पीसने के लिए घट्टी, अनाज झाड़ने के लिए सूपड़ा, बांस से बनी टोपली, मिट्टी का तवा, मिट्टी की कड़ाई होती है। लौकी की ओलखी भी रहती है जिससे पानी पीते हैं भोजन पीतल या काँसे की थाली में करते हैं। पानी के बर्तन लकड़ी के माच पर रखते है। जिसे मुहल्दा कहते हैं। भील स्वावलम्बी और परिश्रमी होते है, इसलिए सम्मान पूर्वक जीवन उन्हें पसंद है।

आभूषण – भील स्त्री-पुरूष विभिन्न प्रकार के गहने पहनते हैं। ये गहने चाँदी के, कथीर चाँदी के और काँसे के बनते है कथीर चाँदी का प्रचलन सर्वाधिक है।

भील पुरूष कानों में मूँदड़े, कर्णबालियाँ (टोखा) गले में बजलजारी या साँकल, हाथ में नाहर-मुखी कड़े, भुजा में हटके तथा पाँव में बेड़ी पहनते है। भील स्त्रियाँ सिर पर बोर, राखड़ी, छिवरा, झेला, बस्का, कान में टोकरी, नाक में काँटा या नथ, गले में तागली, हार, गलशन, जरबन्द, हाथ में हटका, करोंदी, काँच की चुडियाँ, बाजूबंद, अंगुठी, पैरों में बाकड़िया, रमझोल, लंगर, तोड़ा, पावलिया, बिछिया आदि पहनतीं है। सभी आभूषण भीली महिलाओं के सौभाग्य के प्रतीक है।

खानपान – भील मक्का, ज्वार, बाजरा, गेहूँ, चना, कोदरया आदि उपयोग में लाते हैं। राबड़ी भीलों का मुख्य भोजन हैं। राबड़ी मक्का की थुली होती है जिसमें छाछ मिलाकर बड़े स्वाद से खाते हैं। पर्व-त्यौहारों पर चावल, गुड़, घी मिलाकर गुड़भात्या खाते-खिलाते है।

अनाज व सब्जियों के अतिरिक्त अन्य आहार जैसे जंगल के कंदमूल, नदी-तालाबों से पकड़ी मछलियाँ, मुर्गी, बकरा तथा अन्य शिकार खरगोश, तीतर, केकड़ा, हिरण, आदि पर निर्भर रहते हैं।

मद्यपान भीलों की सामाजिक एवं धार्मिक आवश्यकता है। भील मदीरा-प्रेमी होते है और उनके उत्सवों में शराब होना अत्यंत आवश्यक है। मदिरापान से संबंधित एक कहावत है – **'भीलों दसमठा हरो, बीजाये करवानू हूँ काम'** अर्थात शराब ही भील का शत्रु है, दूसरे दुश्मन की आवश्यकता नहीं। ताड़ी भी भीलों का मौसमी सर्वप्रिय पेय है।

भूखा भील इधर-उधर भटक सकता है पर भीख नहीं मांगता।

अंधिवास – भील पहाड़ी, टेकरियों पर झोपड़ियाँ बनाना पसंद करते हैं। अलग-अलग झोपड़ियों को मिलाकर फलिया बनता है और फलिया मिलाकर गाँव बनता है। भीलों का गृह निर्माण अत्यंत साधारण होता है। भीलों के गाँव में एक सुदृढ़ एकता का आधार मिलता है। विवाह व मृत्यु के अवसरों पर प्रत्येक परिवार सम्मिलित होता है।

हथियार व अस्त्र-शस्त्र – भील सदैव अपने साथ धनुष-बाण रखते है। धनुष-बाण भीलों की प्रमुख पहचान है। अंधेरे में भी तीर का निशाना लगाने में वे कुशल होते हैं। फालिया या धारिया लोहे का धारदार दरातीनुमा हथियार है इनके अलावा कुल्हाड़ी, तलवार, लट्ठा, फरसा, आदि हथियार तथा आजकल भीलों के पास बन्दुके भी देखने को मिलती है। पगड़ी पर चमड़े या रस्सी से गुँथी हुई गोफन बाँधकर रखते हैं।

रीति-रिवाज एवं प्रथाएँ – भील जनजाति में अन्य समाज की भाँति विभिन्न रीति-रिवाज एवं प्रथाएँ प्रचलित है। विवाह से संबंधित मंगनी, वधु मूल्य अथवा दापा, हल्दी-पीठी, बाना बिठाना, पहरावणी, झोल्या-चोली, बेड़ा भरना, चवरी, कन्यादान, बवड़ा आदि रीति-रिवाज है। घर जँवाई, भगोरिया विवाह, लगुड़ालाड़ी, धारणा विवाह, नातरा विवाह, तलाक, घुँघट प्रथा प्रचलित है। भीलों में समान गौत्र विवाह नहीं होता है तथा विवाह संबंध तय करने एवं सम्पन्न करने के जातिगत नियम है जिनका पालन करना प्रत्येक भील के लिये अनिवार्य है। पालन न करने पर आर्थिक दण्ड दिया जाता है।

व्रत, पर्व एवं उत्सव – भीलों में प्रत्येक पर्व एवं उत्सव बड़े ही उत्साह से मनाये जाते हैं तथा व्रत भी किये जाते हैं। व्रत के अन्तर्गत इंदलव्रत जो केवल पानी व दूध ग्रहण करके किया जाता है। गल व्रत में मन्नतधारी दिनभर निराहार रहकर व्रत करता है। पाटला व्रत में दिनभर निराहार रहकर पाटला बाबा की पूजा करके रात के 12 बजे पश्चात् उड़द की दाल के बड़े तथा बाजरे के चिलों से व्रत खोला जाता है। पर्व एवं उत्सव के अन्तर्गत फागुन के अंतिम सप्ताह में भगोरिया तथा इसके पश्चात् होली का त्यौहार मनाते हैं। होली के दूसरे दिन गल पर्व मनाया जाता है। यह सबसे बड़ा मनौती पर्व है। होली के बारहवें-तेरहवें दिन गढ़ का आयोजन किया जाता है। जातर, ढोडी, नवई, दिवासा, पिथौरा, नवणी, बाबाईद, इंदल, डोहा, दीपावली आदि पर्व बडे उत्साह से मनाते है।

लोक देवता -भील जनजाति के अपनी मान्यताओं के अनुसार अलग-अलग देवी-देवता है। बाबदेव भील के प्रमुख देवता है जिसे इन्द्रदेव भी

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) महाराजा भोज शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)भारत

कहते हैं। भीलों की मान्यता है कि बाबदेव की आराधना करने से वर्षा अच्छी होती है और धन-धन्य की कमी नहीं रहती हैं। गल देव को भगवान नरसिंह के रूप में पूजते हैं। जस्मादेवी अर्थात लक्ष्मीमाता की पूजा दीवाली के दिन की जाती है। सोवन माता पशुओं की रक्षा करती है, शीतलामाता शारीरिक विकार व बिमारियों की रोकथाम करती है। विकलांग अपनी मनोकामना पूर्ण करने के लिये खोड़ियाल माता से प्रार्थना करते हैं तथा पूर्ण होने पर लकड़ी के हाथ-पैर मंदिर में चढ़ाते हैं। कुहाजादेव सम्पन्नता के प्रतीक है, होवणमाता दैनिक व प्राकृतिक प्रकोपों से रक्षा करती है इसलिए भील वर्ष में एक बार गाँव की सीमा पर एकत्रित होकर होवणमाता की आराधना करते हैं। सावनमाता कृषि व वन उपजों की रक्षा करती है। कहीं युद्ध में जाते समय भील अपनी जीत के लिए भेरूदेव से प्रार्थना करते है। धारणदेव या गृह देव की पूजा त्यौहारों या विवाह के अवसर पर करते हैं।

लोक विश्वास -भील जनजाति में आज भी विभिन्न प्रकार के विश्वास व्याप्त है जो कई पीढ़ियों से चले आ रहे है। तंत्र-मंत्र में अधिक विश्वास करते हैं घर में यदि कोई सदस्य या पशु बिमार हो जाये तो वे देवी-देवताओं या भूत-प्रेम का प्रकोप समझकर बड़वा के पास जाकर तंत्र-मंत्र करवाते हैं।

भील किसी भी कार्य के लिए मुहुर्त और शकुन-अपशकुन को बहुत मानते हैं। घर से निकलते समय या रास्ते में कुछ अपशकुन हो जाए तो वापस लौट जाते है। कौआ, उल्लु या काली चिड़िया दाहिनी तरफ बोले तो शकुन एवं बायीं तरफ बोले तो अपशकुन माना जाता है। बिल्ली एवं साँप रास्ता काट जाये तो अपशकुन , लौमड़ी का चिल्लाना अपशकुन माना जाता है। यात्रा के समय दाहिनी और बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय दिख जाए तो शुभ माना जाता हैं। विवाह संबंध तय करने जाते समय वृक्ष पर या दीमक के घर पर काली चिड़िया बैठी दिख जाये तो ये माना जाता है कि लड़की जादू-टोना जानती है। शुभ कार्य के लिये घर से निकलते समय पानी भरने वाली स्त्री खाली बर्तन लेकर आ रही हो तो अपशकुन तथा भरे बर्तन लेकर आ रही हो तो शकुन माना जाता है। भील टोने-टोटके में भी विश्वास करते हैं।

निष्कर्ष -उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भील जनजाति हर परिस्थिति से लड़ने वाली है। उनकी वेश-भूषा, रहन-सहन, अत्यंत सादा है भील गरीब होते हुए भी आनंद व खुशी से रहते है। प्रत्येक रीति-रिवाज पर्व, उत्सव, प्रथा व देवी-देवताओं की परंपरागत पूजा, उनके विश्वास आदि से भीली लोक संस्कृति का स्पष्ट स्वरूप उद्घाटित होता हैं। अत: भीली लोक संस्कृति अत्यन्त समृद्ध एवं प्रदेश में ही नहीं बल्कि देश में भी अपनी एक अलग पहचान रखती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. शिवकुमार तिवारी/ डॉ. श्रीकमल शर्मा - म.प्र. की जनजातियाँ समाज एवं व्यवस्था, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
2. डॉ. नेमीचन्द्र जैन- आदिवासी के बीच।
3. वसन्त निरगुणे - लोकसंस्कृति, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
4. ए.आर.एप. श्रीवास्तव - जनजातीय संस्कृति, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
5. चौड़ावत एवं पगारे - आदिवासी के देवी-देवता एवं तीज त्यौहार आजाद प्रकाशन
6. नेमीचन्द्र जैन - भील-भाषा, साहित्य और संस्कृति हिराभैया प्रकाशन, इन्दौर
7. अशोक डी. पाटिल - भल जनजीवन और संस्कृति म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपला
8. संपदा।

****

हिन्दी के आँचलिक उपन्यास

डॉ. सरोज यादव *

प्रस्तावना – सन् 1936 के बाद स्वतंत्रता आंदोलन देशव्यापी बन चुका था। इस अंदोलन का नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथों में था। जिनकी विचारधारा न केवल राजनीति को ही बल्कि साहित्य को भी प्रभावित करने में सफल रही। सारा प्रेमचंद साहित्य गांधीवाद से अभिभूत रहा। स्वतंत्रता के बाद जिस युग परिस्थितियों ने उपन्यासों की संरचनाओं को प्रभावित किया वह हिन्दू-मुस्लिम दंगों और गांधीजी की हत्या के रूप में विकसित हुई। स्वतंत्र भारत में स्वतंत्रता संग्राम का जननेता ही शासक बन गया। इसलिए जनतंत्र अनेक आंतरिक असफलताओं का शिकार बना। आज का उपन्यास वैयक्तिकता से निकलकर सामाजिकता की ओर बढ़ रहा है। इस व्यक्तिवाद के विरोध में और विद्रोह के फलस्वरूप ही हिन्दी उपन्यास में एक ऐसी चेतना लहरा उठी जो जीवन की स्वाभाविक दुर्बलता एवं सबलता के साथ देश के नवोन्मेश के स्वागतार्थ उत्सुक थी। नवीनता के इस आग्रह ने लेखकों का ध्यान नागरिक जीवन से हटाकर दूरवर्ती विलक्षण समाज की ओर आकर्षित किया। इन्हीं उपन्यासों ने आगे चलकर आंचलिक उपन्यासों की संज्ञा ग्रहण की। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी उपन्यास में आंचलिकता का अभ्युदय हुआ। यह उस राष्ट्रीय चेतना के परिणामस्वरूप हुआ जो विश्वमंच पर अपनी विशिष्टता को प्रतिष्ठापित करने को समुत्सुक थी। यो तो हिन्दी उपन्यास में आंचलिकता का पुट पहले भी रहा है। उसके कुछ तत्व बीज रूप में विद्यमान रहे हैं किन्तु उसका पूर्ण विकास हिन्दी उपन्यास की अभिनव सिद्धि है। यह जनवादी विचारधारा का ही एक रूप था, जो यह स्वीकार करती थी कि सबसे अधिक उत्पीड़ित उपेक्षित और शोषित को ही कलाकार की सहानुभूति नहीं चाहिए। भारतीय जनजीवन का सच्चा चित्रण करने के लिए उसे निश्चित रूप से सभ्यता से दूर अनदेखे अंचलों और अल्पज्ञान जातियों के बीच पहुंचना होगा, जहां भारतीय संस्कृति मूलत: एक होते हुए भी अपने विशिष्ट रूप में दृष्टव्य है।

आंचलिक उपन्यास में प्रेमचंद की परंपरा सुदृढ़ एवं भिन्न रूप में विकसित हुई जिसमें अपने सीमित परिवेश में व्यापक दृष्टि की अभिव्यक्ति हुई है, जबकि प्रेमचंद ने भारतीय ग्रामीण जीवन की कृषक जीवन की वास्तविकताओं को अभिव्यक्त किया है। इस तरह प्रेमचंद पूर्व उपन्यास उपदेशात्मकता एवं मनोरंजकता से परिपूर्ण है और प्रेमचंद युगीन उपन्यासकारों में समाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं की अभिव्यक्ति है। यही धारा प्रेमचंद युग में विविध मुखी होकर विकसित हुई। मानव मूल्य बदले, परिस्थितियां बदली और आवश्यकताएं बदली, अंचल या स्थानीयता के स्पर्श से उपन्यासों को एक नवीन परिवेश मिला, जिसने लोक जीवन को लोकभाषा में आंचलिकता को नवीन स्वरों से संजोकर नवीन औपन्यासिक विधा को जन्म दिया।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य का यह नव्य प्रयोग मिट्टी की सोंधी महक और लोक जीवन से उद्भुत तत्वों से परिपूर्ण है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में आंचलिक उपन्यासों ने उपेक्षित एवं विस्मृत जनजीवन को पून: प्राणवान बनाकर उन्हें मूलधारा से जोड़ने का स्तुत्य प्रयास किया। लोक जीवन के दु:ख-दर्द से रची बसी यह लोककथाऐं आकर्षक एवं जीवन्त हैं, साथ ही शैलीशिल्प की नवीनता के कारण आंचलिकता के नवीन तथ्यों के कारण नए साहित्य को पुराने साहित्य से पृथक करती है। प्रत्येक आंचलिक कृतिकार ने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप अंचल के प्रति अपनी धारणा को पृथक-पृथक रूप से अभिव्यक्त किया है। इस तरह से अंचल की समग्रता जिस रूप में अर्थ में अभिव्यक्त होना चाहिए, उन अर्थो में उन रूपों में भिन्नता आ गई है, क्योंकि कृतिकार अंचल की अभिव्यक्ति विभिन्न मार्गो से करना चाहता है, वह मार्ग शिल्प की नवीनता का है, तो कहीं वस्तु तत्व की अभिव्यक्ति का है, तो कहीं भाषा की नवीनता का है। किसी रचना में आदर्शवादी तो किसी में आदर्शन्मुख यथार्थवादी किसी रचना में प्रगतिवादी तो किसी में सामाजिक यथार्थवादी प्रवृत्ति प्रमुख रही है।

आंचलिक उपन्यासों के संदर्भ में विभिन्न विद्धानों के मतानुसार कुछ प्रमुख तत्व समक्ष आते हैं, जो निम्नानुसार हैं- 1. आंचलिक उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर काल की देन है और नवीन औपन्यासिक विधा है। 2. इसमें अपरिचित, असामान्य जनजीवन की असाधारण अभिव्यक्ति है। 3. यथार्थवादी शैली है और अंचल भूभाग का फोटोग्रेफिक शैली में चित्रण एक नवीनता है। 4. यद्यपि आंचलिक उपन्यासों की परंपरा प्रेमचंद और वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों से मानी जाती है। किन्तु ग्रामांचल को देखकर आंचलिकता का इसमें भ्रम मात्र है। वास्तव में आंचलिकता का समग्रतापूर्ण दिग्दर्शन नागार्जुन और रेणु के उपन्यासों में हुआ है। 5. व्यक्तिवादी उपन्यासों के प्रतिक्रिया स्वरूप आंचलिक उपन्यासों की रचना हुई है। 6. आंचलिकता का कोई सर्व सम्मत लक्षण स्वीकार नहीं हुआ, इसलिए इस प्रवृत्ति को लेकर लिखे जाने वाले सभी उपन्यासों की प्रकृति समान नहीं है। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर ही आंचलिक उपन्यासों के वर्गीकरण किए गए हैं। ग्रामांचल पर लिखा गया हर उपन्यासों को ले, जो ग्रामांचल को लेकर लिखे गए हैं। प्रेमचंद गांव के आदमी थे और ग्रामीण परिवेश व जीवन के छोटे से छोटे क्षेत्र से परिचित थे। उससे उनका निकट संबंध था। उस जीवन के प्रति आग्रह उनमें स्वाभाविक ही था। यथार्थ की गहरी पकड़ और राष्ट्रीय चेतना से स्पंदित उनके उपन्यासों में सामाजिकता और सर्वसाधारणता का पक्ष प्रबल है। उनकी कृतियों की अपील क्षेत्रीय या वर्गगत नहीं है, अपितु इन सब सीमाओं से व्यापक अपील है। अत: प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन की सच्चाई का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है किन्तु अंचल के चप्पे-चप्पे का सूक्ष्म निरीक्षण नहीं है। अंचल

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.) भारत

मिट्टी की सौंधी सुगंध नहीं, अज्ञात, अपरिचित लोकजीवन की सुंदर झांकी नहीं जो आंचलिक प्रवृत्ति को केवल ग्राम जीवन के चित्रण से पृथक करता है। वास्तव में प्रेमचंद के उपन्यास किसान और मजदूर जीवन के संघर्ष को प्रस्तुत करते हैं- प्रेमचंद के उपन्यास राष्ट्रीय चेतना से संपन्न हैं, किन्तु उनमें स्थानीयता या आंचलिकता या आंचलिकता की अपनी रंगत, अपना रूप, रस, रंग, गंध, स्पर्श नहीं है जो रेणु के उपन्यासों में आ सकता है। गोदान में ग्राम्य जीवन का चित्रण है, इसी प्रकार वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास झांसी की रानी में बुंदेलखंड की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है और भौगोलिक संस्कृति का दिग्दर्शन है किन्तु आंचलिकता के वह तत्व नहीं, जिसमें अज्ञात, अपरिचित जनजीवन के अनोखे सौंदर्य का चित्रण हो। इस तरह अनांचलिक उपन्यासों में आंचलिकता के तत्व की खोज भ्रामक दिशा है, क्योंकि जो भी ग्रामांचलों पर आधारित अनांचलिक उपन्यास हैं उनमें आंचलिक उपादानों के प्रयोगों को लेकर भ्रम की स्थिति रही है किन्तु स्वतंत्रता के बाद इस तरह के भ्रामक दृष्टिकोणों का विश्लेषण हुआ है, जिससे आंचलिक और अनांचलिक उपन्यासों के तत्व उभरकर समक्ष आए। यद्यपि आंचलिक उपन्यासों की विधा स्वतंत्रता के बाद ही आरंभ हुई, किन्तु बीज रूप में इस विधा के अंश यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। शिव पूजन सहाय की देहाती दुनिया वृंदावनलाल वर्मा की झांसी की रानी, प्रेमचंद की गोदान, आदि ग्रामांचल की कथा है किन्तु इनमें अंचल की विशिष्टता नहीं है। आंचलिकता का अभ्युदय सहज रूप से इनमें परिलक्षित हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी पृ. सं. 188
2. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि - डॉ. आदर्श सक्सेना पृ.सं. 83
3. प्रेमचंद - डॉ. गंगाप्रसाद विमल - पृ.सं. 14
4. आलोचना - सम्पादकीय - पं. नंददुलारे बाजपेयी पृ.सं. 57

****

निमाड़ी लोक साहित्य में राम-कथा की नूतन संकल्पना

डॉ. गणेश लाल जैन *

प्रस्तावना – लोक शब्द की विशद् रुप में कल्पना की जाए तो वेद-विहित लोकों में हमारी दृष्टि जाती है, इहलोक और परलोक। इहलोक के चार आधार स्तंभ है – एक निश्चित भू-भाग, मानव व्यवस्था और सम्प्रभुता। भू-भाग एक स्थिर उपादान है। ईश्वर ने इस सृष्टि का निर्माण जड़ और चेतन रुप में किया है। चेतना का यह अंश ही अपने मूल स्वरुप में 'लोक' है। आदिमानव से लेकर आज के वैज्ञानिक मानव तक के उत्थान की कहानी उन्हीं की जुबानी लोक साहित्य है। 'लोक' का अर्थ सीमित दृष्टिकोण से – हम ऐसी जनता के अर्थो में ग्रहण करते है जो पिछड़े हुए, मूर्ख और असभ्य जन है, जो नगरीय संस्कृति से दूर है। आज भी अपने आदिम स्वरुप को यथावत जीवित रखे है। लेकिन लोक शब्द की ये दोनों व्याख्या अतिव्याप्त और अव्याप्ति दोषों से युक्त है। 'लोक' शब्द को ही डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परिभाषित करते हुए लिखा है– 'लोक' शब्द का 'जनपद' या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवो में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत रुचि, सम्मान तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते है और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समुचि विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है, उनको उत्पन्न करते है।'[1] यह परिभाषा लोक को समुचित रुप से व्यक्त करती है। मानव अपनी बुद्धि के कारण पशु से श्रेष्ठ समझा जाता है। अपने भावों एवं विचारों को सम्प्रेषण हेतु भाषा की आवशयकता हुई। उसने भाषा का भी निर्माण किया। भाषा अपनी प्रारंभिक अवस्था में 'बोली' कहलाती है। यह बोली एक क्षेत्र-विशेष तक सीमित रहती है। इसका साहित्य मौखिक रुप से मिलता है। बोली का प्रादेशिक विस्तार होने पर वह विभाषा का रुप ग्रहण करती है। कुछ नूतन परिवर्तनों के साथ और विचारों की दृष्टि से अधिक समृद्ध होती है। यही विभाषा विस्तृत क्षेत्र पाकर भाषा का रुप धारण करती है। स्पष्ट है संस्कृति का प्रारंभ लोक से ही होता है। वेदव्यास ने कहा है – 'प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः।'[2] अर्थात जो प्रत्यक्षदर्शी है जगत का वही 'लोक' है। दुनिया में यदि कोई सबसे बड़ा है तो वह है लोक या मानव। इसलिए लोक की इस मौखिक संस्कृति विरासत की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है।

निमाड़ की माटी के सपूत पं.रामनारायण उपाध्यायजी की कृति ''लोक जीवन में राम'सन् 1990 में प्रकाशित हुई। इस कृति में उपाध्यायजी ने रामकथा को निमाडी लोक कथाओं के परिप्रेक्ष्य से लिखा है। आंचलिक लोक साहित्य में राम के संदर्भ में कई मार्मिक कथाएं मिलती है। इन्हें आत्मसात करके उपाध्यायजी ने हिंदी में मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसमें कुल 15 निबंध संकलित है। इसमें तुलसी, वाल्मिकी और भवभूति के राम के चरित्र का मूल्यांकन करते हुए लोक साहित्य में राम के चरित्र को मानव परक नूतन दृष्टिकोण के साथ उभारा है।

लोक साहित्य में राम एक ऐसे सामाजिक महापुरुष के रुप में उभरते है, जो समष्टि के दु:ख-सुख से आत्मसात हो उसे अपने में भोगते हुए स्वयं ऊपर उठने में नहीं वरन् एक समूचे समाज और परिवेश को ऊंचा उठाने में अपना जीवन समर्पित कर देते है। 'राम की वनयात्रा अब भी जारी है' 'भारतीय नभ मण्डल में सूर्य राम नूतन दृष्टि लेकर उदित हुए है। इस संकलन में सीता की व्यथा को मुखरित किया गया है।' 'सीता जिसे आपसे शिकायत है' 'लोक साहित्य में सीता की व्यथाकथा' 'पवित्र सीता को वापस लाओ' 'हम लवकुश बोल रहे है' और 'सीता के बिना राम की सूनी राते' निबंध मार्मिक कारुणिक संवेदना लिए पाठकों को भाव विभोर कर देते है। सीता की व्यथा कथा में सहृद्य की आंखे सजल हो ही जाती है। सीता के शब्दों में – 'अगर राम को लोकोपवाद का भय था तो जिस राम की खातिर मैंने दिए वनवास को स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया, 'या मेरे पति, पत्नि मर्यादा की रक्षा की खातिर समूचे राज्य का परित्याग नहीं कर सकते।'[3] उपर्युक्त पंक्तियां पाठको को राम के चरित्र पर पुन: विचार करने के लिए मजबूर कर देती है। लोक साहित्यकार ने सीता की मौन व्यथा को वाणी देकर सिद्ध कर दिया कि तुलसी और वाल्मिकी सीता के साथ न्याय नहीं कर सके। इस प्रकार कई मार्मिक प्रसंगो पर प्र6नचिन्ह् लगाए है।

जन-मन में रमे राम के संदर्भ में लोक गीतों व आदिवासी लोक कथाओं में प्रचलित राम के नूतन स्वरुप का उल्लेख करते हुए, उपाध्यायजी लिखते हैं –'तुलसी कहते है कि मेरा मस्तक तब झुकेगा, जब धनुषबाण हाथ में हो, लेकिन लोक साहित्यकार कहता है कि मेरा मस्तक तब झुकेगा, जब सीता साथ में हो। हम बाल बच्चेदार आदमी है, हमें बाल बच्चेदार भगवान चाहिए।'[4] लोक साहित्य में सीता के परित्याग की व्यथा के परित्याग की व्यथा से जनमानस बहुत ही क्षुब्ध है। वाल्मिकी और तुलसी सीता के साथ न्याय नहीं कर सके। लेकिन लोक साहित्यकार ने सीता की व्यथा को मुखरित किया है। सीता की व्यथा उसी के शब्दों में – 'जिसे मैंने इतना एकनिष्ठ प्यार दिया उसी ने जब लंका में मेरे सतीत्व की अग्नि परीक्षा ली तो मेरे विश्वास की नींव कांप उठी थी।' जो जीवन भर सत्यनिष्ठ रहे, उन्हें अपनी ही पत्नी को तीर्थयात्रा के झूठे बहाने से देकर के हाथों जंगल में छुड़वाने में कौन सा पौरुष था।'[5] लोक साहित्यकार ने सीता की व्यथा को स्वर देकर राम के निष्कलंक चरित्र पर भी प्रश्न चिन्ह लगाया है।

'सीता मांग रही है न्याय'में लोक साहित्यकार ने सीता के माध्यम से तत्कालीन बुद्धिजीविवर्ग पर भी प्रश्नचिह्न अंकित किया है । सीता के ही शब्दों में 'या उस युग के प्रबुद्ध नागरिकों, चिन्तकों और बुद्धिजीवियों में

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.) भारत

इतना साहस नहीं था कि वे इस अन्याय के खिलाफ आवाज उठाते अथवा 'या तब बुद्धिजीविवर्ग इतना कायर अथवा सुविधाभोगी हो गया था कि उसने सच को सच कहने की तेजस्विता खो दी थी।'[6]

राम के वनवास से लौटने पर माता कैकयी ने अपने किए पर पश्चाताप किया और राम से कहा – ' हे राम। मेरा यह कलंक कैसे छुटेगा? जब तक तुम मेरी कोख से जन्म नहीं लोगे, मेरा यह कलंक छूटने वाला नहीं है।' तब राम कहते है कि द्वापर में तुम देवकी बनोगी, और में तुम्हारी कोख से जन्म लेकर तुम्हारा बेटा कृष्ण बनूंगा। लेकिन उसी समय शायद राम की आंखों में दशरथ मरण से लेकर सीता हरण तक की सारी व्यथा घिर आती है, और वे कहते है – 'तोहरा दूध नहीं पीउबो ओ माई' हे माँ मैं तुम्हारा दूध नहीं पीऊंगा।'[7] यहां लोक साहित्यकार ने पुन: राम के चरित्र को प्रशनचिन्ह लगाया है? जिसने कैकयी को इतनी बड़ी सजा दी कि स्वयं मां बनकर, अपने बेटे द्वारा दूध न पीने की चोट को सहन करने की शक्ति उसमें तो 'या धरती की किसी माँ में नहीं हो सकती।

लोक साहित्य भारत की जन–मन–गण की वह सरस गंगा है, जो अपनी संस्कृति, कला और युग–युग के विकास की गाथा से जीवन को उर्जान्वित करती रही है। उपाध्यायजी ने लोक साहित्य संस्कृति का गहन चिंतन मनन करके उसमें से सर्वथा मौलिक और नवीन विचारों, उद्भावनाओं को खोजा है। जनमानस में लोकगीत, लोककथा, लोक संस्कृति व कला की मौखिक अभिव्यक्ति को उपाध्यायजी ने संग्रहित, विश्लेषित कर प्रकाशित किया है। उनके निबंधों का मूल स्वर लोक साहित्य के प्रचार–प्रसार से आप्लावित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास – पं. रामनारायण उपाध्याय से संकलित
2. लोक संस्कृति और साहित्य – सोमदत्त महावीर अग्रवाल पृ.61
3. लोक जीवन में राम (सीता जिसे आपसे शिकायत है) – पं.रामनारायण उपाध्याय पृ.59
4. लोक जीवन में राम (सीता जिसे आपसे शिकायत है) – पं.रामनारायण उपाध्याय पृ.59
5. लोक जीवन में राम (सीता जिसे आपसे शिकायत है) – पं.रामनारायण उपाध्याय पृ.59
6. लोक जीवन में राम (सीता जिसे आपसे शिकायत है) – पं.रामनारायण उपाध्याय पृ.59
7. लोक जीवन में राम (सीता जिसे आपसे शिकायत है) – पं.रामनारायण उपाध्याय पृ.59

****

मैथिलीशरण गुप्त की नारी भावना - उपेक्षित नारियों के सन्दर्भ में

डॉ. जयश्री भटनागर *

प्रस्तावना – प्राचीनकाल से ही नारियों के प्रति पुरूषों का कोई स्वास्थ्य एवं उदार दृष्टिकोण नहीं रहा है। नारी पुरूष की सहधर्मिणी या सहयोगिनी होते हुए भी, वही सबसे अधिक अत्याचारों और वासनाओं की शिकार हुई। मध्ययुग की संत साधना की सबसे बडी बाधा भी यही नारी रही है कबीर और तुलसीदास जैसे सन्त कवियों ने उसके प्रति जो उपेक्षापूर्ण एवं निन्दनीय अभिमत रखा है, वह सर्वविदित है। संतों की कृपा से जो कुछ भी उसका अस्तित्व शेष बच गया था वह रीतिकालीन कविगणों ने उसे केलिगृह की सीमा में आबद्ध कर उसका जीवन और भी अधम बना दिया। परन्तु इसी शताब्दी के मध्य में राजाराम मोहनराय, लोकमान्य तिलक, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरूषों की वाणी से देश में एक नवीन जागृति आई।

हिन्दी साहित्य में इस नुतन जागृति का सूत्रपात भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने किया। भारतेन्दु युग में इस युग की नारियॉ मान, विरह की पुतली मात्र नहीं वरन् राष्ट्र की कर्णधार तथा महत्वपूर्ण कार्यो में सक्रिय भाग लेने वाली थी'।

द्विवेदी युग तक आते आते नारी विषयक धारणा में आश्चर्यजनक परिवर्तन होने लगे थे। रविन्द्रनाथ ठाकुर तथा पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने लेख प्रस्तुत किये इन्हीं की प्रेरणा द्वारा सबसे अधिक गंभीर प्रभाव हमें राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की कृतियों में दिखाई देता है। गुप्त जी ने नारी के प्रेम, करूणा, त्याग, सहिष्णुता आदि उदात भावनाओं के समान ही नारी के पारिवारिक आदर्श रूप को भी महत्व दिया। उन्होंने नारी के रूपों को दो भिन्न भागों में विभक्त किया और इन दोनों रूपों में पत्नी और माता मूर्तिरूप भूमिका के पात्र है। 'साकेत' में उर्मिला को आदर्श पत्नियों की ओर संकेत करते हुए चरितार्थ किया –

'खोजती है किन्तु आश्रय मात्र हम
चाहती है एक तुमसा पात्र हम' (साकेत प्रथम सर्ग)

इसके अतिरिक्त नारी के मातृत्व रूप को भी काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया। उनके काव्य में कैकेयी, कौशल्या, सुमित्रा, कुन्ती, यशोधरा आदि ऐसी ही माताएँ हैं जो अपने कोमल किन्तु त्यागमय, वात्सल्य हृदय के कारण अनुकरणीय बन गई हैं। गुप्त जी ने कैकेयी को परम्परा से हटकर माता के रूप में उसके चरित्र को बड़े सुंदर ढंग से उभारा है। वह स्नेहशीला तथा भावुक नारी है जो भाग्य के द्वारा छली जाती है। किन्तु भरत द्वारा तिरस्कृत तथा लांछित होने पर कैकेयी स्वयं के प्रति आत्मग्लानि तथा आत्महीनता दर्शित करती हैं

'रघुकुल की इस अभागिन रानी को कठोर कहानी, साकेत की चरित्रभूमि में अपने युग-युगों के कठोर स्वरूप को छोड़कर द्रावकता बन जाती है और इस द्रावकता का एकमात्र कारण उसका संवेदन शील भावुक सरल-तरल मातृहृदय है'। .....गुप्त जी ने कैकेयी को पश्चाताप प्रकट करने का अवसर भी प्रदान किया।

करके पहाड़ सा पाप मौन रह जाऊं
राई भर भी अनुताप न करने पाऊ य'

गुप्त जी ने कौशल्या को एक विशाल हृदय माता के रूप में वर्णित किया उसके हृदय में माँ का मन हैं । तथापि वह कुल गौरव से प्रेरित अवस्था में राम को वनगमन की बिदाई देती है।

'जाओ, तब बेटे। वन ही,
पाओं नित्य धर्म-धन ही।
जो गौरव लेकर जाओ,
लेकर वहीं लौट आओ (साकेत चतुर्थ सर्ग)

कवि परिवार की सुख समृद्धि और एकता का श्रेय नारी को सौंपते हुए एक आदर्श 'सास-बहु की परिकल्पना 'साकेत' में करते है। कैकेयी का यह कथन-

'आ मेरी सबसे अधिक दुखिनी, आ जा,
पिस मुझसे चन्दन-लता मुझी पर छा जा।(साकेत अष्टम सर्ग पृ. 256)

दुसरी ओर 'यशोधरा' में कवि ने यशोधरा के वात्सल्य भावना का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया। साकेत की उर्मिला वियोगिनी पत्नी हैं, परन्तु यशोधरा वियोगिनी पत्नी के साथ ही जाया भी है और जननी भी, जो अपने पुत्र के पालन-पोषण, शिक्षण तथा सुख की आकांक्षा भी करती है। कवि की यह पक्तियाँ बहुत ही मर्मस्पर्शी है जो जन-जन के मानस को स्पर्श करती हैं।

औरों के हाथों यहां नहीं पलती हूँ।
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।

इसी प्रकार उपेक्षिता नारी पात्रों में मांडवी भी एक है, उसके जीवन की विडम्बनाओं को किसी ने देखने का प्रयास नहीं किया। भरत पत्नी मांडवी साकेत में कर्तव्यनिष्ठ पत्नी के रूप में दिखाई देती है।

उर्मिला में त्याग तथा आदर्श पालन का गर्व है त्यागी जीवन व्यतीत करने की क्षमता है किन्तु माण्डवी की स्थिति विचित्र है उसका पति घर में रहते हुए भी त्यागी है, समीप रहते हुए भी दूर है। परिस्थिति को देखकर वह घबरा जाती है उसका यह कथन-

है नाथ, यदि धरती फट जाती
हम तु उसमें समा जाते।

गुप्त जी ने इस प्रकार उन नारियों का चित्रण किया जो भारतीय साहित्य एवं संस्कृति में सर्वथा अपेक्षित कर दी गई थी। उर्मिला, मांडवी, यशोधरा, विष्णुप्रिया ऐसी नारियाँ है जिनका देश के प्राचीन महाकवियों के काव्य में मात्र नामोल्लेख ही था। यही नहीं गुप्त जी ने कैकेयी और कुब्जा जैसी घृणा की पात्रियों को भी नारीत्व और चरित्र गरिमा से मंडित कर उनके प्रति हमारी सहानुभूति जागृत कर दी।

इस प्रकार गुप्त जी ने नारी को रूढियों और परम्पराओं की कठोर बेडियों से मुक्त एक स्वस्थ्य सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत रूप में ढालना चाहा है। और वे उसमें सफल हुए है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. साकेत -मैथिलीशरण गुप्त
2. यशोधरा - मैथिलीशरण गुप्त
3. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी - डॉ. मंजुलता तिवारी
4. हिन्दी कहाकाव्यों में नारी चित्रण - डॉ. श्यामसुन्दर व्यास
5. मैथिलीशरण गुप्त और साकेत - डॉ. हनुमानदास गुप्ता

* प्राध्यापक (हिन्दी) माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.) भारत

Representation Of Women In Indian TV Serials Reality Or Myth ?

Aparna Ray *

Abstract - After more than thirty five years, has anything changed ? From the days of media reports on Oriental women being despotic and sensuous, media has succesfuytilly presented and caricatured woman-ness.My focus is on television soaps and serials of India and attempt to analyse how exactly do they present women and how successful are they in their presentation of „reality ?Or is this reality a hackneyed one? The nation which claims to be in the process of "globalisation"or "modernisaion" still portrays its women in meaningless piles of costume jewellery and jardousi sarees.When women of India are progressing to be IPS and IAS Officers, all these contemporary "slice-of-life" soaps are still entangled in familial plots and schemes.Even with some attempts to actually portray reality, Indian serials have not evolved beyond the monochromatic dimensions of a faithful wife and a scheming vamp.

Keywords - Representation, myth, reality, liminality, subaltern ,woman-ness, media, truth, question, stereotype, marginalized, sexuality, programmes, responsibility, society.

Introduction - Representations are formations ,or as Roland Barthes has said of all operations of language, 'they are deformations' (Bhabha ,94). One of the greatest tool of asserting self-superiority and dominance, representation and use of stereotypes has remained instrumental in consolidation of authority over the oppressed down the ages. From colonial to feminist discourse, representation has been very important primarily due to its construction of a fixed image of the downtrodden ,marginalized people who occupy the lower seat of the see-saw of power-politics. Stereotypes, as Homi Bhaba points out in The Location Of Culture ," is a form of knowledge..that vascillates between what is always" in place,already known and something that must be anxiously repeated". Herein comes the responsibility, or rather the importance of mass-media without which repeatability of notions and their distribution cannot be carried out. In essence, the mass-media are the tools that facilitate dissemination of information to vast number of receivers.But one of the major dimensions of such an approach is the "way" things or events are reported and presented – and a thorough overview of the content and manner of messages that are publicly represented makes it quite clear that very often media "mediates" and moulds reality in order to subscribe to a certain pattern . With the technological boom and the rapid advancement in electronic media over the past few decades, media has acquired such omnipotence that it not only propagates notion but has the power to create, construct or demolish certain ideologies.As is evident, representation in media is definitely a vast subject of discussion where the concepts of„representationand media are intricately intertwined. My focus is on a specific section of the electronic media in the Indian context - the contemporary television soaps and serials ; identify their target audience and study the ways how they represent women and finally scrutinize the extent to which this projection of an on- screen reality corresponds to the actual reality.

Western media has had a long history of typifying these doubly margianlised creatures who were not only the colonized subjects of their European masters but also the ostracized marginalia in a dominant patriarchal societal structure. Deriving from Simonede Beauvoir's perception of woman as the Other to man, sexuality and woman-ness has always been identified as a binary opposition that registers difference between groups of people; differences which are socio-culturally manipulated and transmitted in ways which cause one group to dominate the other (Beauvoir , 2009). This sexuality and womanness of these women (or women in general) has always been fitted within male-constructed stereotypes that through their projections and appropriations has successfully kept the "second sex" as the domesticated subaltern. Interesting it is to note that the popular Indain notion the bliss of the household rests in the hands of the woman it is infact the nutshell of the Indian familial pattern where the woman of the household is granted the central position by virtue of her liminality! Even more interesting it is to note how popular TV serials uphold and propagate these very notions that unfortunately clog the path of further emancipation and socio-cultural upliftment. With the nation claiming to join footsteps in the march to globalization and modernization where the state legislatives and judicial systems attempt to emancipate the marginalized women in our society, it does seem a little bizarre to see contemporary TV serials and soaps projecting women more as models of expensive costume-jewellery or "jardousi sarees".Moreover the stereotypes used- that of a wronged wife, a domineering mother-in-law, bitter relationships between sisters-in-law,though bear

*Asst. (English) Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.) INDIA

resemblance with a certain reality of society fails to do justice with the changing and shifting patterns of identity within household. They fail to circumscribe all the career options that are now being taken up by Indian women, new modes of lifestyle being adopted and remain entrenched in certain deep-rooted notions that are hard to be erased away .

During the "good-old days" of Doordarshan, there had been several programmes like „Udaan hat dealt with issues concerning a woman s struggle , her dreams of becoming an IPS Officer. This was probably the first Indian television show on women empowerment. Inspired by the real-life story of Kavita Choudhary's. However, with the advent of cable and satellite television and a major upheaval following it,things rapidly changed and serials stopped short of projecting those that could prove beneficial for uplifting these maimed section of the society. The new millennium saw the phenomenal success of the soaps involving family dramas (Kasauti Zindagi Kay, Kyunki Saas Bhi Kabhi Bahu Thhi to name a few) championed by none other than Ekta Kapoor. True it is that her Balaji Productions indeed revolutionized Indian serials which now shifted the camera lens from outside to the dark nitty-gritties within a family household. This narrowing down of the targeted domain brought to surface several hidden truths, opened up several new arenas that society needed to concentrate upon. But the phenomenal success of these serials never obliterated the fact that they targetted a certain, specific , economically privileged section of society where the main source of familial income was either inherited property or that amassed by business activities. This particular focus on such women who were married off to rich households often belonging to elite class themselves further alienated these serials from a larger reality- reality that changed over the decade. No matter how modern the women characters were in these serials with respect to their attire and access to technology, the mode of presentation of these women with junk jewellery and designer sarees failed to bring within its territory the struggling middle class. Throughout the decade such typifications and vilification continued with ornamentally decked up women lit up the screen and sensuously dressed vamps exercised her heinous tricks. A recent UNESCO report describes the common images of women in the media:"the glamorous sex kitten, the sainted mother, the devious witch, the hardfaced corporate and political climber." To be specific, the representation of women's body imaged has long been static.

A young single woman tend to conform to the typical "girl next door" type tall, slim "conventionally beautiful" and she should have a friendly and happy personality, without much intelligence. Having a nice figure is necessary for measuring a woman's worth in the show. Research shows that over-weighted actresses tend to receive negative negative comments from other male characters about their bodies, and "80% of these comments are followed by canned audience laughter" The report, released in 2009, states that, at the current rate of progress on stereotyping women , forcibly fitting them into cliché - it will take another 75 years toachieve gender equality in the media. But has this situation changed? If so, what are they based upon Whom are they catering to and how? In this paper I am going to discues two popular TV serials, "Uttaran" and "Balika vadhu"

Balika Vadhu an Indian television series that airs every Monday to Friday at 8pm on Colors TV, it deals with child- marriage that had been a prevalent practice in several parts of India continuing even today in many a rural place. The serial focuses on the character Anandi , who was married off in her childhood and traces her journey through all kinds of situations down through adolescence to adulthood. Within the mainplot concerning the story of Anandi in the house of her in-laws and how she epitomizes all the virtues that defines an „ideal bahu in Indian society ,there has been various subplots concerning other women (mainly those suffering suc evil practices as child marriage or being child-widows) and their journey towards emancipation. Among many such subplots that have added on to th bulk of this serial, ther is the plot concerning the marriage of Jagdeesh (the person with whom Anandi was married off at an earl age and together they spent their childhood and adolescence through many a colourful lane) and Gauri (another girl who was married to Jagdeesh in her childhood forcibly by Jagdeesh s grandmother, the powerful matriarch Kalyani Devi) .This subplot is my concern-primarily because of the way Gauri is presented as a wicked home-breaker, a villainous woman tyrannically destroying Anandi s life. True it is that Gauri shouldnot have married Jagdeesh even after knowing the truth that he is the same man to whom she was married in her childhood ; this would have an apt protest against the cruelties of society that seals the fate of many a hapless woman. But then again, with her very choice of marrying the person whom she has fallen in love as an adult, within the legal-precincts she projects her strong individuality. It is Jagdeesh who hides his true identity from his fellow friends in the medical college where he studie and later works, it is he who decides to leave Anandi and marrying Gauri decides to leave Jetsar and settle down in Mumbai , it is he who toys with the emotions of all those who raised him up -but ultimately at the end of the day, it is Gauri who is presented as the fountain-head of all problems. Is it not natural for a pregnant woman to feel insecure to see her husband get friendly with his first wife? Is it not naturall for her to expect a happily married life as much as Anandi deserves it? Then why is the focus always on how well Anandi conforms to all the stereotypes that characterize a "good woman Anandi as the dutiful daughter-in-law taking care of the household, Anandi as the "sarpanch bitiya" of the village and a faithful wife who remains mum even when her husband leaves her and goes away? Is it because media still wishes to cater to that India which deifies its women who emblematise self-sacrifice and vilifies them who try to assert an independent voice of their own? From the survey that I conducted I came to know that a large section of audience are home-makers who too are

constricted within the territories of their home.So they can very well sympathise with poor Anandi suffering the brutality from her „sautan Gauri-they have absolute pathos for Anandi who had left her studies midway for serving her in-laws better and now, with her life in ruins attempts to bring enlightenment in the villagers by spreading literacy. But what about Gauri? Even after having a definite identity of her own as a medical practitioner and the legal wife of Jagdeesh , she is always represented as the "Other" woman in the "happy-life" of Jagdeesh-Anandi when it is a fact that much like Anandi, she too had to bear the brunts of a social malpractice. This division of projection, of presentation makes it clear once again that more often media attempts to fall back to propagating ingrained stereotypical notions and securing their own positions. that the prime reason for the differential presentation of these two women characters lies in the basic inculcated truth amongst Indian women that ,to be considered a good woman you need to choke your own desires and conform to the expectations that society holds for you. And this is precisely the same reason that even after proposing to voic out against the social malpractices that ostracize a woman, this serial too resorts catering to popular expectations i.e. project the "other woman" as a scheming plotter and erase out the mistakes committed be the man in question so as to bring back the idealized, publicized and glorified concept of a home. Even when the fountain-head of all problems is Jagdeesh himself,it is Gauri, the pregnant wife of Jagdeesh who is given at cold shoulde by he in-laws (who favours Anandi) it is she who suffers torments and is denied the very little shred of sympathy. This cementing of faultlines that are often very much palpable, so as to secure its audience, questions the very productivity of media s "truthful representation" of the women.

Uttaran - It is a daily soap on channel Colors that went on air on December 1, 2008 and tells the story of two friends with diametrically opposite backgrounds . Where Tapasya is the daughter of a wealthy aristocratic couple , Divya and Jogi Thakur ; Ichcha is the daughter of their poor, live-in domestic help, Damini. The character of Tapasya is the vilified alter-ego of Icchha and bears a strong sense of individuality mixed with an equal proportion of pride and haughtiness. Closely resembling Catherine the Shrew , Tapasya Thakurain is well aware of her societal status and talents and is proud about them. Built along the typical notions of a spoilt-brat of a wealthy father , Tapasya is a stock figure who torments the life of Ichchha, the adorable poor girl. This caricature is a patterned projection of the women-folk who can basically be categorized into either the "bad woman" who ravages and destroys ; and the good one who is meek, modest and most often very soft-spoken, homely, caring and nurturing.-and not beyond.In a modernizing nation like India where the chief responsibility of media should be to upgrade it content so a to match the reality outside, is not the character of Tapasya ,the out-spoken independent girl itself a travesty of reality? It brings us back to the unnoticed truth- all such women who donot fall into the clichés that society carves out for its women are always the transgressors and hence needs to be either removed from the system to restore order or be moderated in a way acceptable to society. Back from the days of Eustacia Vye in Egdon Heath with her unbridled self-expression of her ambitions and emotions to characters like Tapasya , all such women have always been considered beyond the normative boundaries of the society. They are either transformed so a to fit into the patterns of society or removed away. Tapasya s marriage with the handsome, wealthy Veer (who was about to marry Ichchha),the pivotal point of the story , was projected in a way so as to enforce the meanness and cruelty of Tapasya . But very little was developed with regards to the reason behind Tapasya s action - her desparateness, her helplessness and her emotions were cleverly shunted so as to focus on the now ruined life of Ichchha. A character beyond redemption and sympathy from its audience, Tapasya is however very close to reality. We find the character of Tapasya „grounded in reality - with basic human follies and shortcomings and added that it was „wrong to forcibly present her as a „vamp of some sort when what she is actually doing is prioritizing herself beyond any superficial social constructs that bind her ambitions and desires. This again brings to light the cleavage in the presentation of the "reality" in context of Indian women and questions the very ground of a woman's identity in developing India.

What distinguishes these two serials is their setting-while Balika Vadhu is set in rural Rajasthan and its traditions, Uttaran encompasses the urban elite and various complexities of modern life. However even in their multifarious approach, they fail t tread beyond the common constructs of ideology that typifies a woman to be good or bad and falls short of presenting the wide range of reality that envelops modern existence. The Joshi Committee Report in 1984 had urged the need for " the incorporation of the women's dimension in all programmes" and "the need for a separate focus on and for women" (Kumar, 2011). True it is that these serials are centering their contents on the lives of women but in the process of their presentation, they cannot get rid of their bias of categorizing women into socially acceptable divisions. By presenting real-life situations with sharp demarcations of good and bad, these serials are deviating from modern reality where boundaries between the victim and the victimizer get blurred. Filtering these diverging characters through the monochromatic lens of the norms of society, these serials in fact block the non- judgemental, unbiased response from its audience.The truth boils down to this that in the garb of presenting real condition of women in the Indian context and attempting to speak for these subalterns, these serials are just conforming to some of the deep-rooted commandments that control the social structure of India. Deliberate presentations and calculated deformations highlight once again that no matter what , free-spirited women will always be labeled as transgressors;

that's the notion society is entrenched with and that s the reality people will expect media to portray. However , on the other hand, those enlightened about the disharmonic nature of a human character will consider any such flat representation of good and evil in the modern era as a travesty of reality. Since its the woman s question , these crevaces in the pattern of projection become even more problematised .The question arises as to who are those that are to be uplifted from the marginalia - is it Anandi or Gauri? Is it Ichchha or Tapasya?Who is to be condemned- the woman who is presented as the vamp or the societal norms that create such situations? As an answer , we can just heave a sigh , for nothing better can actually ever present the real, pathetic,oppressed condition of women it is way too diverse and multidimensional.Then the responsibility falls on the shoulder of the media to stress the causes which create such aberrations in human behavior rather than going for the stereotypical projections of woman-ness and woman character.

The serials must stop categorizing Indian women either as the pitiable "bahu or the interpellated" saas or maybe, the home- wrecking bahaar waali. It should tread beyond such divisive binaries and attempt to present a coherent and conducive picture of the "real women" of today- attempt to inculcat in them the attempt to overcome stifles and join the mainstream of nation s progress.Only then can these serials be considered as having importance in an actual system of society and only then can they succeed in their agenda of improving iving conditions of these violently oppressed section of society.

Works Cited :-

1. Beauvoir Simone de . The Second Sex Pub.[1949] 2009 (second translation)
2. Bhabha Homi K. The Location of Culture Pub. Routledge 1994
3. Gerbner George. „Cultural Indicators-The Third Voice in Communications Technology and Social Policy Ed. G.Gerbner ,
4. L.Gross and W.Melody Kumar Keval J. Mass Communication in India 4th Ed.2011
5. Said Edward W. Orientalism (second edition) Pub.Penguin [1978] 1995

****

Pico Iyer : A Culture Journalist

Seema Batra *

Introduction - Travel writing is the epitome of written work on travel. It can be an article or a book. It is honed to perfection in literary sense, has narrative drive, and a good structure. Classical examples include writers like Paul Theroux and Bill Bryson. Travel journalism is pretty close to travel writing in terms of how hard it is to get published, except that is written more by following what the publication wants. In short, it is less self-indulgent. Travel Journalism developed in even greater strides from the late 1800's to early 1900's as further changes in technology and lifestyle made travel ever more accessible in many places around the globe. Improved and faster technologies of transport and enhanced demographic and economic growth continued to transform travel from a privileged occupation of wealthy elites into popular leisure activity. Soon travel destinations became a way for journalists to segment their target reading communities, though the blurred boundaries between travel journalism and travel writing reflected a broader mix of journalism and literature at the time, and identifying destinations for travel helped push tourism further as a potential leisure activity for the growing middle class. By the beginning of the twentieth century, a tourism industry had begun to develop in various places worldwide, with guidebooks, travel agents and group tours creating a rich and varied setting on which travel journalism could focus. Multiple journals like *Colliers, Ladies Home Journal,* and *Cosmopolitan* emerged with regular features attending to tourism and journals devoted exclusively to the topic began to appear, such as National Geographic.

Travel writing is an interdisciplinary genre that, in recent times, has become an important area of study. It is closely linked to the issues of imperialism, diaspora, multiculturalism, nationalism, identity gender, globalization, colonialism and post-colonialism. It brings into play ideas of transculturalism, the idea of the centre and the margin, border crossings, hybridity, location and displacement. Cross-cultural encounters have been represented by many travel writers and usually their representations rely on frequent comparisons between the host and the visited place or country.

Pico Iyer is a journalist, writer, traveler, biographer and an orator. He has been a journalist for Time Magazine for 27 years. He has written for a vast number of publications including The New Yorker, The New York Times and Harpers. Iyer proves himself to be an intellectual and spiritual adventurer and through the readings of his works, one can witness the wisdom of experience and the innocence of curiosity. His conversations flow from one culture to another. In the present times, people are endowed with vast opportunities for exposure to other cultures. New destinations are easily accessed on the web. Most of the people have lived in different cultures in their lifetime and have probably existed in multiple homes, jobs and multiple identities. Iyer's works are described as a study of the emerging global culture. He tries to reflect on the unusual of different cultures. He wouldn't shed light on what is popular about a place but on what can be learnt and borrowed from other cultures to make one multicultural. He works on what is unrecorded and unprecedented about a place and culture. He admits and instances that,

"I am writing about the future, in a sense, because these are the new forms that the world is going to take. Things we take for granted have acquired a different meaning abroad. McDonalds is a status symbol in Thailand, for example. When you go to Beijing and wander around Tianamen Square, one of the sights you see is the Mao Tsetung mausoleum. But an even more startling and eloquent sight is a Kentucky Fried Chicken Parlour just around the corner because it is the biggest in the worlds; he people eating there have mostly spent a whole week's wages just to eat. They are filing around in awe taking pictures of one another in front of the tables and staring at the pictures on the walls that show such as Santa Barbara and Hollywood." (Interview, Scott London)

Iyer has enriched the genre of travel literature with his hugely popular works like *Video Night With Kathmandu, The Open Road: Journey of the Fourteenth Dalai Lama, The Global Soul, Falling off the Map, Sun After Dark: Flights into the Foreign* and others. He writes and speaks about culture and its variety. Born in England and raised simultaneously in the UK and in the US, Iyer is himself the son of emigrants from yet a third homeland, India. This wasn't enough cultural diversity for Iyer that he met his wife in Kyoto and settled in Japan. Commuting between Santa Barbara and Eton, he grew up taking a global view of culture and spending a lot of time in travelling. For Iyer, travelling and writing seem as necessary as breathing. His voice is that of

* **Research Scholar (English) Mohan Lal Sukhadiya University, Udaipur (Raj.) INDIA**

a sympathetic, observant outsider, bringing to his writing a deep knowledge of the world literature as well as a comfortable familiarity with popular culture. Iyer manages to stay open to the new and the unexpected. One of the common points of discussion in his writings is the influence of the west on the east. In *Video Night in Kathmandu*, Iyer is surprised at every turn by the ripple effects of American culture across Asia. Writing about cultures and of the western influence on eastern nations is not a new subject. It has earlier been taken by a host of writers. That was more commonly known as post-colonial writing with the subject of imperialism wherein one culture was reflected as superior over the other. But Iyer presents cultures in a different light. He is passionate to travel and seek differences avoiding the old colonial baggage. His perception is changed as it is positive. He wouldn't criticize or have fun of cultures or people he meets during his extended travels. His intention is always to see the better part ignoring the weaker side of anything.

Iyer believes the words of Marcel Proust, a French novelist and a critic, that "the real voyage of discovery consists not in seeking new lands but seeing with new eyes." (TED Talks) Iyer asserts that the subtle beauty of travel is that it enables one to bring new eyes to the people encountered. Thus, going for holidays reminds us of the home more. People start missing and appreciating their homes more when they are out at a new place but if the new place is viewed with a distant admirer's eye, the journey would become more exciting and the former feeling of leaving the home and missing it would never occur. With this changed outlook, tourism, which is taken as destroying cultures, would surely help in reviving them. Iyer tries to see beauty and charm in all the places ignoring the preconceptions about that place. As he says,

"Tourism has created new 'traditional' dances in Bali, and caused craftsmen in India to pay new attention to their works. If the first thing we can bring the Cubans is a real and balanced sense of what contemporary America is like, the second and perhaps more important thing we can bring them is a fresh and renewed sense of how special are the warmth and beauty of their country, for those who can compare it with other places around the world."

Bali is known as a mysterious place and Iyer himself has experienced the strangeness there. Overlooking those experiences, Iyer gives more importance to the benefits that the place is deriving through tourism. Similarly, for India writers have always presented a pessimistic or a negative thought that is actually not the bigger side of it. A majority of the writings about the country reflect its poverty, illiteracy and other such aspects whereas it is blessed with a varied cultural heritage. But Iyer keeps his eye on the positive aspects as he says that the craftsmen were able to do a better work because of tourism.

One of the important factors that gives a distinct touch to Iyer's writings is his preference for such destinations that are usually less or not taken up by others. Thus, he can aptly be referred as a freelance culture journalist. As said earlier, journalists are asked to cover particular events or places and write about them. Places that are popular for some or other reasons like physical features, artificial built ups, their cuisines, festivities and much more. But Iyer loves to explore isolated and far-off destinations that are sometimes not even safe. In three of his works, *Sun after Dark, Falling off the Map, and Tropical Classical*, he has described his travels to lonely places of the world. Some of the countries amongst them are remote as they have closed their doors to the outside world as done by Tibet and Bhutan. This is why, he is said to see the unprecedented and talk of the unspoken. North Korea, Iceland, Argentina, Bali, Nepal, Cuba, Vietnam, Ethiopia are the places that are seen by him as isolated either of culture, politics and progress. He finds these places to have lagged behind in the global race. At the same time, he loves to explore their different cultures as they are not known to the world as of the developed countries.

Often, Iyer has observed that the younger generations of such countries are influenced by the overlapping waves of cultures. They have connections to the cultures of their parents and the cultures of their spouse, which are often different. At the same time, they have their own connections to where they have loved in their travels, moving to the locales that have shaken them out of their assumptions about particular places, patterns and traditions of the people there. These overlapping cultural influences greatly change the meaning of such terms as home and community. These are no longer assigned the same meaning and significance as they were for the past generations, but in many ways are self-woven. He believes in the extinction of the word 'foreign' in the contemporary times. Iyer is a step ahead of the view that the global nature of our world is melting cultures together. According to him, a global being is partially at home everywhere. He would not feel displaced, confounded and unsettled at a new place.

Pico Iyer, who is the author of such bizarre, yet alluring books as *Video Night in Kathmandu* and others, has written his first fictional master-piece, *Cuba and the Night* (1995). Over the past few years, he has made a reputation of himself as a travel writer who splendidly describes even the most mysterious and misunderstood places of the world. During the late 1980's, Iyer is sent on an assignment to Cuba to report on the ways the country is coping with its isolation. The setting of the novel is Cuba at present, a place of yearnings and moreover, a strange place. Its economy is wrecked; its revolution is a matter of the past, its isolation complete, its lives largely on hopes and dreams of a better future through an escape to America or Europe or some other developed nation. People in Cuba are greatly under the influence of Jose Marti and Fidel Castro. Marti was the Cuban national hero and an important figure in Latin American Literature. Through his writings and political activity, he became a symbol for Cuba's bid for independence against Spain in the 19th century, and is referred to as the "Apostle of Cuban Independence." Fidel Castro was the Cuban

politician and revolutionary, who serve as the Prime Minister from 1959 to 1976 and its President from1976 to 2008. In fact, the title of the novel comes from a line of poetry by Jose Marti, "Dos patrias tengo yo: Cuba y la noche" which means "Two Fatherlands have I: Cuba and the Night." (25) The implication of these lines of Marti and of the novel as a whole, are the same. They both suggest the idea that "when the sun goes down, principles crumble away, loyalties falter, certainties dissolve. The dichotomy and the dilemma are all stronger, if you are not a Cuban."(article, William Boyd) All through the novel, it becomes evident that the ghost of Marti inhabits the hearts and minds of contemporary Cubans.

Amidst this atmosphere of intense eroticism and frustration, a love story develops, that is as odd, abandoned and ambiguous as Cuba itself. Iyer writes of the place: "the first time you come into a foreign country, and everyone looks the same to you, and there is fighting all around, there's no way of telling right from wrong. The only thing to do is get out the lens and catch the ambiguity; and when it came to ambiguity, Cuba was the leader of the pack." (19) Iyer's protagonist and narrator, Richard, is an American photo journalist who, while still in his thirties, has become a world weary cynic. He has seen poverty and political upheavals in a number of countries, and has taken sanctuary in the various nightclubs in many cities all over the world. He is at an emotional dead end and detached from life because of his failed marriage. Therefore, he was happy to be at a new place and amongst strange people where he could forget all his problems and concentrate on his work. In Havana on an assignment, he meets different people, Cubans as well as other foreigners and interacts with them to know about the culture and life in Cuba. One of his local friends introduced him to a young vivacious Cuban girl, named Lourdes who accompanied him almost for the rest of his stay in Cuba. Iyer, through Richard, was completely taken over by the beauty of the place that got further enhanced in the company of a beautiful Cuban girl. He states: "sometimes the place was so beautiful it made you want to cry almost; it was like a Romantic's Eden. And here I was with the brightest Eve in Havana, and she was asking me to rescue her from Paradise." (*Cuba and the Night*: 117)

Richard is already a lonely person who has lost faith in love and marriage, gets drawn by the girl's intimacy. In a way, Iyer has used the Cuban girl and the narrator's involvement with her to look at the plight of the people of Cuba, their longings, and dreams of the west. Like in other travels to different places, in Cuba also Iyer mentions the protagonist's encounter with outsiders, who admire the place's tranquility and its distance from the outside world. But the Cuban natives think the other way. They have not seen the outer world and hence feel suffocated in that world of nothingness. Iyer expresses their frustration for Cuba and their leader as: "For thirty years, we are children of the Revolution, children of a father who says that children must be quiet and must sleep without food and must be told what to do every minute of our lives. For thirty years, he's telling us not to pray before our meals, and not to go to other countries, and how we must never forget our obligation to our parents, how we must give our lives for our family." (*Cuba and the Night*: 59)

These lines by a Cuban local are an evidence of their deprived lives and even their helplessness. Usually, girls in Cuba are observed to be looking for an opportunity to escape to a western flourished nation through marriage with a person from there. But, Richard is not sure about this girl's intentions if she is also in search of a foreigner who can help her get out. As they spent more time with each other, the girl started expressing her desire for a prosperous life with Richard, the American photojournalist. But, Richard was already entangled in his previous relationship and it was not so easy for him to get divorced as it involved much hassle. As such, even if he was willing, he could not marry the Cuban girl. Gradually, amid a confusion of motives, the two come closer and Richard struggles to come to terms with what is happening in his life. One of the local Cuban friends of Richard, who better understood the conditions of Cuba and also the tricks of escaping from the place, suggested him a way to take Lourdes out of Cuba. As Richard himself could not marry the girl, he convinces a British, who is on a visit to Cuba and is a nice man, to marry Lourdes revealing all about his own relationship with the girl. Richard and Lourdes know this man and the three have spent time together in Cuba. The man agrees to the terms of a fake marriage and then a planned separation in London. This way the girl would come out of Cuba and Richard would be able to take her to America. The plan was well executed but Lourdes was happy in her new life with the British man and more importantly, she attained freedom from her miseries of a Cuban life. All the best laid plans of Richard go awry as she refuses to come back to Richard. *Cuba and the Night* has quiet a poignancy that speaks volumes about the human condition and about the need to never give up in life, no matter what would be the outcome.

Although Cuba and the Night is first a novel but its setting allowed it to retain the strengths of a travelogue together with some contrasting and interesting characters. His writing had an energy that caught the spirit of the island from the universal point of view of the outsider, rather than y writing and that justifies him to be a transcended nationality and a global soul. For Cuba, Iyer writes, "it is the most complicated place I have ever been, the happiest, the saddest, the most idealistic, the most cynical, the most confounding. And the more time I spent in Cuba, the deeper were the questions that reverberated inside me, and, to some extent, I found that never left them behind. And I wrote about that sense of hauntedness in both fiction and non-fiction." (Interview: Mathew Davis) Iyer has also written about Cuba in his purely travel writings like *Sun After Dark: Flights into the Foreign.* He is deeply influenced by the place and he admires it in the following words:

"It was like being in love, though it's even easier to be in love with a place than a person. I would have given anything

to get back to Havana. It was one of those places that just brought a smile to your face, even when your heart was breaking. And it always had the magic of the unexpected." (*Cuba and the Night*: 6)

Iyer is good at penetrating both people and place. His frequent discussions of the places visited and the events covered up during his stay in Cuba are reminiscent of his earlier and even later travelogues. In the novel too, the protagonist is not consistently staying in Cuba but keeps coming there on different assignments from his employers. He makes descriptions of both the places, Cuba and New York, though he has detailed the culture of Cuba. Therefore, it can be said that *Cuba and the Night* is again an effort toward showing the cultural encounters through a journalist's point of view amidst the rare setting of a novel.

References :-

1. Iyer, Pico. *Cuba and the Night.* New York: Vintage Books, 1995.
2. Iyer, Pico. "*Pico Iyer on Travel and Travel Writing.*" Worldhum: The Best Travel
3. Stories on the Internet. By Mathew Davis. www.worldhum.com/features/travel-interviews/Pico-Iyer.
4. Iyer, Pico. '*Why we travel*' http://www.emi-gear.com/tim/t
5. Iyer,Pico. "Where is home?" TED Talks. July 2013 ,www.ted.com/talks/pico-iyer-where -is-home/
6. Iyer,Pico. "Post Modern Tourism: An Interview with Pico Iyer." Scott London.http://www.scottlondon.com/interviews/iyer.html
7. Iyer,Pico. "*Pico Iyer in Conversation: How Blending cultures made us Unique*." Culture TED Talks. By Kate Torgovnick. July 17,2013.
8. Zimmermann,Kim Ann. Live Science Contributor. July 09, 2012 ,www.livescience.com/21478-what -is-culture-definetion-of-culture.html

****

Psychological analysis of Brownings' poetic characters

Dr. Supriya Paithankar *

Introduction - A Psychological study of an author's life can sharpen the sense of works objective existence as itself distinct and meaningful in itself. An exploration and analysis of the unconscious urges and motives of a writer can be therefore of much help in understanding and interpreting a work of art. Psychology in criticism can prove a major technique for probing into the virtual excellences of criticism F.L. Lucas Has suggested that psychological approach can be used to explain fictional characters blue dart it is not that it is north not incorrect to say that characters of fiction or drama, that have been hitherto (so far) Of great puzzle to the generation of critics and readers can be explain and interpreted with the help of psycho-analysis. Earnest Jones Study of Hemlets Character, as already pointed out, is classical example.

Browning is more interested in the psychology and motives of his characters then in there action. Browning is retrospective, reminiscent and analytical. He treats of actual passion and he stays at whatever moment in its course promises to distil its richest significance. His themes are wide and varied and he is interested in all of them because they enable him to study the human soul form various angles, and reveal its many facts. In each poem there is a particular human situation- a love situation, a crime situation, a situation of failure or success in some art and in each case the situation is important to browning in as much it reveals the soul of individual or the individual concerned. His business was, "soul dissection" and the human soul in studied in the most poignant, and the most unusual situations.

Browning is a psychological poet more than anything else. The study of the human mind and soul is dominant interest. Intellectual analysis is the inward thoughts and motives of his characters more than upon their outward conduct and actions. His is not the dreams of the outer worlds of events but of the inner world of the soul. He chooses situations which enables him to unrevealed the almost inextricable, sophistry and self- description, of every kind of complication and aberration of thought. The main theme of browning poetry is 'the inner man'; the soul psyche of the individual, and it is studied in all its complexity and manifold variety. For the probing of the human intellect, in any type of mind in any age, he has never been surpassed; he describes life equally well from the point of view of an Eastern sage, a mediaeval artist, or a modern love; in subject matters he ranges over the universe.

'No saying of browning is more familiar than that in which he declared, 'incidents in the development of souls', was something very different form the democratic enthusiasm for humanity, or words worth in joy in the 'common tears and worth of every village'. In this dominion isolating imagination, the voice of the solitary soul rings over with thrilling clearness, but still sad music of humanity escapes. The incoherent and the adolescent, the indistinctness of immaturity, the incipient disintegration of decay, the depending shadow of oblivion, the half instinctive and organic bond of custom, whatever stirs the blood but excites only blurred images in the brain, the steals into character without passing through the gates of passion or of thought, finds imperfect or capricious reflection in his verse. Every man is for him an epitomes of the universe, a centre of creation. Life exists for each as completely and separately as if he were the only inhabitant of our planet. He convinces of each man as placed in the earth with the purpose of probation. By making, the soul the centre of action, he is enabled (thinking himself into it, as all dramatists must do) to bring out its characteristics, to reveal its very nature.

Browning has also a Special instrument - the monologue. His art of characterization is not photographic but poetic style and creative, based on his imaginative realism. He was primarily a thinker he could not have understood Kate's wish for a 'world of sensation rather than of thought'. He chose poetry because he felt his thought was valuable fit to be given to the world. A large proportion of his poetry consists of his reflections, sometimes bore and bold, sometimes buried beneath masses of verbal debris, more often clothed in his own, individual kind of rich and varied verse. Even Browning love poetry, despite its passion, is largely argumentive and therefore psychological and intellectual in character.

Brownings' main purpose in his poetry is to throw light upon the realm of consciousness, and to this he frees himself from all the shekels which impede psychological analysis, whether they are connected with action and the narrating, or the loss of material probability. The psychologists find full

* Asst. Prof. (English) Govt. Girls College, Ratlam (M.P.) INDIA

liberty only in direct and individual expression of each being. And at the psychologists atrocity is infinite, Browning give free vent to his imagination, roams through time and space, and selects in history and among the intense possibilities of life whatever cases attract him , the common feature of all the characters chosen being the inherent complexity which they possess.

Sometimes a comparison is made between Brownings dramatic monologues and shekspeares soliloquies. Brownings monologues are more psychological than 'shekhsphere works with theca of human action: Browning are with the clay of human thought.' His monologues provide us with a peep into the inner working of the mind and soul of his characters. Often the nature background is skillfully interwoven with the mood and temper of the speaker, and in this way the total effect is heightened. The most marked feature in Brownings poetry is his interest in character. He is a great master in the art of representing the inner side of human beings, their mental and moral qualities. But he was interested in the mass of humanity but different individual characters.

There is always some moral pre-occupation in Browning' psychological investigation. If he is describing souls that are steeped in vice, he cannot repress them, and secretly shapes their discourses. His traitors stands out on a background in which one can read on implicit contamination, his pages radiate impassioned preferences. His intellectuality and doubts affect only the superficial parts of beliefs. And the core there is an invisible, even aggressive belief in spirituality and the soul: a doctrine of love as the touchstone of man, and the foundational of their real aloe.

His thinking is essentially positive and so he becomes the recognized guide, the master of all who seek rationality and at the same time a creed with unlimited profusion. He gives us the joy of understanding and reconstruction of characters.

And it is finally this very quality of Browning which has inspired me in writing his work. His treatment of characters with an insight in their soul and the deep study of their temper an also on the intellectual basis makes him a writer of eminence. Browning has treated his each character in a way which is unparallel in their psychological aspect. Each of his characters gives us a good deal of psycho-analysis. Psychology is the main stream in all his poems. In each of his poems we get a varied kind o characters which is different from all his characters. If we study the psychology of these characters, who are also the speakers of the poems, we get a totally different picture to study further in psychology.

****

Role Of Religious Practices In Improvement Of Mental Health

Shipra Lavania * Rashmi Singh **

Abstract - According to Braamet. al. (2004) "Religion may offer a frame of reference towards questions of life, suffering and death, and may help to accept a decrease in physical functioning in light of religious and spiritual values. Religion tends to refer to aspects of belief. There is evidence which suggests that religious involvement is protective to both mental and physical health. There are three aspects of religion; 1) strength of religion belief, 2) religious participation,3) spirituality. When mental or emotional problems arise, some individuals may interpret these problems as spiritual, and turn to prayer, reading of scripture and other inspirational works, meditation and other forms of coping rather than formal mental health treatment (Koeing et. al.2001). Religiousness can promote various resources, including spiritual, cognitive, psychological and social resources. Not only these resources do unique positive effects on mental health, they also interact and mutually reinforce each other.Thepresent research paperaims to draw studies and importance which shows the direct effects of religious practices on mental health. It extends the literature in this area.
Keywords - Religious, Mental health.

Introduction - Religion is a multidimensional construct that includes beliefs, behaviors, rituals, and ceremonies that may be held or practiced in private or public settings, but are in some way derived from established traditions that developed over time within a community. Religion is also an organized system of beliefs, practices, and symbols designed (a) to facilitate closeness to the transcendent, and (b) to foster an understanding of one's relationship and responsibility to others in living together in a community."

"Spirituality" is distinguished from all other things—humanism, values, morals, and mental health—by its connection to that which is sacred, the transcendent. The transcendent is that which is outside of the self, and yet also within the self—and in Western traditions is called God. Spirituality is intimately connected to the supernatural, the mystical, and to organized religion, although also extends beyond organized religion (and begins before it). Spirituality includes both a search for the transcendent and the discovery of the transcendent and so involves traveling along the path that leads from non-consideration to questioning to either nonbelief or belief, and if belief, then ultimately to devotion and finally, surrender. Thus, our definition of spirituality is very similar to religion and there is clearly overlap."

Moss (2002) defines spirituality and religion as, "spirituality refers to a personal quest for ultimate meaning in life and for a personal relationship with a transcendent or sacred realm" while "Religion refers to the organized system of beliefs, practices, rituals and symbols that are designed to facilitate closeness to the sacred and that provide an average person with moral and social guidelines for behavior."

Mental health has been reported as an important factor influencing individual's various behavior, activities, happiness and performance. It is a person's way of living which is ultimately the central theme of the so called field of mental health. Acc. to Laddell "mental health is the ability to make adequate adjustments to the environment, on the plane of reality." Mental health is a crucial dimension of overall health and an essential source for living. Bhatia (1982) considers mental health as the ability to balance feelings, desires, ambitions and ideals in one's daily living. It means the ability to face and accept the realities of life. Mental health is about how we think, feel and behave.

The present day world is full of annoyance, hate and anger which are main causes of increasing depression, anxiety and suicidal attacks. Different studies also shows that religious, spiritual practices, including, meditation, rituals, prayers and visit to holy gatherings, are negatively correlated with depression, anxiety, anger and hypertension, so it is very important to prove this positive correlation scientifically.

Three concepts underlie the notion of religiosity or religious involvement: participation in organized ritual, contact with religious based social support networks and spirituality which refers to the subjective aspects of religious feelings and experience. (Hill and Pargament 2003).

Juliana van olphenet. al. (2003) suggested that religious involvement is protective to both physical and mental health. Subjective religious involvement (e.g. Faith or religious beliefs) may influence physical health through encouraging behaviors that reduce health risks, such as avoidance of

* Head (Psychology) Govt. Meera Girls College, Udaipur (Raj.) INDIA
** Counselor, Kendriya Vidalaya 1, Udaipur (Raj.) INDIA

smoking, alcohol consumption, and drug use. On the other hand non organizational religious involvement (e.g. prayer or reading spiritual books) may positively influence mental health through encouraging emotions such as hope and forgiveness and physical health through potential effects on physiologic processes.

Religiousness can promote various resources, including spiritual, cognitive, psychological and social resources. Not only do these resources positive effects on mental health, they also interact and mutually reinforce each other. They help to cope with anxiety, fears, frustrations, anger, inferiority, feelings and isolation. Religiousness remains an important aspect of human life and it usually has a positive association with good mental health.

The most commonly religious practices is meditation. It has been reported that it can produce changes in personality, reduce tension and anxiety, diminish self-blame, stabilize emotional ups and downs and improve self-knowledge, other religious practices such as personal prayer, confession, forgiveness, exorcism, blessings and altered state of consciousness may also effective but more studies are necessary.

Relevant Literature -

Religion And Mental Health - Alexander Moreira- Almeida et. al. (2006) reviewed the scientific evidence available for the relationship between religion and mental health. The majority of well-conducted studies found that higher levels of religious involvement are positively associated with indicators of psychological well-being (life satisfaction, happiness, positive affect, and higher morale) and with less depression, suicidal thoughts and behavior, drug/alcohol use/ abuse. Usually the positive impact of religious involvement on mental health is more strongly build among people under stressful circumstances (the elderly, and those with disability and medical illness). Theoretical pathways of the religiousness-mental health connection and clinical implications of these findings are also discussed. There is evidence that religious involvement is usually associated with better mental health. We need to improve our understanding of the mediating factors of this association and its use in clinical practice.

Religion And Nervous System - Davidson et. al. (2005) observed that during meditation activity, the left hemisphere of brain predominantly increases, which is positively associated with elevated immune response, such as increased activity of antibodies and natural killer cells.

Davidson et. al.; Adler & Kelley (2003) suggested that as the spiritual or religious practices affect CNS , which is involved in positive activation of immune and autonomic nervous system, so these practices may be very useful in reducing stress, anxiety, panic and morbidity.

McNamara (2002) suggested that religious practices activate frontal lobe which is associated with the cognitive function.

Newberg& D' Aquili (2001) revealed that during religious meditation and prayer, the blood flow increases in some part of the brain (frontal cortices cingulate gyrus and thalamic) and decreases in other (superior parietal cortices). An increased activity the frontal cortices represent an increased focused attention, while decreased activity in the parietal cortices result in the loss of clear and cognitive self-consciousness.

The engagement in different spiritual practices or religious activities, like meditation, rituals and prayers, plays animportant role in coping stress and in return helps to improve physical health.

Nolan J.A. et. al. (2011) suggested that religious, spiritual and traditional beliefs and practices may provide positive benefits, although in some cases mixed on positive consequences to mental and physical health.

Religion And Drug Abuse - Benita Walton Moss et. al. (2013) acknowledged spirituality and religion as significant contributors to individuals' recovery from substance use disorders. They reviewed various studies on the role that spirituality or religion plays in substance abuse treatment outcomes. They found some evidence suggesting at least some support for a beneficial relationship between spirituality or religion and recovery from substance use disorders.

Anrienne J. Heinz et. al. (2010) cited that spirituality plays a helpful influence on individuals recovering from addictions. Focus groups were conducted with 25 methadone- maintained outpatients (primarily high- school educated, African – American males) to examine beliefs about the role of spirituality in recovery and its appropriateness in formal treatment. Thematic analyses suggested that spirituality and religious practices suffered in complex ways during active addiction, but went "hand in hand" with recovery.

Religion And Stress - Bayutayan, Shadiya Mohamed Saleh (2011) analyzed the academic stress among students. They aimed at investigating the effectiveness of religious orientation in managing stress among them. The result indicated that students experience moderate level of stress, strain and religious orientation.

Ano G. G. (2005) suggested that people often turn to religion when coping with stressful events. There are studies on the efficacy of religious coping for people dealing with stressful situations have yielded mixed results. The results of the study generally supported the hypotheses that positive and negative forms of religious coping are related to positive and negative psychological adjustment to stress.

Religion And Insecurity - Safaria, Triantoroet. al. (2010) examined relationship between job insecurity, and the role of religious coping as moderator variables with job stress among Japanese academic staff. The result of study confirmed that there is a significant relationship between job insecurity with job stress, and religious coping moderate the relationship between job insecurity with job stress.

Conclusion - The majority of well conducted studies found that higher levels of religious involvement are positively associated with (indicators of psychological well- being) positive mental health. The studies shows their religious involvement is usually associated with better mental health.

There are increasing research evidences that religious involvement is associated with better mental health.

References :-

1. www.google.com
2. www.wikipedia.com
3. Adrienne J. Heinz et. al. (2010). "A focus group study on spirituality and substance abuse treatment." Substance use misuse. 2010; 45(1-2): 134- 153.
4. Alexander Moreira- Almeida et. al. (2006). "Religiousness and mental health: a review." RevistaBrasileira de Psiquiatria. Vol.28 no.3.
5. Ano G. G. (2005). "Religious coping and psychological adjustment to stress: a meta- analysis." Journal of clinical psychology. 61 (4):461-80.
6. Bayutayan, Shadiya Mohamed Saleh (2011). "The importance of Religious orientation in managing stress."International Journal of Psychological Studies.Vol. 3, No. 1; pages 113- 121.
7. Bemita Walton Moss et. al. (2013). "Relationship of spirituality or religion to recovery from substance abuse: a systematic review." Journal of Addictions Nursing.Volume 24, Number 4, Pages 217- 226.
8. Davidson R.J., J. KabatZinn, J. Schumacher, M. Rosenkranz, D. Muller & S.F. Santorelli (2003)." Alterations in brain immune functions produced by mindfulness meditation." Psychosom. Med. ; 65: 564-70.
9. Hill P.G., Pargament K.I. (2003). "Advances in the conceptualization and measurement of Religion and spirituality- implications for physical and mental health research." American Psychologist; 58(1): 64-74.
10. Juliana van olphenet. al.(2003). "Religious involvement, social support and health among African- American women on the East side of Detroit." *Journal of General Internal Medicine*. 18(7): 549-557.
11. Katherine M Harris, Mark J Edlund& Sharon L Larson (2006)." Relious involvement and the use of mental health care." Health services research. 41(2): 395-410.
12. Koieng H.G., George L.K., Peterson B.L. (1988). "Religiosity and remission of Depression in Medically ill older patients."American Journal of Psychiatry.155(4); 536-42.
13. Koeing H.G., McCullough M.E., Larson D.B. (2001). Handbook of Religion and Health . New York. Oxford University press; 2001.
14. McNamara P. (2002). "The motivational origins of religious practices."Zygon.37; 143-60.
15. Safaria, Triantoroet. al. (2010). "Religious coping, Job insecurity and job stress among Javanese Academic staff: A moderated regression Analysis." International journal of psychological studies.Vol.2, no. 2, pages 159- 169.

****

Effectiveness Of CSCL (Computer Supported Collaborative Learning) - A New Trend In Education

Prof. Anu Poonia * Rini Mathur **

Introduction - For the past three decades, educationists have recognized the value of learning collaboratively.

Collaborative learning refers to an instructional method whereby student are encouraged or required to work together on problem solving or learning tasks. In its ideal form, collaboration involves the mutual engagement of learners in a co- ordinate effort to solve a problem together or to acquire together new knowledge (Lehtinen et al ; 1998). As such collaborative learning is a method that is in line with the new conceptions of learning and opposed to the traditional direct transmission model, in which learners are assumed to be passive, receptive, isolated receivers of knowledge and skills delivered by an external source (De Corte, 1996 ; Verschaffel et al., 1998) .

At present human race is passing through an era of information revolution with continuous technological advancement. The speed of change is tremendous. Information and communication technology (ICT) supported by microelectronic infrastructure is making its presence felt in the remotest part of the world. The use of computers, telephones, mobile and internet has brought the world so close that the concept of global village has become a reality.

However, the ability to combine the above two ideas i.e. collaborative learning and computer support or education and technology ; to effectively enhance learning remains a challenge – a challenge that CSCL is designed to address.

Computer supported collaborative learning CSCL is a relatively new paradigm within collaborative learning which uses technology in a learning environment to help mediate and support group interactions in collaborative learning content.

Definitions - CSCL is concerned with meaning and the practices of meaning making in the content of joint activity, and with the ways in which these practices are mediated through designed artifacts. (Koschmann, 2002). The process and practices of meaning making focuses on the social practices of joint meaning making, rather than individuals' practices in social settings.

Sthal (2002) argues that an adequate theoretical foundation for CSCL must explain how individual practices are social without forgetting that the social is grounded in individual activities ; social reproduction, structuration and enactment. More generally, Sthal's formulation, as detailed in Koschmann's more elaborated definition of CSCL (2002), includes the study of "The ways in which these meaning making practices are mediated through designed artifact". Here Koschmann refers mainly to software objects designed to support collaborative learning, precisely CSCL technology, acting as mediational artifacts. (Alain Senteni).

"Put briefly, CSCL is focused on how collaborative learning supported by technology can enhance peer interaction and work in groups, and how collaboration and technology facilitate sharing and distributing of knowledge and expertise among community members. " (Lipponen, 2002).

History of CSCL - Interactive computing technology was primarily conceived by academics, but the use of technology in education has historically been defined by contemporary research trends. The earliest instances of software in instruction drilled students using the behaviorist method that was popular throughout the mid twentieth century. In the 1970s as cognitivism gained traction with educators, desirers began to envision learning technology that employed artificial intelligence models that could adapt to individual learners. Computer supported collaborative learning (CSCL) emerged as a strategy rich with research implications for the growing philosophies of constructivism and social cognitivism.

Earliest research that led to CSCL started in 1980s in the "Toronto school" and its CSILE project (Marlene Scardamalia and Carl Bereiter),the ENFL project at Gallaudet that initiated computer supported collaborative writing.

Though studies in collaborative learning and technology took place throughout the 1980s and 90s, the earliest public workshop directly addressing CSCL was "Joint problem solving and Microcomputers" which took place in 1983.

In the field of education it has created revolution and is very useful in teaching learning process and content of education. It considers all levels of informal and formal education from kindergarten to graduate study, as well as teacher education institutions, which have a responsibility to prepare teachers.

Computers in the classroom are often viewed with skepticism. They are seen by critics as boring, antisocial,

* Professor, Ex- Principal, Vidhya Bhawan G.S. Teachers College. M.L.S.U., Udaipur (M.P.) INDIA
** Research Scholar (Education) M.L.S.U., Udaipur (M.P.) INDIA

a-mechanical, inhumane form of training. CSCL is based on opposite vision: it proposes the development of new software and applications that bring learners together and that can offer creative activities of intellectual exploration and social interaction.

The exciting potential of the internet to connect people in innovative ways provided a stimulus for CSCL research. As CSCL developed, unforeseen barriers to designing, disseminating and effectively taking advantage of innovations, educational software became more and more apparent. CSCL "Computer supported collaborative learning" was used in a NATO- sponsored workshop in Maratea, Italy. The international society of the learning sciences established a biannual CSCL conference in 1995.

According to Pierre Dillenbourg (Strijbos, 2004) the first workshop on CSCL was held in 1988. The first full conference was organized at Indiana University (Bloomington) in 1995 and is held since than in every two years.

In 2006, the International journal of computer supported collaborative learning stated its aim "to promote a deeper understanding of the nature, theory and practice of the user, of computer supported collaborative learning. A main focus is on how people learn in the content of collaborative activity and how to design the technological settings for collaboration."

CSCL is considered as one of the most promising innovations to improve teaching and learning with the help of modern information and communication technology (Do Corte, 1996, Lehtinen), Transformation in the whole concept of learning, including significant changes in schooling, teaching and being a student.

Theories -The field of CSCL draws heavily from a number of learning theories.

Precursor Theories -

- The roots of CSCL can be found in **Vygotsky's Social Learning Theory** of particular importance to CSCL of particular importance to CSCL is the theory's notion of initialization or the idea that knowledge is developed by one's interaction with one's surrounding culture and society. The second key element is what Vygotsky called the **Zone of proximal development.** This refers to a range of tasks that can be to difficult for a learner to master by themselves but is made possible with the assistance of a more skilled individual or teacher.
- **Co operative Learning Theories ,** being related to collaboration also contribute to the success of CSCL. The five elements for effective cooperative groups identified by the work of Johnson and Johnson are positive interdependence, individual accountability, promoting, interaction, social skills and group processing.
- In the late 1980's and early 1990's Marlene Scardamalia and Carl Bereiter wrote seminal articles, leading to the development of key CSCL concepts : knowledge building communities and knowledge-building discourse, intentional learning and expert processes.
- Other learning theories that provide a foundation for CSCL include distributed cognition, problem based learning, cognitive apprenticeship and situated learning.

Collaboration Theories - Collaboration theory, suggested as a system of analysis for CSCL by Gerry Stahl in 2004, postulates that knowledge is constructed in social interactions such as discourse. The goal of collaboration theory is to develop an understanding of how meaning is collaboratively constructed, preserved and relearned through the media of language and aircrafts in group interaction.

Collaboration Theory proposes that technology in support of CSCL should provide new types of media that foster the building of collaborative knowing, facilitate the comparison of knowledge built by different types of sizes of groups, and help collaborative groups with the act of negotiating the knowledge they are building. Finally, collaboration theory –influenced technologies will strive to increase quality of learning moments via computer-simulated situations.

Practices and strategies for CSCL - One of the most common approaches to CSCL is collaborative writing which can be used to share work, form ideas and write synchronously. It can be in the form of a research paper, a Wikipedia entry, a short story etc.

Debates, discussions and other social learning techniques involving the examination of a theme using technology, group exploration like shared discovery of a place, activity or topic etc. in an online environment.

Project based learning and problem based learning creates impetus to establish team roles and set goals. Any file sharing or communication tools can be used to facilitate CSCL in such environments. Complex problems call for rich group interplay that encourages collaboration and creates movements towards a clear goal.

The instructor must introduce the activity in a thoughtful way that contributes to an overarching design for the course. The design should clearly define the learning outcomes and assessments for the activity. The instructor must engage all the student in assessment, in whatever form the design calls for, in order to ensure objectives have been met for all students.

A unique benefit of CSCL is that, with a proper design and proper teacher facilitation student can use technology to build learning foundations with their peers.

Criticism and Concerns - Though CSCL holds promise for enhancing education, it is not without barriers and challenges. Though access to computers has improved in the last 15 to 20 years, teachers and students attitude about technology and sufficient access to internet connected computer continue to be barriers to more widespread usage of CSCL pedagogy.

Instructors find that the time needed to monitor student discourse and review, comment on and grade student product is more demanding than traditional teaching. Furthermore, to warrant collaborative work, the problem must be of sufficient complexity, otherwise team work is useless.

There is also concern that instructors may be tempted to apply technology to a learning activity that can very adequately be handled without the intervention or support of computers. Thus, student and teachers learn to use the "user friendly" technology, they never get to the act of collaboration. As a result, computers become and obstacle to collaboration rather than supporter of it.

References :-

1. Koschmann, T., Feltovich, P., Myers, A., & Barrows, H. (1992) . Implications of CSCL for problem based learning. Special Issue on Computer Supported Collaborative Learning: Journal of the life Science, 21(3), 32-35.
2. Stahl, G. Koschmann, T., & Suthers, D. (2006)- Computer Supported Collaborative Learning: An historical perspective. In R.K. Sawyer (Ed.), Cambridge handbook of the learning science (pp. 409-426) Cambridge, U.K.: Cambridge University Press.
3. Resta, P. & Laferriere, T. (2007)- Technology in support of collaborative learning educational Psychology Review, 19, 65-83.
4. Shank, P. (2008) Competencies for online instructors learning Peaks, Retrieved October 16, 2008.
5. Onrubia, J. & Engel, A. (2009) Strategies for collaborative writing and phases of knowledge construction in CSCL environments. Computer & Education, 53(4), 1256-1265.
6. Stahl, G. & Hesse, F (2009) Practice Perspective in CSCL. International Journal of Computer supported collaborative learning, 4 (2). Pp. 109-114.
7. A Sterhan, C., Schwarz, B. (2010), Online moderation of synchronous e- argumentation. International Journal of Computer Supported Collaborative Learning, 5 (3), 259-82.

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

Continuous comprehensive evaluation (CCE) – as a powerful tool of all round evaluation of learner

Priya Mishra *

Introduction - Education aims at making children capable of becoming responsible, productive and useful members of the society. Knowledge, skills and attitude are built through learning experiences and opportunities created for learners in school evaluation is a key part of teaching learning process

What Is Evaluation - Evaluation can be viewed as a component of curriculum with the twin purpose of effective delivery and further improvement in the teaching – learning – process.

Evaluation not only measures the progress and achievement of the learners but also the effectiveness of the teaching materials and methods used for transactions.

Evaluation is important because it is seen as an integral part of teaching – learning process in which learners will not perceive tests and examination with fear. It always leads to diagnosis, remedial action and enhancement of learning,

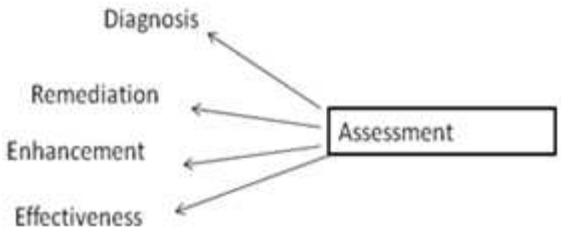

Importance of Evaluation - Evaluation Needs to

1. use a variety of ways to collect information about the learner's learning and progress in all subjects.
2. collect information continuously and record the same.
3. give importance to each learner's way of responding and learning.
4. report on a continuous basis and be sensitive to every learner's response
5. provide feed back that will lead to positive action and help the learner to do better.

We can see many changes in parameter of evaluation since last many years.

Changes in Evaluation system in long period - With the period of time the focus has shifted to developing a deep learning environment. There is a paradigm shift in the pedagogy and competencies from controlling to enriching to empowering schools.

Traditional Schooling	Enriching Schooling	Empowering Schooling
1.Teacher centered	Student Centred	Experience centered
2. Subject and	Self directed	Virtual authenticity
Class teacher directed		
3. Sorting and	Continuous assessment	Multiliteracies Ranking individuals

Drawbacks of traditional Evaluation system

Previously in traditional evaluation system -

1) evaluation of scholastic learning was assessed on the basis of marks.
2) child's co – scholastic learning ability cannot be evaluated in traditional evaluation system.
3) limited techniques of evaluation do not identify learner's level of attainment –
4) Lable pans/ fail is not proper as it develops spuriously complex in learner.
5) Causing frustration and humiliation as a result of success or failure.

Emergence of CCE - To overcome the drawbacks of traditional evaluation system, continuous comprehensive evaluation system (CCE) has been introduced since last decade

What is CCE - Continuous and comprehensive evaluation refers to a system of school based assessment that covers all aspects of student's development. It emphasizes two fold objectives –

1. Continuity in evaluation and assessment of board based learning.
2. Behavioral out come.

Components / Features of CCE

1) Continuous

1. Continual - It measures the behavioral changes take place at every span of time from the beginning and during the instructional process

* Research Scholar, Career Point University, Kota (Raj.) INDIA

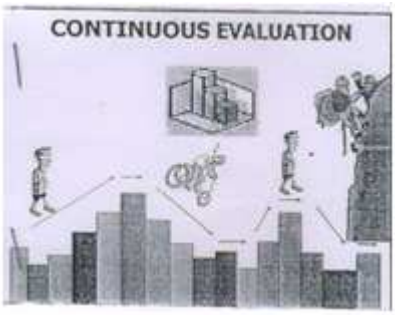

2. Periodicity – Frequency

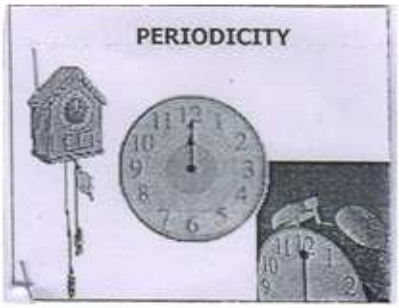

2) Comprehensive – It evaluates the progress of learners all as pacts of development

1. Scholastic – Subject specific areas
2. Co – Scholastic – Life skills, attitudes and values and other co – curricular activities
3. Includes a variety of tools and techniques for assessment of the learners.

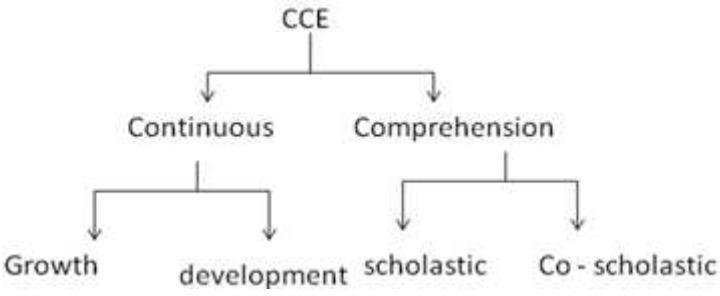

Steps for CCE

1. For Scholastic Evaluation

1.1 Formative Assessment (FA)

1. Assessment which is carried throughout the year by the teacher formally and informally
2. It is diagnostic and remedial

1.2 Summative Assessment (SA)

1. End of term or end of the year exams
2. Feedback on learning (assessment of learning) to teachers and parents.

Advantages of CCE System

1. It helps the teacher to organize effective teaching strategies.
2. Continuous evaluation helps in regular assessment to the extent and degree of learner's progress
3. By Continuous evaluation, children can know their strength and weaknesses
4. It helps in making decisions for the future, regarding choice of subjects, courses and careers.
5. CCE motivate children to develop good study habits to correct errors and to direct their activities towards the achievement of desired goal.
6. CCE reduce stress on children
7. Provide space for the teachers for creative teaching

Conclusion - The major emphasis of CCE is on the continuous growth of students ensuring their intellectual, emotional physical, cultural and social development in compare to traditional evaluation CCE uses as a means of motivating learners assessment to provide feed back and do follow up to improve upon the learning in the classroom and to present a comprehensive picture of a learner's profit. That's why it is a powerful tool of all round evaluation of learner.

References :–

1. CBSE Manuals
2. WWW.cbse.in
3. Kothari.

****

To Study Benefits Of Faculty Retention In Private Commerce Colleges

Dr. Abha Singh * Pallavi Mane **

Introduction - Faculties are an Institution's **intellectual asset** that is responsible for the day-to-day educational operations. Although retaining competent Faculties in an Institution generates goodwill in the work force, it also has a positive effect on the product or services an Institution offers.
Faculty Retention is a financial gain for Institutions.
An effective **"Faculty Retention Program"** is a systematic effort to create and foster an environment that encourages Faculties to remain employed by having policies and practices in place that address their diverse needs to their utmost satisfaction.

Indian economy faces a huge challenge in terms of skilled human resource capacity, which has a deliberating effect on its ability to make strides in the areas of socio-economic and political development. While various efforts have been made to address the problem, there seems to be little progress, due to a variety of reasons, particularly the inadequate investment in **"Education Training Programs."**

In the past, **"Education Jobs"** were considered desirable and sufficient candidates could be found to fill most certain jobs. Moreover, once employed, Faculties would often spend their entire careers in Education Service.

In areas where there was a change, new Faculties could be recruited easily. Today there is a high demand in the **"Education Sectors"** for **"Faculties"** possessing particular Qualifications, Experience and are Professionals in the subjects of Management.

The supply of Qualified Faculties is limited and good workforce planning requires a **twofold approach of Aggressive Recruitment and Innovative Retention Strategies.** Retention policies need to focus on elimination of unwanted makeovers.

"The escape route from the mass poverty now in most part of the country is improved income. This means Invention and Reinvention, Innovation, and Reverse Innovation. ***Such processes require skills that can be produced only in Education Programs."***

Good Quality Education is an important avenue towards nurturing the Faculty needed for Universal Education.

In order for Education to develop the above, it must ensure that its own areas are well-developed. "The excellence of Education is a function of the people it is able to enlist and retain on its faculties."

Benfits Of Faculty Retention

- **Reduces Acquiring Talent or Cost-Per-Hire Savings -** Institutions who retain Faculties experience lower cost-per-hire. The fewer Faculties, you have to hire to replace Faculties who are fired or who resign, the more you save on hiring costs. Cost-per-hire expenses include advertising for recruiting applicants, fees for participation in job fairs and salaries for employment specialists or outside recruiting experts. In addition, employers incur costs in training fees, materials and loss of productivity due to ramp-up time. Some Institutions have on-the-job training, which costs for each hire in terms of the time and expense of mentoring a new Faculty. Retaining Faculties reduces cost-per-hire expenses, which in turn, improves the Institution's bottom line.
- **Higher Faculty Satisfaction -** Retaining Faculties can be a lot easier than handling terminations and resignation. There is less stress in retaining Faculties, provided retention efforts are proactive instead of reactive. **Proactive retention** means **maintaining Faculty satisfaction and morale** so your Faculties don't feel like they have to find employment elsewhere to be happy. **Reactive retention** occurs when an employer attempts to persuade an Faculty to stay on only after the Faculty announces his intent to leave the Institution. When employers engage in proactive retention, there's a greater likelihood that Faculties feel the Institution values and appreciates their work. Faculties who feel their expertise is valuable to the Institution's success are likely to be highly motivated and productive educators.
- **Motivate Faculties -** Track Faculty Skills, Goals & Progress To Increase Productivity.
- **Greater Productivity and Job Knowledge -** Seasoned Faculties are extremely valuable to your Institution. Long-term Faculties or Faculties with substantial product and service knowledge are **an asset**, especially when you have new Faculties for whom the learning curve slows productivity. Retaining Faculties who, by virtue of their tenure and experience, understand and appreciate the Institution's philosophy, processes and policies can become excellent mentors for newly hired Faculties. In addition,

* Professor, Govt. Arts & Commerce College, Indore (M.P.) INDIA
** Research Scholar, School of Commerce, D.A.V.V., Indore (M.P.) INDIA

retaining talent boosts your Institution's ability to provide higher quality education and services. Experienced, high-performing Faculties who are comfortable with sharing opinions and making suggestions for improvement can help you develop innovative ways to patent new ideas and concepts.

- **Training and Development -** Retaining workers reduces training costs. Recruits need to be trained in Education practices specific to the employer's software, culture and office practices. Training requires one or more current Faculties to take time away from their job responsibilities to educate the new Faculty on the Institution's way of inculcating Education. Two or more people are on the Institutions payroll producing the results of one person. In the first 90 days, a new hire costs the Institution money. When Institutions retain Faculties, training money can be used to further develop the work force. Long-term associates have the experience to review what has worked before and apply that knowledge to future situations.
- **Skilled Labor Force -** Faculty Retention develops a strong staff. Working individually or in teams these individuals share knowledge and expertise. The future Educators of an Institution come from this work pool. These Faculties are the historians of an Institution's successes and challenges, and provide mentoring to new hires. They are committed to the continued growth of the origination and its work force. These individuals have finessed the inner workings of an Institution. As they continue to develop their skills, the Institution benefits.
- **Impact on Educational Patrons -** Faculty retention has a positive impact on Educational Patrons. Turnover brings disruption in customer service, loss of Education and possible negative Education impacts. An Institution's customer base expects consistent and reliable service. There is a learning curve with new hires and thus the potential for error or poor communication with a clientele. This can impact Education relationships. Long-term Faculties develop relationships with regular patrons. They know the students preferences and can anticipate future needs. This knowledge develops over time.
- **Improved Succession Planning -** Succession planning involves providing training, development and leadership opportunities to Faculties who want more responsible roles. Another way to define succession planning is creating Faculty career tracks. Retaining Faculties who demonstrate skills and capabilities your Institution needs in its future leaders can make your succession planning more effective and realistic. With respect to succession planning, the importance of retention is that it can make the difference between the short-term and long-term success of your Institution. Longevity in the Education world is, therefore, another benefit of retention that serves the Institution's Education objectives as well as Faculties' professional goals. Retention and Turnover are terms used by Institutions to describe the number of Faculties who leave the Institution and the number of Faculties who choose to stay. Both measurements are important, and in fact, turnover is actually a necessary element in the workplace. However, there are substantially greater benefits in Faculty retention. The benefits range from lower cost-per-hire to higher job satisfaction and Faculty morale.

Recommendations And Conclusions -The realisation of the vision "to be a leading Institution of Academics" is wholly dependent on the Knowledge, Skills and Abilities of Staff Members that are employed. ***The institution should develop a proper Innovative Retention Strategy*** **.** Institutions should, therefore, be prepared to make financial provisions in order to retain staff members. A distinct difference should be made between Administrative, Support and Academic staff when developing a retention strategy.

1. For Academic Staff Members, the retention strategy should include: Personal and Professional development; flexible working hours (for academic staff members); and **inclusive time for research activities**.
2. For Administrative Staff Members the retention strategy should include: Career development; challenging tasks; autonomy; and more responsibilities.

The most intangible cost, and one that is most difficult to estimate, however, is that of losing future leaders. If Institutions fail to recruit the best academic minds, that loss of talent will not only negatively affect students in the post-secondary system, but will also translate into a cost borne by all individuals in current and future generations.

Future work should also include the tracking of Staff who have left the institutions, in order to collect personal accounts explaining their departures. This will assist us in understanding Staff Attrition from the perspective of those who have actually left the Institutions.

Another useful focus for further work is a comparison of conditions of services between Academic Staff and their counterparts, with similar qualifications and experience, who are employed outside of Institutions.

It is a belief that when the above recommendations are considered and implemented, the staff members will remain with the institution for a longer period and thus make a **Recognised Institution** with a positive workforce that strive for effective service delivery.

References :-

1. Books on Faculty Retention, Management and Strategies.
2. www.iimidr.ac.in
3. www.leafcutter.com
4. www.ehow.com

****

Teaching Competencies And Functions Of Teacher Educator

Shilpa Bhatnagar *

Introduction - Teacher educators are defined as people "who provide instruction or who give guidance and support to student teachers, and who thus render a substantial contribution to the development of students into competent teachers" They are the ones who are responsible for the quality of teachers, and, therefore, that of education. Thus, it is of crucial importance that the questions above are addressed by exploring what contributes to the professional development of teacher educators and by explicitly setting the quality requirements and specific competencies for them. The revitalization and modernization of teacher education programmed can develop the necessary skills and competencies Teaching is the process by which a person helps other people learn. It is one of our most important activities. Teaching helps people to gain knowledge and attitudes they need to be responsible citizens, earn a living, and lead a useful, rewarding life. "Competency is ordinarily defined as adequacy for a task or as possession of required knowledge, skills and abilities. It emphasizes the ability to do, rather than the ability to demonstrate knowledge" The teaching competency of a teacher can be judged from the teachers' intended changes in the learner's behavior and the extent and the nature of the actual change in the learner's behavior. Competent or effective teaching occurs when the intended changes, selected by the teacher, are both desirable and constructive for the learner and the intended changes are actualized as a result of teaching. Teaching competency are specific instructions activities and procedures that a teacher may use in his classroom."

The following are the general teaching competency that can be applied at many levels- primary, secondary, higher education:-

- Set induction skills.
- Stimulus variation skills.
- Fluency in questioning skills.
- Explaining skills.
- Illustrating with examples skills.
- Probing questions skills.
- Reinforcement skills.
- Increasing pupil's participation skills.
- Using blackboard skills

To maintain the standards a teacher educator must have seven key elements of teaching competencies, they are;

1. **Know the students and how they learn -** Lead teachers are expected to select, develop, evaluate and revise teaching strategies "to improve student learning using knowledge of the physical, social and intellectual development and characteristics of students" in order to meet the needs of students from diverse cultural and economic backgrounds
2. **Know the content and how to teach it -** Lead teachers must be able to "lead initiatives to evaluate and improve knowledge of content and teaching strategies," as well as to "monitor and evaluate the implementation of teaching strategies to expand learning opportunities and content knowledge for all students"
3. **Plan for and implement effective teaching and learning -** Qualified lead teachers should "demonstrate exemplary practice and high expectations and lead colleagues to plan, implement and review the effectiveness of their learning and teaching programs"
4. **Create and maintain supportive and safe learning environments -** Lead teachers are expected to be active in "the development of productive and inclusive learning environments," as well as to "lead and implement behavior management initiatives" in order to ensure students' well-being.
5. **Assess, provide feedback and report on student learning -** Lead teachers are required to "evaluate school assessment policies and strategies" to diagnose learning needs and to "co-ordinate student performance and program evaluation using internal and external student assessment data to improve teaching practice
6. **Engage in professional learning -** Lead teachers should "initiate collaborative relationships to expand professional learning opportunities, engage in research, and provide quality opportunities and placements for pre-service teachers"
7. **Engage professionally with colleagues, parents/ careers and the community -** Lead teachers are expected to "model exemplary ethical behavior and exercise informed judgments in all professional dealings with students,

*Research Scholar, Mohan Lal Sukhadiya University, Udaipur (Raj.) INDIA

colleagues and the community," as well as taking a "leadership role in professional and community networks and supporting the involvement of colleagues in external learning opportunities"

Functions of teacher educators -

1. Facilitators of the learning process for student teachers - Effective teacher educators play a major role in facilitating and supporting the reflective learning process student teachers develop (see, Richards & Lockhart, 1994). This, however, needs be accomplished by sharing not only their theoretical knowledge, but also by putting this knowledge into their own practice, in other words, by "making tacit knowledge explicit"

2. Developers of new knowledge and curricula - Teacher educators are expected to create new knowledge, consisting of practical knowledge in the form of new curricula and learning programs for teacher education and schools, as well as theoretical knowledge generated from research.

3. Assessors and Gatekeepers - Another key function of teacher educators is assessment; both formative assessment enhancing learning, as well as summative assessment that requires teacher educators to act as gate-keepers and decide who has the necessary training and skills to become a teacher. In this sense, teacher educators not only provide support to candidates seeking enter the profession, but also act as their judges before they can do so, a dual role some have found to be problematic

4. Collaborators and team members - Efficient teacher educators are collaborators with members of the university and other higher educational institutions and decision makers (Koster, Korthagen, & Wubbels, 1998), as well as with teachers and school administrators where teacher candidates' student-teaching takes place. As discussed by Nunan (1992), collaboration is an important component of language learning and teaching. Thus, it is essential that teacher educators help student teachers to develop the skill of being good team members through involvement with the respective contexts they serve (university and school); by promoting partnership in their relationships with others (i.e., with student teachers, or other faculty); and by encouraging student teachers to take part in joint efforts such as group-work and research projects.

All of the above-mentioned tasks are interconnected with the principles and values in teacher education, and thus, are consistent with the standards for teacher educators, as standards describe a requested level of professionalism, translated into actions and performances.

Conclusion - In conclusion, the nature of teaching about teaching demands skills, expertise and knowledge that should not be taken for granted. The standards for teacher educators must be raised, so that such skills, expertise and knowledge can be cautiously investigated and articulated. Furthermore, by doing so, professional development opportunities for teacher educators will arise and their impact within the profession will advance.

References :-

1. Donald M., (1982): Teacher Effectiveness Encyclopedia of Educational Research, p. 82.
2. Gordon,T. (1974). Teacher Effectiveness Training. New York: Wyden
3. Gupta V.K., (1995) :Teaching and Learning of Science, Vikas Publishing House Pvt. Ltd, New Delhi, p. 257
4. Jangira. N.K. (1979). Teacher Training Teaching and Effectiveness- An Experiment on Teacher Behaviour. New Delhi: National Publishing House
5. Mouly George .J. (1967). Psychology of Effective Teaching. Jh London:Rinchart and Winston, Holt..

****

Changes in India's Education Policy-Possibilities and Prospects

P. P. Mishra * J. K. Verma **

Abstract - The education has been affected by political motives for long. The knowledge remains imperishable even after complete banishment of life, therefore it must be developed and kept so as to maintain life worth living.
Keywords - Higher education, Indian perspective, Employment.

Introduction - The independence has been a landmark in the political history of 20th century India. Since then we have marched miles ahead but our viewpoints regarding all the fields of our activities have never conformed to Indianness. Socialism in our politics gave birth to several regional forces playing caste-card, disrupting social harmony and sowing seeds of hatred among people at large. No one thought of actual all-round development and the divisive politics brought chaos in almost all the spheres of human concern.

The entire education system of our country has been in the grip of communists for long (say since independence) and the torch bearers neither had any knowledge of Indian perspective nor did they ever show any concern for India and its people. Years and decades passed by and the educationists kept teaching the stakeholders that their parents were illiterate and the grandparents nomads. The teacher who ever punishes a student for disobedience, indiscipline or poor performance is seen as a culprit or a criminal and deemed fit to be brought to the books and if he seeks help of students in making classroom clean, he is declared promoting child-labour.

Indian political system vis-a-vis Indian education system have been developing, changing and transforming simultaneously and the two cannot be studied separately. When the politics was struggling for its existence during last two decades and the coalition culture was digesting all ethics of the political system the education also stood at the threshold of ransack, but as the instability stabbed into with the advent of Modi all concerned with the education be they the teachers or students have fallen in the lines of some achievements. The youth who proved to be the biggest supporter of PM Modi engaged in their jobs without asking for anything. They only knew that something will happen and they will not be strayed away in a gravitation free space after completion of their education.

The youth of the country want employment so that they may live with dignity but how can employment be provided in a socialistic system which pronounces 'work for every hand- wages for every work'. This Utopian idea cannot come true in a country of more than 12.5 million population and discrete demographic design and having the same mentality of getting almost similar kind of job having almost same job satisfaction. Thus in the aforesaid socialistic pattern we can swell the gross enrollment ratio and claim to be at par with other developing countries but this swollen GER widens the gap between formal education and actually attained skill through it. Only degree cannot solve any problem and we need skill to earn our livelihood. This skill development is also an unpragmatic step towards job security, albeit government stands firm and determinate in its resolve. Skilled India is a dream which can come true only by the joint efforts of the government and the youth and this can pave the way to eliminate any family having any of its youth unemployed.

Inclusive development and the trust are bipartite. These can give intense feeling of happiness and pleasant excitement at the idea making level but the youth represent an idea which is made for their change. The politicians can utilize their aggression at the time of elections but if they deviate from fulfilling the dreams, keeping the promises and playing with the innocent dream of getting the dignity they soon array a movement which is hard to suppress. They trust you without verification but ultimately they verify their trust and uproot the well rooted despicable thoughts from the society.

References :-

1. Barnett, Ronald – 1992. Improving Higher Education : Total Quality care, Buckingham : SHRE & OU. BSI 1991. Quality Vocabulary Part 2 : Quality Concepts and Related Definitions. London : BSI.
2. Singh Y K, Nath R – History of Indian Education System.

* Department of Mathematics ,Government P. G. College, Panna (M.P.) INDIA
** Department of Mathematics ,Government P. G. College, Panna (M.P.) INDIA

माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के वाचिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. निशा महाराणा * अनिल बाबू **

शोध सारांश – प्रस्तुत शोधकार्य में माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी अशासकीय विद्यार्थियों के वाचिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। शोध के लिए मंदसौर शहर के 68 (26 ग्रामीण एवं 42 शहरी) विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया। प्रदत्तों के संकलन के लिए ओझा एवं रे चौधरी: वाचिक बुद्धि का परीक्षण का उपयोग किया गया। शोध परिणामों से प्राप्त हुआ कि माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के वाचिक बुद्धि में सार्थक अंतर नही हैं।

प्रस्तावना – वाचिक बुद्धि परीक्षण उस परीक्षण को कहा जाता है, जिनमें लिखित शब्दों अर्थात लिखित भाषा का प्रयोग निर्देश देनें तथा एकांशों या प्रश्नों को हल करने में किया जाता है। इस तरह के बुद्धि परीक्षण के क्रियान्यवन के लिए व्यक्ति को पढ़ा-लिखा होना अनिवार्य है। ताकि वह पढ़कर सभी बातों को समझ कर फिर प्रश्नों के उत्तर लिखकर दे सके या बता सके। बुद्धि एक ऐसा सामान्य शब्द है जिसका प्रयोग हम अपने दिन प्रतिदिन के बोलचाल की भाषा में करते है, जिसके कारण दो के विद्यार्थियों सीखने एवं समझने के स्तर में, अच्छी स्मरण शक्ति में, तार्किक चिंतन में तथा समस्या को हल करने के स्तर में अन्तर होता है। विद्यार्थियों के जीवन में सफलताएँ और असफलताएँ दोनों आती है जो विद्यार्थी दोनों में समायोजन स्थापित कर लेता हैं या जो विद्यार्थी जितने कम समय में वातावरण से अपने अनुकूलित कर लेता हैं, उसे बुद्धिमान विद्यार्थी माना जाता है।

समस्या कथन – माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के वाचिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

उद्देश्य –

1. माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के वाचिक बुद्धि का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी लड़कियों के वाचिक बुद्धि का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी लड़कों के वाचिक बुद्धि का अध्ययन करना।

परिकल्पना –

1. माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के वाचिक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी लड़कियों के वाचिक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।
3. माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी लड़कों के वाचिक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध प्रविधि –

- न्यादर्श : प्रस्तुत शोधकार्य में जनसंख्या के रूप में मंदसौर जिलें के दो विद्यालय के कक्षा आठवीं के विद्यार्थी थे। शोध हेतु न्यादर्श के लिये उद्देश्यपरक न्यादर्श चयनित तकनीक अपनायी गई। शोध में वाचिक बुद्धि के तुलनात्मक अध्ययन हेतु जनसंख्या में से दो अशासकीय विद्यालय के आठवीं कक्षा के 68 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया। उपरोक्त सभी न्यादर्श माध्यमिक शिक्षा मंडल भोपाल के 2014-15 के नियमित तथा हिन्दी माध्यम के विद्यार्थी थे।

उपकरण - प्रस्तुत शोध में वाचिक बुद्धि का परीक्षण करने के लिए ओझा एवं रे. चौधरी द्वारा निर्मित वाचिक बुद्धि परीक्षण का उपयोग किया गया।

सांख्यिकीय प्रविधि - दोनों समूहों के माध्यों कि तुलना करने के लिए स्वतत्र टी टेस्ट का उपयोग किया।

परिणाम एवं विवेचना –

तालिका – 1 - माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के वाचिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन।

क्षेत्र	N	M	SD	`t' level	Inference
ग्रामीण विद्यार्थी	26	81.23	11.28	1.23	NS
शहरी विद्यार्थी	42	77.97	10.15		

उपरोक्त तालिका से पता चलता है कि माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के वाचिक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अत: प्रथम परिकल्पना माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के वाचिक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है को स्वीकार किया जाता है। हम जानते है कि गाँव एवं शहर सभी के विद्यार्थी, अभिभावक एवं शिक्षक जागरूक हो गये है, फलस्वरूप शिक्षा के स्तर में वांछनीय परिवर्तन आया है। अत: दोनो जगह के विद्यार्थियों के वाचिक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं आया।

तालिका – 2– माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी लड़कियों के वाचिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन।

लिंग	N	M	SD	`t' level	Inference
ग्रामीण लड़कियाँ	6	81.83	9.08	.75	NS
शहरी लड़कियाँ	24	78.75	8.93		

उपरोक्त तालिका के आधार पर हमें यह पता चला है कि माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी लड़कियों के वाचिक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अत: द्वितीय परिकल्पना 'माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी लड़कियों के वाचिक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है' को स्वीकार किया जाता है। हम जानते

* प्राचार्य, सरस्वती शिक्षा महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक, सरस्वती शिक्षा महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत

है कि शिक्षा की नई सोच हर जगह लड़कियों की शिक्षा के प्रति जागरूक है। माता–पिता भी अब लिंग को दरकिनार कर रहे है फलत: स्थान लड़कियों के वाचिक बुद्धि में आड़े नहीं आ रहा है। चाहे गाँव हो या शहर हर जगह की लड़कियाँ शिक्षा के क्षेत्र में आगे है।

तलिका –3– माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी लड़को के वाचिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन।

लिंग	N	M	SD	`t' level	Inference
ग्रामीण लड़के	20	81.05	12.07	1.31	NS
शहरी लड़के	18	76.94	11.73		

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी लड़को के वाचिक बुद्धि कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। अत: तृतीय परिकल्पना 'माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी लड़कों के वाचिक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है' को स्वीकार किया जाता है। 21वीं सदी में कौशलयुक्त एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा ने ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों को समान शैक्षिक धरातल पर खड़ा कर दिया है। यही वजह है कि उनके वाचिक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

निष्कर्ष – प्रस्तुत शोध से प्राप्त परिणामों की विवेचना के द्वारा यह निष्कर्ष निकलता हैं कि अशासकीय माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के वाचिक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर हम कह सकते है कि वैश्वीकरण के इस दौर में लिंग एवं वातावरण या अन्य कारक विद्यार्थियों के उपलब्धि के आड़े नहीं आ रहा है। शिक्षा के सार्वभौमिकरण का सकारात्मक प्रभाव सभी जगह सार्थक हो रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. सिंह, अरूण कुमार (2013) शिक्षा मनोविज्ञान, पटना: भारती भवन।
2. पाल, हंसराज(2011) प्रयोगात्मक शिक्षा मनोविज्ञान, दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय।
3. मंगल, अंशु (2011) शैक्षिक अनुसंधान की विधियाँ एवं शैक्षिक सांख्यिकी, आगरा: राधा प्रकाशन मन्दिर।
4. भार्गव, विवके (2012) शैक्षिक मनोविज्ञान, आगरा: राखी प्रकाशन।
5. राय, पारस नाथ (2010) अनुसंधान परिचय,आगरा: लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
6. ओझा, आर. के. एवं चौधरी, के. रे. वाचिक बुद्धि परीक्षण, आगरा साइकोलॉजी रिसर्च सेल, आगरा।

****

माध्यमिक स्तर के विधार्थियों में मानसिक प्रतिमान स्तर का स्वायत्ता अधिगम से सम्बन्धता का पूर्व एवं पश्च् परीक्षण में अन्तर

प्रो. अनु पूनिया * शंकर लाल मीणा * *

शोध सारांश – इस अध्ययन का उद्देश्य था कि माध्यमिक स्तर के विधार्थियों में मानसिक प्रतिमान का स्वायत अधिगम से सम्बन्ध ज्ञात करना इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उदयपुर जिले के माध्यमिक विद्यालयों तथा उनमें भी कक्षा IX के विध्यार्थियों का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से किया जिसमें न्यादर्श के रूप में 30 विधार्थियों का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से किया। उपकरण के रूप में स्वनिर्मित उपकरण का चयन कर प्रायोगिक अभिक्रिया से पूर्व एवं पश्च् परीक्षण द्धारा तथ्यों का संकलन किया परिणामस्वरूप पाया गया कि माध्यमिक सतर के विधार्थियों में मानसिक प्रतिमान का स्वायत अधिगम के स्मबन्ध का पूर्व एवं पश्च् परीक्षण में सार्थक अन्तर पाया गया।

प्रस्तावना – ज्ञानात्मक विकास में व्यक्ति बाह्य जगत का ज्ञान मानसिक संरचना से करता है। ये मानसिक संरचना व्यक्ति को सांमजस्य स्थापित करने की क्षमता प्रदान करती है, पियाजे के अनुसार बालक अपनी आयु के साथ स्वत: क्रियाएँ करने लगता है। यही क्रियाएँ मानसिक संरचना के रूप में कल्पना, क्षमता, चिन्तन एवं पुनर्प्रस्तुतीकरण के रूप में मानसिक प्रतिमान के विचार का निर्धारण करती है। इसमें केवल विचार होते है जो धीरे–धीरे तार्किक चिन्तन की क्षमता तथा सीखने के कौशल विकसित करते है जैसे मूर्त से अमूर्त चिन्तन की और बढ़ते है तथा बालक अधिगम करने लगता है। जैसे तार्किक क्रमबद्धता, अनुमान लगाना, भविष्य की योजना बनाना, अपना निर्णय कर नियम बनाना, आगमन–निगमन चिन्तन, अनुभव से चिन्तन की ओर प्राप्त ज्ञान का पुनर्प्रस्तुतीकरण करना तथा अपनी कल्पना से अधिगम करते है। धीरे–धीरे बालक में स्वयं सीखने की प्रवृति का विकास होता है और वह अपने तार्किक विचार से स्वत: निर्णय लेता है तथा स्वयं कार्य करके अधिगम करने लगता है जिसे स्वायत अधिगम कहा जाता है। स्वायत अधिगम एक स्वयं निर्देशित शिक्षा है, जो सीखने की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। George Aloumps का मानना है कि स्वायत अधिगमकर्ता के पास अच्छी योजना व कौशल का होना आवश्यक है जिसमें वह प्रत्यक्ष रूप से उस विषय में पठन व खोज करे जिसमें वह सोचता है। स्वायत अधिगम इसके लिए निर्देशन प्रदान करता है।

अत: स्वायत अधिगम परासंज्ञान के आधार पर स्वयं सीखने के लिए स्वतन्त्र होकर अपने निर्णय से ज्ञान प्राप्त करता है या अधिगम करता है।

स्वायत अधिगम के सिद्धांत

- सीखने में गहरी समझ विकसित करना।
- सीखने में स्वायतता की भावना विकसित करना।
- सीखने में अपनी जिम्मेदारी एवं आचरण विकसित करना।
- सीखने में अपने निर्णय से समस्या का समाधान करना।
- सीखने में अपने तर्क से ज्ञान प्राप्त करना है।
- सीखने में अपनी कल्पना से उददेश्य प्राप्त करना है।

गिब्स इसी तरह की अवधारणा का निर्माण करते है। जैसे छात्र पाठयक्रम के साथ गतिविधि एवं निर्णय लेता है कि मुझे क्या सीखना है, कैसे सीखना है, क्यों सीखना है, क्या परीणाम है क्या मानदण्ड है। ज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त में निम्न बातें स्पष्ट होती है– बच्चे ज्ञान ग्रहण करने में स्वयं क्रियाशील होते है, बच्चे ज्ञान का निर्माण स्वयं करते है उन्हें सुविधा देकर स्वयं सीखने का अवसर देना चाहिए तथा करके सीखने का अवसर देकर प्रेरित करना चाहिए।

अत: मानसिक प्रतिमान का स्वायत अधिगम से सम्बन्ध के बारे में विचार चिन्तन को सम्प्रत्य काल में शिक्षण की उघतन प्रक्रिया के बारे में स्वीकारा जा रहा हैं कि ***'माध्यमिक स्तर के विध्यार्थियों में पूर्व–पश्च् परीक्षण के आधार पर मानसिक प्रतिमान का स्वायत अधिगम से सम्बन्ध ज्ञात करना'*** इसी उददेश्य की पूर्ति के लिए परिकल्पना का निर्धारण किया गया।

परिकल्पना – *'माध्यमिक स्तर के विधार्थियों में पूर्व–पश्च् परीक्षण के आधार पर मानसिक प्रतिमान का स्वायत अधिगम में कोइ सार्थक अन्तर नहीं है।'*

न्यादर्श –प्रायोगिक अभिक्रिया हेतु न्यादर्श के रूप में चार माध्यमिक विद्यालयों का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से किया तथा प्रत्येक विद्यालयों से कक्षा खद के 30 छात्र (15 छात्र प्रति विद्यालय) का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से किया गया।

चर –

1. स्वतन्त्र – मानसिक प्रतिमान
2. आश्रित चर – स्वायत अधिगम

उपकरण – स्वनिर्मित उपकरण –

1. मानसिक प्रतिमान के घटको पर आधारित आव्यूह
2. स्वायत अधिगम के घटको पर आधारित आव्यूह

परिणाम – तथ्यों का सकंलन करने के पश्चात उनका विश्लेषण सांख्यिकीय विधि से किया गया तथा टी मूल्य परिकल्पना को जाँचा गया।

* प्राध्यापक, वी.बी.टी.टी.सी. मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (म.प्र.) भारत

सारणी संख्या 1.1 (देखे)

निष्कर्ष – राजकीय एवं माध्यमिक विद्यालयो के छात्र–छात्राओं के पूर्व एवं पश्च् परीक्षण के संमको को आधार बनाकर यदि देखा जाये तो हम पाते है कि मानसिक प्रतिमान का स्वायत अधिगम से सम्बन्ध है।

इसी प्रकार राजकीय माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं निजी माध्यमिक विद्यालय के छात्र से कम अंक प्राप्त करते है उनमें स्वायत अधिगम धीमी गति से विकसित होता है। और इसी प्रकार राजकीय माध्यमिक विद्यालय के छात्राओं में स्वायत अधिगम का मानसिक प्रतिमान से सम्बन्ध निजि माध्यमिक विद्यालय की छात्राओं से कम पाया गया।

अत: पूर्व–एवं पश्च् परीक्षण के समंको के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में स्वायत अधिगम का मानसिक प्रतिमान सें सम्बन्ध है।

सुझाव – प्रस्तुत शोध अध्ययन के माध्यम से शिक्षको शिक्षार्थियों, पाठ्यक्रम–निर्माताओ आदि को नवीन दिशा का ज्ञात होगा जिससे भविष्य की शिक्षण प्रक्रियाओं में विधार्थियों को ध्यान में रखकर शिक्षण–विधियों का निर्माण किया जा सकेगा साथ ही शिक्षक नवीन शिक्षण आव्यूह की रचना कर सकेंगे जिसके माध्यम सें छात्र नवीन उपागमों को अपनाकर अधिगम कर सकेगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Banson, P(2001) Teaching and Researching Autonomy in Language learning long men London.
2. Banson, P(2006) Autonomy in Language Teaching and Learning State of The Article,2.
3. Cotterall, S. (1995) Readiness four Autonomy.
4. Cotterall, S. (2000) Promoting learner autonomy through the curriculum principles for designing language courses. ELT Journals.
5. Cotterall, S. and Crabbe, D (1999) Learner Autonomy in language learning defining the field and Effecting change, Peter lang.
6. Defei, D. (2007) An Exploration of the relationship between learner autonomy and English proficiency. Asian EFL Journal, 1-23.
7. Dam, L., Eriks son R., Littie, (1990) "Towords a definition of autonomy in T. Trebbi (ed.) Third Nordic workshop on Developing Autonomous learning in FL classroom. (Bergen University of Bergen)
8. Gao, X. (2010) "Autonomous language learning against all odds system: 1-11.
9. Susan widen beck (1999) "Self-Efficacy and mental models in learning to program, College of IST Drexel Univeristy, Philadelphia.
10. Pemberton, P., Toogood, S. and Barfield, A. (2009) "Maintaining control: Autonomy and Language learning bafiild : Hongkong University.

सारणी संख्या 1.1

राजकीय माध्यमिक विद्यालय के छात्रों का मानसिक प्रतिमान स्तर का पूर्व एवं पश्च् परीक्षण में अन्तर

क्र. स.	मानसिक प्रतिमान के घटक	पूर्व परीक्षण			पश्च् परीक्षण				
		Mean	S.D.	N	Mean	S.D.	N	Mean Diff	`t'Value
1.	तार्किक क्रमबद्धता होना	18.87	4.08	30	3.30	4.23	30	11.43	38.34*
2.	मूर्त चिन्तन से अमूर्त चिन्तन की ओर	18.87	4.04	30	30.30	4.16	30	11.43	38.34*
3.	अनुमान लगाना	19.13	3.45	30	30.60	3.61	30	11.46	52.52*
4.	परस्पर सम्बन्धित होना	19.07	3.71	30	30.50	3.94	30	11.43	44.52*
5.	अनुभव से चिन्तन की ओर	19.33	3.65	30	30.80	3.70	30	11.46	38.93*
6.	भविष्य की योजना बनाना	19.47	3.10	30	30.93	3.23	30	11.46	52.52*
7.	आगमन–निगमन तर्क	19.40	3.52	30	30.92	3.58	30	11.50	38.04*
8.	निर्णय–निर्माण के नियम	19.30	2.70	30	30.80	2.38	30	11.50	42.56*
9.	सामान्यीकरण होना	18.67	4.17	30	30.10	4.24	30	11.43	38.34*
10.	पुनर्प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया	18.53	3.87	30	30.03	3.79	30	11.50	48.21*
	कुल मानसिक प्रतिमान	**190.63**	**29.02**	**30**	**305.27**	**29.94**	**30**	**114.63**	**80.89***

* P<0.01, अर्थात् 0.01 स्तर पर सार्थक है।

****

Psychological Traits And Socio – Economic Status Of Indian Trainee Coaches Of Basket Ball

Dr. Hitesh Chandra Rawal *

Abstract - The purpose of study was to investigate the selected psychological traits of trainee coaches of basket ball at NSNIS, Patiala. Present study was conducted on sixty eight trainee coaches who are doing their diploma course in Basket Ball at NSNIS, Patiala in 2013–14. The Maundsley Personality Inventory, Sports Competition Anxiety Test and Socio-economic Scale Questionnaire administered to all the subjects. The collection of relevant date was based on Neuroticism, Extroversion, Sports Competition Anxiety and Socio Economic Status test. The mean scores standard deviations were calculated in order to study, the selected psychological traits of Trainee Coaches of Basket Ball.

Introduction - Personality is the overall pattern of psychological characteristics that makes each person a unique individual. Individual differences are obvious in sport, and understanding such personality factors can help to explain sport and exercise behavior. Although much sport personality research has been conducted, that research tells us little about sport behavior because surveys of sport participants' personality profiles do not relate very well to specific behaviours.

The study of personality characteristics and profiles of sport participants is one of the most popular areas in sport psychology research. Perhaps the apparent, unique physical characteristics and talents of athletes prompt sport psychologist to look for analogous psychology profiles.

The bulk of the sport personality research involves assessing personality profiles of sport participants to answer questions such as: Is there an "athletic personality"? Do personality profiles differ by sport? Are team sport participants more sociable than individual sport participants? Are runner more introverted that basket ball players? Do certain personality characteristics lead to success in athletics, and, if so, can we identify those characteristics to predict success? Each question addresses the influence of personality on sport behavior.

Today basket ball has become a very competitive sport both at Olympic and world level. The performance in basket ball depends upon various factors like physique, strength, speed, endurance, skills, knowledge of rules and tactics etc., which needs to examine through research so that optimum performance can be attained. Since very few research studies have been done on basket ball in India, the researcher felt a need to conduct a scientific study with a view to assess selected psychological profiles and socio-economic status of basket ball.

Methodology And Procedure -The present study was conducted on 68 mans who are doing diploma in basket ball from NSNIS, Patiala. The Maundsley Personality Inventory, Sports Competition Anxiety Test and Socio-economic Scale Questionnaire administered to all the subjects. The completed answer sheets of each subject were first checked to make sure that subjects had not given double response to any question. The answer sheet was then scored as per the directions given in the manual of these tests. The data collected was analyzed by using mean and standard deviation as a tool of statistics.

Findings - The mean and standard deviation calculated for on Neuroticism, Extroversion, Sports Competition Anxiety and Socio Economic Status test of basket ball trainee coaches and the status are present in Table – I.

Table –

IMean and Standard deviation scores on Eysenck's Maundsley Personality Inventory, Sports Competition Anxiety Test and Socio-economic Status of basket ball trainee coaches.

Sr.	No. Dimensions	Mean	S.D
1.	Neuroticism,	19.75	7.98
2.	Extroversion	35.78	11.12
3.	Sports Competition Anxiety	13.43	5.72
4.	Socio Economic Status	41.68	13.94

The data presented in Table – I clearly reveals that basket ball trainee coaches scored higher level on extroversion psychoticism and low on neuroticism and sports competition anxiety. The analysis also revealed that the basket ball trainee coaches belong to lower middle stratum of society.

Discussion - The findings of the study has clearly revealed that the basket ball trainee coaches are found to be extrovert, low neurotic and low sports competition anxiety level and come from middle stratum of the society. This may be attributed to the fact that the basket ball as sport has become

* Asso. Prof., B.N.College of Physical Education, Udaipur (Raj) INDIA

very competitive sport and to achieve success a very hard practice is required, by the participant at prominent coaching centers. During their training at the centers, the participants interact with each other and this might be one of the reasons of scoring higher on extraversion and low on neuroticism and sports competition anxiety. On the other hand, basket ball is very popular sport in rural and urban areas of India. Hence most of the basket ball trainee coaches were found to come from low middle socio – economic status group.

The result of the studies are further supported by the findings of Gooch, Debnath and Bawa, Gupta, Sinha and Kiran and Kamlesh and Jaswinder.

Summary - Within the limitations of the present study, the following conclusions may be drawn:

1. Basket ball trainee coaches are extrovert, dominating, helpful, less neurotic and have low level of sports competition anxiety.
2. Basket ball trainee coaches come from low middle socio – economic status group.

Recommendations - It is recommended that the nursery of the basket ball trainee coaches be established in the rural areas so that trainee coaches from come from lower middle socio – economic status can be identified at right age and at right time keeping in mind the psychological makeup of national level of the basket ball trainee coaches in India.

References :-

1. **Cox Richard H. :** Sports Psychology, Concept and Applications, Wm.C. Brown Publishers, Iowa, (1985) P.26
2. **Debnath, Kalpana and Bawa, G.S. :** " A study of sports competition anxiety among junior and senior female cyclist and Gymnast of national level", Abstracts of National conference on sports Psycology (Nov.1986) P.5.
3. **Gill, Diane L.** : Psycological Dynamics of sports, Human Kinetics Publishers, Inc., Illinois (1986) P.35.
4. **Gooch, F.**E. : "Personality traits of highly skilled Basketball and Softball women athletics" Completed Research in Health, Physical Education and Recreation 15 (1973) P.64
5. **Gupta, V.**P. : "Personality characteristics of Hockey Champions" Journal of Indian Association of the Teachers of Health, Physical Education and recreation 6 (Jan 1969) P.15.
6. **Kamlesh, M.L. and K. Jaswinder : "**Locus of Control in Socio-economic Stratified female Adolescent Atheletes" Abstract ofth National Conference on sports Psychology (1989) P.5.
7. **Sinha,S.S.P. and Verma Kiran Bala :** "Extroversion, Neuroticism and Psychoticism in High and low Achieving Female Atheletes" Abstract of 4th National conference on Sports Psychology (1989) P. 15.

****

Long Term Temporal Trend Detection of Precipitation during 1901–2002 at Nagaland, India

Devendra Kumar Warwade * Pratibha Warwade **

Abstract - In the present study an attempt has been made to study the temporal variability of annual precipitation series at Nagaland, India. Mann Kendall test was used to detect the significance of trends using the period of 1901-2002. Out of seven stations, only two stations showed the significant decreasing trend in precipitation series. Further, no significant trend was detected in precipitation over the entire Nagaland. Percentage changes over mean values were also calculated by Sen's Slope Estimator. Precipitation decreases by 1.0603 mm (minimum at Phek) and 1.15 mm (maximum at Mon) per year for 7 stations over the Nagalnd. For the entire Nagaland annual precipitation decreases slightly by 1.14 mm per year and the changes has found -5.43 % over the period of 102 years (1901-2002). A statistically change magnitude as percentage of mean was not identified greater than 10% during the study period.
Keywords - Climate; Mann kendall; Temperature; Trends.

Introduction - Climate change is one of the most discussed topics in recent years. The concept of carbon trading increasingly became important because countries became legally bound to reduce their Greenhouse Gas Emissions Shrinkhal R., 2011). On a global and local scale several hydrologic parameters have been investigated for changes in the mean and variance due to climate change. Apart from temperature, precipitation is one of the most important hydrological parameters. A change in precipitation will h1ave an effect on runoff, agricultural conditions (erosion, soil moisture distribution, irrigation), design and planning (floods). Anthropogenic or natural, meteorological parameters may change in long time period, variation in time can understand by trend analysis as a basic tool. Statistical analysis for time series can reveal possible trends in time. For water management strategy, it is crucial to know if there is a trend, downward or upward, and what will be the magnitude of that change.

There are some studies on trend analysis of meteorological parameters. Africa and southern Asia the linear trends in rainfall decrease for 1900 – 2005 were 7.5% per 100 year (signiûcant statistically at <1% level), whereas over much of northwest India the period 1901 – 2005 shows increasing of more than 20% per century (IPCC, 2007). Kripalani et al. (2007) predicted an increase in mean monsoon precipitation associated with intensiûcation of land – ocean pressure gradient during the establishment phase of the monsoon. Regional analyses have revealed increasing rainfall trends over the Indus, Ganga, Brahmaputra, Krishna and Cauvery basins (Singh et al., 2005). Singh et al. (2007) have indicated increasing trend of annual rainfall and relative humidity in north Indian river basins, though the least variation was observed in monsoon rainfall. Studies of Kothyari and Singh (1996) and Kothyari et al. (1997) brought out decreasing rain-fall trend over the Ganga basin. Basistha et al.(2009) results show that the most probable year of change in annual as well as monsoon rainfall in the region is 1964. There was an increasing trend up-to 1964 (corroborating with all India and nearby plains), followed by a decreasing trend in 1965 – 1980 (exclusive to this region). Karpouzos et al. (2010) detected overall downward trend for stations located near at lower altitude with in the agricultural zone of Pieria. Duhan and Pandey, 2013 investigated that the Mean annual precipitation varied from 694 mm (at Westnimar) to 1416 mm (at Mandla). Maximum decrease in annual precipitation was found at Balaghat (-11.99%) and minimum at Shahdol (-8.52%) district. Goyal, 2014 analyzed for both annual and seasonal variation of rainfall during 1901-2002 Assam, India. Mean annual precipitation varied from 2,074 mm (at Tinsukia) to 3,538 mm (at North Chahar Hills). Regional regulatory and policy in relation to water resources to maintain the health of the various ecosystems that makes up Assam, India. The aim of this study was investigation the possible trends in annual precipitation and to estimate change magnitude as percentage of mean of the period concerned.

Study area - The study area is located in the far north-eastern part of India (Fig.1) an extent of 16,579 km^2. The State is mostly mountainous except those areas bordering Assam valley. The Naga Hills rises from the Brahmaputra Valley in Assam to about 2,000 feet (610 m) and rise further to the southeast, as high as 6,000 feet (1,800 m). Nagaland has a largely monsoon climate with high humidity levels.

* Professor, Government P.G. college, Jhabua (M.P.) INDIA
** Assistant Professor, Central university of Jharkhand, Ranchi (Jharkhand) INDIA

Annual rainfall averages around 1,800–2,500 mm, concentrated in the months of May to September.

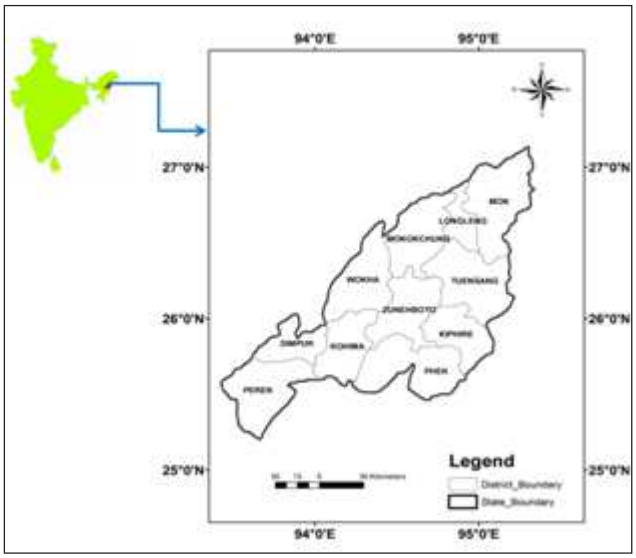

Fig 1 Study area

Methodology - The data used in this study include the long term yearly precipitation time series of seven districts of Nagaland collected from IMD, Pune. The districts were Kohima**,** Mokokchung, Mon, Phek, Tuensang,Wokha, Zunheboto, period of 1901-2002 were analyzed, with an elevation range from 897.64 to 1874.22 meters above sea level.

Calculation of the Mann-Kendall Statistic (S)

The initial value of the Mann-Kendall statistic S, is assumed to be 0 (e.g., no trend). If a data value from a later time period is higher than a data value from an earlier time period, S is incremented by 1. On the other hand, if the data value from a later time period is lower than a data value sampled earlier, S is decremented by 1. The net result of all such increments and decrements yields the final value of S. Let x_1 , x_2 , … x_n represent n data points where x_j represents the data point at time x_j. Then the Mann-Kendall statistic (S) is given by

$$S = \sum_{i=1}^{n-1} \sum_{j=i+1}^{n} \operatorname{sgn}(xj - xi)$$

Where,

$$\operatorname{sgn}(xj - xi) = \begin{cases} 1 \ldots . \text{if } (xj - xi) > 0) \\ 0 \cdots \text{ if } (xj - xi) = 0 \\ -1 \cdots \text{ if } (xj - xi) < 0 \end{cases}$$

A very high positive value of S is an indicator of an increasing trend, and a very low negative value indicates a decreasing trend. However, it is necessary to compute the probability associated with S and the sample size, n, to statistically quantify the significance of the trend.

It has been documented that when n e" 8, the statistic S is approximately normally distributed with the mean

$$E(S) = 0$$

❖ *Calculation Of Probability Associated With The Mann-Kendall Statistic*

- Calculate the variance of S, VAR(S), by the following equation:

$$v(s) = \frac{n(n-1)(2n+5) - \sum_{i=1}^{m} \text{ti}(ti-1)(2ti+5)}{18}$$

Where m is the number of tied groups and t_i is the size of the i^{th} tied group.

- Compute a normalized test statistic Z as follows:

$$Zmk = \begin{cases} \dfrac{s-1}{\sqrt{var(s)}}, when\ s > 0 \\ 0 \ldots \ldots \ldots when\ s = 0 \\ \dfrac{s+1}{\sqrt{var(s)}}, when\ s < 0 \end{cases}$$

- Compute the probability associated with this normalized test statistic. The probability density function for a normal distribution with a mean of 0 and a standard deviation of 1 is given by the following equation:

$$f(z) = {}^{1}/_{\sqrt{2\pi}}\ e^{z^2/2}$$

Decide on a probability level of significance (95% typically).

The Sen's estimator of slope

The slope estimates Qi of N pairs of data are calculated as Qi =(x j -x k)/(j-k) for i= 1,…,N where xj and xk are data values at times j and k (j>k) respectively. The Sen's estimator of slope derives from the above N values of Qi and equals to their median. When there is only one datum in each time period, then N = n (n - 1) / 2, where n corresponds to the number of time periods. The N values of slopes are ranked from the smallest to largest and if N is odd, Sen's estimator of slope is calculated as Qmedian = Q(N+1)/2. On the other hand, in case that N is even, the estimator arises from Qmedian = [QN/2 + Q(N+2)/2] / 2.

Results - Initially, the autocorrelation test was performed to all time series in order to check the initially, the randomness of the data (Modarres and Da Silva 2007). As all lag-1 serial correlation coefficients were statistically not significant, there was no need to pre-white the data, and all statistical tests described above are applied to the original time series (Luo et al. 2007).Precipitation time series data were analyzed with a Mann-Kendall test for each district separately (Table 1). Out of seven stations, only two Districts (Mokokokchung and Mon) showed the significant decreasing trend and rest of them has no significant trend detected in precipitation time series. Further, no significant trend was detected in precipitation over the entire Nagaland.

Table 1. (see below)

Sen's estimator of slope, following the M-K test, was employed to figure out the change per unit time of the trends observed in all precipitation time series. Outputs are presented in Table 2, here a negative sign represents a downward slope and a positive sign indicates an upward one. At annual basis, the statistically significant downward slope identified at all stations in precipitation series of (M-K test) varies from 1.06031 (minimum at Phek) to 1.55624 (maximum at Mon and) mm/ year (Table 2). As it concerns the whole state, annual precipitation decreases slightly by 1.13702mm per year. For the present study maximum change percentages has been computed over 102 years -7.06 (at the district Mon) and minimum change percentage has computed -5.21176 (at district Phek) in precipitation series.

Table 2. Sen's slope estimater results

S.	Station	Precipitation (mm)	
		Change in precipitatio -n(mm/year)	% ChangeOver-102 years
1	Kohima	-1.36995	-5.80915
2	Mokokchung	-1.3072	-6.2763
3	Mon	-1.55624	-7.60595
4	Phek	-1.06031	-5.21176
5	Tuensang	-1.1619	-5.89132
6	Wokha	-1.29776	-6.11784
7	Zunheboto	-1.1246	-5.52401
	Entire Nagaland	-1.13702	-5.43252

Conclusion - In precipitation only two stations has detected decreasing trend, this was found to be statistically significant at 95% confidence level, rest of them having no trend detected, Further, no significant trend was detected in precipitation over the entire Nagaland. Precipitation decrease by 1.15 mm (maximum at Mon) and 1.0603 mm (minimum at Phek) per year over the Nagalnd. Over the entire Nagaland annual precipitation decreases slightly by 1.14 mm per year and the change has found -5.43 % over the period of 102 years (1901-2002).Finally, a statistically change magnitude as percentage of mean was not identified greater than 10% during the study period in precipitation.

References :-

1. Basistha A., Arya D. S., Goel N. K. (2009). Analysis of historical changes in rainfall in the Indian Himalayas. Int. J. Climatol. 29: 555 – 572.
2. Darshana Duhana and Ashish Pandey, 2013. Statistical analysis of long term spatial and temporal trends of precipitation during 1901-2002 at Madhya Pradesh, India. Atmospheric Research Volume 122, March 2013, Pages 136-149.
3. Goyal M. K., 2014. Statistical Analysis of Long Term Trends of Rainfall During 1901–2002 at Assam, India. Water Resources Management.
4. IPCC. 2007. Climate change 2007: the physical science basis. In Contribution of Working Group I to the Fourth Assessment Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change, Solomon S, Qin D, Manning M, Chen Z, Marquis M, Averyt KB, Tignor M, Miller HL (eds). Cambridge University Press: Cambridge, New York.
5. Kothyari UC, Singh VP, Aravamuthan V. 1997. An investigation of changes in rainfall and temperature regimes of the Ganga Basin in India. Water Resources Management 11: 17 – 34.
6. Kothyari UC, Singh VP. 1996. Rainfall and temperature trends in India. Hydrological Processes 10(3): 357 – 372.
7. Kripalani RH, Oh JH, Kulkarni A, Sabade SS, Chaudhari HS. 2007. South Asian summer monsoon precipitation variability: coupled climate model simulations and projections under IPCC AR4. Theoretical and Applied Climatology 90(3 – 4): 133 – 159. DOI: 10.1007/s00704-006-0282-0.
8. Luo, Y., Shen, L., Fu, S., Liu, J. and Wang, G., Zhou, G., 2007. Trends of precipitation in Beijiang River Basin, Guangdong Province, China. Hydrological Processes; 22,13: 2377-2386.
9. Modarres, R. and da Silva, V.P.R., 2007. Rainfall trends in rid and semi-arid regions of Iran. Journal of Arid Environments; 70: 344-355
10. Shrinkhal, Rashwet, "Climate Change: Issues of Climate Justice and Ethics" , **Indian Journal of International Law**, vol.51, no. 4, 2011, pp.550-565.
11. Singh N, Sontakke NA, Singh HN, Pandey AK. 2005. Recent Trend in Spatiotemporal Variation of Rainfall over India – An investigation into Basin-scale Rainfall Fluctuations, IAHS-AISH Publication 296, 273 – 282.
12. Singh P, Kumar V, Thomas T, Arora M. 2007. Changes in rainfall and relative humidity in river basins in northwest and central India. Hydrological Processes (in press). DOI: 10.1002/hyp.6871.

Table 1. Mann-Kendall test results

S.	Station	Mann-Kendall stastic (S)	Normalizezd Test -Statistiic (Z)	Trend (at 95% confidence level)
1	Kohima	-435	-1.255	No
2	Mokokchung	-619	-1.787	Decreasing
3	Mon	-701	-2.024	Decreasing
4	Phek	-459	-1.324	No
5	Tuensang	-561	-1.619	No
6	Wokha	-531	-1.532	No
7	Zunheboto	-523	-1.509	No
	Entire Nagaland	-531	-1.532	No

****

Major Issues of Environment in India

Sunil Kumar Sikarwar *

Abstract - There are many **environmental issues in India**. Air pollution, water pollution, garbage, and pollution of the natural environment are all challenges for India. The situation was worse between 1947 through 1995. According to data collection and environment assessment studies of World Bank experts, between 1995 through 2010, India has made one of the fastest progress in the world, in addressing its environmental issues and improving its environmental quality.[1][2] Still, India has a long way to go to reach environmental quality similar to those enjoyed in developed economies. Pollution remains a major challenge and opportunity for India. Environmental issues are one of the primary causes of disease, health issues and long term livelihood impact for India.

Introduction - Upon independence from Britain, India adopted a constitution and numerous British-enacted laws, without any specific constitutional provision on protecting environment. India amended its constitution in 1976. Article 48(A) of Part IV of the amended constitution, read: The State shall endeavour to protect and improve the environment and to safeguard the forests and wildlife of the country.Other Indian laws from recent history include the Water (Prevention and Control of Pollution) Act of 1974, the Forest (Conservation) Act of 1980, and the Air (Prevention and Control of Pollution) Act of 1981. The Air Act was inspired by the decisions made at Stockholm Conference. The Bhopal gas tragedy triggered the Government of India to enact the Environment (Protection) Act of 1986. India has also enacted a set of Noise Pollution (Regulation & Control) Rules in 2000.In 1985, Indian government created the Ministry of Environment and Forests. This ministry is the central administrative organization in India for regulating and ensuring environmental protection.

Despite active passage of laws by the central government of India, the reality of environmental quality mostly worsened between 1947 to 1990. Most of Indian economy was nationalized and owned by India, and regulations were mostly ignored by state run enterprises. Rural poor had no choice, but to sustain life in whatever way possible. The state governments of India often regarded environmental laws enacted by the central government as a mere paperwork formality. Air emissions increased, water pollution worsened, forest cover decreased.

Starting in 1990s, reforms were introduced. Since then, for the first time in Indian history, major air pollutant concentrations have dropped in every 5 year period. Between 1992 to 2010, satellite data confirms India's forest coverage has increased for the first time by over 4 million hectares, a 7% increase.[4]

Causes - Some have cited economic development as the cause regarding the environmental issues. Others believe economic development is key to improving India's environmental management and preventing pollution of the country. It is also suggested that India's growing population is the primary cause of India's environmental degradation. Systematic studies challenge this theory. Empirical evidence from countries such as Japan, England and Singapore, each with population density similar or higher than India, yet each enjoying environmental quality vastly superior than India, suggests population density may not be the only factor affecting India's issues.[5]

Major Issues - Floods are a significant environmental issue for India. It causes soil erosion, destruction of wetlands and wide migration of solid wastes. Major environmental issues are forest and agricultural degradation of land, resource depletion (water, mineral, forest, sand, rocks etc.), environmental degradation, public health, loss of biodiversity, loss of resilience in ecosystems, livelihood security for the poor.[6]

The major sources of pollution in India include the rampant burning of fuel wood and biomass such as dried waste from livestock as the primary source of energy,[7] lack of organised garbage and waste removal services, lack of sewage treatment operations, lack of flood control and monsoon water drainage system, diversion of consumer waste into rivers, cremation practices near major rivers, government mandated protection of highly polluting old public transport, and continued operation by Indian government of government owned, high emission plants built between 1950 to 1980.[8][9][10][11][12]

Air pollution, poor management of waste, growing water scarcity, falling groundwater tables, water pollution, preservation and quality of forests, biodiversity loss, and land/soil degradation are some of the major environmental issues India faces today.[13]

Growth And Environmental Quality - There is a long history of study and debate about the interactions between population growth and the environment. According to a British

* Assistant Professor (Chemistry) Govt. P.G. College, Jhabua (M.P.) INDIA

thinker Malthus, for example, a growing population exerts pressure on agricultural land, causing environmental degradation, and forcing the cultivation of land of poorer as well as poorer quality. This environmental degradation ultimately reduces agricultural yields and food availability, causes famines and diseases and death, thereby reducing the rate of population growth.

Population growth, because it can place increased pressure on the assimilative capacity of the environment, is also seen as a major cause of air, water, and solid-waste pollution. The result, Malthus theorised, is an equilibrium population that enjoys low levels of both income and environmental quality. Malthus suggested positive and preventative forced control of human population, along with abolition of poor laws.

Malthus theory, published between 1798 and 1826, has been analysed and criticised ever since. The American thinker Henry George, for example, observed with his characteristic piquancy in dismissing Malthus: "Both the jayhawk and the man eat chickens; but the more jayhawks, the fewer chickens, while the more men, the more chickens." Similarly, the American economist Julian Lincoln Simon criticised Malthus's theory.[14] He noted that the facts of human history have proven the predictions of Malthus and of the Neo-Malthusians to be flawed. Massive geometric population growth in the 20th century did not result in a Malthusian catastrophe. The possible reasons include: increase in human knowledge, rapid increases in productivity, innovation and application of knowledge, general improvements in farming methods (industrial agriculture), mechanisation of work (tractors), the introduction of high-yield varieties of wheat and other plants (Green Revolution), the use of pesticides to control crop pests.[15]

More recent scholarly articles concede that whilst there is no question that population growth may contribute to environmental degradation, its effects can be modified by economic growth and modern technology.[16] Research in environmental economics has uncovered a relationship between environmental quality, measured by ambient concentrations of air pollutants and per capita income. This so-called environmental Kuznets curve shows environmental quality worsening up until about $5,000 of per capita income on purchasing parity basis, and improving thereafter.[17] The key requirement, for this to be true, is continued adoption of technology and scientific management of resources, continued increases in productivity in every economic sector, entrepreneurial innovation and economic expansion.

Other data suggests that population density has little correlation to environmental quality and human quality of life. India's population density, in 2011, was about 368 human beings per square kilometre. Many countries with population density similar or higher than India enjoy environmental quality as well as human quality of life far superior than India. For example: Singapore (7148 /km^2), Hong Kong-China (6349 /km^2), South Korea (487 /km^2), Netherlands (403 /km^2), Belgium (355 / km^2), England (395 /km^2) and Japan (337/ km^2).

Water Pollution - India is recognised as has having major issues with water pollution, predominately due to untreated sewerage. Rivers such as the Ganges, the Yamuna and Mithi Rivers, all flowing through highly populated areas, thus polluted.India's Upper Lake is still polluted with chemicals from the 1984 Bhopal disaster. A campaign has been launched in January 2009 by the Chief Minister Shivraj Singh Chouhan to clean and desilt the Upper Lake.[18]Water supply and sanitation continue to be inadequate, despite long-standing efforts by the various levels of government and communities at improving coverage.

Air Pollution - A rural stove using biomass cakes, fuelwood and trash as cooking fuel. Surveys suggest over 100 million households in India use such stoves (chullahs) every day, 2–3 times a day. It is a major source of air pollution in India, and produces smoke and numerous indoor air pollutants at concentrations 5 times higher than coal. Clean burning fuels and electricity are unavailable in rural parts and small towns of India because of poor rural highways and limited energy generation infrastructure.

Air pollution in India is a serious issue with the major sources being fuelwood and biomass burning, fuel adulteration, vehicle emission and traffic congestion. Air pollution is also the main cause of the Asian brown cloud, which is causing the monsoon to be delayed. India is the world's largest consumer of fuelwood, agricultural waste and biomass for energy purposes. Traditional fuel (fuelwood, crop residue and dung cake) dominates domestic energy use in rural India and accounts for about 90% of the total. In urban areas, this traditional fuel constitutes about 24% of the total. Fuel wood, agri waste and biomass cake burning releases over 165 million tonnes of combustion products into India's indoor and outdoor air every year.[7][19][20]

Vehicle emissions are another source of air pollution. Vehicle emissions are worsened by fuel adulteration and poor fuel combustion efficiencies from traffic congestion and low density of quality, high speed road network per 1000 people.[21][22][23]

On per capita basis, India is a small emitter of carbon dioxide greenhouse. In 2009, IEA estimates that it emitted about 1.4 tons of gas per person, in comparison to the United States' 17 tons per person, and a world average of 5.3 tons per person. However, India was the third largest emitter of total carbon dioxide in 2009 at 1.65 Gt per year, after China (6.9 Gt per year) and the United States (5.2 Gt per year). With 17 percent of world population, India contributed some 5 percent of human-sourced carbon dioxide emission; compared to China's 24 percent share.[24][25]

The Air (Prevention and Control of Pollution) Act was passed in 1981 to regulate air pollution and there have been some measurable improvements.[26] However, the 2012 Environmental Performance Index ranked India as having the poorest relative air quality out of 132 countries.[27]

Solid Waste Pollution - Trash and garbage disposal services, responsibility of local government workers in India, are ineffective. Solid waste is routinely seen along India's streets and shopping plazas Trash and garbage is a common sight in urban and rural areas of India. It is a major source of pollution. Indian cities alone generate more than 100 million tons of solid waste a year. Street corners are piled with trash. Public places and sidewalks are despoiled with filth and litter, rivers and canals act as garbage dumps. In part, India's garbage crisis is from rising consumption. India's waste problem also points to a stunning failure of governance.[9]

In 2000, India's Supreme Court directed all Indian cities to implement a comprehensive waste-management programme that would include household collection of segregated waste, recycling and composting. These directions have simply been ignored. No major city runs a comprehensive programme of the kind envisioned by the Supreme Court.

Indeed, forget waste segregation and recycling directive of the India's Supreme Court, the Organisation for Economic Cooperation and Development estimates that up to 40 percent of municipal waste in India remains simply uncollected. Even medical waste, theoretically controlled by stringent rules that require hospitals to operate incinerators, is routinely dumped with regular municipal garbage. A recent study found that about half of India's medical waste is improperly disposed of.

Municipalities in Indian cities and towns have waste collection employees. However, these are unionised government workers and their work performance is neither measured nor monitored.

Some of the few solid waste landfills India has, near its major cities, are overflowing and poorly managed. They have become significant sources of greenhouse emissions and breeding sites for disease vectors such as flies, mosquitoes, cockroaches, rats, and other pests.[28]

In 2011, several Indian cities embarked on waste-to-energy projects of the type in use in Germany, Switzerland and Japan.[29] For example, New Delhi is implementing two incinerator projects aimed at turning the city's trash problem into electricity resource. These plants are being welcomed for addressing the city's chronic problems of excess untreated waste and a shortage of electric power. They are also being welcomed by those who seek to prevent water pollution, hygiene problems, and eliminate rotting trash that produces potent greenhouse gas methane. The projects are being opposed by waste collection workers and local unions who fear changing technology may deprive them of their livelihood and way of life.[30]

Along with waste-to-energy projects, some cities and towns such as Pune, Maharashtra are introducing competition and the privatization of solid waste collection, street cleaning operations and bio-mining to dispose the waste. A scientific study suggests public private partnership is, in Indian context, more useful in solid waste management. According to this study, government and municipal corporations must encourage PPP-based local management through collection, transport and segregation and disposal of solid waste.[31]

Noise Pollution - The Supreme Court of India which is in New Delhi gave a significant verdict on noise pollution in 2005.[32] Unnecessary honking of vehicles makes for a high decibel level of noise in cities. The use of loudspeakers for political purposes and for sermons by temples and mosques makes noise pollution in residential areas worse. In January 2010, Government of India published norms of permissible noise levels in urban and rural areas.[33]

Land Or Soil Pollution - In March 2009, the issue of Uranium poisoning in Punjab came into light, caused by fly ash ponds of thermal power stations, which reportedly lead to severe birth defects in children in the Faridkot and Bhatinda districts of Punjab. Land pollution in India is due to the poisonous pesticides and fertilizers as well as corrosion during 2009. Another main reason of this type of pollution is poor garbage disposal services in both the rural and urban areas of India. It is very common in India to find heaps of garbage on street corners. .[34][35][36][37]

Deforestration - In 2000 BC, a relatively large part of the country was still forest and contained a lot of biodiversity.[38] Today, most of the country has been deforested and the biodiversity contained therein was (partly) lost, with one major exception being the Western Ghats[39][40] However, recently, even this area is under threat of being destroyed, as the High Level Working Group of the ministry of Environment and Forests (MoEF) marked 63% of the area for development.[41]

Greenhouse Gas Emission - India was the third largest emitter of carbon dioxide in 2009 at 1.65 Gt per year, after China (6.9 Gt per year) and the United States (5.2 Gt per year). With 17 percent of world population, India contributed some 5 percent of human-sourced carbon dioxide emission; compared to China's 24 percent share. On per capita basis, India emitted about 1.4 tons of carbon dioxide per person, in comparison to the United States' 17 tons per person, and a world average of 5.3 tons per person.[24][25]

References :-

1. "The Little Green Data Book". The World Bank. 2010.
2. "Environment Assessment, Country Data: India". The World Bank. 2011.
3. "The Edicts of King Ashoka (also, see other translations)". Buddhist Publication Society. 1994.
4. "Global Forest Resources Assessment 2010". FAO. 2011.
5. Henrik Urdal (July 2005). "People vs. Malthus: Population Pressure, Environmental Degradation, and Armed Conflict Revisited". Journal of Peace Research **42** (4): 417–434. doi:10.1177/0022343305054089.
6. Environmental Issues, Law and Technology – An Indian Perspective. Ramesha Chandrappa and Ravi.D.R, Research India Publication, Delhi, 2009, ISBN 978-81-904362-5-0

Consequences of Global Warming

Dr. Sunita Phadnis *

Abstract - The climate has changed due to global warming. Global warming is the increase in average temperature of the earth and oceans. Green house gases are responsible for global warming. Climate change may be due to natural internal processes or external forcing or persistent anthropogenic changes in the composition of atmosphere or land, like hot summers, mild winters, melting glaciers etc.

Most scientists agree that temperature will rise by 2^0 to 6^0 Celsius this century due to carbon emissions from burning fossil fuels for power and transport and this will cause melting at the polar ice caps and weather patterns to change, bringing floods, famines, violent storms which will put billions of lives at risk.

The conclusion which can be taken out from above is that the damage due to global warming should be reduced for the betterment of flora, fauna and mankind. The present work introduces the common man with the hazardous consequences of global warming.

Keywords - Global warming, anthropogenic change, carbon emission, fossil fuels.

Introduction - Global warming and climate change have the potential to alter biological system. More specifically changes to near surface air temperature will likely influence 'ecosystem' functioning and thus the biodiversity of plants, animals and other forms of life. The current geographic ranges of plant and animal species have been established by adaption to long term seasonal climate patterns. As global warming alters these patterns on time scales, considerably shorter than those which arose in past from natural climate variability, relatively sudden climatic change may challenge the natural adaptive capacity of many species.

Here we will discuss the negative impacts of global warming and climate change on environment which affects the security, development, economic growth of society and ultimately development of country.

The extinction of several plants and animals, seasonal migratory patterns of birds, changes in seasonal patterns of sea–ice changes in precipitation patterns, destruction of coastal wet lands, salt marshes and mangroves, migration of animals, infectious diseases etc. water resources are likely to be affected substantially by global warming.

What Is Global Warming - Global warming can be described as the increase in normal temperature of air around the earth's surface and oceans throughout the world. It is the global heating effect that is responsible for increase of average global warming. The global heating effect is responsible for 1^0 C rise in earth's temperature over the past 140 years. The presence of gases e.g CO_2, water vapor and CH_4 within the atmosphere that permits incoming sunlight to pass through but does not allow the proper release of heat back.

Overall we can say that habits of human that greatly contribute to global warming through their industrial activities, automobile dependency are responsible for this.

Initial Causes Of Temperature Change - Green house gases: The green house effect is the process by which absorption and emission of Infrared radiation by gases in a planet's atmosphere, warm its lower temperature and surface. According to work published in 2007 the concentration of CO_2 and methane has increased by 36% and 148% respectively. Fossil fuel burning has produced about three quarters of the increase in CO_2 from human activities. The rest of increase is due to deforestation. Others important green house gases are methane (formed by anaerobic decomposition of organic matter), oxides of nitrogen (NO_2 and N_2O), chloro floro carbon. This is mainly due to plants for power generation and transportation.

Particulates and soot: A gradual reduction in the amount of global direct radiance at the earth's surface was observed from 1961 to 1990. The main cause of dimming is particulates, produced by volcanoes and manmade pollutants which exert a cooling effect by increasing the reflection of incoming sunlight. Soot may cool or warm the surface, depending on whether it is airborne or deposited. Atmospheric soot absorbs solar radiation, which heats the atmosphere and cools the surface in isolated areas (such as rural India) with high soot production. It was proved that CFC's (used as aerosol propellants, in industrial cleaning fluids and refrigeration equipments) were the main cause of ozone layer depletion. In 1985 British Antarctic survey studied the decline of ozone levels over Antarctica.

Aerosols in atmosphere: Atmospheric aerosols alter the climate in two important ways, first they scatter and absorb solar and infrared radiation and second they may change the microphysical and chemical properties of clouds. The scattering of solar radiation cools the planet while absorption

* Assistant Professor (Chemistry) M.J.B Govt. Girls P.G College, Moti Tabela, Indore (M.P.) INDIA

of solar radiation by aerosols warm the air directly instead of allowing sunlight to be absorbed by the surface of earth. The human contribution to amount of aerosol also counts as dust is a byproduct of agriculture. Burning of biomass produces a combination of organic droplets and soot particles. Industrial activities also produce a variety of aerosols. Exhaust emission by transportation generates a mixture of pollutants as aerosols.

Threatening Effects Of Global Warming - Global warming affects humans, wild life and plants in many ways. Following are some hazardous effects associated with global warming. The less rainfall and monsoon affects the food supply. The social effects of global warming are population growth, reduced agricultural load and so production, population displacement or migration.

Environmental Changes - Due to environmental changes, glaciers are melting, forests are drying and sea levels are rising. It is studied by that all the glaciers will no longer exists by 2070 and this water formed due to melting of glacier will raise the sea water and places near sea will be in trouble. Global warming may give rise to crop devastation, droughts, floods, heat waves and storms. Rising global temperature will speed up the melting of glaciers and ice caps. According to NASA, the polar ice cap is now melting at an alarming rate of 9% per decade. Over the past 3 decades, more than a million square miles of the perennial sea ice has disappeared. (An area of the size of Norway, Denmark and Sweden together). Current rates of sea level rise are expected to increase as a result of both the thermal expansion of the ocean and melting of mountain glaciers which creates great risk of floods in coastal areas. Low lying areas as gulf of Mexico are especially vulnerable.

Problems to wild life - Increasing global temperature disrupts ecosystem and because of this, the natural habitat of wildlife is constantly changing. It has become difficult for animals to modify themselves accordingly. The best examples could be: a) Polar bear, whose body shape and feet are meant to hunt in ice, cannot find proper way due to melting of ice and drowns and misses its food source (seals). b) Over the past 25 years, some Antarctic penguin population has decreased by 33 percent due to decline in winter sea ice habitat. c) Increase in sea levels can cause sea turtles to lose their nestling places. d) Because of increasing acidity of oceans (Due to CO_2 emission), species with hard calcium carbonate shells have become vulnerable.

Extinctions of plant and animal species - Surface warming in temperature regions is likely to lead changes in various seasonal processes for e.g earlier leaf production, earlier greening of vegetation, altered timing of egg laying and hatching and shifts in seasonal migration patterns of birds, fishes and other animals. At higher altitudes, a combination of warming effects decreases sea ice and changes in ocean salinity leads to reduction in populations of algae and plankton. This also leads to destruction of many coastal wetlands, salt marshes and mangrove swamps as a result of rising sea levels, certain amphibians limited to isolated tropical cloud forests either have become extinct or are on the verge of extinction. As we know that human activities are major causes of climate change, there is a great threat to coral reefs of Australia.

Changed weather -

a. Warming of water in oceans pumps more energy into the tropical storms, making them stronger and more destructive. The future hurricanes will cause more damage.
b. Warmer temperature can increase the drought, more evaporation particularly during summer and fall can increase the drought conditions and increase the risk of wildfires.
c. Warmer temperature may lead to heavy rainfall in some regions which puts the communities at risk of devastation from floods.
d. Rains have become less and dust storms have increased. Also it rains anytime in any season.

Effect on health - Warming of overall atmosphere and severe heat waves result in greater number of heat related deaths.

a. Global warming increases smog pollution in some areas and intensify pollen allergies and asthma. The warming temperature, the ecosystem disruption have caused more widespread outbreaks of infections like malaria, dengue, fever, encephalitis and diarrheal illnesses.
b. Heavy rain falls can wash pathogens from contaminated soil, farms and streets into drinking water supply.
c. Higher temperature can cause increased outbreaks of food borne diseases.

Conclusion - From the above discussion, it is proved that global warming is a threatening problem. The negative effects of global warming are problems to wild life, extinction of plants and animals. Global warming causes social effects followed by economic growth and development of country is also affected. Volcanic eruptions, oceanic currents and changes in weather patterns are some natural causes in addition to this, human activities such as industrialization transportation and power generation also contribute mainly in increasing the temperature of the globe. To overcome these problems, the emission of green house gases should be reduced, society should be educated and trained for awareness. The new technologies should be invented for lessening the global warming.

References :-

1. 2009 Ends warmest Decade on record NASA Earth Observatory Image of the Day, 22 January 2010.
2. Blue, Jessica. “What is natural Greenhouse Effect?”. National geographic (Magazine) Retrieved 21 May 2013
3. Natural resources defense council (NRDC) www.nrdc.org/globalwarming
4. Selin, Henrik; “Global Warming”. Encyclopedia Britannica 31 August 2014
5. Markham, Derek; Planet save.com/2009/06/07/Global Warming effects and causes – a top 10 list
6. Stroeve, J et.al. “Article sea ice decline”. Faster than forecast”. Geographical Research letters 34(9) L09501, 2007

Quality Monitoring in Higher Education : Improvement and Enhancement of Student Learning

Sunil Kumar Sikarwar *

Abstract - This paper reports on a considered the impact of quality monitoring on the improvement and enhancement of student learning programmes. Quality in higher education is multifaccted and complex, and although there are different perceptions of quality monitoring in higher education, quality, whatever its focus, has become the vehicle through which accountability is addressed. It is argued that the focus for quality should, in a rapidly changing world, be on the attributes of graduates, where transformation of the learner is central. Quality monitoring should be concerned with improvement and enhancement of student learning. In the study, quality monitoring processes had quite a narrow impact and were not concerned with the complexity of a whole teaching programme, or issues such as leadership or the culture in which students learn. The influence of the social, economic, political and personal context in which the two programmes are situated was also considerable. Overall analysis confirmed that, for quality monitoring to have an impact on student learning, the emphasis must be on curriculum, learning, teaching and assessment.

Introduction - Although there are different perceptions of quality monitoring (the term quality monitoring is used to refer to the broad set of quality-related activities or evaluations that occur either external or internal to an organisation) in higher education, quality whatever its focus has become the vehicle through which accountability is addressed. Accountability is associated with efficiency and effectiveness, with concepts of quality based on dimensions of higher standards, zero defects, value for money or fitness for purpose. It is argued that none of these concepts directly encompass the core activities of higher education, those associated with teaching and learning. The focus for quality should in a rapidly changing world, be on the attributes of graduates, where transformation of the learner is central. Quality monitoring should be concerned with improvement and enhancement of student learning. This paper reports on a study concerned with the question: to what extent does quality monitoring impact on the student experience of learning?

Quality as **Transformation -** A review of the literature included consideration of quality as transformation. Understanding quality as transformation involves regarding education as a transformative process in which the student is an active participant rather than a passive receiver. In short, the educational process may transform by enhancing and empowering the student. Enhancement is reflected in the addition of knowledge and skills. Empowerment is the development of students' critical ability, that is their ability to 'think and act in a way that transcends taken-for-granted preconceptions, prejudices and frames of reference' (Harvey & Knight, 1996, p. 4). At its core, transformation refers to the evolution of the way students approach the acquisition of knowledge and skills and relates them to the wider context. graduates, then the total learning environment is important. 'Quality' needs to be understood as a transformative process, it cannot be separated from learning, teaching, assessment, institutional practices and structures and the institutional, departmental and faculty culture and climate. At issue is that, to date, the predominance of accountability as a focus for quality, means that quality monitoring is frequently concerned with inputs, outputs and systems, rather than processes and learning outcomes, and may have little to do with Monitoring in Higher Education **Curriculum.**

Methodology - Two educational programmes were chosen for in-depth study over a two-and-a-half-year period. The intent was to enhance and maximise the author's understanding regarding the impact quality monitoring may have on student learning, particularly in relation to transformation. It was further the intention to understand what other factors may be impacting on student learning.

Curriculum

Curricula must:

- enhance with knowledge and skills;
- include opportunity for the development of a wide range of attributes;
- define programme aims and learning outcomes;
- empower with flexibility and choice and allow for student input;
- encourage personal development.

Learning processes

Curriculum implementation must:

- focus on learning and the development of metacognition;
- allow for the achievement of a wide range of attributes;
- encourage deep learning;

* **Assistant Professor (Chemistry) Govt. P.G. College, Jhabua (M.P.) INDIA**

- encompass student centred learning;
- see students as active participants;
- empower through the development of critical ability.

Assessment

Assessment must:

- support learning;
- be outcomes based;
- be credible and reliable;
- provide for useful and swift feedback;
- incorporate multiple methods;
- allow for integrated and holistic assessment.

Organisational/faculty/school culture - The culture within the organisation and the different levels of an organisation must:

- be self-critical;
- value teaching and learning;
- seek to continuously improve/change with a changing environment;
- be one where student and staff input is integral;
- foster collegiality which is learning-oriented and outward-looking.

Teaching and teachers

Teaching must:

- be innovative with **a** variety of approaches;
- be student-centred;
- emphasise learning;
- involve appraisal which focuses on learning and teaching improvement

Teachers must:

- engage in shared reflective practice;
- aiscuss pedagogical issues;
- engage in professional development which allows for transformative learning.

Learning resources and support - The learning environment needs to be one where:

- learning and teaching are valued;
- research enhances teaching;
- library, computing and other learning resources are appropriate and adequate;
- learning support is available.

Institutional systems and structures - An institute's systems should encompass:

- recognition and reward for transformative teaching or good learning facilitation;
- structures and regulations that allow for bothcurricula and learning integration as wellas flexibility;
- student centred learning;
- management action in response to student feedback, and monitoring reports where appropriate.

Socio-economic and political context - The broader context of education needs to be one where:

- resources support 'quality learning;
- political discourse values learning;
- national systems understand learning.

Teachers, Learning, Teaching and Assessment - The most direct impact on the student experience of learning came from the teachers: how they teach and help students to learn and the sort of assessment practices they adopt. Interviews with students and lecturers made it clear that the biggest impact on student learning comes from the teachers. The students in this study were very clear about what, to them, makes a good teacher. A sound knowledge base and an ability to relate knowledge to the workplace or the discipline were seen as important. Students in this study endorsed the characteristics of good teaching described by Ramsden (1991), that is, clarity of explanation, the level at which the learning material is pitched, the enthusiasm and interest of teachers, feedback on learning, relevant assessment methods and appropriate workloads. However, the students also identified and valued teachers who adopted a deep approach rather than a surface approach, that is teachers who asked critical and challenging questions and stimulated discussion. Clear teacher organisation and goals were important. For quality monitoring to be of any value to students, observation of teaching with follow-up action to improve teaching or remove poor teachers, would have to be a feature. Students of both programmes experienced a variety of teaching methods and this was seen positively. Understanding how to learn helped them become self-directed in their learning and this was valued. Assessment was recognised as the major motivating factor in learning. Assessments that encouraged superficial learning were not valued by students. An over-emphasis on written and theoretical assessment in Programme B was not, for example, as valuable as oral examinations in stimulating learning. Programme A students found a critical thinking interview and open-book examinations challenging and 'real'. Feedback to students and the processes engaged in to give feedback has been identified as one of the most important aspects where assessment may contribute to transformative learning (Harvey & Knight1996). Again, students on both programmes volunteered that the feedback they received,both the type and the way it was delivered, was very important to their learning. Providing feedback only on summative assessments was quite inadequate, particularly if this was no more than a tick at the bottom of a page. Lander et ah (1995) consider that any emphasis on summative assessment should be reversed in favour of formative assessment, feedback requires reflection by both the student and the teacher. In both the programmes in this study summative assessment was emphasised over formative and was impacting negatively on, or was a limiting factor in the development of, transformative skills.

Student Expectations - Student expectations were impacting on the programmes in several ways. The first impact was seen in respect of structural arrangements. Timetabling was in accord with expressed student need, particularly part-time student requirements, regulations were changed to accommodate demand for 'double majors' and enrolment procedures altered to assist students with course planning. However, a greater impact was seen in the recognition, by students, of their 'rights' in terms of being

'consumers' and having an understanding of legislation. Students are consumer-oriented and quite sophisticated about the economic dimensions of their study, in terms of future employment prospects and immediate financing demands. Employment prospects are important. In response to the recognition that students understand they have rights to appeal and complain, documentation is very clear. Regulations and policy and processes for handling assessment appeals are carefully drafted and checked by lawyers before being given to all students. Special assessment opportunities are also provided, such as 're-sits', special examinations and aegrotat passes.

Teaching staff in both programmes are aware that students expect 'value for money'.To date this area of impact has been positive, programmes and services recognise the needto be student-focused.

Conclusion - The study provided the opportunity to understand the complexity of the factors and the interaction between them as they impact on undergraduate degree programmes and the student experience of learning. While it may be expected that the interactions between factors would be even more complex, for example that quality monitoring (eitherexternal or internal) would impact directly on factors such as actual teaching performance or on learning resources, this was not evident. Quality monitoring processes had quite a narrow impact, and were not concerned with the complexity of a whole teaching programme, or issues such as leadership or the culture in which students learn. The influence of the social, economic, political and personal context in which the two programmes are situated was also considerable.

References :-

1. BARNETT, R., 1992, Improving Higher Education: total quality care (Buckingham, Society for Research into Higher Education and Open University Press).
2. BECHER, T., 1989, Academic Tribes and Territories, intellectual enquiry and the culture of discipline (Buckingham, Society for Research into Higher Education and Open University Press).
3. Downloaded By: [2007 LungHwa University of Science and Technology (Trial of Full Package)] At: 09:27 23 December 2007
4. Quality Monitoring in Higher Education 25
5. BIGGS, J., 1989, 'Approaches to the enhancement of tertiary teaching', Higher Education Research and Development, 8(1), pp. 7-26.
6. BRYMAN, A., 1992, Charisma and Leadership in Organisations (London, Sage).
7. CAVE, M., KOGAN, M. & SMITH R., (Eds), 1990, Output and Performance Measurement in Government: the state of the art (London, Jessica Kingsley).
8. DILL, D.D., MASSY, W.F., WILLIAMS, P.R. & COOK, C.M., 1996, 'Accreditation and academic quality assurance? Can we get there from here?' Change, 28(5), pp. 17-24.
9. DONALD, J., 1997, Improving the Environment for Learning: academic leaders talk about what works (San Francisco, Jossey-Bass).
10. FISH, D., 1991, 'But can you prove it? Quality assurance and the reflective practitioner', Assessment and Evaluation in Higher Education, 16(2), pp. 22-36.
11. HARVEY, L., 1995, The New Collegialism: improvement in accountability', Tertiary Education and Management, 2(2), pp. 153-160.
12. HARVEY, L. & KNIGHT, P., 1996, Transforming Higher Education (Buckingham, Society for Research into Higher Education and Open University Press).
13. HARVEY, L., PLIMMER, L., MOON, S. & GEALL, V., 1997a, Student Satisfaction Manual (Buckingham, Society for Research into Higher Education and Open University Press).
14. HARVEY, L., MOON, S. & GEALL, V., 1997b, Graduates Work: organisational change and students' attributes (Birmingham, Centre for Research into Quality, UCE).
15. HARVEY, L., GEALL, V. & MOON, S., 1998, Work Experience: expanding opportunities for undergraduates(Birmingham, Centre for Research into Quality, UCE).
16. HORSBURGH, M., 1998, Quality Monitoring in Higher Education: a case study of the impact on student learning, unpublished doctoral thesis, Charles Sturt University.
17. KELLS, H., 1992, Self-Regulation in Higher Education (London, Jessica Kingsley).
18. LANDER, D., WALTA, A., MCCORRISTON, M. & BIRCHALL, G., 1995, 'A practical way of structuring teaching for learning', Higher Education Research and Development, 14(1), pp. 47-60.
19. MASSY, W.F., 1997, Teaching and Learning Quality-Process Review: the Hong Kong programme', Quality in Higher Education, 3(3), pp. 249-262.
20. MASSY, W.F., WILGHR, A.K. & COLBECK, C., 1994, 'Departmental cultures and teaching quality: overcoming hollowed collegialiry', Change, 26(4), pp. 11-20.
21. MEIKLEJOHN, R., HORSBURGH, M. & WRIGHT C , 1997, The 1997 Report on the Student Experience at AIT (Auckland, Auckland Institute of Technology).
22. MEZIROW, J., 1990, Fostering Critical Reflection in Adulthood: a guide to transformative and emancipatory learning (San Francisco, Jossey-Bass).
23. MIDDLEHURST, R., 1997, 'Reinventing higher education: the leadership challenge', Quality in Higher Education,3(2), pp. 183-198.
24. NIGHTINGALE, P., 1997, 'Submission to the review of higher education funding and policy', HERDSA News, 19(1), pp. 1-4.
25. NIGHTINGALE, P. & O'NEIL, M., 1994, Achieving Quality in Higher Education (London, Kogan Page).
26. RAMSDEN, P., 1991, 'A performance indicator of teaching quality in higher education: the Course Experience Questionnaire', Studies in Higher Education, 16(2), pp. 129-150.
27. RAMSDEN, P., 1993, Theories of learning and teaching and the practice of excellence in higher education',Higher Education Research and Development, 12(1), pp. 87-98.
28. TROW, M., 1996, Trust, markets and accountability in higher education: a comparative perspective', Higher Education Policy, 9(4), pp. 309-324.
29. WEST, R., 1998, Review of Higher Education Financing and Policy (Commonwealth of Australia, Department of Employment, Education, Training and Youth Affairs).

Energy Conservation And Energy Efficiency

Dr. Sunita Phadnis *

Abstract - Conservation is the act of preserving, guarding or protecting by wise use of anything. The term is mainly used for biodiversity, environment and natural resources, protection and management. It is an ethic of resource use, allocation and protection. Its primary focus is on maintaining the health of natural world like humans, flora and fauna, their habitats and biological diversity. Secondary focus is on materials like non renewable resources such as metals, minerals and fossil fuel and energy conservation.

Energy conservation refers to reducing energy consumption through using less energy and it differs from efficient energy use. We can explain it by taking an example, if a car is driven less, it is "energy conservation" but driving a higher mileage vehicle or car is "energy efficiency". Both these are energy reduction techniques. Energy conservation results in increased environmental quality, national security, personal financial security and ultimately higher savings.

A common approach to conserve the energy may involve some steps which are:

1. Deep cut in carbon emission: The emission of green house gases should be reduced rapidly.
2. The management of natural resources: The natural resources should be managed cooperatively. The economic policies should be made as to make a budget for resources for conservation and sustainable development.
3. Training and orientation programs in environmental management: It is the need of time that there should be intense programs for education and training at not only higher but school level also.
4. Promoting environmental awareness: To raise public awareness and involvement in environmental activities, the mass media ranging from local newspapers to radio talks and electronic media should play a vital role. The people's participation in conservation of natural resources is the need of time.
5. Developing appropriate environmental technologies: The low cost technologies should be opened up by biotechnology, genetic engineering, information and material technologies tailored to local environmental and socio economic conditions.

The conclusion which can be taken out from above is that the energy can be conserved if it is worked out or managed properly by all sections of society. These environmental effects may cause social effects also. Energy is an essential factor in development as it is linked directly with the economic growth and development of country. So the sources of energy should be conserved properly to reduce pollution. There are several ways, systems and techniques if adopted and worked out properly will prove helpful to conserve the energy.

Keywords - Energy conservation, Energy efficiency, Global Warming, extinction of animals and plants, glaciers, carbon emission, fossil fuels.

Introduction - These days we often listen about the unusually hot summers, mild winters, rains in any season and melting glaciers at Antarctic. The cause of climate change can be divided into two types that is human cause and natural cause. Natural causes of climate change are volcanic eruptions, Ocean Currents and earth's orbital change whereas the main contributors and causes of climate change are Industrialization, Transportation and Power generation.

Energy Conservation - Energy is an essential factor in development since it stimulates and supports economic growth and development. Fossil fuel (especially oil and natural gas) is limited and depleting also. Scientific efforts are oriented for the search of new sources of energy but this is not enough. The main focus should be on the conservation of energy which is also in the hands of common man. Following are some simple ways to secure the environment by reducing the global warming by increasing energy efficiency and energy conservation.

1. **Change the travel behavior -** As we know that these days, a single person drives a big car, this is not proper as fuel is wasted and pollution increases. So we should encourage small cars with lower cost, lower impact on traffic congestion and less requirement of parking space and for small distances do not use cars and join a carpool if possible. Try to use public transportation.

Always check the tires as keeping the tires inflated properly improves the gas mileage by more than 3%. Avoid the air conditioners in cars. Do not carry the load which is not required as it requires more fuel. If possible walk or ride the bicycle in place of car.

2. **Save electricity -** Use more efficient lighting: CFL lighting is one solution to save electricity and lessen the

* Assistant Professor (Chemistry) M.J.B Govt. Girls P.G College, Moti Tabela, Indore (M.P.) INDIA

pollution. Turn off the TV, video player, stereo, computer if they are not in use. Use of LED's should increase. Initially we may feel that they are costly but their long life span and low energy use can save money of consumers.

3. **Recycling -**
   a. Recycling is a better option than dumping all non biodegradable waste like plastic as they are finally burnt and give out harmful gases on burning.
   b. Also buy recycled products to save energy and r esources.
   c. Start a compost pile for organic materials (egg shell, newspapers and food scraps) in to manure to enrich the soil.
   d. Reuse plastic bags for shopping and storage.
   e. Choose products that come with light weight packaging.

4. **Reduce the use of hot water -** Wash clothes in cold water. Pay attention on type of washing machines as front load washing machines use less water compare to top load. Choose a proper sized washer according to the size of family. Choose a dryer that uses less energy. Try to dry up the clothes in sunlight.

Water heaters - Old heaters use largest energy wasters in home, so try to purchase the unit which consumes less energy.

5. **Recycle Electronics -** Computers, monitors, its other parts, TV's, mobiles should be taken to the recycling centers where they may find new life instead of adding to piles of E-Waste. Due to a new invention daily the e-waste is increasing which is hazardous for human being.

6. Tissue paper is a major source of waste.

It takes 60,000 trees to make one year's worth of tissue papers for the world. So it should be avoided and new trees should be grown and should be cared properly.

7. Encourage "Green building" concept: New buildings should be designed and constructed in such a way that energy consumption is reduced by manipulating heating, cooling, lighting and water use factors. The plantation of evergreen trees reduces heating and also provides beautiful landscapes. Trees give out oxygen and store carbon (by CO_2) help in reducing global warming. The steps should be taken to reduce carbon footprint.

Buildings should be well equipped with solar heating systems. In passive solar building design, windows, walls and floors are made to collect, store and distribute solar energy in the form of heat in winter and reject solar heat in summer. This system does not involve the use of mechanical and electrical devices like active solar heating systems and is proved to promote green building concepts.

8. **Air conditioners -** While buying an A.C, the unit should have higher efficiency compressors, fan motors and heat transfer surfaces as it reduces the energy consumption. Try to use ceiling fans instead of AC's which are proved to be bad for health. Always buy the ones which have earned energy stars. The most important thing is to reduce the use of A.C's at all.

9. **Follow the Kyoto protocol -** This protocol is made by united nations framework convention on climate change (UNFCCC) and aimed to fight against global warming. With the goal of achieving the stabilization of green house gas concentration in the atmosphere at a level that would prevent dangerous anthropogenic interference with the climate change.

10. **Promoting environmental awareness -** The best way to reduce the global warming, write letters to editors of local and national newspapers for environmental concerns participate in local radio talk show, join a group on local, then national level and remain active against the global warming to solve the problems, stay alert and informed. Remain up to date by knowing latest newspapers and TV's. Try to separate the organic garbage and other garbage and develop the methods which are very easy and simple to make fertilizer that can be used to grow plants around.

Conclusion - The environment has to be viewed in a wider perspective where human and non human living beings are also important along with the nature. There is an urgent need to take measures for environmental protection and so several ways to save environment through conservation of energy. The danger is alarming. The clock is ticking and the time is running out. Above all it can be said that "Either we act quickly or be ready for extinction".

So in the end we conclude that if we wish to live properly and keep some environmental treasure for our next generation, we should take the steps to reduce global warming by always following the ways in our day to day life. So think globally and act locally.

References :-

1. Natural resources defense council (NRDC) www.nrdc.org/globalwarming
2. World commission on the environment and development (WCED). Our common future oxford, oxford university press p.(43) 1987
3. Omer, A.M chapter 3: energy use, environment and sustainable development, In: environmental cost management, Editors Randi Taylor mancuso, NOVA science publishers, Inc., p. (129-166), NewYork USA 2009.
4. Omer, A M, Energy use and environmental impacts: a general review. Journal of renewable and sustainable energy. Vol 1 No. 053101 P. (1-29) USA September 2009
5. Energy Conservation vs. Energy Efficiency. Natural resources Canada Retrieved 13 May 2014
6. The Times of India, December 13, 2007
7. Battisti; David; Naylor "Historical warnings of future food insecurity with unprecedented seasonal heat" Science 323 (5911) 240-4, 2009.

****

घरेलू हिंसा और महिला सुरक्षा कानून के तहत पुलिस की भूमिका

डॉ. अंजना जैन*

शोध सारांश – भारत अघोषित रूप से पुरूष प्रधान देश माना जाता है। आर्थिक सत्ता पुरूष के हाथ में होने से पत्नी, बहन, बेटी, माँ के रूप में महिला घरेलू हिंसा का शिकार होती रहती है। महिला हिंसा को रोकने के लिए देश में कई कानून बनाये गये हैं। 2005 में महिला हिंसा संरक्षण कानून बनने के बावजूद महिला हिंसा के प्रकरण बढ़ते जा रहे हैं और पुलिस प्रकरण दर्ज नहीं करती और करती है तो अपराधी छूट जाते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है है, इतने महिला सुरक्षा कानून के बावजूद महिला घरेलू हिंसा की शिकार क्यों होती है? क्या पुलिस महिला हिंसा रोक पा रही है? आदि बातों को जानने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना – एक पुरानी कहावत है ' ... गंवार, पशु और नारी ये सब ताड़न के अधिकारी हैं।' नारी को एक ओर माता का दर्जा देकर ऊपर रखा गया है वहीं दूसरी ओर हिंसा और प्रताड़ना का अधिकारी बनाया गया है। आज देश में घर के ही लोगों द्वारा हत्या, हत्या के प्रयास, महिला के साथ मारपीट, दहेज प्रताड़ना, आग से जलना, धमकी देना, बलात्कार, आत्महत्या के लिए प्रेरित करना जैसे लाखो मुकदमे कोर्ट में लम्बित है।

दिल्ली की एक समाज सेवी संस्था के सर्वेक्षण अध्ययन की रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष 5 करोड़ महिला अपने ही घरों में हिंसा का शिकार होती है। इनमें से मात्र 0.1 प्रतिशत ही हिंसा के खिलाफ रिपोर्ट लिखवाने जाती है। और आश्यचर्यजनक है कि आज भी अधिकांश महिला घरेलू हिंसा से बचने के लिए सरकार द्वारा बनाए गए अधिनियम से परिचित नहीं है। यही वजह है कि इस अधिकार के बारे में जानकारी न होने के चलते पीड़िताओं की संख्या बढ़ती जा रही है।

अध्ययन का उद्देश्य –

1. महिला संरक्षण अधिनियम के तहत घरेलू हिंसा के कारणों को जानना।
2. घरेलू हिंसा के केस में पुलिस की भूमिका का अध्ययन करना।

आंकड़ों व तथ्यों का संकलन – प्रस्तुत शोध पत्र प्राथमिक व द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है जिसमें द्वितीयक तथ्य पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख से तथा प्राथमिक तथ्य व आंकड़े प्रत्यक्ष साक्षात्कार, समूह चर्चा द्वारा एकत्र किये गये हैं। इस हेतु 200 परिवार की महिलाओं को शामिल किया गया है जो स्वयं या उनके परिवार की पड़ोसी महिला को हिंसा का शिकार होते देखा या सुना है। इससे प्राप्त जानकारी के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये हैं।

अध्ययन से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण –प्रस्तूत अध्ययन के माध्यम से उद्देश्य के अनुसार म.प्र. के परिवार की महिला सदस्यों से उनके स्वयं के साथ, परिवार के सदस्य के साथ, परिचितों, पड़ोसियों के साथ हुई घरेलू हिंसा की शिकार, हिंसा के लिए उत्तरदायी कारण, घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं के आयु, हिंसा की शिकायत पुलिस थाने में दर्ज करवाई व घरेलू हिंसा प्रकरण में पुलिस की भूमिका आदि तालिकाओं द्वारा विश्लेषण किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन – सचिव भारत सरकार के अनुसार भारत में जो महिलाएं कुटुम्ब में रहती हैं जिनके प्रति घरेलू हिंसा होती है, उनकी सुरक्षा के लिए देश में 14 सितम्बर 2005 को महिला हिंसा संरक्षण अधिनियम लागू किया गया।[1]

संयुक्त राष्ट्र संघ ने इसे (1979) में अन्तर्राष्ट्रीय कानून का रूप दिया।[2] (2006) के अध्ययन के अनुसार अपशब्द, रोक टोक करने, मारपीट करने को घरेलू हिंसा माना गया है और इसमें माँ, भाभी, बहन, पत्नी, किशोरियों के प्रकरण को शामिल किया जाता है।[3] (2007) के अध्ययन के अनुसार महिला हिंसा संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत प्रताड़ित महिला किसी भी वयस्क पुरूष को अभियोजित कर सकती है अर्थात उसके विरूद्ध प्रकरण दर्ज करवा सकती है।[4] (2006) गोहर के अनुसार परिवार का कोई भी पुरूष महिला को मारता, उसके साथ अभ्रद भाषा में बात करता या उससे किसी कार्य को करने के लिए विवश करता है तो वह घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत मामला दर्ज करवा सकती है।[5]

अध्ययन में शामिल 200 परिवार की महिलाएं जो स्वयं उनके परिवार या पड़ोसी या जान पहचान वाली महिला जो घरेलू हिंसा का शिकार हुई का अध्ययन किया गया है।

तालिका क्रमांक – 1
घरेलू हिंसा का शिकार

क्र.	हिंसा का शिकार	उत्तरदाता	प्रतिशत
1.	हिंसा का शिकार हुई	151	75.50
2.	हिंसा का शिकार नहीं हुई	49	24.50
	कुल	**200**	**100**

स्त्रोत – सर्वेक्षण पर आधारित 2014

तालिका क्रमांक – 2
घरेलू हिंसा घटित हुई

क्र.	घटना घटी	उत्तरदाता	प्रतिशत
1.	स्वयं के साथ	95	62.91
2.	परिवार में	47	31.13
3.	पड़ोसी/अन्य	09	5.96
	कुल	**151**	**100**

स्त्रोत – सर्वेक्षण पर आधारित 2014

* प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, किला भवन, इन्दौर (म.प्र.) भारत

तालिका क्रमांक – 3
आधार पर वर्गीकरण

क्र.	उम्र वर्ष में	हिंसा का शिकार	प्रतिशत
1.	15–20	23	15.23
2.	20–25	48	31.79
3.	25–30	41	27.15
4.	30–35	29	19.21
5.	30–40	08	5.29
6.	40–50	02	1.33
7.	50 से अधिक	–	–
	कुल	151	100

स्त्रोत – सर्वेक्षण पर आधारित 2014

तालिका क्रमांक – 4
हिंसा के लिए उत्तरदायी कारण

क्र.	कारण	उत्तरदाता	प्रतिशत
1.	हत्या या हत्या का प्रयास	08	2.83
2.	मारपीट	101	35.70
3.	गहरी चोट	03	1.06
4.	छेड़छाड़	01	0.35
5.	बलात्कार	03	1.06
6.	आत्म हत्या	03	1.06
7.	दहेज प्रकरण	11	3.89
8.	धमकी	151	53.40
9.	आगजनी	02	0.71

स्त्रोत – सर्वेक्षण पर आधारित 2014

तालिका क्रमांक – 5
घरेलू हिंसा प्रकरण पुलिस रिपोर्ट

क्रमांक	पुलिस रिपोर्ट दर्ज	उत्तरदाता	प्रतिशत
01	दर्ज करवाई	41	27.15
02	दर्ज नहीं करवाई	110	72.85
	कुल	**200**	**100**

स्त्रोत – सर्वेक्षण पर आधारित 2014

तालिका क्रमांक – 6
घरेलू हिंसा प्रकरण में पुलिस की भूमिका

क्र.	पुलिस की भूमिका	उत्तरदाता	प्रतिशत
1.	सहयोगात्मक	05	12.20
2.	असहयोगात्मक	24	58.54
3.	सन्देह पूर्ण	12	29.27
4.	कह नहीं सकते	00	00
	कुल	**41**	**100**

स्त्रोत – सर्वेक्षण पर आधारित 2014

तथ्यों का विश्लेषण – तालिका क्रमांक–1 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अधिकांश महिला स्वयं या उनके परिवार की, पड़ोसी या जान पहचान वाली महिलाएं घरेलू हिंसा का शिकार रही हैं जिसमें मारपीट, चरित्र सन्देह, पति का शराब पीना, दहेज धमकी और हत्या, आत्महत्या के प्रयास शामिल हैं।

तालिका क्र.–2 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि – अधिकांश उत्तरदाता महिला स्वयं हिंसा का शिकार हुई हैं। परिवार में सामाजिक प्रतिष्ठा के भय से व पड़ोसी अपने साथ घटित घटना को भय या अन्य कारणों से घर की बात बाहर बताना नहीं चाहती।

तालिका क्र.–3 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि – घरेलू हिंसा का शिकार 15 से लगाकर 40 वर्ष तक की महिलाएं अधिक होती हैं।

तालिका क्र.–4 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि – हिंसा के लिए उत्तरदायी भावनात्मक कारण, चरित्र शंका, पुत्र न देना, दहेज, नौकरी करना या छोड़ने के लिए बाध्य करना, आत्महत्या के लिए उकसाना, आर्थिक कारण – बच्चों की पढ़ाई, कपड़ा, दवाई के लिए खर्च मांगने पर, रोजगार का पैसा लेने देने आदि के कारण हिंसा, लैंगिक हिंसा के कारण –बलात्कार, अश्लील साहित्य, नीचा दिखाना आदि। शरीरिक हिंसा – मारपीट, थप्पड़, धक्का देना, ठोकर मारना, हत्या आदि हैं।

तालिका क्र.–5 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि, अधिकांश हिंसा की शिकार महिलाएं पारिवारिक दबाव, डर, आर्थिक मजबूरी व अज्ञानता की वजह से प्रकरण दर्ज नहीं करवाती हैं।

तालिका क्र.–6 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि, भ्रष्टाचार, राजनैतिक दबाव के चलते महिला पुलिस की सीमित संख्या तथा पुलिस की संवेदनहीनता के कारण यदि हिंसा की शिकार महिलाओं के प्रकरण दर्ज नहीं करती।

निष्कर्ष –देश में महिलाओं को हिंसा से सुरक्षित रखने के लिए कानून की कमी नहीं है। कमी है स्वंय महिला में जिसमें आत्म विश्वास व आत्मरक्षी उपायों की कमी है, समाज का डर, कानून की जानकारी और शिक्षा की कमी, परावलम्बन इसके लिए उत्तरदायी है। पुलिस की संवेदनशीलता भ्रष्टाचार और राजनैतिक दबाव से मुक्त पुलिस व्यवस्था ही नारी हिंसा के विरूद्ध सुरक्षा की ग्यारन्टी बन सकती है। केवल कानून बनाने से महिला हिंसा नहीं रूकेगी बल्कि स्वयं महिला को बदलना होगा। समाज को सुधारना होगा, न्याय प्रणाली को त्वरित न्यायशील बनना होगा। और सरकार को कानून के ढेर लगाने की बजाय जो कानून है उनकी लचरता को कम करते हुए उसे कठोरता से लागू करना होगा तभी माँ, बेटी, बहु, सास, पत्नी पर होने वाली महिला हिंसा रूक पाएगी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. नारायणी प्रकाश नारायण – कन्या भ्रूण हत्या और महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा – बुक एनक्लेव, जयपुर, पृ. 184 से 198, वर्ष 2007
2. लवानियत एम.एम. – भारतीय महिलाओं का समाजशास्त्र – रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, पृ.सं. 105 (2009)
3. वोहरा आसारानी – भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार – नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.सं. 87 (2008)
4. निशांत सिंह मीनाक्षी – आधुनिकता और महिला उत्पीड़न – ओमगा पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 32, 49 (2008)
5. निशांत सिंह मीनाक्षी – आधुनिकता और महिला उत्पीड़न – ओमगा पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 68, 140 (2008)
6. निशांत सिंह मीनाक्षी – आधुनिकता और महिला उत्पीड़न – ओमगा पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 148 (2008)

****

महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में महिला कानूनों की व्यवहारिकता

डॉ. सुदीप छाबड़ा *

शोध सारांश –वर्तमान समय में भारत में महिलाओं ने उन्नति के नये शिखरों को छुआ है। साथ ही संपूर्ण विश्व में भारत को गरिमा प्रदान करवाई है। लेकिन आज भी देश में जनसंख्या का एक बड़ा प्रतिशत उन्हीं पुरातन विचारधाराओं से जीवन व्यतीत कर रहा है जिसमें महिलाओं के लिए शोषण है। उस तबके को संरक्षण के लिए केवल कानून ही नहीं बल्कि सामाजिक जागृति की भी आवश्यकता है। कानून को किताबों के दायरों से बाहर निकालने तथा उसे समाज में संरक्षण हेतु लागू करने के लिए जागरूकता की आवश्यता होती है जिससे कि आम महिला का संरक्षण हो सके, उसका शैक्षणिक, आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक विकास हो सके और देश की आम महिलाओं के प्रति भी महिला सशक्तिकरण का भाव सकारात्मक रूप से प्रकट हो सके।

प्रस्तावना – समाज के निर्माण में महिलाओं की भूमिका अहम एवं अग्रणी होती है। केवल भारत में ही नहीं बल्कि संपूर्ण दुनिया में प्रत्येक समाज के निर्माण में महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है, महिलाओं की सक्रियता ने स्वयं राजनैतिक, सामाजिक, प्रशासनिक दृष्टि से अग्रणी बनकर स्वयं का लोहा मनवाया है। लेकिन पुरुष प्रधान समाज ने आदिकाल से महिलाओं को केवल पुरुष के सहयोगी अथवा उसके अधीन व्यक्तित्व के रुप में स्थापित करने का प्रयास किया है। इन्हीं प्रयासों के कारण महिला सामाजिक रुप से पिछड़ी तथा उसे पुरुष प्रधान समाज की प्रताड़ना को सहन करना पड़ा।

सदियों पूर्व भी महिलाओं के शोषण के कारण महिला की स्थिति दयनीय रही है और आज भी नारी को पुरुष के समान स्तर प्राप्त नहीं हुआ है। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिवेदन के अनुसार विश्व की संपूर्ण जनसंख्या में आधा भाग महिलाओं का है और विश्व की संपूर्ण जनसंख्या द्वारा किए जाने वाले कार्य का दो तिहाई (2/3) भाग कार्य महिलाएं करती हैं, किन्तु विश्व की कुल आय का ख़ भाग ही महिलाएं प्राप्त करती है और विश्व की कुल संपत्ति का 1/100 भाग ही नारी स्वामित्तव में है।

स्वतंत्र भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ। संविधान किसी भी देश की सर्वोच्च विधि होती है। भारत में इसको स्वीकार करना, इसका आदर करना सभी भारतीय नागरिकों के लिए अनिवार्य है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में निहित उद्देश्यो में वर्णित विचार देश के सभी नागरिकों को समाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास और धर्म की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्रदान करने के लिए पूर्णतरू कटिबद्ध है।

भारतीय संविधान देश के सर्वोच्च नीति निर्धारक स्तर पर ही स्त्री-पुरुष समानता के प्रति संकल्प को दृढ़ता से अभिव्यक्त करता है। लेकिन इसमें स्तर की समानता, अवसर की समानता, विधि के समझ समानता, विधि द्वारा समान सुरक्षा का आदर्श होते हुए भी भारतीय महिला को उसका उचित स्थान आज भी प्राप्त नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के समक्ष नारी के शोषण से संबधित, उसके मानव मूल अधिकारों, स्वतंत्रता से संबंधित प्रश्नों को संयुक्त राष्ट्र कमीशन के समक्ष बियना सम्मेलन जो सन् 1993 में हुआ था, में उठाया गया था जिसमें नारी के अधिकारों को मानवाधिकार होना स्वीकार किया गया। महिला के सशक्तिकरण हेतु भारतीय संविधान तथा भारतीय कानून में बहुत से प्रावधान दिए गए हैं जिनका उल्लेख किया जाना आवश्यक है –

- अनुच्छेद 14 राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में विधि के समक्ष समानता का अधिकार और अवसर देता है।
- अनुच्छेद 15 लिंग के आधार पर भेदभावों को वर्जित करता है। इसके अनुसार जाति, धर्म, लिंग, मूलवंश या जन्म स्थल के आधार पर किसी नागरिक के साथ किसी भी प्रकार का कोई विभेद नहीं कर सकते चाहे वह महिला हो या पुरुष।
- अनुच्छेद 15(3) में महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान है जो महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक पक्षपात हेतु सहायक है जो राज्यों के महिला विकास हेतु विशेष कानून निर्माण के प्रावधान की छूट देता है। इसी के आधार पर देश में राज्यों ने अनेक कानूनों को बनाकर समाज में व्याप्त महिला कुरीतियों जैसे बालविवाह, बहुविवाह से सुरक्षा प्रदान की है।
- अनुच्छेद 16 लोक नियोजन में नियुक्ति हेतु महिलाओं को समान अवसर प्रदान करता है। इसमें समान कार्य के लिए समान व्यवस्था की गई है।
- अनुच्छेद 23 व 24 में देवदासी प्रथा, बांदी प्रथा आदि को कानूनी रुप में अपराध घोषित किया गया है। यह महिला के क्रय-विक्रय पर भी प्रतिबंध लगाता है ।
- अनुच्छेद 30 में राज्य से यह अपेक्षा की गई है कि वह पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी आजीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराएगा।
- भारतीय संविधान भाग 4 में नीति निर्देशित तत्वों का समावेश किया गया है जिसका अनुच्छेद 39(घ) समान कार्य के लिए समान वेतन और समान जीविकोपार्जन के साधन अपनाने की बात करता है साथ ही स्त्री पुरुष के साथ समानता से व्यवहार करने का निर्देश देता है।
- अनुच्छेद 42 काम की न्यायोचित मानवीय दशाओं का और मातृत्व सहायता को उपलब्ध कराने का निर्देश देता है। इस निर्देश को क्रियान्वित करते हुए ही प्रसूति अधिनियम 1961 पारित हुआ है। यह अधिनियम

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

विभिन्न महत्वपूर्ण महिला सुविधाओं की व्यवस्था करता है जैसे गर्भपात की दशा में छुट्टी, गर्भपात से पैदा होने वाली रुग्णता के लिए छुट्टी तथा पोषणार्थ विराम की सुविधा आदि।

- अनुच्छेद 43 स्त्री एवं पुरुष कामगारों के लिए निर्वाह योग्य मजदूरी आदि की व्यवस्था करने का निर्देश देता है। राष्ट्र के आर्थिक विकास में भागीदार स्त्री-पुरुष श्रमिक की गरिमा एवं उनके व्यक्तित्व को बनाए रखने के लिए उन्हें जीवन-निर्वाह योग्य मजदूरी दिया जाना एवं उन्हें सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना अपरिहार्य है। इस अनुच्छेद के क्रियान्वयन हेतु न्युनतम मजदूरी अधिनियम 1948 पारित किया गया है।
- अनुच्छेद 51(क) महिलाओं के सम्मान के प्रति अपमानजनक, अशोभनीय कार्य, व्यवहार को त्यागने का मौलिक कर्तव्य है अर्थात संविधान में समाविष्ट मूल कर्तव्यों में 'महिला की गरिमा' का सम्मान करना भी निहित है। यह अनुच्छेद नागरिकों के लिए यह कर्तव्य अधिरोपित करता है कि ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध हैं।
- अनुच्छेद 325 एवं 326 सभी नागरिकों को अर्थात स्त्री एवं पुरुष दोनों को व्यस्कता के आधार पर मताधिकार देकर निर्वाचन प्रणाली में लिंग भेद का निषेध करता है।
- अनुच्छेद 243(घ), भारतीय संविधान में 73वें एवं 74वें संशोधन 1992 के द्वारा महिलाओं के लिए स्थानीय निकायों अर्थात पंचायत राज व्यवस्था में 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान करता है। इस संवैधानिक प्रयास के सकारात्मक परिणाम हमारे सामने है जो स्थानीय शासन संस्थाओं एवं निर्णय निर्माण प्रक्रिया में महिलाओं पर केंद्रित हुए हैं।

भारतीय संवैधानिक प्रावधानों को एक कानूनी ढांचे के तहत प्रभावी बनाया गया है। इस विषय पर कुछ कानून और विधान बनाए गए जो महिला अधिकारों को संरक्षण प्रदान करने के प्रयास हेतु है उदाहरण के लिए महिलाओं के आर्थिक क्षेत्र संबंधी विधान (जैसे कारखाना अधिनियम 1948, न्यूनतम वेतन अधिनियम 1948 समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 आदि), सामाजिक विधान (जैसे परिवार न्यायालय अधिनियम 1984, बाल विवाह नियंत्रण अधिनियम 1929, गर्भपात अधिनियम 1971 एवं 1994 में संशोधन, वेश्यावृति निवारण अधिनियम 1956 एवं 1986 में संशोधन भारतीय तलाक अधिनियम 1969 आदि), विशिष्ट विधान (जैसे अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1956 एवं 1986 में संशोधन दहेज निषेध अधिनियम 1961 एवं 1986 में संशोधित , घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम 2005 आदि) एवं सरंक्षणात्मक प्रावधान।

भारतीय संविधान में किए गए उक्त प्रावधानों के अतिरिक्त अन्य भारतीय विधियों में भी महिलाओं के अधिकारों व सुरक्षा के संबंध में अनेकों विधिक प्रावधान किए गए हैं, जिनका विवेचना निम्न प्रकार है-

भारतीय नारी एवं उत्तराधिकार - नारी के उत्तधिकार के अधिकारों के संबंध में ऐसा नही कहा जा सकता है कि वर्तमान विधिवेताओं ने ही इस बिंदु पर ध्यान दिया हो अपितु आदिकाल से नारी के साम्पतिक अधिकारों को मान्यता दी जाती रही है। मनुस्मृति के अध्याय-9 में यह लेख किया गया है कि -

- माता के विवाह के समय आभूषणादिक जो उसके पिता इत्यादि से मिले है वह संपूर्ण धन उन अविवाहित कन्याओं को मिलना चाहिए और पुत्रहीन नाना का संपूर्ण धन उसके दौहित्र (लड़की के लड़को) को लेना चाहिए। अपुत्रवान पिता का भी संपूर्ण धन उसके दौहित्र को मिलना चाहिए और वही दौहित्र पिता और माता दोनों को पिंड देवें।
- दो पिता से एक ही माता के उत्पत्र दो पुत्र यदि माता के धन के लिए आपस में विवाद करें तो जिसके पिता का धन हो उसके लड़के को दे देना चाहिए। माता के मरने के बाद सभी सहोदर भाई और कुंवारी बहनें माता के धन को बराबर बांट लें।
- जो पुत्र निःसंतान मर जाता है उसका हिस्सा उसकी माता को मिलना चाहिए। माता भी मर गई तो उसके पिता की माता (दादी) को धन मिलेगा। सभी ऋण और धन यथोचित विधि से बांटे जाने के पीछे से यदि पिता का ऋण दिखाई दे तो उसे भी सभी अंशों में बांट लेना चाहिए।
- वर्तमान संहिताबद्ध विधियों के रूप में प्रथमतरू ब्रिटिश शासन काल में सन् 1937 में दा हिंदु वूमैन्स राईट टू प्रोपर्टी एक्ट पारित किया गया जो हिंदु स्त्रियों के साम्पतिक अधिकारों को निश्चित करने हेतु एक अच्छा प्रयास था किंतु उक्त अधिनियम में कुछ खामियां होने के कारणवश इसको सन् 1938 में पुन: संशोधित किया गया। तत्पश्चात सन् 1956 में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 प्रभाव में आया।

महिला एवं दाण्डिक विधि - प्राथमिक रूप से दाण्डिक विधि महिलाओं के प्रति किसी प्रकार का भेदभाव करती हो ऐसा प्रतीत नहीं होता जैसे भारतीय दंड संहिता, भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता या अन्य सुसंगत विधि अर्थात भारतीय साक्ष्य अधिनियम आदि। किंतु महिलाओं से संबंधित आपराधिक प्रकरणों में, उनसे संबंधित अभियोजन के प्रावधानों के उदाहरणार्थ बालातसंग के मामलों में भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के प्रावधानों मंत वैवाहिक संभोग के हेतु दंड से बचाव किया गया है। इसी प्रकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 198(2) के अंतर्गत जारकर्मी पुरुष की पत्नी जारकर्म के अपराध के लिए पति के विरुद्ध परिवादी के रूप मे परिवाद प्रस्तुत नहीं कर सकती जबकि कोई पुरुष अपनी पत्नी द्वारा की गई जारता हेतु परिवाद प्रस्तुत कर सकता है। यह भेद अपराधिक विधि में भी दृष्टिगत होता है।

इसी प्रकार विस्तृत रूप से इस संबंध में विधियों का अध्ययन व विश्लेषण किया जाये तो अनेकों छिद्र दृष्टिगत होते हैं जैसे कि कामकाजी महिलाओं के साथ पारिवारिक हिंसा तथा लैंगिक अपराधों के संबंध में कोई विशिष्ट विधि निर्मित नहीं की गई है। इसी प्रकार बालातसंग से पीड़ित महिलाओं के लिए शारीरिक और मानसिक त्रास हेतु क्षतिपूर्ति प्रदत्त करने के संबंध में कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं किए गए है, जबकि इस प्रकार के प्रावधानों की अत्यधिक आवश्यकता है।

इसी प्रकार कुछ सामाजिक अपराधों यथा किसी स्त्री के पति या पति के नातेदारों द्वारा उसके प्रति की गई क्रूरता जिसमें दहेज विषयक 498(क) में दंड के प्रावधान किए गए हैं। इसी प्रकार दहेज के कारण हुई नारी मृत्यु के संबंध में धारा 304(ख) में दंड का प्रावधान किए गए है। उक्त अपराध सामाजिक अपराध की प्रकृति के होते हुए भी उनके लिए दंड का प्रावधान केवल महिलाओं की सुरक्षा व सम्मान के आशय से किया जाना प्रतीत होता है।

महिला एवं सामाजिक विधियां - हमारे समाज में प्राचीन समय से अनेकों सामाजिक बुराईयां चली आ रही है जिसमें से मुख्यतः सतीप्रथा, दहेज प्रथा, बाल-विवाह प्रथा, देवदासी प्रथा तथा महिलाओं के क्रय-विक्रय आदि का चलन होना सम्मिलित है। इन प्रथाओं के विरुद्ध प्राचीन समय से ही आवाज उठाई जाती रही है और भारतीय संसद व राज्यों की विधायिकाओं द्वारा कुछ अधिनियम व नियम बनाए गए हैं जिसमें से मुख्यतः दहेज प्रतिरोध अधिनियम 1961, बाल-विवाह प्रतिरोध अधिनियम 1929 है।

वास्तविक स्थिति – किंतु उक्त सभी विधियां कमियों से परिपूर्ण होने के कारण व्यवहार रूप से प्रभावशील नहीं हो पाई है, केवल किताबी विधियां बनकर रह गई है जैसे कि बाल–विवाह निषेध अधिनियम में बाल–विवाह के दोनों पक्षकरों अर्थात पति व पत्नी को बाल्यावस्था के कारण दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इसी प्रकार मुस्लिम विधि के अनुसार मुस्लिम समाज अपने बच्चों का विवाह यौवन आगमन पर कर सकते है और यह यौवन आगमन की आयु लगभग 12 वर्ष मानी जा सकती है। वास्तव में बाल–विवाह पर पूर्ण प्रतिबंध हेतु एक सामान्य विधि जो कि एकरूपता से लागू हो, की आवश्यकता है।

जहां तक दहेज प्रतिरोध अधिनियम 1961 के प्रावधानों तथा उससे संबंधित भारतीय दंड संहिता की धारा 304(ख) व 498(क) का प्रश्न है ये सभी प्रावधान पूर्ण व्यवहारिक रूप से प्रयोग नहीं होते हैं। भारतीय दंड सहिंता के प्रावधानों का सुदपयोग की तुलना में दुरूपयोग अधिक हो रहा है। हमें ऐसे कई उदाहरण मिल जायेगें जिनमें महिलाएं इन कानूनों की आड़ में अपने फायदे के लिए निर्दोष पति एवं उनके परिजनों के विरुद्ध कोर्ट चली जाती है।

दहेज प्रतिरोध अधिनियम के प्रावधान भी व्यवहार रूप से प्रभावी नहीं है। इसका एक कारण यह भी है कि यह अपराध न होकर सामाजिक दोष है। दहेज प्रथा को समाप्त करने हेतु विधि की विरचना से अधिक समाज की जागरूकता अधिक महत्तव रखती है। श्री जवाहर लाल नेहरू ने एक स्थान पर कहा था कि 'दहेज प्रथा केवल विधि से समाप्त नहीं की जा सकती' इसी क्रम में दृष्टि डालें तो वर्तमान में भी समाज में लड़की की अपेक्षा लड़को को अधिक महत्व दिया जाता है। इसी के फलस्वरूप भ्रूण के लिंग निर्धारण की वैज्ञानिक प्रक्रिया का जन्म हुआ है। इस वैज्ञानिक प्रक्रिया के दुष्परिणाम समाज के समक्ष है जैसे कि हम सबको ज्ञात है कि दिनों दिन लड़कियों की संख्या में लड़कों की अनुपात में तीव्रता से कम हुई है। इसने समाज को दहलाकर रख दिया है और यह केवल समाजशास्त्रियों के लिए ही नहीं बल्कि विधायिका और कार्यपालिका के लिए भी चुनौती का विषय बन गया है।

निष्कर्ष –महिलाओं के सशक्तिकरण का मूल मंत्र महिलाओं को आर्थिक सुदढ़िकरण और आर्थिक आजादी है जिसके अभाव में महिलाओं के सशक्तिकरण की परिकल्पना अधूरी है। कानून नहीं बल्कि महिला का आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होना उसे एक सशक्त महिला की पहचान दे सकता है और आम महिला भी इंदिरा गांधी, सरोजनी नायडू, प्रतिभा पाटिल, कल्पना चावला, सुनिता विलियम्स, इंदिरा नूयी, चंदा कोचर, रेणु खरोड बन सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. स्वामी भगवती, किशोर सविता, महिला सशक्तिकरण : क्यों और कैसे, आर.बी.एस.ए. पब्लिर्शस, जयपुर, 2008
2. बाबेल बसन्तीलाल, पारिवारिक विधि, द लायर्स होम इंदौर, 1988
3. श्रीवास्तव सुधारानी, भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति, कॉमनवेल्थ पब्लिर्शस, दिल्ली, 2010
4. मिश्रा डॉ. महेन्द्र कुमार, सामाजिक न्याय, मानवाधिकार और पुलिस, ऐजुकेशनल पब्लिर्शस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2011
5. श्रीवास्तव सुषमा, वूमन एम्पावरमेंट, कॉमनवेल्थ पब्लिर्शस, दिल्ली, 2008
6. तिवारी रामचन्द्र, दाभाड़े महेश, करेन्ट इश्यूस इन सोशल साइसेंस, कॉमनवेल्थ पब्लिर्शस दिल्ली, 2008

****

उच्च शिक्षा में गुणवत्ता विकास के प्रयास और प्रभाव

डॉ. प्रभाकर मिश्र *

प्रस्तावना – शिक्षा सदैव से श्रेष्ठतम मानवीय गुणों के विकास का आधार है। उच्च शिक्षा अपने पात्रताधारी की सकल क्षमताओं में वृद्धि करके उसे अन्य के सापेक्ष तुलनात्मक रूप से अधिक सक्षम और कार्यशील बनाती है। उच्च शिक्षित से यह भी अपेक्षित है कि वह उच्च वैचारिक पृष्ठभूमि के अतिरिक्त कार्यकुशलता एवं जीवन यापन के स्तर पर भी अपनी श्रेष्ठता बनाए रख सकेगा। उच्च शिक्षित व्यक्तित्व अपनी विचारणा को कार्यरूप में परिणत करने एवं उसे लोकोपयोगी बनाने में तभी समर्थ हो सकता है जब उसने अपनी श्रेष्ठताओं को कुशलता के साथ प्रशिक्षित किया हो। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में श्रेष्ठताओं को परिणामोन्मुखी या उद्देश्य साध्य बनाने की यह कुशलता ही शिक्षा की गुणवत्ता है।

उच्च शिक्षा मानव संसाधन विकास का महत्वपूर्ण आयाम है और उच्च शिक्षण संस्थान इसके उद्गम स्थल हैं जहां से शैक्षणिक एवं कौशल विकास का निर्धारण और निर्गम होता है। अतएव हमें अपनी ही नहीं वरन् विश्व की भावी आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए अपने मानव संसाधन तथा भौतिक संसाधनों की कार्य कुशलता एवं क्षमता को श्रेष्ठता के उच्च स्तर तक विकसित करने के प्रयासों को निरंतर जारी रखना है। शैक्षणिक गुणवत्ता विकास की इस महती आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शोध पत्र में तकनीकी एवं व्यावसायिक संस्थानों को छोड़कर परम्परागत उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न स्तरों पर किये जा रहे प्रयासों और तत्संबंधी समस्याओं के विश्लेषण और मूल्यांकन का प्रयास किया गया है।

उच्च शिक्षा में गुणवत्ता विकास की आवश्यकता – वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में निरंतर घटते संसाधनों, बढ़ती लालसा और उपभोगवादी संस्कृति को श्रेष्ठ मान लेने के विचार ने उच्च शिक्षित समाज पर संसाधनों को और अधिक संभाव्य, कार्यक्षम और दीर्घकालिक बनाने के साथ – साथ जीवन को उच्च स्तरीय सुविधा सम्पन्न बनाये रखने का अतिरिक्त दायित्व भी अपेक्षित ही नहीं लगभग सुनिश्चित जैसा ही कर दिया है। इस महती उच्च आकांक्षा की आपूर्ति उच्च स्तरीय ज्ञान एवं कुशलता के बिना संभव नहीं हो सकती। आज संचार साधनों की प्रबलता ने विश्व समुदाय की दूरियों को कम करने के साथ ही मानव जीवन की श्रेष्ठताओं, कुशलताओं, आवश्यताओं और आपूर्तियों को भी सामूहिक ही नहीं वैश्विक पटल का विषय बना दिया है जहां सफलता के लिए सार्वदेषिक मानवीय श्रेष्ठता और कुशलता की तुलना की जाना अवश्यंभावी है। हमारे आसपास एक विश्वव्यापी प्रतियोगी वातावरण बन गया है जो हमें अन्यों के समक्ष अपने संसाधनों को श्रेष्ठतर से श्रेष्ठतम बनने की ओर प्रेरित करता है। उपभोक्ता को उसकी आवश्यकतानुसार सेवा या संतुष्टि प्रदान करना, श्रेष्ठता के स्तर का संपोषण करना, विश्व मंच पर अपनी भूमिका के दायित्व का निर्वहन, स्थापित प्रतिष्ठा के स्तर को बनाए रखना तथा अपने उत्कृष्ट प्रदर्शन के माध्यम से अपनी योग्यता की मांग विश्व पटल पर सतत् बनाए रखना ऐसे कारण हैं जो हमें उच्च स्तरीय गुणवत्तायुक्त शैक्षणिक उत्पाद बनने की ओर अग्रसर करते हैं।

यह तथ्य अनेक माध्यमों से बहुश्रुत और प्रचारित है कि हमारे सर्वश्रेष्ठ उच्च शिक्षण संस्थान विश्व स्तरीय शिक्षण संस्थानों की तुलना में शीर्ष स्थान पर नहीं हैं। आज उच्च शिक्षा के क्षेत्र में समरसता, सर्वजनीनता के साथ शैक्षणिक गुणवत्ता की उपलब्धि भी केन्द्रीय साध्य है। अत: मानव संसाधन और शिक्षण संसाधनों की गुणवत्ता विकास संबंधी दक्षता की स्थिति का मूल्यांकन आवश्यक है।

उच्च शिक्षा में गुणवत्ता विकास के प्रयास – वर्तमान संदर्भ में कालक्रमानुसार बदलते शैक्षणिक परिदृश्य में प्राचीन भारतीय जीवन मूल्य केन्द्रित शिक्षा आज की उपभोगवादी आवश्यकता के अनुसार लक्ष्यों को पूरा करने में असहज है वहीं आदर्श जीवन मूल्य, भारतीय शैक्षणिक परम्परा और जीवन के नैतिक दायित्वों का निर्वहन कराने का आत्मबल प्राप्त कराने की क्षमता प्रदान करने वाली शिक्षा और शिक्षण परम्परा का ताना बाना बुनना दुष्कर है। भारतीय जीवन मूल्यों के साथ शिक्षण परम्परा को विश्वस्तरीय बनाने तथा शैक्षणिक गुणवत्ता के स्तर का निर्धारण करना जटिल प्रक्रिया है क्योंकि शैक्षणिक उत्कृष्टता के निष्पादन में अनेक प्रकार के भौतिक एवं मानवीय तत्वों का योगदान होता है। फिर भी शैक्षणिक गुणवत्ता के स्तर को सुधारने के लिए अनेक स्तरों पर प्रयास जारी हैं।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रयास – स्वतंत्रता के पश्चात् देश में विश्वविद्यालयीन शिक्षा के मानकों का समन्वय, निधारण एवं अनुरक्षण करने के लिए भारत सरकार के सांविधिक निकाय के रूप में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग(1956) की स्थापना की गयी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अपनी योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु अपने समस्त क्रियाकलापों को देश के सभी छ: क्षेत्रीय कार्यालयों में विकेन्द्रित कर दिया है। क्षेत्रीय कार्यालयों के माध्यम से सभी योजनाओं का सम्यक प्रसार किया जा रहा है। विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में शैक्षणिक उन्नयन एवं प्रसार के लिए यह संस्था विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों को योजनानुसार संसाधन उपलब्ध कराती है। विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में उच्च शिक्षा से सम्बन्धित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रस्तुत विभिन्न योजनाएं निम्नानुसार हैं –

1. विश्वविद्यालय स्तरीय योजनाएं
2. महाविद्यालय स्तरीय योजनाएं
3. विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय स्तरीय योजनाएं
4. विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के विभिन्न शैक्षणिक विभागों लिए योजनाएं
5. वैयक्तिक योजनाएं

उच्च शिक्षा संस्थानों की देश व्यापी विविधता तथा क्षेत्रीय विषमता के अनुरूप विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अपनी विकासात्मक योजनाओं को उद्देश्यपूरक और लचीला बनाया गया है। योजनाओं के माध्यम से संस्थागत स्तर से वैयक्तिक स्तर तक तथा आधारभूत संरचना के विकास से

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) शासकीय महाविद्यालय, महिदपुर (म.प्र.) भारत

लेकर अनुसंधान और नवोन्मेशी गतिविधियों के संचालन एवं संधारण तक शैक्षणिक गुणवत्ता विकसित करने तथा बनाए रखने के प्रयास निरंतर जारी हैं।

शिक्षण और अनुसंधान में उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अभिज्ञात विश्वविद्यालयों को 'उत्कृष्टता की संभाव्यता वाले विश्वविद्यालय' का दर्जा प्रदान करने के लिए सहायता प्रदान कर रहा है। इस योजना के अंतर्गत प्रत्येक विश्वविद्यालय को किसी भी एक योजना अवधि के दौरान 30.00 करोड़ रुपये उपलब्धा कराया जाता है। वर्ष 2012-13 में उत्कृष्टता की संभाव्यता वाले 15 विश्वविद्यालयों को 14.26 करोड़ रुपये की राशि जारी की गयी है। इसी प्रकार उत्कृष्टता की संभाव्यता वाले 284 महाविद्यालयों को 46.73 करोड़ रूपये की सहायता प्रदान की गयी है।

नये विचारों एवं नवोन्मेश को प्रोत्साहन देने और अन्तर्विषयी क्षेत्रों में विशेषज्ञता वाले पाठ्यक्रमों को आरंभ करने के लिए शत प्रतिशत अनुदान एवं विकास सहायता प्रदान की जा रही है। साथ ही विश्व विद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 2(च) और 12(ख) के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त शैक्षणिक उत्कृष्टता की संभाव्यता वाले महाविद्यालयों को स्वशासी संस्थान के रूप में विकसित किया जा रहा है। 12 वीं योजना (2012-2017) के लिए निर्धारित महत्वपूर्ण लक्ष्यों में गुणवत्ता और उत्कृष्टता को विकसित करने का लक्ष्य निरंतर सम्मिलित किया गया है।

राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् के प्रयास – देश में उच्च शिक्षा के स्तर को गुणवत्तापूर्ण एवं विश्व स्तरीय बनाने के लिए 11 वीं योजना में विश्व विद्यालय अनुदान आयोग उच्च षिक्षण संस्थानों की वास्तविक प्रगति ज्ञात करने के लिए राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् - 1994 (NAAC) जो कि विश्व विद्यालय अनुदान आयोग के अधीन एक स्वायत्तशासी संस्था है, के माध्यम से संस्थानों का मूल्यांकन देश के अन्य प्रगत संस्थानों की भांति किया जा रहा है।

भौतिक एवं मानव संसाधनों की गुणवत्ता के स्तर का मात्राकरण करना– शैक्षणिक मूल्यांकन के लिए परिषद् द्वारा उच्च शिक्षण संस्थानों को तीन वर्गों यथा - विश्वविद्यालय, स्वशासी महाविद्यालय तथा संबद्ध महाविद्यालय में विभक्त किया गया है। शैक्षणिक निष्पादन के आधार पर संस्था की शैक्षणिक व्यवस्था के मूल्यांकन के लिए 07 मुख्य आधार (पाठ्यक्रम पक्ष, शिक्षण अधिगम तथा मूल्यांकन, शोध, अनुवीक्षण एवं विस्तार, अधोसंरचना एवं अधिगम संसाधन, छात्र सहायता प्रगति, प्रशासन, नेतृत्व एवं प्रबंधन तथा नवाचार एवं स्वस्थ परंपराएं) 36 उपविभाग तथा 196 प्रमापी संकेतक निर्धारित किये गये हैं। इन संकेतकों में से 25 संकेतक अति महत्वपूर्ण हैं जिनके संबंध में विस्तृत सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं। संस्थाओं के संचालन एवं संगठन की प्रकृति के आधार पर 07 मुख्य आधारों के 36 उपविभागों को निर्धारित रूप से अधिभारित करके प्रक्रियानुसार श्रेणीकरण (ए, बी, सी तथा डी) प्रदान करके संस्थान के गुणवत्ता स्तर का मूल्यांकन किया जाता है।

प्रदेश के 04 विश्वविद्यालयों को सितारा मूल्यांकन के अनुसार ए सितारा ग्रेड प्रदान किया गया है वहीं षेष 03 विश्वविद्यालयों अवधेश प्रताप विश्वविद्यालय, रीवा, बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल तथा रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर को नवीन मूल्यांकन पद्धति के अनुसार क्रमश: सी++,बी तथा बी++ ग्रेड दिया गया है। ये विश्वविद्यालय प्रत्यायन की वैधता समाप्ति के पश्चात् अगले चरण को पूरा करने के लिए उदासीन हैं। संबद्ध संस्थानों, महाविद्यालयों की स्थिति मूल्यांकन एवं प्रत्यायन के दृष्टिकोंण से उत्साहजनक नहीं कही जा सकती। अभी तक 790 में से केवल 42 महाविद्यालयों द्वारा मूल्यांकन कार्य करवाया गया है जो कुल का केवल 05.5 प्रतिशत ही है। जिनमें 64 प्रतिशत महाविद्यालय नगरीय क्षेत्र से तथा 36 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र से संबंधित हैं। 42 महाविद्यालयों में से 08 महाविद्यालयों को ए श्रेणी, 28 को बी तथा षेष 06 महाविद्यालयों को सी श्रेणी प्राप्त हुई है। अब तक किये मूल्यांकन में प्रशासकीय दृष्टि से 69 प्रतिशत षासकीय महाविद्यालय तथा 31 प्रतिशत निजी महाविद्यालयों ने मूल्यांकन कार्य सम्पन्न कराया है जो महाराष्ट्र, हरियाणा तथा पंजाब जैसे राज्यों की तुलना में अत्यल्प है।

प्रदेश में उच्च शिक्षा विभाग के प्रयास –

1. **शैक्षणिक गुणवत्ता विकास कार्यक्रम –** इसके महत्व का आंकलन इस तथ्य से और स्पष्ट हो जाता है कि मध्यप्रदेश उच्चशिक्षा विभाग द्वारा गुणवत्ता वर्ष (2011-12), गुणवत्ता विस्तार वर्ष (2012-13) एवं सतत् गुणवत्ता विस्तार वर्ष (2013-14) के रूप में लगातार तीन शैक्षणिक सत्रों को शैक्षणिक गुणवत्ता विकास के लिए समर्पित कर दिया है। विभाग द्वारा जारी गुणवत्ता दृष्टिपत्र के दिशा निर्देशों में शैक्षणिक गतिविधि से सम्बद्ध प्राचार्य, शिक्षक, ग्रन्थपाल तथा विद्यार्थियों के लिए अपने अपने दायित्व निर्वहन के सूत्र दिये गये हैं जो गुणवत्ता प्राप्ति की दिशा में संस्थान को अग्रगामी बनाने में सहायक हैं।

2. **आंतरिक गुणवत्ता प्रकोष्ठ का गठन –** महाविद्यालयों में गुणवत्ता सुनिष्चित करने तथा इसके सतत् विकास के लिए संस्था में एक पूर्णकालिक प्रकोष्ठ प्रभारी के मार्गदर्शन में आंतरिक गुणवत्ता प्रकोष्ठ का गठन किया गया है जो गुणवत्ता सम्बन्धी कार्य के लिए उत्तरदायी है।

3. **स्वामी विवेकानन्द कैरियर मार्गदर्शन योजना –** इस योजना का उद्देष्य छात्रों को स्वरोजगार के लिए प्रशिक्षित करने के साथ-साथ उन्हें रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना है। सत्र 2012-13 में प्रदेश के 100 शासकीय महाविद्यालयों के 10000 छात्रों को उनकी अभिरूचि के अनुसार कौशल विकास के लिए प्रशिक्षित करना है ताकि वे अध्ययन के पश्चात् अपने कौशल से स्वरोजगार स्थापित कर सकें।

4. **न्यूज लेटर का प्रकाशन –** विद्यार्थियों में रचनात्मकता के विकास एवं अपने आसपास के वातावरण में घटित हो रही घटनाओं के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए गुणवत्ता वर्ष में महाविद्यालय स्तर पर न्यूज लेटर के प्रकाशन की व्यवस्था करने का सूत्रपात किया गया था जो आज विभागीय बेवसाइट पर प्रदर्शित होकर नवाचार के समाचार को संप्रेषित कर रहा है।

5. **वर्चुअल कक्षाओं का आयोजन –** महाविद्यालयों में शिक्षकों की कमी एवं विद्यार्थियों को उत्कृष्ट शिक्षकों के अध्यापन से लाभान्वित कराने के लिए प्रदेश के 100 महाविद्यालयों को चयनित कर इस योजना से जोड़ा गया है। योजनानुसार सम्प्रेषण तकनीकी का उपयोग करके संचालित कक्षा के प्रसारण को चयनित महाविद्यालयों में बैठे छात्रों को उपलब्ध कराया जाता है। यहां छात्र अपनी जिज्ञासा का समाधान दूरस्थ क्षेत्र से संचालित कर रहे शिक्षक से तत्काल कर सकता है जैसे कि वह सामान्य कक्षा में करता है।

6. **एम्बेसडर प्राध्यापक योजना –** प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित महाविद्यालयों में शिक्षकों की कमी से होने वाली छात्रों की समस्या को त्वरित रूप से हल करने के उद्देश्य से एम्बेसडर प्राध्यापक कार्ययोजना लागू है। एम्बेसडर प्राध्यापक योजना से सम्बद्ध प्राध्यापक अपने आबंटित जिले के महाविद्यालयों में दौरा करके विद्यार्थियों की विषय सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के साथ उनकी आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम के महत्वपूर्ण भाग के लिए प्रस्तुतिकरण करना और विद्यार्थियों से फीडबैक प्राप्त करके आगामी दौरे सुनिश्चित करना दायित्व में सम्मिलित है।

महाविद्यालय स्तर पर प्रयास –

1. **शून्य व सेतु कक्षाओं का आयोजन –** भाषा, सामान्य गणितीय क्षमताओं एवं सामान्य ज्ञान संबर्द्धन के लिए नियमित कक्षाओं के पूर्व एक सप्ताह तक आयोजित होने वाली शून्य कक्षाओं से नवप्रवेशित विद्यार्थियों के लिए जहां महाविद्यालय में उन्मुखीकरण आसान होता है वहीं सामान्य अध्ययन अध्यापन से अलग ये कक्षाएं उनमें आत्मविश्वास जाग्रत करती हैं।

विद्यार्थियों को शिक्षा की अन्य धाराओं से परिचित कराने तथा उनमें निहित मूलभूत जीवनोपयोगी जानकारियों से परिचित कराने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए सेतु कक्षाओं के आयोजन की व्यवस्था की गयी है। इस आयोजन से कला संकाय के विद्यार्थियों को विज्ञान और वाणिज्य, वाणिज्य के विद्यार्थियों को कला और विज्ञान तथा विज्ञान के विद्यार्थियों को कला और वाणिज्य के विषयों का जीवनोपयोगी सामान्य ज्ञान मिलने के साथ उनकी विषय सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान हो जाता है।

2. कैरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ की स्थापना – गुणवत्ता प्रकोष्ठ के दिषा निर्देशों के आलोक में विद्यार्थियों के रोजगार सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए स्थापना की गयी है।

3. प्रतिभा बैंक का गठन – समाज में कार्य कर रहे विभिन्न कार्यकुषल और छात्रों को उपयोगी मार्गदर्शन देने में सक्षम पूर्वछात्रों, व्यवसाियों, कलाकारों और अन्य क्षेत्रों में प्रतिभा सम्पन्न नागरिकों को सम्मिलित करके प्रतिभा बैंक का गठन किया गया है जो आवश्यकतानुसार यथा समय छात्रों का मार्गदर्शन करने लिए आमंत्रित कर लिए जाते हैं।

4. स्मार्ट क्लास रूम – शिक्षण में तकनीकी प्रयोग करके ज्ञान को सुग्राह्य बनाने के लिए महाविद्यालयों में स्मार्ट क्लासरूम की व्यवस्था की गयी है।

5. भाषा सुधार कार्यक्रम – छात्रों का सम्प्रेषण कौशल विकसित करने एवं भाषा परिमार्जन के लिए भाषा सुधार कार्यक्रम लागू है। कार्यक्रम में छात्र – छात्राएं अपने भाषागत ज्ञान को निरंतर सुधारकर संम्प्रेषण में कुशलता प्राप्त कर रहे हैं।

6. राष्ट्रीय एवं नैतिक मूल्याधारित कार्यक्रमों का आयोजन – छात्रों में लुप्त होते नैतिक मूल्यों के विकास के लिए एवं उन्हें अपनी समृद्ध परम्पराओं से परिचित कराने के लिए तथा मूल्याधारित शिक्षा के प्रसार के लिए संस्था में समय- समय पर जयंती मनाने, महत्वपूर्ण दिवसों का सामूहिक आयोजन करने में छात्र सहभागिता सुनिश्चित करके कार्यक्रम के उद्देश्य को सार्थक बनाया जा रहा है।

7. स्टूडेण्ट चार्टर – यह प्रदेश के उच्च शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत विद्यार्थियों को उनके अधिकार एवं कर्त्तव्यों की जानकारी प्रदान करने वाली नियमावली है। विद्यार्थियों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने अध्ययन काल में महाविद्यालय या विश्वविद्यालय द्वारा बनाए गये नियमों का पालन करेंगे तथा नियमों में सामयिक संशोधन होने पर उसकी अद्यतन जानकारी रखकर तदनुरूप आचरण करेंगे। नियमों की जानकारी के अभाव में होने वाली क्षति के लिए वे स्वयं उत्तरदायी होंगे। विद्यार्थियों में जागरूकता की भावना के विकास के लिए चार्टर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

उच्च शिक्षा में गुणवत्ता विकास की समस्याएं –

1. अधोसंरचना की कमी गुणवत्ता के विकास की बड़ी समस्या है। सत्र 2012-13 में प्रदेश के 85 महाविद्यालयों के पास भवन नहीं है। भवन विहीन महाविद्यालय में शैक्षणिक दायित्वों का निर्वहन कर गुणवत्ता प्राप्ति कठिन लक्ष्य है।
2. शिक्षण प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में अधिक प्रभावी भूमिका निभाता है। तकनीकी माध्यमों से सूचनाएं तो विद्यार्थियों तक पहुँचायी जा सकती हैं संस्कार नहीं जो कि शिक्षा का आंतरिक सौन्दर्य है। शिक्षकों की कमी के साथ अन्य संवर्गों यथा स्नातक प्राचार्य के 59 प्रतिशत, प्राध्यापक के 64 प्रतिशत, ग्रन्थपाल के 48 प्रतिशत, क्रीड़ाधिकारी के 60 प्रतिशत, मुख्य लिपिक के 52 प्रतिशत, लेखापाल के 77 प्रतिशत रिक्त पद इसे और दुरूह बना रहे हैं।
3. व्यक्तित्व विकास की कक्षाएं, प्रशिक्षण केन्द्रों एवं कुशल प्रशिक्षकों के अभाव में प्रभावी नहीं हैं।
4. सेमेस्टर प्रणाली के लागू होने से परीक्षा अंतराल कम हुआ है। परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय में वार्षिक परीक्षा संचालित कराने वाले उसी स्टाफ को वर्ष में दो बार होने वाली सेमेस्टर परीक्षा ने अस्त व्यस्त कर दिया है और पहले सेमेस्टर की परीक्षा का परिणाम आने से पूर्व अगले सेमेस्टर की परीक्षा आ जाती है जिसके नकारात्मक परिणाम छात्र समुदाय के हितों को प्रभावित करते हैं।
5. ग्रामीण पृष्ठभूमि में स्थित ग्रामीण महाविद्यालय में संसाधनों का अभाव और छात्रों का जीविकोपार्जन के कार्यों में अपने पारिवारिक सदस्यों का सहयोग के लिए अक्सर कक्षाओं से अनुपस्थित रहना उनकी शैक्षणिक गुणवत्ता के विकास में बाधक है।
6. ऑनलाइन प्रवेश प्रक्रिया का प्रारंभ छात्रों की सुविधा के लिए किया गया है लेकिन इसकी प्रक्रियागत जटिलता जिसमें विवरण के सत्यापन, संशोधन, सीट आबंटन, रीच्वाइस फिलिंग की प्रकिया आदि ने छात्रों तथा अभिभावकों की कठिनाइयां बढा दी हैं।
7. संस्था की गुणवत्ता मूल्यांकन प्रक्रिया को सम्पन्न कराने में उदासीनता होने से संस्था में किये जाने वाले सुधारों का आंकलन स्पष्ट नहीं हो पाता, जिससे विकास की प्रक्रिया में भी विलम्ब होता है।

सुझाव –

1. उच्च गुणवत्ता के मानक को प्राप्त करने के लिए अतिथि एवं एम्बेसडर प्राध्यापक व्यवस्था अपर्याप्त है। अत: पूर्णकालिक शैक्षणिक एवं अशैक्षणिक स्टाफ की व्यवस्था की जाना उचित है।
2. व्यक्तित्व विकास के लिए विषय विशेषज्ञों से मार्गदर्शन की व्यवस्था के प्रयास किये जायें।
3. सेमेस्टर प्रणाली के पुनरीक्षण की आवश्यकता है।
4. ग्रामीण क्षेत्र में स्थित महाविद्यालयों के छात्रों के लिए अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराके उनकी आवश्कताओं की पूर्ति की जाय।
5. ऑनलाइन प्रवेश प्रक्रिया को सरल बनाने की आवष्यकता है।
6. ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित महाविद्यालयों एवं षिक्षण संसाधनों के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा संचालित पिछड़े क्षेत्र से संबंधित अनुदान योजना के माध्यम से अतिरिक्त अनुदान प्राप्त करके आधारभूत संरचना और संसाधनों का विकास किया जाय।
7. सभी शैक्षणिक संस्थानों के लिए मूल्यांकन अनिवार्य करके इसके लिए समय सीमा तय करनी चाहिए ताकि मूल्यांकन कार्य को शीघ्र पूरा किया जा सके।

निष्कर्ष – उच्च शिक्षा में गुणवत्ता प्राप्ति की दिशा में व्यापक परिवर्तन किये जा रहे हैं। शिक्षण व्यवस्था में विचारों की सामयिकता, प्रयोगधर्मिता, वैचारिक उदारता, नवीनता, कार्यकुशलता, मौलिकता तथा समर्पण एवं समन्वय को सम्मिलित करके लक्ष्य प्राप्ति के लिए समन्वित प्रयास करने होंगे। मध्य प्रदेष में उच्च शिक्षा विभाग ने यद्यपि समसामयिक नवाचारों को स्थान देकर व्यवस्था को प्रगत करने का सराहनीय प्रयास किया है फिर भी विभिन्न शिक्षण संस्थानों के मूल्यांकन कार्य में अपेक्षित शीघ्रता की आवश्यकता है। सामयिक मूल्यांकन और परिमार्जन की प्रगति के आधार पर गुणवत्ता विकास की संभावनाओं को सार्थक किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. उच्च शिक्षा, म.प्र. शासन भोपाल, वार्षिक प्रतिवेदन, 2012-13
2. परिप्रेक्ष्य, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, नव. 2008
3. Higher Education in India : Issues related to expansion ,inclusiveness , quality and finance, UGC pub. 2008.
4. Annual Report. NAAC pub. 2011.\
5. Quality and excellence in higher education , State report – MP, NAAC pub. 2009

शोध पत्र तैयार की विधि
Method of Preparing of Research Paper

1. शीर्षक – Title
2. शोध सारांश – Abstract
3. शब्द कुंजी – Key words
4. प्रस्तावना – Introduction
5. उद्देश्य – Object
6. शोध परिकल्पना – Research Hypothesis
7. शोध प्रविधि एवं क्षेत्र – Research Methods & Area
8. शोध उपकरण – Research Tools
9. सांख्यिकी तकनीक – Statistics Technics
10. शोध व्याख्या – Description
11. निष्कर्ष – Conclusion
12. सुझाव – Suggestion
13. संदर्भ ग्रंथ सूची – References
    - a. अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक – Kotler, Philip : Marketing Management, 2007 P. 196
    - b. राष्ट्रीय पुस्तक – कुमार, वि. : जनांकिकीय 2006, पृष्ठ 42
    - c. अन्तर्राष्ट्रीय शोध जर्नल – नवीन शोध संसार, ISSN 2320-8767 जुलाई से सितम्बर 2014, पृष्ठ क्र. 81
    - d. राष्ट्रीय शोध जर्नल – नवीन शोध संसार, ISSN 2320-8767 जुलाई से सितम्बर 2013, पृष्ठ क्र. 222
    - e. अप्रकाशित शोध ग्रंथ – शर्मा लक्ष्मीनारायण : मन्दसौर जिले का जनांकिकीय अध्ययन1971 से 1991 अप्रकाशित पीएच.डी. शोध प्रबन्ध विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन 1995, पृष्ठ क्र.132
    - f. पत्रिकाऐं – रचना, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल फरवरी 2014 पृ. क्र.84
    - g. समाचार पत्र – दैनिक भास्कर, रतलाम संस्करण, 5 सित. 2014, पृ. क्र. 6
    - h. वेबसाईट – www.nssresearchjournal.com
    - i. अन्य – व्यक्तिगत सर्वे एवं विभागों से प्राप्त जानकारियां
14. शब्द सीमा – Word Limit - 2000
15. व्यक्तिगत जानकारी – नाम,
    पद,
    महाविद्यालय का नाम,
    निवास का पता,
    मोबाइल नं. व
    ईमेल एड्रेस आदि ।